बीएड, द्वितीय वर्ष

अधिगम के लिए आकलन

(ASSESSMENT FOR LEARNING)

GEDE-07

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group of Institutions, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Han'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Hemlata Dinkar
   HOD, DME
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Meena Barse
   Assistant Professor
   Sant Hirdaram Girls College, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Pravini Pandaagle
   Professor
   NRI Group of Institutions, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Pushpita Rajawat
   Assistant Professor
   Madhyanchal University, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr. Suman Lata, Lecturer, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar, Ghaziabad
Units: (1.0-1.1, 1.2-1.5, 1.6-1.10, 2.0-2.1, 2.3.6, 2.2-2.2.6, 2.3-2.3.5, 2.3.7, 2.4-2.5.5, 2.5.7, 2.6-2.10, 3.0-3.1, 3.2, 3.3.5, 3.4, 3.3-3.3.4, 3.5-3.9, 4.0-4.1, 4.2.3, 4.3, 4.5, 4.6-4.10)

Dr. Rupesh Tyagi, Assistant Professor (Contractual), Deptt of Economics, CCS University, Meerut
Units: (4.2-4.2.2, 4.2.5, 4.4)

Dr Nutan Singh, Associate Professor GDM Girls PG College Modinagar
Units: (4.2.4)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

अधिगम के लिए आकलन

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 आकलन और मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य– आकलन और मूल्यांकन : अर्थ, आवश्यकता एवं महत्त्व, मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व, आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन के मध्य अंतर और अंतर्सबंध, रचनात्मक प्रतिमान में अधिगम के आकलन एवं मूल्यांकन परिप्रेक्ष्य, अधिगम का आकलन, अधिगम के लिए आकलन और अधिगम के स्वरूप में आकलन के मध्य अंतर; आकलन का उद्देश्य– शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आकलन की भूमिका, नैदानिक–निदानात्मक, अधिगम की निगरानी, प्रतिपुष्टि प्रदान करना, उन्नति, नियोजन, प्रमाण पत्र प्रदान करना, ग्रेडिंग प्रदान करना, रचनात्मक उपागम में आकलन के उद्देश्य; आकलन के दृष्टिकोण– उद्देश्यों के आधार पर (निदानात्मक, नैदानिक, संरचनात्मक और योगात्मक), क्षेत्र के आधार पर (शिक्षक निर्मित और मानकीकृत), गुण मापन के आधार पर (उपलब्धि अभिक्षमता और अभिवृत्ति), सूचना की प्रकृति के आधार पर (गुणात्मक एवं परिमाणात्मक), उत्तर देने के आधार पर (मौखिक, लिखित और वस्तुनिष्ठ), चयन और पूति, निर्वचन की प्रकृति के आधार पर (मानक संदर्भित मानदंड और निकष संदर्भित), संदर्भ के आधार पर (आंतरिक और बाह्य); सतत् और व्यापक मूल्यांकन– सतत् और व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य और कार्य, सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रकृति एवं विशेषताएं, योगात्मक / संकलनात्मक आकलन : अर्थ उद्देश्य लाभ और सीमाएं	**इकाई 1** : आकलन और मूल्यांकन का अवलोकन **(पृष्ठ 3–83)**
इकाई–2 क्या आकलन करें– अधिगम के आयाम : संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोपेशीय कौशल का निष्पादन, संज्ञानात्मक अधिगम का आकलन : संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग, चिन्तन कौशल : अभिसरण, अपसरण, आलोचनात्मक तर्क एवं समस्या हल और निर्णय लेना, पद और उसके आकलन की प्रक्रिया, प्रभावी अधिगम का आकलन : मनोवृत्ति और मूल्य, रुचि, आत्मसंप्रत्यय : पद और उसके आकलन की प्रक्रिया, निष्पादन का आकलन : कौशल के मूल्यांकन के लिए उपकरण एवं प्रविधियां; आकलन के लिए उपकरण– अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, चेकलिस्ट, रेटिंग स्केल, आकस्मिक निरीक्षण रिकॉर्ड, मानकीकृत और अध्यापक निर्मित उपकरण; आकलन के लिए कार्य : प्रोजेक्ट, असाइनमेंट, कार्य पत्रक, परीक्षा के प्रकार : मौखिक प्रतिक्रिया और लिखित– आकलन के लिए उपकरण, परीक्षा के प्रकार : मौखिक और लिखित प्रक्रिया, शिक्षक निर्मित परीक्षण, सहपाठी आकलन, पोर्टफोलियो आकलन : अर्थ, क्षेत्र और प्रयोग, मूल्यांकन प्रक्रियाओं के लिए रूब्रिक प्रयोग, समूह प्रक्रियाओं का आकलन–सहयोगात्मक / सहकारी अधिगम और सामाजिक कौशल, सहयोगात्मक और सहकारी अधिगम परिस्थिति में सहपाठी का स्व–मूल्यांकन; एक अच्छे उपकरण के मापदंड– मूल्यांकन के उपकरण के आवश्यक मानदंड, वैधता : अवधारणा, प्रकृति और प्रकार, विश्वसनीयता : अवधारणा विश्वसनीयता के प्रकार एवं इसके निर्धारण की विधियां, विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक, विश्वसनीयता और वैधता के मध्य संबंध,वस्तुनिष्ठ और उपयोगिता, पद मूल्यांकन के लिए पैरामीटर : पद विश्लेषण, कठिनाई स्तर और विभेदन शक्ति	**इकाई 2** : आकलन के लिए उपकरण और तकनीक **(पृष्ठ 85–204)**

इकाई–3

उपलब्धि परीक्षण– विषयवस्तु /अन्तर्वस्तु के आधार पर मूल्यांकन : क्या और क्यों, अनुदेशनात्मक अधिगम एवं आकलन के उद्देश्यों में अन्तर, उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य, उपलब्धि परीक्षण का प्रारूप निर्माण : अनुदेशनात्मक उद्देश्य, प्रारूप, ब्लूप्रिंट, परीक्षण निर्माण की रचना चयन, परीक्षण पदों को संगृहीत करना : परीक्षण प्रशासन एवं फलांकन प्रक्रिया हेतु दिशा निर्देश, उपलब्धि – परीक्षण का प्रशासन, मानदंड एवं प्राप्तांकों की व्याख्या; नैदानिक परीक्षण – शैक्षिक नैदानिक परीक्षण का अर्थ एवं महत्व, नैदानिक परीक्षण : प्रयोजन एवं उपयोग, उपलब्धि परीक्षण और नैदानिक परीक्षण में अंतर, शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया, विशेष क्षेत्रों में नैदानिक परीक्षण और उपचार; शिक्षार्थियों की प्रगति का अभिलेखन एवं प्रतिवेदन– सूचनाओं का अभिलेखन, प्रतिवेदन, विद्यार्थियों के निष्पादन के अभिलेखन एवं प्रतिवेदन, प्रगति रिपोर्ट, अध्यापक द्वारा प्रतिबिंब /परावर्तन, प्रतिपुष्टि को बालक एवं अभिभावकों से साझा करना, छात्र/अधिगमकर्ता के विकास एवं अधिगम सुधार में पृष्ठपोषण की भूमिका, छात्रों की आवश्यकताओं का पता लगाना

इकाई 3 : नियोजन, रचना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन का प्रतिवेदन
(पृष्ठ 205–283)

इकाई–4

आंकड़ों का प्रदर्शन– आंकड़े : अर्थ और प्रकृति, मापन का स्तर, प्रतिशत की गणना, मापन का स्तर, प्रतिशत की गणना, आंकड़ों का समूहीकरण और प्रस्तुतीकरण, आंकड़ों का रेखाचित्रीय या ग्राफिक प्रस्तुतीकरण; केंद्रीय प्रवृत्ति की माप– मध्यमान की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना, मध्यमान का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं, मध्यिका की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से माध्यिका की गणना, माध्यिका का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं, बहुलक : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से बहुलक की गणना, बहुलक का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं; विचलनशीलता की माप– विचलनशीलता का अर्थ, परास की अवधारणा, चतुर्थक विचलन की अवधारणा : गणना व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं, मानक विचलन; सामान्य प्रायिकता वक्र और सह–संबंध– सामान्य प्रायिकता वक्र : अवधारणा, विशेषताएं, महत्व अनुप्रयोग, प्रसामान्य में विचलन : स्क्यूनेस, क्यूरटोसिस, सह–संबंध : अवधारणा, प्रकार, सह–संबंध गणना विधि, मानक प्राप्तांक : Z प्राप्तांक, T स्कोर प्राप्तांक शतांशीय मान

इकाई 4 : समंक का सांख्यिकीय विश्लेषण
(पृष्ठ 285–456)

विषय–सूची

परिचय 1–2

इकाई 1 आकलन और मूल्यांकन का अवलोकन 3–83

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 आकलन और मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य
1.2.1 आकलन और मूल्यांकन : अर्थ, आवश्यकता एवं महत्त्व
1.2.2 मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व
1.2.3 आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन के मध्य अंतर और अंतर्संबंध
1.2.4 रचनात्मक प्रतिमान में अधिगम के आकलन एवं मूल्यांकन परिप्रेक्ष्य
1.2.5 अधिगम का आकलन, अधिगम के लिए आकलन और अधिगम के स्वरूप में आकलन के मध्य अंतर
1.3 आकलन का उद्देश्य
1.3.1 शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आकलन की भूमिका
1.3.2 नैदानिक–निदानात्मक
1.3.3 अधिगम की निगरानी
1.3.4 प्रतिपुष्टि प्रदान करना
1.3.5 उन्नति, नियोजन, प्रमाण पत्र प्रदान करना
1.3.6 ग्रेडिंग प्रदान करना
1.3.7 रचनात्मक उपागम में आकलन के उद्देश्य
1.4 आकलन के दृष्टिकोण
1.4.1 उद्देश्यों के आधार पर (निदानात्मक, नैदानिक, संरचनात्मक और योगात्मक)
1.4.2 क्षेत्र के आधार पर (शिक्षक निर्मित और मानकीकृत)
1.4.3 गुण मापन के आधार पर (उपलब्धि अभिक्षमता और अभिवृत्ति)
1.4.4 सूचना की प्रकृति के आधार पर (गुणात्मक एवं परिमाणात्मक)
1.4.5 उत्तर देने के आधार पर (मौखिक, लिखित और वस्तुनिष्ठ)
1.4.6 चयन और पूर्ति
1.4.7 निर्वचन की प्रकृति के आधार पर (मानक संदर्भित मानदंड और निकष संदर्भित)
1.4.8 संदर्भ के आधार पर (आंतरिक और बाह्य)
1.5 सतत् और व्यापक मूल्यांकन
1.5.1 सतत् और व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य और कार्य
1.5.2 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रकृति एवं विशेषताएं
1.5.3 योगात्मक/ संकलनात्मक आंकलन : अर्थ उद्देश्य लाभ और सीमाएं
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 आकलन के लिए उपकरण और तकनीक 85–204

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 क्या आकलन करें
2.2.1 अधिगम के आयाम : संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोपेशीय कौशल का निष्पादन
2.2.2 संज्ञानात्मक अधिगम का आकलन : संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग

2.2.3 चिन्तन कौशल : अभिसरण, अपसरण, आलोचनात्मक तर्क एवं समस्या हल और निर्णय लेना
2.2.4 पद और उसके आकलन की प्रक्रिया
2.2.5 प्रभावी अधिगम का आकलन : मनोवृत्ति और मूल्य, रुचि, आत्मसंप्रत्यय : पद और उसके आकलन की प्रक्रिया
2.2.6 निष्पादन का आकलन : कौशल के मूल्यांकन के लिए उपकरण एवं प्रविधियां
2.3 आकलन के लिए उपकरण
2.3.1 अवलोकन
2.3.2 साक्षात्कार
2.3.3 अनुसूची
2.3.4 चेकलिस्ट
2.3.5 रेटिंग स्केल
2.3.6 आकस्मिक निरीक्षण रिकॉर्ड
2.3.7 मानकीकृत और अध्यापक निर्मित उपकरण
2.4 आकलन के लिए कार्य : प्रोजेक्ट, असाइनमेंट, कार्य पत्रक, परीक्षा के प्रकार : मौखिक प्रतिक्रिया और लिखित
2.4.1 आकलन के लिए उपकरण
2.4.2 परीक्षा के प्रकार : मौखिक और लिखित प्रक्रिया, शिक्षक निर्मित परीक्षण, सहपाठी आकलन
2.4.3 पोर्टफोलियो आकलन : अर्थ, क्षेत्र और प्रयोग, मूल्यांकन प्रक्रियाओं के लिए रूब्रिक प्रयोग
2.4.4 समूह प्रक्रियाओं का आकलन—सहयोगात्मक/सहकारी अधिगम और सामाजिक कौशल
2.4.5 सहयोगात्मक और सहकारी अधिगम परिस्थिति में सहपाठी का स्व—मूल्यांकन
2.5 एक अच्छे उपकरण के मानदंड
2.5.1 मूल्यांकन के उपकरण के आवश्यक मानदंड
2.5.2 वैधता : अवधारणा, प्रकृति और प्रकार
2.5.3 विश्वसनीयता : अवधारणा विश्वसनीयता के प्रकार एवं इसके निर्धारण की विधियां
2.5.4 विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक
2.5.5 विश्वसनीयता और वैधता के मध्य संबंध
2.5.6 वस्तुनिष्ठ और उपयोगिता
2.5.7 पद मूल्यांकन के लिए पैरामीटर : पद विश्लेषण, कठिनाई स्तर और विभेदन शक्ति
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व—मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 नियोजन, रचना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन का प्रतिवेदन 205—283

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 उपलब्धि परीक्षण
3.2.1 विषयवस्तु /अन्तर्वस्तु के आधार पर मूल्यांकन : क्या और क्यों
3.2.2 अनुदेशनात्मक अधिगम एवं आकलन के उद्देश्यों में अन्तर
3.2.3 उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य
3.2.4 उपलब्धि परीक्षण का प्रारूप निर्माण : अनुदेशनात्मक उद्देश्य, प्रारूप, ब्लूप्रिंट
3.2.5 परीक्षण निर्माण की रचना चयन
3.2.6 परीक्षण पदों को संगृहीत करना : परीक्षण प्रशासन एवं फलांकन प्रक्रिया हेतु दिशा निर्देश
3.2.7 उपलब्धि—परीक्षण का प्रशासन
3.2.8 मानदंड एवं प्राप्तांकों की व्याख्या
3.3 नैदानिक परीक्षण
3.3.1 शैक्षिक नैदानिक परीक्षण का अर्थ एवं महत्व
3.3.2 नैदानिक परीक्षण : प्रयोजन एवं उपयोग
3.3.3 उपलब्धि परीक्षण और नैदानिक परीक्षण में अंतर
3.3.4 शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया
3.3.5 विशेष क्षेत्रों में नैदानिक परीक्षण और उपचार

3.4 शिक्षार्थियों की प्रगति का अभिलेखन एवं प्रतिवेदन
3.4.1 सूचनाओं का अभिलेखन
3.4.2 प्रतिवेदन
3.4.3 विद्यार्थियों के निष्पादन के अभिलेखन एवं प्रतिवेदन
3.4.4 प्रगति रिपोर्ट
3.4.5 अध्यापक द्वारा प्रतिबिंब /परावर्तन
3.4.6 प्रतिपुष्टि को बालक एवं अभिभावकों से साझा करना
3.4.7 छात्र/अधिगमकर्ता के विकास एवं अधिगम सुधार में पृष्ठपोषण की भूमिका
3.4.8 छात्रों की आवश्यकताओं का पता लगाना
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 समंक का सांख्यिकीय विश्लेषण 285–456

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 आंकड़ों का प्रदर्शन
4.2.1 आंकड़े : अर्थ और प्रकृति, मापन का स्तर, प्रतिशत की गणना
4.2.2 मापन का स्तर
4.2.3 प्रतिशत की गणना
4.2.4 आंकड़ों का समूहीकरण और प्रस्तुतीकरण
4.2.5 आंकड़ों का रेखाचित्रीय या ग्राफिक प्रस्तुतीकरण
4.3 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप
4.3.1 मध्यमान की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना, मध्यमान की व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.3.2 मध्यिका की अवधारण : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से माध्यिका की गणना, माध्यिक की व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.3.3 बहुलक : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से बहुलक की गणना, बहुलक का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.4 विचलनशीलता की माप
4.4.1 विचलनशीलता का अर्थ
4.4.2 परास की अवधारणा
4.4.3 चतुर्थक विचलन की अवधारणा : गणना व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.4.4 मानक विचलन
4.5 सामान्य प्रायिकता वक्र और सह–संबंध
4.5.1 सामान्य प्रायिकता वक्र : अवधारणा, विशेषताएं, महत्व अनुप्रयोग
4.5.2 प्रसामान्य में विचलन : स्क्यूनेस, क्यूरटोसिस
4.5.3 सह–संबंध : अवधारणा, प्रकार, सह–संबंध गणना विधि
4.5.4 मानक प्राप्तांक : Z प्राप्तांक, T स्कोर प्राप्तांक शतांशीय मान
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'अधिगम के लिए आकलन' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.एड. के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है।

शिक्षा एक व्यापक अवधारणा है। यह एक निरंतर चलने वाली स्वाभाविक प्रक्रिया है। शिक्षा ने हर युग में समाज को दिशा और स्वरूप प्रदान करने में सहायता दी है। किसी भी देश की शिक्षा पद्धति उस देश के सामाजिक प्रतिमान, सांस्कृतिक धरोहर एवं राजनीतिक मूल्यों द्वारा निर्धारित होकर गतिमान होती है। अधिगम के लिए आकलन, आकलन का एक नवीन उपागम है जो शिक्षण एवं अधिगम प्रक्रिया के साथ समेकित है तथा विद्यार्थियों की अधिगम उन्नति के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है। आकलन किसी व्यक्ति या समूह के बारे में सूचना संग्रहण, विश्लेषण एवं उनका अर्थ निकालने की प्रक्रिया है जिससे किसी व्यक्ति के विषय में अनुदेशनात्मक, निर्देशनात्मक अथवा प्रशासनिक निर्णय लिया जा सके। इस क्रिया द्वारा एकत्रित जानकारी का संबंध उस ज्ञात लक्ष्य या उद्देश्य से जोड़ा जा सकता है जिसके लिए वह निर्मित की गई है। जिन चीजों का आकलन किया जाता है उनमें ज्ञान, कौशल, प्रवृत्तियां, व्यवहार व क्षमताएं आदि शामिल हैं।

आकलन विद्यार्थी के अधिगम को आंकने के ठोस तरीके होते हैं। ज्ञान आधारित विषय क्षेत्र में आकलन का उद्देश्य यह आंकना होता है कि विद्यार्थी ने क्या सीखा है।

प्रस्तुत पुस्तक में अधिगम की प्रक्रिया, योजना व विद्यार्थियों व शिक्षकों के लिए इसका क्या महत्व होता है आदि की विवेचना की गई है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच-बीच में अपनी प्रगति जांचिए के माध्यम से विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर को जांचने का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को चार इकाइयों में समायोजित किया गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

पहली इकाई आकलन और मूल्यांकन पर केंद्रित है जिसमें आकलन के विभिन्न पहलुओं जैसे मापन, परीक्षण, परीक्षा, मूल्यांकन, आकलन के उद्देश्य, आकलन के दृष्टिकोण तथा सतत् और व्यापक मूल्यांकन आदि का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई आकलन के उपकरण और तकनीक को इंगित करती है। इसके अंतर्गत आकलन के विभिन्न आयाम, आकलन के उपकरण, आकलन की तकनीक आदि को समझाया गया है।

तीसरी इकाई नियोजन, रचना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन के प्रतिवेदन को दर्शाती है जिसके अंतर्गत उपलब्धि परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य, उपलब्धि परीक्षण का प्रशासन, नैदानिक परीक्षण, अभिलेखन तथा प्रतिवेदन का विश्लेषण किया गया है।

चौथी इकाई समंकों का सांख्यिकीय विश्लेषण है जिसमें आंकड़ों का अर्थ व प्रकृति, आंकड़ों का समूहीकरण, आंकड़ों का रेखाचित्रीय प्रदर्शन, केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, विचलन के विभिन्न माप तथा सामान्य वक्रों तथा सह-संबंधों को समझाया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में अधिगम के लिए आकलन को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर विषय को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

टिप्पणी

इकाई 1 आकलन और मूल्यांकन का अवलोकन

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 आकलन और मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य
1.2.1 आकलन और मूल्यांकन : अर्थ, आवश्यकता एवं महत्त्व
1.2.2 मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व
1.2.3 आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन के मध्य अंतर और अंतर्संबंध
1.2.4 रचनात्मक प्रतिमान में अधिगम के आकलन एवं मूल्यांकन परिप्रेक्ष्य
1.2.5 अधिगम का आकलन, अधिगम के लिए आकलन और अधिगम के स्वरूप में आकलन के मध्य अंतर
1.3 आकलन का उद्देश्य
1.3.1 शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आकलन की भूमिका
1.3.2 नैदानिक–निदानात्मक
1.3.3 अधिगम की निगरानी
1.3.4 प्रतिपुष्टि प्रदान करना
1.3.5 उन्नति, नियोजन, प्रमाण पत्र प्रदान करना
1.3.6 ग्रेडिंग प्रदान करना
1.3.7 रचनात्मक उपागम में आकलन के उद्देश्य
1.4 आकलन के दृष्टिकोण
1.4.1 उद्देश्यों के आधार पर (निदानात्मक, नैदानिक, संरचनात्मक और योगात्मक)
1.4.2 क्षेत्र के आधार पर (शिक्षक निर्मित और मानकीकृत)
1.4.3 गुण मापन के आधार पर (उपलब्धि अभिक्षमता और अभिवृत्ति)
1.4.4 सूचना की प्रकृति के आधार पर (गुणात्मक एवं परिमाणात्मक)
1.4.5 उत्तर देने के आधार पर (मौखिक, लिखित और वस्तुनिष्ठ)
1.4.6 चयन और पूर्ति
1.4.7 निर्वचन की प्रकृति के आधार पर (मानक संदर्भित मानदंड और निकष संदर्भित)
1.4.8 संदर्भ के आधार पर (आंतरिक और बाह्य)
1.5 सतत् और व्यापक मूल्यांकन
1.5.1 सतत् और व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य और कार्य
1.5.2 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रकृति एवं विशेषताएं
1.5.3 योगात्मक/ संकलनात्मक आकलन : अर्थ, उद्देश्य, लाभ और सीमाएं
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

अधिगम का आकलन शैक्षिक अधिगम की प्रक्रिया में एक अभिन्न अंग है। आकलन विद्यार्थी की क्षमताओं एवं रुचियों एवं सीमाओं की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। उसकी सम्पूर्णता को समझने में सहायता प्रदान करता है। आकलन सम्पूर्ण शैक्षिक अधिगम की गुणवत्ता को उन्नत बनाने के लिए आवश्यक है। वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सर्वाधिक जोर आकलन की प्रक्रिया में व्यापक परिवर्तन पर है। सामान्य अर्थों में आकलन

टिप्पणी

का अर्थ किसी व्यक्ति या समूह से संबधित सूचना ग्रहण की प्रक्रिया से है ताकि व्यक्ति या समूह विशेष के सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सके।

शिक्षा के क्षेत्र में आकलन एवं मूल्यांकन की अहम भूमिका होती है। आकलन सीखने की प्रक्रिया का एक अंग है जो अधयापक को यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि उसका शिक्षण कैसा होना चाहिए। जब शिक्षक कक्षा में छात्रों का आकलन करते हैं तो वे स्वयं का भी आकलन कर रहे होते हैं। इस प्रकार किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है। आकलन होने के बाद छात्र के संबंधा में कुछ सूचनाएं अध्यापक को प्राप्त होती हैं। इन सूचनाओं के आधार पर वह छात्र के शिक्षण अधिगम के संबंध में निर्णय लेता है। आकलन गतिविधियों, चर्चा, प्रश्नोत्तर के दौरान किया जा सकता है। इसके लिए यह तय किया जाता है कि कौन-सी गतिविधियां छात्रों के लिए उपयुक्त होंगी तथा किस प्रकार उन्हें सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

इस इकाई में आकलन और मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता, महत्व, उद्देश्य तथा आकलन के दृष्टिकोण को विस्तार से समझाया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- आकलन और मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता और महत्व को जान पाएंगे;
- आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन के मध्य अंतर और अंतर्संबंधों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- आकलन के उद्देश्यों की विवेचना कर पाएंगे;
- सतत् और व्यापक मूल्यांकन की प्रकृति, उद्देश्य और कार्यों का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 आकलन और मूल्यांकन का परिप्रेक्ष्य

अधिगम एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन में जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। उसने क्या सीखा यह उसके व्यवहार से पता चलता है। अधि गम का उद्देश्य मानव/बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। कितना परिवर्तन हुआ, वांछित लक्ष्य क्या है, उस लक्ष्य तक पहुंचने में क्या-क्या सुधार करने हैं इसके लिए किसी न किसी रूप में मूल्यांकन करते हैं। इस प्रकार मूल्यांकन शैक्षिक-अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत न केवल बालक की विषय सम्बन्धी योग्यता की जानकारी होती है अपितु उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का ज्ञान होता है।

मापन मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रथम पद है। मापन किसी साधन या परीक्षा द्वारा किया जाता है। ये साधन रेटिंग स्केल, तालिका निष्पति उपलब्धि परीक्षण, साक्षात्कार, अवलोकन अनुसूची आदि हो सकते हैं। इनके द्वारा अंक प्रदान किए जाते हैं। किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है। मापन को अर्थ प्रदान करना आकलन कहलाता है। आकलन, शैक्षिक अवधि के अन्त में यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि शैक्षिक लक्ष्य

को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है। मूल्यांकन में मापन के बाद के परिणामों की व्याख्या की जाती है। व्याख्या के आधार पर भविष्य कथन किए जाते हैं। मापन किसी वस्तु का अंकात्मक रूप है और मूल्यांकन उस वस्तु का परिमाणात्मक प्रस्तुतीकरण है।

1.2.1 आकलन और मूल्यांकन : अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व

प्रत्येक बालक के समग्र अधिगम अनुभव की वास्तविक तस्वीर सामने आ सके तथा बालकों के अधिगम की गुणवत्ता को सुधारने में भी सहायता मिल सके, इसके लिए हमें प्रभावी शैक्षिक अधिगम के लिए आकलन के विभिन्न पहलुओं को समझना जरूरी है। शैक्षिक अधिगम प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य बालक में सृजनात्मकता का विकास करना है।

आकलन का अर्थ एवं परिभाषा : किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है। बालक क्या जानते हैं? क्या उन्होंने पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया है या अपने व्यक्तिगत कार्यक्रमों के लक्ष्यों को या दक्षता को स्पष्ट करने के लिए कार्यक्रम की पुष्टि करने के लिए अधिगम का आकलन किया जाता है। आकलन, शैक्षिक अवधि के अन्त में यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है तथा बालकों की उपलब्धि के लिए ग्रेड या प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए भी आकलन किया जाता है।

आकलन सीखने की प्रक्रिया का एक अंग है जो अध्यापक को यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि उसकी शैक्षिक विधि कैसी होनी चाहिए? जब शिक्षक कक्षा में बालकों का आकलन करते हैं तो वे स्वयं का भी आकलन कर रहे होते हैं। यदि कक्षा में अधिकतर बालक सीख रहे हैं और सीखने में रुचि ले रहे हैं तो इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक की शैक्षिक तकनीकियां/विधियां प्रभावी हैं। यदि बालक नहीं सीख पा रहे हैं तो शिक्षक को निर्णय लेना होता है कि बालकों को सिखाने के तरीकों को और प्रभावी कैसे बनाया जाए। इस प्रकार आकलन गुणात्मक सुधार प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। आकलन के आधार पर शिक्षक यह जान पाते हैं कि बालक किस हद तक सीख पा रहे हैं और अभी कितना और प्रयत्न करना है ताकि वे अधिगम के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

प्रो0 इरविन के अनुसार, ''आकलन छात्रों के अधिगम एवं विकास के व्यवस्थित आधार का अनुमान है। यह किसी भी वस्तु को परिभाषित कर चयन, रचना, संग्रहण, विश्लेषण व्याख्या एवं सूचनाओं का उपयुक्त प्रयोग कर छात्र विकास तथा अधिगम को बढ़ाने की प्रक्रिया है।"

हुबा एवं फ्रीड के अनुसार, ''आकलन सूचना संग्रहण तथा उन पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया है जिन्हें हम विभिन्न माध्यमों से प्राप्त करके यह जानते हैं कि बालक क्या जानता है, समझता है तथा अपने शैक्षिक अनुभवों के द्वारा प्राप्त ज्ञान को परिणाम के रूप में व्यक्त कर सकता है। जिसके द्वारा छात्र अधिगम में वृद्धि होती है।"

शब्दकोष के अनुसार, आकलन का तात्पर्य किसी चीज की कीमत, गुणवत्ता या महत्व का निर्णय अथवा निर्धारण करना है।

वालेस, लार्सन एवं एल्क्सनीन के अनुसार, "आकलन का तात्पर्य किसी व्यक्ति या समूह के बारे में सूचना संग्रहण, विश्लेषण, एवं उनका अर्थ निकालने की प्रक्रिया है जिससे किसी व्यक्ति के विषय में अनुदेशनात्मक, निर्देशनात्मक अथवा प्रशासनिक निर्णय लिये जा सकें।"

टिप्पणी

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि–

- आकलन व्यक्तियों के संबंध में सूचना एकत्रित करने की प्रक्रिया है।
- इसके द्वारा पृष्ठपोषण दिया जा सकता है।
- आकलन विचार-विमर्शी प्रक्रिया है।
- आकलन के द्वारा छात्र अधिगम में सुधार तथा विकास किया जा सकता है।
- यह जांच-पड़ताल प्रक्रिया का पहला पद है।

आकलन की विशेषताएं : आकलन के द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि वास्तव में बालक ने शैक्षिक-अधिगम के अन्त में क्या-क्या सीखा है। एक अच्छे आकलन में नीचे दी गई पांच विशेषताओं का होना अनिवार्य है-

1. **वैधता :** वही आकलन वैध कहलाता है जो वास्तव में उन्हीं उद्देश्यों का आकलन करे जिनके लिए उसका निर्माण किया गया है।
2. **विश्वसनीयता :** आकलन का सबसे महत्वपूर्ण गुण विश्वसनीयता है। आकलन किसी भी समय किसी भी परिस्थिति में किया जाए उसका परिणाम सदैव एक समान होना चाहिए। एक आकलन तब ही विश्वसनीय कहलाएगा जब बालक पुनः-पुनः परीक्षा में लगभग एक समान उत्तर दे। यदि शिक्षक द्वारा एक ही आकलन के लिए अलग-अलग अंक प्रदान किए जाते हैं तो ऐसा आकलन विश्वसनीय नहीं कहलाएगा।
3. **मानकीकरण :** एक अच्छा आकलन मानकीकृत होना चाहिए। विद्यालयों में जो परीक्षण किए जाते हैं वे राष्ट्र एवं राज्य के लिए किए जाते हैं लेकिन मानकीकृत आकलन वह होता है जो कक्षा स्तर को शामिल करता है। मानकीकृत आकलन में कई गुण होते हैं जो उसे अद्वितीय एवं मानक बनाते हैं। एक मानकीकृत आकलन वही होता है जो बालकों को एक समय सीमा, समान प्रकार के प्रश्न, समान निर्देशों को दिया जाए और जिनमें बालक समान अंक अर्जित करें। मानकीकरण प्राप्तांक में होने वाली त्रुटियों को समाप्त करता है।
4. **व्यावहारिकता :** आकलन लागत, समय और सरलता की दृष्टि से वास्तविक एवं कुशल होना चाहिए। ऐसा भी हो सकता है कि आकलन का कोई तरीका आदर्श हो किन्तु उसे व्यवहार में न लाया जा सके तो ऐसे तरीकों को नहीं अपनाना चाहिए।
5. **उपयोगिता :** आकलन बालकों के लिए उपयोगी भी होना चाहिए। आकलन से प्राप्त परिणामों को बालकों के साथ साझा अवश्य करना चाहिए ताकि कमियों में सुधार लाया जा सके। आकलन बालकों एवं शिक्षकों की कमियों को जानने एवं उन्हें दूर करने में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है।

आकलन की आवश्यकता : आकलन की आवश्यकता विद्यालय में अध्यापन के पश्चात् छात्रों की अधिगम क्षमता, रुचि, व्यक्तित्व, अभियोग्यता आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करने तथा उसके अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण के लिए होती है।

आकलन का मुख्य उद्देश्य बालकों को सीखने के लिए प्रेरित करना और बालकों की क्षमता उम्र और स्तर को ध्यान में रखते हुए उसे एक निश्चित स्तर तक पहुंचाना है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आकलन को सीखने के साधन के रूप में देखा जाता है। आकलन की प्रक्रिया में प्रत्येक बालक की तुलना उसकी स्थिति से ही करना चाहिए दूसरे बच्चों की प्रगति से नहीं क्योंकि सभी बालकों के सीखने की गति एवं समझ विकसित करने का समय एक सा नहीं होता है। अत: शिक्षकों को बालकों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। आकलन का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि बालक ने एक निश्चित अवधि में शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। आकलन का उद्देश्य प्राय: योगात्मक होता है और अधिकांशत: इसका प्रयोग पाठन की इकाई की अवधि के अन्त में किया जाता है। आकलन की आवश्यकता निम्न तथ्यों को समझने के लिए पड़ती है–

1. परिवार व अन्य लोगों के सन्दर्भ में आकलन की आवश्यकता
    - माता-पिता को बच्चे की प्रगति एवं अधिगम के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए।
    - घर की गतिविधियों एवं अनुभवों से संबंधित स्कूल की गतिविधियां को जानने के लिए।
    - बालकों की उपलब्धि के विषय में सभी को सूचित करने के लिए। विद्यालय से सम्बन्धित जानकारी प्रदान करने के लिए।
2. अध्यापक के संबंध में आकलन की आवश्यकता
    - आकलन द्वारा शिक्षकों को छात्र की उपलब्धियों के बारे में पता चलता है।
    - आकलन के द्वारा ही शिक्षक को छात्रों की कौशल योग्यता तथा अधिगम क्षमता को पहचानने में सहायता मिलती है।
    - शिक्षण सामग्री के विकास के लिए आकलन की आवश्यकता होती है।
    - शिक्षक को आकलन के द्वारा छात्रों की सहायता करने का अवसर प्राप्त होता है।
    - आकलन द्वारा शिक्षक को शिक्षा के लक्ष्यों की प्राप्ति या अप्राप्ति के बारे में जानने में मदद मिलती है।
    - छात्रों की प्रगति रिपोर्ट तैयार करने के लिए आकलन आवश्यक है।
    - अशिक्षक आकलन समयोजन की समस्याओं के निराकरण में छात्रों की सहायता करता है।
    - नए अधिगम अनुभवों की तैयारी निश्चित करने के लिए आकलन की आवश्यकता होती है।
3. पाठ्य सहगामी के संदर्भ में आकलन की आवश्यकता
    - आकलन की आवश्यकता छात्रों की रुचि के अनुसार पाठ्य सहगामी क्रियाओं का वर्गीकरण करने के लिए आवश्यक है।
    - आकलन के द्वारा शिक्षक छात्रों की सांस्कृतिक, रचनात्मक तथा कलात्मक योग्यताओं को समझ सकता है।
    - आकलन के द्वारा छात्रों की अधिगम कठिनाइयों को जानने में सहायता मिलती है।

टिप्पणी

4. समाज के संदर्भ में आकलन की आवश्यकता

- आकलन के द्वारा समाज, शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास कर सकता है।
- प्रचलित शिक्षा के स्तर का ज्ञान आकलन के द्वारा ही होता है।
- किसी देश या समाज की प्रगति की स्थिति का ज्ञान आकलन द्वारा ही होता है।
- शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों एवं शिक्षा के पाठ्यक्रम में समाज के प्रभाव का पता आकलन के द्वारा ही जाना जा सकता है।

आकलन के उद्देश्य एवं कार्य

एकीकृत रूप से आकलन के महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित हैं–

1. विद्यालय में ऐसे वातावरण का निर्माण करना जिसके प्रति बालक आकर्षित हो तथा उन्हें सीखने की प्रेरणा मिल सके।
2. कक्षा में प्रचलित सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर बनाना।
3. प्रत्येक बालक को सीखने एवं विकास में सहयोग देना तथा सुधार की सम्भावनाओं की खोज करना।
4. विज्ञान अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त तरीकों के आधार पर सीखने की स्थितियों की योजना बनाना।
5. वैज्ञानिक संकल्पनाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोग करने तथा कक्षा में सीखी गई गतिविधियों के बीच समन्वय स्थापित करते हुए उन्हें वास्तविक जीवन से जुड़ी विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग करने में सक्षम है या नहीं इसकी जानकारी प्राप्त करना।
6. बालकों में आकलन के प्रति व्याप्त भय को दूर करना तथा उन्हें स्व-आकलन के लिए प्रोत्साहित करना।
7. समय की एक अवधि विशेष में बालकों को गणित की संकल्पनाओं को सीखने की प्रगति तथा उनमें आने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त करना।
8. बालकों में पूर्णता की भावना को विकसित करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना।
9. बालकों की व्यक्तिगत एवं विशेष जरूरतों की पहचान करना।
10. बालक क्या कर सकते हैं? क्या नहीं कर सकते? किस विषय विशेष में उनकी रुचि है इन सभी के बारे में समझ बनाने तथा महसूस करवाने में सहायता प्रदान करना।
11. बालकों की स्वयं के विषय में समझ तथा व्यक्तित्व के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करना।
12. बालकों को विज्ञान में प्रगति के प्रमाण तय करना जिन्हें अभिभावकों को सम्प्रेषित किया जा सके।
13. विद्यालय तथा उसके बाहर मौजूद भिन्न परिस्थितियों एवं अवसरों के प्रति छात्रों की प्रतिक्रियाओं को जानना।

टिप्पणी

14. प्रश्न बनाने, उनका हल खोजने व अनुमान करने की क्षमता का विकास करना।

आकलन का महत्व : आकलन एक शिक्षक को अपने शैक्षिक उद्देश्य एवं उनके सन्दर्भ में विद्यार्थियों की सम्प्राप्ति को जानने में, अधिगम में विद्यार्थी को आ रही कठिनाई और उसके कारणों का विश्लेषण करने में तदानुसार नैदानिक शैक्षिक की योजना बनाने में सहायता करता है। शैक्षिक अधिगम प्रक्रिया में आकलन के महत्व को निम्न तथ्यों के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. आकलन विद्यार्थियों में आत्म समझ विकसित करने एवं अपनी क्षमताओं को अच्छे से समझने में सहायक होता है।
2. आकलन शिक्षक को एवं विद्यार्थियों को उनकी सम्पूर्णता समझने में सहायता करता है।
3. आकलन विद्यार्थियों के लिए अभिप्रेरण का कार्य करता है।
4. अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति की जानकारी एवं उनके मूल्यांकन में सहायक होता है।
5. आकलन प्रभावी शैक्षिक अधिगम के लिए उपयुक्त शैक्षिक सामग्री एवं विधि के चयन में सहायक है।
6. विद्यार्थियों की रुचि, योग्यता, एवं उनकी छिपी प्रतिभा का अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है।
7. सम्पूर्ण शैक्षिक अधिगम की गुणवत्ता को उन्नत बनाने में सहायक होता है।
8. विद्यार्थियों के मार्गदर्शन एवं परामर्श में सहायक होता है।
9. नैदानिक शैक्षिक योजना बनाने में सहायक होता है।

1.2.2 मूल्यांकन का अर्थ, आवश्यकता एवं महत्व

अधिगम एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति जाने-अनजाने में अनेक तथ्यों को सीखता है तथा उनका अपने जीवन में प्रयोग करता है। जिसके कारण व्यक्ति का जीवन पहले जैसी अवस्था में नहीं रहता अर्थात् व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है इस निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया से वांछित लक्ष्यों की पूर्ति हो रही है अथवा नहीं इसकी जानकारी मूल्यांकन द्वारा होती है। इस प्रकार मूल्यांकन शैक्षिक-अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह शिक्षकों को पढ़ाने में तथा विद्यार्थियों को सीखने में सहायता प्रदान करता है। हम जीवनपर्यन्त किसी न किसी रूप में मूल्यांकन करते रहते हैं। यदि मानव जीवन से मूल्यांकन को हटा दिया जाए तो जीवन का उद्‌देश्य ही समाप्त हो जायेगा।

मूल्यांकन सदैव उद्‌देश्यों के अनुरूप किया जाता है। अत: मूल्यांकन और उद्‌देश्यों में घनिष्ठ संबंध होता है। शिक्षा के क्षेत्र में किसी बालक ने किन्हीं उद्‌देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। इसका ज्ञान हमें मूल्यांकन द्वारा प्राप्त होता है।

मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ मूल्य का अंकन करना होता है। मूल्यांकन के द्वारा किसी वस्तु, विचार, प्राणी अथवा क्रिया के मूल्य को अथवा किसी विशेषता को मानक शब्दों, चिन्हों अथवा अंकों के माध्यम से आंकने प्रक्रिया का बोध होता है। किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में इसे एक तकनीकी शब्द के रूप प्रयोग किया जाता है। प्रारम्भ में शिक्षा का स्वरूप केवल लिखने, पढ़ने और गणित तक ही सीमित था किन्तु आजकल इसके द्वारा व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास की अपेक्षा की जाने लगी है। अत: आजकल शिक्षाविद्

मूल्यांकन की प्रक्रिया के द्वारा न केवल विद्यार्थियों के विषय-ज्ञान के संबंध में सूचनायें एकत्र करते हैं अपितु उनके व्यक्तित्व के विकास के संबंध में भी आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं इसके माध्यम से तो विभिन्न शैक्षिक प्रक्रियाओं, शैक्षिक विधियों, पाठय सामग्री एवं पाठयक्रमों में भी सुधार लाने के प्रयास किये जाते हैं। समाज के विकास का पूरा चक्र मूल्यांकन पर ही निर्भर करता है।

मूल्यांकन की परिभाषा : विभिन्न मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों ने मूल्यांकन की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं उनमें से कुछ निम्न हैं-

कोठारी कमीशन (1966) : ''अब यह माना जाने लगा है कि मूल्यांकन एक अनवरत प्रक्रिया है, यह सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक अभिन्न अंग है और यह शैक्षिक लक्ष्यों से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।''

मैकनील : ''मूल्यांकन शब्द को, मैं इसे पसंद करता हूं, अथवा मैं इसे नापसंद करता हूं इन्हीं दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाने लगा है, यह किसी भी व्यक्ति द्वारा किन्हीं कार्यक्रमों, क्रियाओं, प्रक्रियाओं के दौरान प्राप्त अनुभवों की प्रतिक्रिया स्वरूप एक संवेगात्मक उद्‌गार है।''

शैक्षिक अनुसंधान विषय कोष : ''मूल्यांकन अपेक्षाकृत नवीन तकनीकी शब्द है, जिसका प्रयोग मापन की पारस्परिक परीक्षा एवं परीक्षण को अधिक विस्तृत अर्थ देने के लिए किया गया है।''

रेमर्स एवं गेज- ''मूल्यांकन के अन्दर व्यक्ति व समाज अथवा दोनों की दृष्टि में जो उत्तम है अथवा अवांछनीय है, उसको मानकर चला जाता है।''

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशैक्षिक परिषद् (1963) : ''मूल्यांकन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त किए गये हैं, कक्षाओं में दिए गये अधिगम अनुभव कहां तक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं और किस हद तक शिक्षा के उद्देश्य पूर्ण किए गए हैं।''

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशैक्षिक संस्थान दिल्ली की मूल्यांकन की अवधारणा नामक पुस्तक के अनुसार मूल्यांकन प्रक्रिया द्वारा हमें अग्रलिखित बातों का ज्ञान होता है-

- विद्यार्थी ने अपने शिक्षा के उद्देश्य को किस सीमा तक प्राप्त किया है?
- कक्षा में दिये जाने वाले शैक्षिक निर्देश (शिक्षा एवं प्रविधि) कितने प्रभावकारी हैं?
- अधिगम-अनुभव कितने प्रभावी उत्पादक रहे?

उपरोक्त सभी तथ्य मिलकर मूल्यांकन चक्र को पूरा करते हैं। इन तीनों के आपसी सम्बन्ध को त्रिभुजाकार आकृति से निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है-

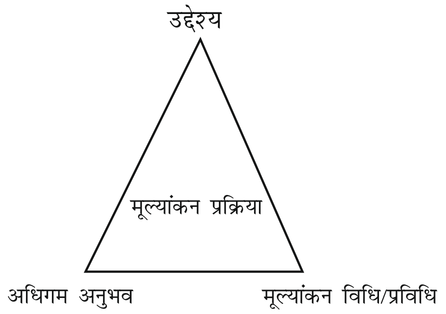

शैक्षिक उद्देश्य, अधिगम अनुभव तथा मूल्यांकन दोनों को प्रभावित करते है। अर्थात् उद्देश्यों के आधार पर अधिगम अनुभव योजना बनाई जाती है और वांछित उद्देश्य प्राप्त हुए या नहीं इसकी जांच मूल्यांकन द्वारा की जाती है। मूल्यांकन से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण करके यह ज्ञात किया जाता है कि अधिगम अनुभव से बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन हो रहा है या नहीं।

मूल्यांकन की विशेषताएं : उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात इसकी निम्न विशेषताएं सामने आई हैं–

- मूल्यांकन एक व्यापक प्रत्यय है।
- यह एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें बालक की प्रगति के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयास किए जाते हैं।
- मूल्यांकन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षक, बालक एवं शैक्षिक विधियों व प्रविधियों तथा शैक्षिक व्यवस्था की गुणवत्ता की जांच सम्भव होती है।
- यह शैक्षिक–अधिगम परिणामों को परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार से प्रस्तुत करता है।
- मूल्यांकन की विधियों एवं तकनीकियों का क्षेत्र कुछ परीक्षणों एवं परम्परागत परीक्षाओं तक सीमित नहीं है अपितु यह बहुआयामी साधनों के प्रयोग द्वारा काफी लचीलापन एवं व्यापकता प्रदान करता है।
- यह स्कूल संचालन में सहायता प्रदान करता है।
- यह अधिगम के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।

मूल्यांकन की आवश्यकता : शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन की भूमिका अहम होती है। शिक्षा के क्षेत्र में बालक ने क्या और कितनी उपलब्धि अर्जित की इसका पता मूल्यांकन द्वारा ही लगाया जाता है। मूल्यांकन शिक्षक, शिक्षार्थी एवं अभिभावक तीनों के लिए ही आवश्यक है क्योंकि शिक्षक और अभिभावक बालक की शैक्षणिक उपलब्धियों को जानने के पश्चात अगली परीक्षाओं के लिए उचित मार्ग दर्शन करते हैं तथा उन्हें प्रोत्साहन करने का प्रयास करते हैं। इससे बालक में आत्मविश्वास की भावना जागृत होती है। मूल्यांकन से बालक को अपनी योग्यता तथा प्रगति का ज्ञान हो जाता है जिससे उसे उपलब्धियों को प्राप्त करने में सहायता मिलती है। अभिभावकों को मूल्यांकन की सहायता से अपने बालकों की सही प्रगति का पता चलता है। इसी के माध्यम से उन्हें बालक की अधिक उपयुक्त शिक्षा व्यवस्था करने में सहायता मिलती है। मूल्यांकन के द्वारा शिक्षक को सभी बालकों की प्रगति के बारे में ज्ञान प्राप्त हो जाता है इसी के आधार पर वह बालकों का मार्गदर्शन कर पाता है, उनकी समस्याओं को जान पाता है। बालकों का मूल्यांकन करने से शिक्षकों को अपनी शैक्षिक विधियों एवं शैक्षिक योजना में उचित सुधार करने का अवसर मिल जाता है। शिक्षा में मूल्यांकन की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है–

- मूल्यांकन से छात्रों को अपनी प्रगति और शैक्षणिक उपलब्धियों का ज्ञान हो जाता है।
- मूल्यांकन के आधार पर वर्गीकरण की प्रक्रिया सरल हो जाती है उदाहरण के लिए मूल्यांकन के आधार पर ही बालक को श्रेष्ठ, सामान्य अथवा निम्न बुद्धि वाले बालकों के समूह में वर्गीकृत किया जाता है।

- मूल्यांकन की प्रक्रिया से बालकों को अपनी क्षमता, योग्यता एवं कमी का ज्ञान हो जाता है।
- मूल्यांकन के प्रयोग से विभिन्न व्यक्तित्व वाले बालकों का पता लगाया जाता है जिससे उनके लिए पाठयक्रम निर्माण में सहायता मिलती है।
- इस विधि से बालकों को आत्म मूल्यांकन के अवसर प्राप्त होते हैं।

मूल्यांकन के उद्देश्य एवं कार्य : मूल्यांकन के उद्देश्य एवं कार्य निम्नलिखित हैं-

- मूल्यांकन के द्वारा छात्रों को परामर्श एवं निर्देशन हेतु उचित अवसर प्रदान करना।
- मूल्यांकन द्वारा पाठ्यक्रम में आवश्यक संशोधन करना।
- मूल्यांकन के आधार पर परीक्षा प्रणाली में सुधार करना।
- बालकों के व्यवहार संबंधी परिवर्तनों की जांच करना।
- अध्यापकों की कार्य कुशलता एवं सफलता का मापन करना।
- मूल्यांकन द्वारा शैक्षिक व्यूह रचना का विकास करना।
- बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का पता लगाना।
- अनुदेशन की प्रभावशीलता का पता लगाना।
- अधिगम संबंधी कठिनाइयों का पता लगाना तथा उनके लिए नवीनतम एवं प्रभावी शैक्षिक विधियों एवं प्रविधियों की खोज करना।
- बालकों की दुर्बलताओं तथा योग्यताओं का पता लगाना, तथा बालकों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत करना।
- प्रचलित प्रशैक्षिक विधियों तथा पाठ्य-पुस्तकों की जांच करके उनमें अपेक्षित सुधार करना।
- बालकों की व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जानकारी प्रदान करना।
- बालकों को उत्तम ढंग से सीखने के लिए प्रोत्साहित करना।
- निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षा पर बल देना।

मूल्यांकन का महत्व : मूल्यांकन शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग तथा निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन के महत्व को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. शिक्षाशास्त्री, अध्यापक, बालक, अभिभावक प्रशासक सभी संयुक्त रूप से शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं। मूल्यांकन से शिक्षा के क्षेत्र में सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है। मूल्यांकन के आधार पर ही शिक्षक अपने द्वारा निर्धारित किए गए लक्ष्यों की प्राप्ति के बारे में जान सकते हैं। शिक्षक अपने द्वारा अपनाई गयी विधि की उपदेयता के आधार पर उसमें यथासम्भव परिवर्तन कर सकते हैं। पाठ्य सामग्री, शैक्षिक विधियों तथा सहायक सामग्री का निर्धारण कर सकते हैं।
2. मूल्यांकन ही एक मात्र साधन है जो यह निर्धारित करता है कि बालक की जन्मजात एवं अर्जित योग्यताएं एवं क्षमताएं कितनी एवं क्या-क्या हैं। मूल्यांकन

द्वारा बालकों की उन्नति एवं प्रगति के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है और इसी के आधार पर उन्हें उनके भावी जीवन के लिए निर्देशित किया जाता है।

टिप्पणी

3. पाठ्यक्रम में परिवर्तन एवं परिमार्जन के लिए भी मूल्यांकन अति उपयोगी है। पाठ्यक्रम वह साधन है जिसको शिक्षक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग करता है। इस प्रकार मूल्यांकन पाठ्यक्रम से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होता है।
4. मूल्यांकन के आधार पर ही यह निर्धारित किया जाता है कि शिक्षक द्वारा चयनित शैक्षिक विधियां निर्धारित पाठ्यक्रम के शिक्षण के लिए लाभदायक हैं अथवा नहीं। मूल्यांकन के आधार पर शिक्षण की कमियों को दूर करके शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जाता है।
5. मूल्यांकन का आधार ही उद्देश्य है, जिसके ऊपर ही शिक्षक की सफलता एवं असफलता निर्भर करती है। मूल्यांकन वह मानदंड प्रदान करता है जिससे शिक्षक के सामने उद्देश्य स्पष्ट होते हैं तथा मूल्यांकन के द्वारा ही विशिष्ट उद्देश्य प्राप्ति ज्ञात होती है। यदि विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं होती है तो उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था की जाती है।
6. प्रेरणा के दृष्टिकोण से भी मूल्यांकन उपयोगी है। मूल्यांकन द्वारा ही शिक्षक अपने पाठ को सुनियोजित ढंग से प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित होता है ताकि बालक को अधिक प्रभावी ढंग से पाठ्यवस्तु को समझा सके। मूल्यांकन शिक्षण की प्रभावशीलता को बताता है।
7. छात्रों को व्यावसायिक एवं शैक्षिक निर्देशन देने के लिए मूल्यांकन का प्रयोग करना बहुत महत्वपूर्ण होता है।
8. मूल्यांकन द्वारा विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
9. मूल्यांकन द्वारा बालकों की बुद्धि, रुचियों, अभिक्षमताओं, कुशलताओं, योग्यताओं, दृष्टिकोण एवं व्यवहारों की जांच का ज्ञान सम्भव है।

मूल्यांकन का क्षेत्र : मूल्यांकन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। मूंल्याकन का संबंध केवल बालक की बौद्धिक उपलब्धि तक सीमित न होकर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से संबंधित होता है। इस संबंध में आर.एस. वर्मा ने लिखा है कि मूल्यांकन का संबंध उन क्षेत्रों से है जिनमें व्यवहारगत परिवर्तन हो सकते हैं। अर्थात मूल्यांकन किसका किया जाना है यह मूल्यांकन का क्षेत्र निर्धारित करता है। मूल्यांकन के द्वारा हम व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का पता लगाते हैं और ये आयाम शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं नैतिक क्षेत्रों से संबंधित हो सकते हैं। मूल्यांकन के क्षेत्र के अन्तर्गत बालक के व्यक्तित्व के निम्नलिखित पक्षों का अध्ययन किया जाता है-

- मूल्यांकन द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि बालक ने विषय-वस्तु के संबंध में कितना ज्ञान प्राप्त कर लिया है।
- बालक के बोध का पता लगाना अर्थात् यह जानना कि बालक सीखी हुई सामग्री की कितनी प्रकार से व्याख्या करने की क्षमता रखता है।
- बालक ने ज्ञान के संबंध में कितनी सूचनाओं का संकलन किया है?

टिप्पणी

- शारीरिक स्वास्थ्य का मापन करना मूल्यांकन के क्षेत्र में आता है इसके लिए प्रश्नावली, स्वास्थ्य इतिहास तथा निरीक्षण पद्धतियों का सहारा लिया जाता है। वास्तव में शारीरिक स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसका मापन किए बिना कोई भी मूल्यांकन पद्धति अपूर्ण कही जाती है।
- अभिरुचि परीक्षणों का आयोजन करके बालक की योग्यता उसकी पसंद एवं नापसंद क्रियाओं की जांच की जाती है।
- बालक के द्वारा भूल क्यों की जाती है तथा वह त्रुटियों की पुनरावृत्ति क्यों करता है, इसकी जांच की जाती है।
- बालक की प्रवृत्तियों, अभिवृत्तियों एवं मूल्यों की जांच के लिए मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है

मूल्यांकन प्रक्रिया : बालक की प्रगति का मापन करने के लिए मूल्यांकन का प्रयोग किया जाता है। मूल्यांकन शैक्षिक प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। मूल्यांकन न केवल शैक्षिक प्रक्रिया का अपितु जीवन की प्रत्येक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी रूप में मूल्यांकन की अपेक्षा की जाती है। जिस प्रकार डाक्टर अपनी औषधि की प्रभावशीलता का मूल्यांकन रोगी के स्वास्थ्य में सुधार के आधार पर करता है, वकील अपनी बहस का मूल्यांकन जज के निर्णय के आधार पर करता है, उसी प्रकार शिक्षक अपने शिक्षण का मूल्यांकन बालकों में हुए अपेक्षित व्यावहारिक परिवर्तन के आधार पर करते हैं। मूल्यांकन के अभाव से हमारे समस्त प्रयास विफल हो सकते हैं। शैक्षिक प्रक्रिया का केन्द्रबिन्दु बालक होता है अत: बालकों की रुचियों, रुझानों एवं क्षमताओं को ध्यान में रखकर शिक्षण की व्यवस्था की जाती है। मूल्यांकन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अध्यापक शिक्षा के उद्देश्यों की सफलता का अनुमान लगाता है और आवश्यकता अनुसार शैक्षिक प्रक्रिया में सुधार किया जाता है।

इस प्रक्रिया में शैक्षिक परीक्षण एवं सम्पादन का कार्य किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन उपागम का प्रतिपादन डॉ. ब्लूम ने किया। परीक्षा सुधार की समस्या के समाधान के लिए लगभग छ: दशक पूर्व ब्लूम भारत आये थे तब उन्होंने मूल्यांकन उपागम को एक त्रिकोणीय प्रक्रिया के माध्यम से प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार शैक्षिक प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन स्तम्भ होते हैं-

- शिक्षण के उद्देश्य
- अधिगम अनुभव
- व्यवहार परिवर्तन

मूल्यांकन प्रक्रिया में समाहित उपरोक्त तीनों स्तम्भ पूर्णतया स्वतन्त्र नहीं हैं अपितु ये आपस में एक-दूसरे पर निर्भर हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं। ये घनिष्ठ रूप से संबंधित होते हैं। शैक्षिक क्रिया का प्रथम बिन्दु शैक्षिक उद्देश्य है। शिक्षक जब तक अपने बालकों के सामने विशिष्ट उद्देश्य का संकेत नहीं करता तब तक न तो वह बालकों में उस प्रकरण के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है और न ही उसका ध्यान एकाग्र कर सकता है और न ही शिक्षण को सही दिशा प्रदान कर सकता है। शिक्षक विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण करने के बाद ऐसा वातावरण तैयार करता है जो अधिगम अनुभव उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हो और बालक अधिगम में रुचि ले और उसके व्यवहार में परिवर्तन

दृष्टिगोचर हो। दर्शन को मूर्त रूप देने के लिए एक त्रिभुज आकृति का प्रयोग किया जाता है जिसे ब्लूम के त्रिभुज के नाम से भी पुकार जाना जाता है।

टिप्पणी

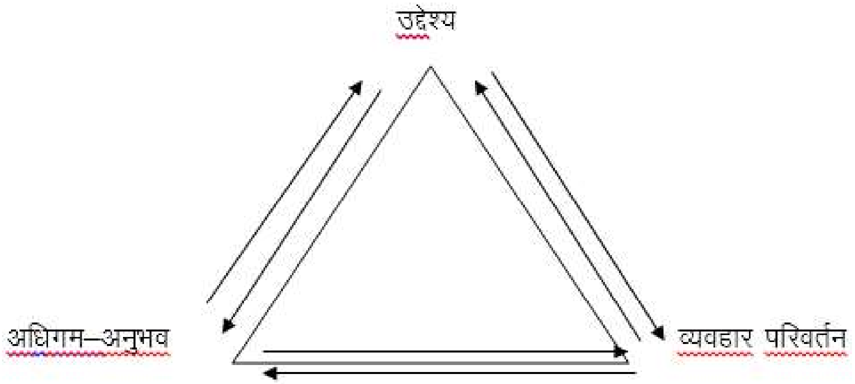

इस त्रिभुज के शीर्ष पर उद्देश्य, अधिगम अनुभव तथा व्यवहार परिवर्तन स्थित है। प्रत्येक शीर्ष पर धनुषाकृतियां पारस्पारिक निर्भरता को प्रकट करती हैं। शैक्षिक मूल्यांकन के इस नवीनतम प्रत्यय के अन्तर्गत निम्न बिन्दुओं पर विशेष बल दिया जाता है-

- इस प्रत्यय के अनुसार प्रक्रिया का केन्द्रबिन्दु बालक होना चाहिए।
- यह प्रत्यय बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं, रुचियों, सोचने के तरीकों, तर्क-विर्तक, व्यक्तिगत एवं समाजिक दायित्वों के निर्वाहन करने की क्षमताओं के अनुरूप होना चाहिए।
- शिक्षण की अपेक्षा अधिगम पर अधिक बल देता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर शैक्षिक मूल्यांकन एक अनवरत् प्रक्रिया है एक आदर्श परिस्थिति में एक ओर शैक्षिक-अधिगम प्रक्रिया तथा दूसरी ओर मूल्यांकन प्रक्रिया साथ-साथ चलती है।

मूल्यांकन प्रक्रिया में निम्न सोपान होते हैं-

- शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण और परिभाषीकरण
- अधिगम अनुभव की योजना बनाना
- व्यावहारिक परिवर्तन के आधार पर मूल्यांकन करना

शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण और परिभाषीकरण : सर्वप्रथम मूल्यांकनकर्ता शिक्षण के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण एवं परिभाषीकरण करता है।

सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण एवं परिभाषीकरण : मूल्यांकनकर्ता सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण किए बिना विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण नहीं कर सकता है। सामान्य उद्देश्यों के अन्तर्गत ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक उद्देश्य आते हैं। ये उद्देश्य दूरगामी लक्ष्य हुआ करते हैं, जिनकी प्राप्ति में लम्बा समय लगता है। ये परोक्ष एवं औपचारिक भी होते हैं। इन उद्देश्यों के निर्धारण के बाद, मूल्यांकनकर्त्ता इन उद्देश्यों को सार्थक एवं सुस्पष्ट बनाने के लिए इनका परिभाषीकरण करता है। सामान्यत: इन उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षा संस्था से सम्बन्धित प्रबन्ध तंत्र के लोग, शिक्षाविद्, सरकारी तंत्रों द्वारा किया जाता है। सामान्य उद्देश्यों को निर्धारित करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

टिप्पणी

- विषय एवं विषय-वस्तु की प्रकृति
- शिक्षा संस्था में प्रदान की जा रही शिक्षा का स्तर
- समान स्तर के अन्य सस्थानों में दी जा रही शिक्षा का स्तर
- अध्ययनरत बालकों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के स्तर एवं प्रकृति का ज्ञान

विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण एवं परिभाषीकरण : सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण करने के बाद मूल्यांकनकर्ता विशिष्ट उद्देश्यों को निर्धारित करता है। इनका निर्धारण करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के पश्चात् बालकों में क्या और किस प्रकार के परिवर्तन होंगे। एक शिक्षक जब कक्षा में शैक्षिक कार्य सम्पादित करता है तब उसके मनो-मस्तिष्क में कुछ तात्कालिक प्राप्य उद्देश्य रहते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति वह कक्षा में शिक्षण करते समय ही करता है क्योंकि विशिष्ट उद्देश्यों का सम्बन्ध पढ़ाये जाने वाले पाठ से होता है। विशिष्ट उद्देश्यों के निर्धारण के बाद परिभाषीकरण किया जाता है।

अधिगम अनुभव की योजना बनाना : शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण एवं परिभाषीकरण के पश्चात मूल्यांकन प्रक्रिया का दूसरा सोपान अधिगम अनुभवों को प्रदान करना होता है। अधिगम अनुभव शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। अधिगम अनुभवों को प्रदान करने के लिए संस्था का वातावरण, शैक्षिक स्तर, संस्था में सुविधाएं आदि कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मूल्यांकन प्रक्रिया के इस सोपान के दो भाग होते हैं-

शैक्षिक बिन्दुओं का चयन : शैक्षिक बिन्दुओं का चयन इस प्रकार किया जाता है कि सभी निर्धारित विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। पाठ्यवस्तु के प्रकरणों के छोटे-छोटे भाग शैक्षिक बिन्दु कहे जाते हैं, जिनके माध्यम से अध्यापन करना बहुत सरल हो जाता है।

उपयुक्त अधिगम क्रियाओं का चयन : शैक्षिक बिन्दुओं के निर्धारण के बाद उपयुक्त अधिगम क्रियाओं का चयन किया जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की शैक्षिक विधियों, प्रविधियों, पाठ्यपुस्तक, पाठ्यक्रम, सहायक सामग्री, गृहकार्य आदि शामिल होते हैं जिनके माध्यम से अधिकतम अधिगम अनुभव प्राप्त हो सके। अधिगम अनुभव हेतु शिक्षक को प्रभावात्मक शिक्षण करना चाहिए ताकि उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

1.2.3 आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन के मध्य अंतर और अंतर्संबंध

आकलन एवं मूल्यांकन को पहले समझाया जा चुका है।

मापन

मापन एक व्यापक प्रक्रिया है जिसमें बालकों की सफलता का सही अनुमान लगाने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें बालकों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा नैतिक गुणों का परीक्षण किया जाता है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है और इस युग की वैज्ञानिक प्रगति का प्रमुख आधार मापन है। मापन के अभाव में वैज्ञानिक प्रगति की कल्पना करना असम्भव है। मापन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए रॉस ने लिखा है कि- "यदि मापन के सारे यंत्र

तथा साधन विश्व से समाप्त कर दिए जाए तो आधुनिक सभ्यता बालू की दीवार की तरह ढह जायेगी।"

आधुनिक युग के प्रत्येक वैज्ञानिक द्वारा मापन की क्रिया में अधिक से अधिक शुद्धता लाने का प्रयास किया जाता है चाहे उसका संबंध किसी भी विज्ञान से हो। शिक्षा जिन अनुभवों को प्रदान करती है, जिस अन्तर्निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास करती है तथा जिन व्यवहारों में अनुकूल परिवर्तन लाती है उनका सही एवं विश्वसनीय आकलन मापन एवं मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव है।

मापन का अर्थ एवं परिभाषा

समान्यतः किसी वस्तु के भार, लम्बाई आयतन को निश्चित इकाई अंकों में मापने और प्रकट करने को मापन कहते हैं। मापन एक ऐसा प्रत्यय है जो अत्यन्त प्राचीनकाल से दैनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन से संबंधित कार्यों को करते समय अनेक औपचारिक एवं अनौपचारिक ढंग से मापन करता है। जैसे वस्त्र विक्रेता वस्त्र नापता है, फल व सब्जी विक्रेता तौलता है, डॉक्टर शरीर के तापमान को मापता है। इनके लिए मीटर, कि.ग्रा., लीटर एवं थर्मामीटर आदि मानक व मानक साधनों की आवश्यकता होती है लेकिन मानव जीवन के कई क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहां बिना किसी मानक के मापन किया जा सकता है। अर्थात मापन का संबंध केवल मूर्त वस्तु से ही नहीं होता अपितु अमूर्त अवधारणाओं से भी होता है। शिक्षा मनोविज्ञान और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में मानसिकता का मापन, अभियोग्यता, अभिरुचि, तथा विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का मापन साक्षात्कार के द्वारा प्रतियोगियों को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय क्रम प्रदान करना मानव व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्तियों को कुछ वर्गों में विभाजित करना अथवा किसी गुण विशेष के आधार पर बालकों को समूहों में बांटना आदि मापन के उदाहरण हैं। मापन का अर्थ थार्नडाइक के इस कथन में निहित है कि "जो कुछ भी अस्तित्वमय है, उसका अस्तित्व कुछ परिणाम में होता है।" इस अवधारणा पर सहमति प्रकट करते हुए मैककाल ने कहा है कि "यदि कोई वस्तु किसी परिमाण में अस्तित्वमय है तो उसका मापन हो सकता है।"

परिभाषाएं

अनेक विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मापन की इस प्रक्रिया को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है-

प्रो. कैम्पबेल के अनुसार, "नियमों के अनुसार वस्तुओं या घटनाओं को प्रतीकों में व्यक्त करना ही मापन है।"

एस.एस. स्टीवेन्स के अनुसार, "किन्हीं निश्चित स्वीकृत नियमों के अनुसार वस्तुओं को अंक प्रदान करने की प्रक्रिया को मापन कहते हैं।"

प्रो. टेलर के अनुसार, "मापन किसी नियम के अनुसार आबंटन की प्रक्रिया है।"

ब्रेडफील्ड तथा मोरडॉक के अनुसार, "मापन की प्रक्रिया में किसी घटना या तथ्य के विभिन्न आयामों के लिए प्रतीक निश्चित किए जाते हैं ताकि उस घटना या तथ्य के बारे में यथार्थ निश्चित किया जा सके।"

प्रो. जी.सी. हेल्मस्टेडटर के अनुसार, "मापन को किसी व्यक्ति या वस्तु में निहित किसी विशेषता के विस्तार को आंकिक रूप प्रदान करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है।"

टिप्पणी

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "किसी पूर्व निर्धारित तथा मान्य नियमों के आधार पर व्यक्तियों, वस्तुओं या स्थानों के किसी समूह के प्रत्येक सदस्य को अंकों, शब्दों या अक्षरों के किसी समूह से एक-एक अंक प्रदान करना ही मापन है" इस प्रकार मापन की प्रक्रिया में निम्न तीन बातें निहित हैं-

- व्यक्तियों, वस्तुओं या स्थानों के किसी समूह का होना।
- अंकों, अक्षरों या शब्दों के किसी समूह का होना।
- अंक, अक्षर या शब्द प्रदान करने के लिए पूर्व निर्धारित नियमों का होना।

मापन की विशेषताएं

मापन किसी कक्षा में कमजोर तथा होशियार बालकों को पहचानने में सहायक होता है। यह विद्यालय में परीक्षार्थियों को अंक प्रदान करने, उनका वर्गीकरण करने तथा उन्नति की जांच में शिक्षक की शिक्षण योग्यता का निर्णय करने में तथा शिक्षा पर होने वाले व्यय को निश्चित करने में सहायता देता है। मापन में निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं-

1. मापन मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करता है।
2. मापन की इकाइयां निश्चित नहीं होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए मानक एक जैसा नहीं होता।
3. किसी व्यक्ति की सम्पूर्ण बुद्धि का पूर्ण रूप से मापन नहीं किया जा सकता।
4. मापन में कोई निरपेक्ष शून्य बिन्दु नहीं होता, यह किसी काल्पनिक मानक के सापेक्ष होता है।
5. मापन में निरपेक्ष शून्य बिन्दु न होने पर इसकी व्याख्या गणितीय आधार पर नहीं की जा सकती है।
6. किसी व्यक्ति की उपलब्धि को प्रत्यक्ष रूप से नहीं मापा जा सकता इसे किसी अन्य माध्यम या व्यवहार से मापा जा सकता है।

मापन का महत्व

मापन शिक्षा प्रक्रिया की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। इसका जीवन में अत्यन्त महत्व है। सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय अन्य अनेक अवसरों पर हम मापन का उपयोग करते हैं। शिक्षा तथा मनोविज्ञान में मापन का अत्यन्त महत्व है इनका संबंध भौतिक मापन से न होकर मानसिक मापन से होता है। यह एक बहुत ही कठिन एवं जटिल कार्य है क्योंकि मनोवैज्ञानिक मापन में व्यवहार का मापन करते हैं और व्यवहार परिस्थिति के साथ-साथ बदलता रहता है। मापन के महत्व को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया जा सकता है-

1. मापन बालकों को अध्ययन के लिए तथा शिक्षकों को शिक्षण के लिए प्रोत्साहित करता है।
2. मापन बालकों को आत्म-मूल्यांकन का अवसर प्रदान करता है।
3. मापन बालकों तथा शिक्षकों की प्रभावशीलता को बताता है।
4. मापन द्वारा विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की उपयोगिता को समझा जा सकता है।
5. मापन के आधार पर पाठ्यक्रम, शिक्षण-विधियों में सुधार किया जा सकता है।

6. मापन के द्वारा बालकों की बुद्धि क्षमताओं, योग्यताओं, रुचियों, अभिरुचियों, कुशलताओं, दृष्टिकोणों आदि की जांच की जा सकती है।

मापन के कार्य

शिक्षा एवं मनोविज्ञान में मापन भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं । मापन के द्वारा शिक्षक कक्षा में कमजोर और होशियार छात्रों की पहचान कर सकता है। मापन परीक्षार्थियों को अंक देने में, उनके वर्गीकरण तथा उन्नति में तथा शिक्षण योग्यता का निर्णय करने में तथा शिक्षा पर होने वाले व्यय को निश्चित करने में सहायक होता है। किसी शैक्षणिक अधिकारी के पर्यवेक्षण में चलने वाले कार्यक्रम की प्रगति का निरीक्षण एवं मूल्यांकन करने में भी परीक्षण उपयोगी है। यह पाठ्यक्रम के विकास एवं सुधार के लिए भी उपयोगी है। इस प्रकार शिक्षण में मापन का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में किया जाता है। मापन के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं-

1. **चयन करना :** उद्योगों में तथा अन्य संगठनों में मापन की सहायता से कर्मचारियों तथा व्यक्तियों का चयन किया जा सकता है। मापन यन्त्रों का कार्य चयन में व्यक्तियों की योग्यता का पूर्व अनुमान करना है। कभी -कभी चयनित व्यक्ति अपनी योग्यता को प्रदर्शित करने में असफल हो जाते हैं और प्रबन्ध तन्त्र उन्हें निलम्बित कर देता है तो ऐसी अवस्था में मापन पुन: महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है मापन का उपयोग औद्योगिक संस्थानों में, सेवा में, सरकारी नौकरियों में तथा विद्यालयों में प्रवेश के लिए किया जाता है।

2. **तुलना करना :** मापन के द्वारा व्यक्ति को अंक प्रदान किए जाते हैं जिसके आधार पर एक बालक की अन्य बालकों के साथ तुलना की जाती है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच समानता एवं असमानता ज्ञात करने के लिए उनकी तुलना की जाती है और तुलना के लिए मापन की आवश्यकता होती है।

3. **वर्गीकरण :** मापन विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण में भी सहायता प्रदान करता है जो कभी-कभी योजना को प्रभावकारी बनाने के लिए आवश्यक भी होता है। कक्षा में कुछ समस्यात्मक बालक भी हो सकते हैं शिक्षक उन्हें सामान्य बालकों से अलग करते हैं ताकि अन्य बालकों का नुकसान न हो इसके लिए उन्हें मापन की आवश्यकता होती है।

4. **निदर्शन एवं परामर्श :** मापन शिक्षाविदों तथा मनोवैज्ञानिकों की निदर्शन एवं परामर्श में सहायता करता है। परामर्श एक विशिष्ट प्रकार का निर्देशन होता है जो उस सलाह की ओर इशारा करता है जिसके द्वारा वह जीवन की विभिन्न समायोजन समस्याओं का कार्यकारी समाधान प्राप्त करता है।

5. **कक्षा में शिक्षण को सुधारना :** एक कक्षा में एक शिक्षक सभी छात्रों को एक ही तरीके से पढ़ाता है लेकिन प्रत्येक बालक के परिणाम अलग-अलग होते हैं क्योंकि कुछ बालकों के लिए शिक्षण का स्तर उनकी मानसिक योग्यता के अनुरूप होता है और कुछ के लिए यह उनकी मानसिक योग्यता के ऊपर या नीचे होता है। इन दोनों में शिक्षण में मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मापन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

टिप्पणी

6. **भविष्यवाणी :** शिक्षा के क्षेत्र में भविष्यवाणी का बहुत महत्व है। बालक की वर्तमान क्षमताओं के आधार पर भावी विकास की भविष्यगाणी केवल मापन द्वारा ही सम्भव है। बालक की किस विषय में अधिक रुचि है और उसने किस में अधिक अंक प्राप्त किए हैं। इसके आधार पर उसके लिए भविष्यवाणी की जाती है।

मापन की सीमाएं

आजकल मापन का प्रयोग अत्यन्त विस्तृत रूप से किया जाता है फिर भी कुछ कमियों के कारण से इसकी हमेशा आलोचना होती रही है। इसकी कुछ सीमाएं इस प्रकार हैं-

1. शैक्षिक मापन में शुद्धता का स्तर भौतिक मापन की अपेक्षा कम होता है।
2. मापन शीलगुणों में अन्तर स्पष्ट करने में असमर्थ है।
3. मापन का क्षेत्र अत्यन्त संकुचित होता है क्योंकि यह व्यक्ति के एक या कुछ ही पहलुओं का अध्ययन करता है।
4. मापन अन्तिम निर्णय नहीं देता यह केवल सूचनाएं प्रदान करता है।
5. मापन का स्वरूप अंकिक होता है जिससे उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता है।

मापन एवं मूल्यांकन में अंतर

साधारणतः व्यक्तियों द्वारा मापन एवं मूल्यांकन का एक ही अर्थ लगाया जाता है जबकि वास्तविक रूप से इनमें आंशिक और पूर्ण अंतर होता है। मापन मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रथम पद है, मूल्यांकन में मापन के बाद के परिणामों की व्याख्या की जाती है। मापन किसी वस्तु का अंकात्मक या संख्यात्मक रूप है जबकि मूल्यांकन मापन के साथ-साथ उस वस्तु का परिमाणात्मक प्रस्तुतीकरण है। मापन में किसी वस्तु के किसी एक पहलू को ध्यान में रखा जाता है जबकि मूल्यांकन सम्पूर्ण वातावरण के सन्दर्भ में स्थिति का ज्ञान कराता है।

क्र.सं.	मापन Measurement	मूल्यांकन Evaluation
1	मापन एक प्राचीन धरणा है।	मूल्यांकन एक नवीन धरणा है।
2	मापन मूल्यांकन में निहित होता है।	मूल्यांकन मापन पर निर्भर करता है।
3	इसका विषय /मापन पाठ्य सामग्री केन्द्रित होता है।	मूल्यांकन उद्देश्य केन्द्रित होता है।
4	मापन द्वारा किसी एक विशेषता अथवा गुण को संख्यात्मक रूप प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।	मूल्यांकन, मापन द्वारा मापित विशेषता की वांछनीय परख करता है।
5	मापन का क्षेत्र सीमित एवं संकुचित होता है।	मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है।
6	मापन द्वारा तुलनात्मक अध्ययन सम्भव नहीं है।	मूल्यांकन द्वारा तुलनात्मक अध्ययन सम्भव है।
7	मापन केवल बालकों की निष्पत्तियों का अंकन करता है।	मूल्यांकन निष्पत्तियों के आधार पर शिक्षण विधि तथा पाठ्य वस्तु आदि को पृष्ठपोषण प्रदान करता है तथा उनकी उपयोगिता एवं उपादेयता की उद्देश्यों के सन्दर्भ में जाँच करके उनमें सुधार करता है।

8	मापन वस्तुनिष्ठ होता है।	मूल्यांकन आत्मनिष्ठ होता है।
9	मापन की पुनरावृत्ति आवष्यकता पड़ने पर होती है।	मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
10	मापन एक साधन है अपने आप में साध्य नहीं।	मूल्यांकन अपने आप में एक साध्य है।
11	मापन का कार्य साक्ष्यों का एकत्रीकरण करना होता है।	मूल्यांकन का कार्य साक्ष्यों का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकालना होता है।
12	मापन एक साधारण शब्द है।	मूल्यांकन एक प्रविधिक शब्द है।
13	मापन व्यक्तित्व के कुछ आयामों को प्रतीक प्रदान करता है।	मूल्यांकन व्यक्ति की रुचियों, अभिरुचियों मनोवृत्तियों एवं योग्यताओं आदि व्यक्तित्व के सीाी पक्षों की जांच करता है।

टिप्पणी

मापन, आकलन तथा मूल्यांकन में अन्तर

साधारणतः मापन तथा मूल्यांकन का एक ही अर्थ लगाया जाता है वास्तव में इन दोनों में अन्तर होता है। मापन, मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रथम पद है, मूल्यांकन में मापन के बाद मापन के परिणामों की व्याख्या की जाती है और व्याख्या के आधार पर भविष्य कथन किए जाते हैं। मापन किसी वस्तु का अंकात्मक रूप है और मूल्यांकन उस वस्तु का परिमाणात्मक प्रस्तुतीकरण है। किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है। ज्यादातर आकलन और मूल्यांकन को एक-दूसरे के पर्याय के रूप में प्रयोग करते हैं लेकिन वास्तव में इन दोनों के बीच भी अन्तर होता है।

मापन, आकलन तथा मूल्यांकन के अन्तर को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

क्र.स.	मापन	आकलन	मूल्यांकन
1	मापन पाठ्य वस्तु केन्द्रित होता है।	आकलन प्रक्रिया केन्द्रित होता है	मूल्यांकन परिणाम केन्द्रित होता है।
2	इसका क्षेत्र आकलन से व्यापक होता है लेकिन मूल्यांकन की अपेक्षा सीमित होता है। यह व्यवहार के कुछ ही आयामों को अंक प्रदान करता है।	आकलन का क्षेत्र बहुत सीमित होता है।	इसका क्षेत्र व्यापक है। यह विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मूल्य का अंकन करता है।
3	यह मूल्यांकन का सूक्ष्म रूप है।	आकलन मापन का सूक्ष्म रूप है।	मूल्यांकन की अवधारणा व्यापक होती है। इसमें मापन एवं आकलन दोनों समाहित होते हैं।
4	इसके द्वारा इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि कितने लक्ष्य की प्राप्ति हुई है	इसके द्वारा लक्ष्य प्राप्ति के साधन प्रयोग किए जाते हैं।	इसके द्वारा इस बात की जानकारी मिलती है कि उद्देश्य किस सीमा तक प्राप्त हुआ है।
5	मापन द्वारा केवल सूचनाओं का संग्रहण किया जाता है।	आकलन द्वारा सूचना प्राप्त करने के साधनों का प्रयोग किया जाता है।	मूल्यांकन क्रमबद्ध सूचनाओं का संग्रहण है, जिसके द्वारा निर्णय लिए जाते हैं।
6	चयन व संग्रहण के आधार पर अंक प्रदान किए जाते हैं।	आकलन द्वारा चयन संग्रहण किया जाता है।	इसमें अंक प्रदान करने के पश्चात मूल्यों का निर्धारण किया जाता है। जैसे अंक के आधार पर कौन सा स्थान प्राप्त किया है अर्थात् प्रथम, द्वितीय या तृतीय.....
7	यह किसी विद्यार्थी के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट धारणा स्पष्ट नहीं करता है।	इसके द्वारा किसी विद्यार्थी का आकलन किया जाता है।	इसके द्वारा किसी विद्यार्थी के सम्बन्ध में विशिष्ट धारणा बनाई जा सकती है।

टिप्पणी

8	मापन से अधिगम उद्देश्यों में सुधार सम्भव है।	इसे अधिगम उद्देश्यों से जोड़ा जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति अभ्यास के रूप में होती है।	मूल्यांकन सुधार के पश्चात का परिवर्तित रूप है
9	मापन के द्वारा सार्थक भविष्यवाणी सम्भव नहीं है।	आकलन के माध्यम से भविष्यवाणी के सम्बन्ध में केवल अनुमान ही लगाये जा सकते हैं।	मूल्यांकन परिणामों के आधार पर विद्यार्थी के सम्बन्ध में पूर्ण सार्थकता के साथ भविष्यवाणी की जा सकती है।
10	इसके द्वारा अलग–अलग व्यक्तियों या उनके शीलगुणों का मापन सम्भव है।	इसके के द्वारा व्यक्तिगत आकलन किया जाता है।	इसके द्वारा व्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव है।
11	इसकी प्रगति आकलन की अपेक्षा कम लचीली होती है।	इसकी प्रगति लचीली होती है।	इसकी प्रगति लचीली न होकर स्थिर होती है।

परीक्षण

परीक्षण परीक्षा का एक उपकरण है तथा मापन की एक विधि मात्र है। सामान्यत: परीक्षा एवं परीक्षण शब्दों का प्रयोग एक-दूसरे के रूप में करते हैं जबकि इन दोनों में थोड़ा-सा अन्तर है। परीक्षण का क्षेत्र परीक्षा के क्षेत्र से अधिक व्यापक होता है। परीक्षण के क्षेत्र में निष्पत्ति परीक्षण के साथ मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी शामिल रहते हैं जबकि परीक्षा शब्द का प्रयोग केवल उपलब्धि परीक्षणों के सम्पादन के लिए किया जाता है।

परीक्षण का अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षणों से तात्पर्य उन उपकरणों अथवा विधियों से है जिनके माध्यम से बालकों की मानसिक एवं शैक्षिक योग्यताओं का मापन किया जाता है। इन परीक्षणों का अपना एक निश्चित स्वरूप होता है। "शैक्षणिक परीक्षणों से तात्पर्य बालकों की विभिन्न योग्यताओं के मापन के उन मापन उपकरणों अथवा विधियों से है जिनमें बालकों से मापीय योग्यता से संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं और जिनका बालकों को उत्तर देना होता है और तत्संबंधी समस्याएं उपस्थित की जाती हैं जिनके प्रति बालकों को अनुक्रिया करनी होती है।"

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय व्यवहार का अध्ययन करने के लिए परीक्षणों की आवश्यकता होती है। किसी बालक का अनौपचारिक परीक्षण उसके माता-पिता द्वारा मौखिक रूप से लिया जाता है जबकि औपचारिक परीक्षण शिक्षक द्वारा कक्षा में तथा मनोवैज्ञानिक द्वारा उसके क्लीनिक पर लिया जाता है। औपचारिक परीक्षाओं के परिणाम प्राय: अंकों के रूप में या ग्रेड के रूप में प्राप्त होते हैं। परीक्षण प्राप्तांकों की व्याख्या मानकों या कसौटियों या दोनों के संदर्भ में की जाती है।

परीक्षण किसी व्यक्ति के अवलोकन करने तथा संख्यात्मक पैमाने पर या वर्ग प्रणाली पर उनका वर्णन करने की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है इसके माध्यम से बालक/परीक्षार्थी के बारे में गुणात्मक तथा मात्रात्मक जानकारी प्राप्त की जाती है।

परिभाषाएं

प्रो. मन के अनुसार, "परीक्षण एक ऐसी परीक्षा है जो बुद्धि, व्यक्तित्व, अभिवृत्ति या निष्पादन के संदर्भ में समूह में किसी व्यक्ति की सापेक्षिक स्थिति को स्पष्ट करती है।"

ब्राउन के अनुसार, "व्यवहार प्रतिदर्श के मापन की व्यवस्थित विधि ही मनोवैज्ञानिक परीक्षण है।"

टाइलर के अनुसार, "परीक्षण वह मानकीकृत परिस्थिति है जिससे व्यक्ति का प्रतिदर्श व्यवहार निर्धारित होता है।"

थार्नडाइक के अनुसार, "जब हम परीक्षण का प्रयोग करते हैं, तब हम इस बात का निश्चिय करना चाहते हैं कि एक विशिष्ट प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत व्यक्ति ने क्या सीखा है।"

क्रानबेक के अनुसार, "एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण वह व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसके द्वारा दो या अधिक व्यक्तियों के व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।"

परीक्षण की विशेषताएं

परीक्षण की विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. परीक्षण छात्रों को अध्ययन हेतु प्रोत्साहन एवं प्रलोभन प्रदान करता है।
2. परीक्षण द्वारा शिक्षण विधि में सुधार होता है। शिक्षक तथा छात्र दोनों ही परीक्षा परिणामों को आधार पर शिक्षण विधि की सफलता की मात्रा जान सकते हैं।
3. परीक्षण के आधार पर विद्यार्थियों ने जो अंक प्राप्त किए हैं तथा उनके पूर्व के तथा वर्तमान के अंक को देखकर उन्हें निर्देशन दिया जा सकता है कि उन्हें कौन से विषय लेने चाहिए।
4. परीक्षण का निर्माण मुख्य रूप से छात्रों के सीखने की प्रकृति और सीमा का मापन करने के लिए किया जाता है।
5. परीक्षण छात्र की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में उसके ज्ञान की सीमा का मापन करता है।
6. परीक्षण के द्वारा शिक्षक यह जान सकता है कि छात्र ने क्या और कितना सीखा तथा वह कोई भी कार्य कितनी अच्छी तरह से कर सकता है।

परीक्षण की कसौटियां

किसी भी परीक्षण को तब तक उपयुक्त नहीं कहा जा सकता जब तक वह कसौटियों पर खरा नहीं उतरता है। एक अच्छे परीक्षण को दो कसौटियों पर जांचा जाता है-

- व्यावहारिक कसौटियां
- तकनीकी कसौटियां

(क) व्यावहारिक कसौटियां

परीक्षण की व्यावहारिक कसौटियां निम्नलिखित हैं-

1. **उद्देश्यपूर्णता :** उद्देश्यपूर्णता प्रत्येक परीक्षण की मुख्य व्यावहारिक विशेषता होती है। विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण करके परीक्षणों का निर्माण करना ही उद्देश्यतापूर्णता है। एक परीक्षण का निर्माण तब ही किया जा सकता है जब हमारे पास कोई उद्देश्य हो अमूर्त परिस्थितियों में परीक्षण की रचना सम्भव नहीं है क्योंकि परीक्षण सदैव किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बनाए जाते हैं।

2. **व्यापकता :** व्यापकता से तात्पर्य है कि परीक्षण में इस प्रकार के पदों/प्रश्नों को शामिल किया जाना चाहिए जो उस क्षेत्र के समस्त पहलुओं का मापन कर सकें। अर्थात वह व्यवहार को विस्तृत रूप से प्रदर्शित करता हो। दूसरे शब्दों में इस प्रकार से कह सकते हैं कि परीक्षण ऐसा होना चाहिए कि वह अपने लक्ष्य की पूर्ति कर सके। परीक्षण की व्यापकता परीक्षण निर्माता की स्वयं की सूझ-बूझ, बुद्धि एवं क्षमता पर निर्भर करती है।

3. **प्रतिनिधित्व :** एक अच्छे परीक्षण की विशेषता है कि उसे प्रतिनिधि होना चाहिए। प्रतिनिधित्व से तात्पर्य है कि व्यक्ति के व्यवहार के जिन-जिन पहलुओं का मापन करने के लिए परीक्षण का निर्माण किया गया है वह उनका प्रतिनिधित्व करता हो। इस संदर्भ में एफ.जी. ब्राउन ने लिखा है-"एक परीक्षण उस समय प्रतिनिधिपूर्ण होता है जब परीक्षण के पद मापित किये जा रहे व्यवहार से संबंधित हों।"

4. **सर्वमान्यता :** एक उत्तम परीक्षण सर्वमान्य होना चाहिए। परीक्षण इस प्रकार का होना चाहिए कि उसका प्रयोग उन समस्त व्यक्तियों एवं परिस्थितियों में सदैव किया जा सके जिनके आधार पर उनका प्रमापीकरण/मानकीकरण किया गया है।

5. **भाषा :** एक उत्तम परीक्षण तथा स्टीक परिणाम के लिए परीक्षण की भाषा सरल हो और जिस आयु वर्ग के लिए उसका निर्माण किया गया है उस आयु वर्ग के बालक उसे आसानी से समझ सकें। परीक्षण जिस क्षेत्र विशेष के लिए बने हैं उससे संबंधित भाषा होनी चाहिए।

(ख) तकनीकी कसौटियां

एक उत्तम परीक्षण निम्न तकनीकी कसौटियों पर खरा उतरना चाहिए-

1. **प्रमापीकृत :** एक उत्तम परीक्षण का प्रमापीकृत होना उसका महत्वपूर्ण गुण है। प्रमापीकृत से तात्पर्य ऐसे परीक्षण से है जिसमें परीक्षण में चयनित पद, निर्देशों, परीक्षा लेने की विधियों तथा प्रशासन एवं फलांकन की प्रक्रिया पहले से ही निर्धारित हो ताकि मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ तरीके से किया जा सके। सी.वी. गुड के अनुसार, "प्रमापीकृत परीक्षण से हमारा आशय ऐसे परीक्षण से है जिसमें अनुभवों के आधार पर विषय-वस्तु का चयन किया गया हो, जिनके मानक निर्धारित हों, जिनके प्रशासन एवं फलांकन की समरूप विधियों को विकसित किया गया हो तथा जिनके फलांकन में सापेक्ष तथा वस्तुनिष्ठ विधि का प्रयोग किया गया हो।"

2. **वैधता :** वैधता एक उत्तम परीक्षण का अनिवार्य गुण है क्योंकि जब तक कोई परीक्षण वैध नहीं होगा वह उपयोगी नहीं होगा। परीक्षण में विश्वसनीयता के साथ वैधता का भी गुण होना चाहिए। यदि कोई परीक्षण उसी गुण का मापन करता है जिसके लिए उसका निर्माण किया गया था तो परीक्षण वैध कहलाता है। किसी भी परीक्षण के लिए यह गुण अनिवार्य है। क्रोनबैक के अनुसार, "किसी परीक्षण की वैधता उसकी वह सीमा है जिस सीमा तक वह वही मापता है, जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है।" परीक्षण की वैधता कई प्रकार की होती है जैसे- सक्रिय, पूर्वकथित, अंकित, विषय-वस्तु, कारक आदि।

3. **वस्तुनिष्ठता :** वस्तुनिष्ठता से आशय पारस्परिक सहमति से है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण वह है जिसके निष्पादन को देखकर कोई निर्णयकर्ता एक ही निर्णय पर पहुंचे। एक परीक्षण वस्तुनिष्ठ तब होता है जब उसके प्रश्नों के उत्तरों पर अंक देते समय व्यक्तिगत मत न हो अर्थात परीक्षण पर व्यक्तिगत प्रभाव न हो। कोई भी मूल्यांकन करे परीक्षार्थी को सदैव उतने ही अंक प्राप्त हों जितने प्रथम बार में प्राप्त हुए थे।
4. **विभेदीकरण :** विभेदीकरण से तात्पर्य उस विभेदशक्ति से होता है जो किसी पहलू के माध्यम से दो वर्गों में विभेद स्पष्ट कर सके। अर्थात यह इस बात को स्पष्ट करती है कि किसी समूह में एक व्यक्ति की योग्यता क्या है? और अन्य व्यक्तियों की योग्यता क्या है? विभेदीकरण किसी परीक्षण का वह गुण है जो उच्च योग्यता, औसत योग्यता और निम्न योग्यता वाले बालकों में अन्तर बता सके अर्थात यह परीक्षण प्रतिभाशाली, औसत एवं मन्दबुद्धि बालकों में अन्तर स्पष्ट कर सके।
5. **प्रतिमान या मानक :** मानकों का निर्धारण प्रमापीकरण प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है। बिना मानक के परीक्षण प्राप्तांक की व्याख्या नहीं की जा सकती है। मानक केवल समूह में व्यक्ति विशेष की स्थिति का ज्ञान नहीं कराते अपितु इसके द्वारा व्यक्ति की दूसरे व्यक्तियों से तुलना की जा सकती है। मानक वे अंक होते हैं जो प्रतिनिधि प्रयोज्यों से प्राप्त किये जाते हैं। मानक किसी विशेष समूह में व्यक्तियों के औसत कार्य या निष्पादन की इकाई है। मानक के लिए परीक्षण को विशाल समूह पर प्रशासित कर ज्ञात किया जाता है। अधिकांशत: आयु मानक, श्रेणी मानक, शतांशीय मानक तथा प्रमाणिक फलांक मानक या टी फलांक मानक को ज्ञात किया जाता है। मानक को परिभाषित करते हुए आइजनेक ने लिखा कि, "एक समूह विशेष के प्रतिनिधि, औसत मूल्य या मूल्यों के सेट ही मानक हैं।"

किसी परीक्षण निर्माणकर्ता को किसी परीक्षण या मापक यंत्र का निर्माण करते हुए उपरोक्त व्यावहारिक एवं तकनीकी कसौटियों का समावेश करने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि शत्-प्रतिशत् उद्देश्य की पूर्ति हो सके।

परीक्षण का महत्व

शिक्षा में परीक्षण वह तकनीक है जिसके द्वारा छात्रों की आवश्यकताओं, क्षमताओं और प्रवृत्ति की जानकारी मिलती है। मूल रूप से परीक्षण एक स्थितिजन्य प्रदर्शन होता है जिसके द्वारा छात्रों की प्रतिक्रियाएं ली जाती हैं। इन प्रतिक्रियाओं को मात्रात्मक व गुणात्मक ढंग से मापा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षण की प्रमुख भूमिका होती है। परीक्षण के महत्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. **शिक्षण प्रणाली का मूल्यांकन :** परीक्षण एक ऐसा मनोवैज्ञानिक साधन है जिसे अपनाने से शिक्षकों को छात्रों पर सही पद्धति का प्रयोग करने में मदद मिलती है ताकि वांछित परिणाम प्राप्त किए जा सकें।
2. **उद्देश्य निर्धारित करना :** आवश्यकताओं के अनुसार परीक्षण लक्ष्य को निर्धारित करने में सहायता करते हैं। शिक्षकों को परीक्षण की तकनीक अपनाने से छात्रों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की सही जानकारी मिलती है।
3. **क्षमताओं एवं योग्यताओं की जानकारी :** परीक्षण के द्वारा शिक्षकों को छात्रों की क्षमताओं एवं योग्यताओं की जानकारी प्राप्त होती है जिसके आधार पर वे आगे के शिक्षण कार्यक्रम बना सकते हैं।

4. **छात्रों की आवश्यकता की जानकारी :** परीक्षण के द्वारा छात्रों की आवश्यकताओं की सही जानकारी का पता चलता है तथा उन्हें किस विषय या क्षेत्र में कितना प्रयास करना है इसकी जानकारी भी परीक्षण द्वारा प्राप्त होती है।

टिप्पणी

परीक्षण का आकलन

किसी भी परीक्षण का आकलन निम्न बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है–

1. **उद्देश्य :** प्रत्येक परीक्षण का निर्माण किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। अत: परीक्षण का आकलन करते समय यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि वह उद्देश्य की पूर्ति कर रहा है या नहीं।
2. **ग्राह्यता :** एक परीक्षण ऐसा होना चाहिए जो उन सभी को सरलता से ग्राह्य हो जिनके लिए इसका निर्माण किया गया है तथा उन व्यक्तियों पर किसी भी परिस्थिति में किसी भी समय प्रशासित किया जाए तो समान परिणाम प्राप्त होने चाहिए।
3. **फलांकन की सरलता :** परीक्षण का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए जिससे अंक प्रदान करने में सुगमता हो क्योंकि वही परीक्षण वैध कहलाते हैं जिनका प्रयोग सभी कर सकें। परीक्षणों का निर्माण करते समय फलांकन की सरलता को ध्यान में रखना चाहिए अन्यथा परिणाम सार्थक नहीं होंगे या उनमें व्यक्तिनिष्ठता का प्रभाव आ सकता है।
4. **फलांक सार्थकता :** परीक्षणों के निर्माण के बाद उस परीक्षण से मापी जाने वाली योग्यता के लिए कुछ अंक निर्धारित किए जाते हैं उन्हीं के आधार पर बालकों का मूल्यांकन किया जाता है।अत: परीक्षण का फलांकन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि फलांकन सार्थक हो।
5. **अनुप्रयोग की सुगमता :** अनुप्रयोग में सुगमता से तात्पर्य है परीक्षण को परीक्षार्थियों पर प्रशासित करने के लिए किसी विशिष्ट परिस्थितियों की आवश्यकता न हो। परीक्षण का निर्माण करने के पश्चात परीक्षक को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उसके द्वारा निर्मित परीक्षण अनुप्रयोग की दृष्टि से सुगम हैं या नहीं।

परीक्षा

शिक्षण और अधिगम प्रक्रियाओं की सफलता का आकलन प्राचीन समय में परीक्षाओं के माध्यम से किया जाता रहा है। प्रारम्भ में केवल मौखिक परीक्षा या वाद-विवाद द्वारा समग्र आकलन होता था। हमारे देश में प्रचलित परीक्षा प्रणाली ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के आधार पर विकसित हुई है। समाज में हर वर्ग शिक्षा के परिणामों को जानना चाहता है। शिक्षक अपने शिक्षण की प्रभावकता को , माता-पिता अपने बालक की प्रगति को तथा बालक स्वयं अपनी शैक्षिक उपलब्धि को जानना चाहता है। उपर्युक्त सभी कार्य परीक्षाओं द्वारा पूर्ण किये जाते हैं।

परीक्षा का अर्थ एवं परिभाषा

परीक्षा एक बहुत ही प्रचलित पद है। परीक्षा का शाब्दिक अर्थ होता है- चारों ओर अच्छी प्रकार से देखना। एक निश्चित समय पर अध्ययनक्रम तथा पाठ्यक्रम की समाप्ति पर यह

जानने के लिए कि बालक ने क्या और कितना सीखा है तथा शिक्षकों ने अपने कर्तव्य के साथ कितना न्याय किया है परीक्षा का आयोजन किया जाता है। किसी भी बात की जांच या अवलोकन, उसकी यथार्थता एवं अयथार्थता, उचितता एवं अनुचितता ज्ञात करने के लिए परीक्षा का आयोजन किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में बालकों की उपलब्धियों एवं निष्पत्तियों की जांच, आकलन, मापन एवं मूल्यांकन के लिए परीक्षा का प्रयोग परम्परागत रूप से होता रहा है। यह आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की होती है। परीक्षा तथा शिक्षण दोनों ऐसी गतिविधियां हैं जो साथ-साथ चलती हैं।सरल शब्दों में परीक्षा से तात्पर्य उस प्रक्रिया से होता है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति के ज्ञान, कौशल, योग्यता आदि का ज्ञान प्राप्त करना होता है। परीक्षा शब्द का प्रयोग बालकों की विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों के मापन एवं मूल्यांकन के लिए किया जाता है। शिक्षण में एक सत्र में त्रैमासिक परीक्षा, अर्धवार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। वर्तमान में परीक्षा की दो पद्धतियां प्रचलन में हैं।

आन्तरिक परीक्षा : विद्यालय के शिक्षकों द्वारा ली जाने वाली प्रवेश परीक्षा, साप्ताहिक परीक्षा, मासिक परीक्षा, त्रैमासिक परीक्षा, अर्धवार्षिक परीक्षा तथा वार्षिक परीक्षाओं की योजना बनाना, उन्हें प्रशासित करना तथा उनका मूल्यांकन करना आन्तरिक परीक्षा कहलाता है।

बाह्य परीक्षा : इन परीक्षाओं की व्यवस्था तथा संचालन शिक्षा बोर्ड, अथवा विश्वविद्याय एवं एजेसियों द्वारा किया जाता है।

परिभाषा

शिक्षा शब्दकोश के अनुसार- "किसी क्षेत्र में छात्रों की उपलब्धि अथवा योग्यता की जांच करने के लिए जो प्रक्रिया प्रयुक्त की जाती है उसे परीक्षा कहते हैं।"

परीक्षा के संदर्भ में कोठारी कमीशन का मत है- "मूल्यांकन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है जो शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली का एक अभिन्न अंग है तथा जिसका शैक्षिक उद्देश्यों से घनिष्ठ संबंध है। यह बालक की पढ़ने की आदतों तथा शिक्षक के पढ़ाने की पद्धतियों पर गहरा प्रभाव डालता है तथा इस प्रकार यह न केवल शैक्षिक निष्पत्ति को मापने में अपितु उसके सुधार में भी सहायक होता है।"

परीक्षा की विशेषताएं

परीक्षा की विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. परीक्षा यह जानने के लिए आवश्यक है कि विद्यार्थी पढ़ाई में रुचि ले रहा है या नहीं।
2. परीक्षा यह जानने हेतु आवश्यक है कि पाठ्यक्रम तथा अध्ययनक्रम ज्यादा बोझिल तो नहीं हो रहा है।
3. परीक्षा यह जानने के लिए जरूरी है कि कक्षा में पढ़ाई गई बातें विद्यार्थी ने कितनी आत्मसात की हैं उनको विवेचित करने की कितनी क्षमता है।
4. परीक्षा शिक्षक की कुशलता, क्षमता तथा योग्यता की भी जांच करती है।

टिप्पणी

5. परीक्षा विद्यार्थी के धैर्य, बौद्धिक ज्ञान, परिश्रम, प्रस्तुत करने की क्षमता आदि गुणों की जांच करती है।
6. परीक्षा से यह भी ज्ञात होता है कि पाठ्यक्रम अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है या नहीं।

परीक्षा के कार्य

परीक्षा निम्न कार्यों का निर्वाहन करती है-

1. विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान का पता लगाना।
2. विद्यार्थियों के स्तर का निर्धारण करना एवं उनका चयन करना।
3. शिक्षण उद्देश्यों की जांच करना।
4. शिक्षण विधि की जांच करना।
5. विद्यार्थियों में प्रतियोगिता की भावना को विकसित करना।
6. विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करना

परीक्षा का महत्व

मुदालियर कमीशन तथा माध्यमिक शिक्षा आयोग ने परीक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "परीक्षा तथा मूल्यांकन का शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थियों ने अपने अध्ययनकाल में किस सीमा तक उन्नति की है, इसकी जांच शिक्षक तथा अभिभावक दोनों के लिए आवश्यक है।" परीक्षाओं से निम्नलिखित लाभ होते हैं-

1. विद्यार्थियों की प्रगति एवं उन्नति का आकलन हो जाता है।
2. शिक्षक अपने लक्ष्य तथा शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है।
3. विद्यार्थी के वास्तविक मूल्यांकन के लिए परीक्षा बहुत लाभदायक होती है।
4. विद्यालय में उपलब्ध शैक्षणिक सुविधाओं का आकलन।
5. विद्यालय तथा अध्यापकों की निपुणता की जांच करना

परीक्षा एवं परीक्षण में अन्तर

मुखर्जी (1959) द्वारा परीक्षा एवं परीक्षण में विभेदीकरण इस प्रकार किया गया है-

क्र.सं.	परीक्षण Test	परीक्षा Examination
1	परीक्षण का क्षेत्र सीमित होता है। यह एक संक्षिप्त परीक्षा ही है।	इसका कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक होता है।
2	इस शब्द का प्रयोग मौखिक परीक्षा **(oral review)** के सन्दर्भ में किया जाता है।	इस शब्द का प्रयोग लिखित परीक्षा **(Written Review)** के सन्दर्भ किया जाता है।
3	परीक्षण तुलनात्मक रूप से परिमार्जित होने के कारण यह शब्द कानों को सुनने में अचछा लगता है।	अनेक कमजोरियों /कमियों के कारण यह शब्द कर्ण कटु लगने लगा है।

मापन एवं परीक्षण में अन्तर

प्राय: मापन एवं परीक्षण को एक-दूसरे का प्रर्यायवाची माना जाता है। लेकिन तकनीकी परिभाषाओं के आधार पर इनमें निम्न अन्तर होते हैं-

टिप्पणी

क्र0सं0	परीक्षण Test	मापन Measurement
1	परीक्षण का क्षेत्र बहुत सीमित होता है। यह एक संक्षिप्त परीक्षा ही है।	तुलनात्मक दृष्टि से मापन एक व्यापक संकल्पना है।
2	परीक्षण एक मूर्त यंत्र है।	मापन एक प्रक्रिया है।
3	परीक्षण एकांशों द्वारा निर्मित किया जाता है। इन एकांशों का स्वरूप परीक्षण की पद्धति के अनुसार निर्धारित किया जाता है।	मापन के लिए मापकों का प्रयोग किया जाता है जिनका स्वरूप मुख्यतः संख्यात्मक होता है।

आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन में अंतर्संबंध

मूल्याकंन प्रत्यय मापन के प्रत्यय से सर्वथा भिन्न है। मापन वस्तुत: नियमों के अनुसार वस्तुओं और घटनाओं को प्रतीकों में व्यक्त करना है। मापन व्यक्तियों को या उनकी विशेषताओं को कुछ निश्चित नियमों के अनुसार अंक प्रदान करने की प्रक्रिया है। मापन को अर्थ प्रदान करना आकलन है। मापन किसी साधन या परीक्षा द्वारा किया जाता है। ये साधन रेटिंग स्केल, तालिका निष्पति, उपलब्धि परीक्षा, साक्षात्कार, अवलोकन अनुसूची आदि हो सकते हैं। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी ने प्रथम सत्र में 30/100 अंक प्राप्त किए। इस अवस्था में कुछ स्थापित नियमों का पालन कर एक सूचना प्राप्त हुई। यदि विद्यार्थी के अंक 80/100 होते तो हम कहते कि उसने अच्छा निष्पादन किया है। उपलब्ध मापन को इस प्रकार की सूचना प्रदान करना आकलन है। इस अवस्था में 80/100 मापन है जबकि अच्छा निष्पादन आकलन का उदाहरण है।

उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी ने एक विषय में निम्नांकित अंक प्राप्त किए-

प्रथम सत्र	30/100
द्वितीय सत्र	42/100
तृतीय सत्र	66/100

उपरोक्त उदाहरण के आधार पर यह निर्णय लिया जा सकता है कि विद्यार्थी निरन्तर प्रगति कर रहा है। इस प्रकार हम विद्यार्थी का मात्र आकलन ही नहीं कर रहे हैं वरन उसका मूल्यांकन भी कर रहे हैं। इस मूल्यांकन में मापन और मूल्य निर्णय शामिल होते हैं। अत: मूल्यांकन को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

मूल्यांकन = मापन + मूल्य निर्णय

इस प्रकार स्पष्ट है कि मापन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति/वस्तु द्वारा धारण किसी विशेषता के अंशों का आंकिक वर्णन प्रदान किया जाता है और मापन को अर्थ प्रदान करना आकलन है। अन्तिम राय समग्र निर्णय जो इन आकलनों के आधार पर लिए जाते हैं मूल्यांकन कहलाते हैं। मापन सदैव मात्रात्मक वर्णन तक सीमित होता है। मापन के परिणाम हमेशा मात्रात्मक होते हैं। जबकि मूल्यांकन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों परिणाम शामिल होते हैं। मूल्यांकन में सदैव मूल्यनिर्णय (Value Judgement)सम्मिलित

होता है। सार रूप में अंक देना मापन है। इन अंकों को अर्थ प्रदान करना आकलन है। अन्त में अंकों तथा अंकों के अर्थ के साथ मूल्य निर्णय मूल्यांकन कहलाता है।

टिप्पणी

अंक	=	मापन
अंक + अंकों का अर्थ	=	आकलन
अंक + अंकों का अर्थ + मूल्य निर्णय	=	मूल्यांकन

मूल्यांकन का प्रत्यय मापन से कहीं अधिक विस्तृत है। मापन मूल्यांकन के लिये आधार प्रदान करता है। मूल्यांकन, आकलन और मापन के मध्य अंतर्संबंध को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

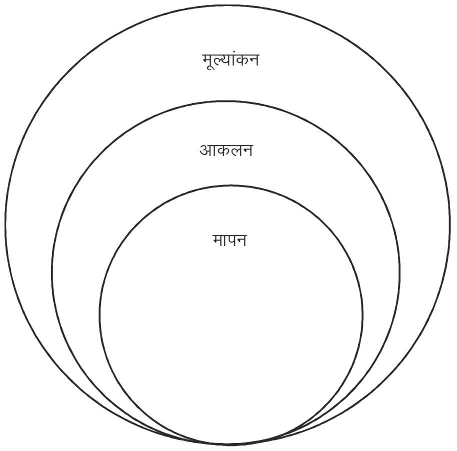

आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन में अंतर्संबंध

व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए हम आकलन शब्द का प्रयोग मूल्यांकन के रूप में करते हैं। मूल्यांकन उद्देश्यपूर्ण होता है तथा दिशा निर्धारित करता है। अनेक बार शिक्षक छात्र को अनेक अनुभवों के आधार पर जानकारी देने का प्रयत्न करता है, जिससे कि हम परिस्थिति का मूल्यांकन कर सकते हैं। मूल्यांकन का आधार सदैव उद्देश्य होता है। उद्देश्य इस बात का निर्णय करता है कि शिक्षक-शिक्षा का कार्यक्रम कैसा होना चाहिए अथवा शिक्षार्थी-शिक्षक और कितना प्रयत्न करें। इसके आधार पर ही शिक्षक अपने छात्रों को दिशा-निर्देश देता है। पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय भी पहले उद्देश्यों को निश्चित किया जाता है और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार उद्देश्य पाठ्यक्रम निर्माण का कार्यक्षेत्र निर्धारित करते हैं और अन्त में उनका मूल्यांकन किया जाता है।

मूल्यांकन की प्रक्रिया विस्तृत है। इसकी सहायता से हम छात्र-अध्यापकों के विषय सम्बन्धी अध्ययन के साथ-साथ अन्य क्षेत्रों में उनकी उपलब्धि के विषय में भी मूल्यांकन करते हैं। अध्यापक-शैक्षिक केन्द्र में शिक्षक-अध्यापक छात्र-अध्यापक के सम्पूर्ण व्यवहार का अध्ययन कर सकता है। पाठ्यक्रम के उद्देश्यों के आधार पर छात्र-अध्यापकों का मापन किया जा सकता है, परन्तु उनके सभी प्रकार के शैक्षिक अनुभवों का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। छात्र-अध्यापक के ज्ञान, कौशल और दृष्टिकोण का मापन करने के लिए वर्तमान में कई प्रकार के टेस्ट उपलब्ध हैं। साधनों की सहायता से प्रशैक्षिक प्राप्त कर रहे अध्यापक के विकास के विषय में मापन किया जा सकता है। मूल्यांकन के विस्तृत क्षेत्र में प्रतिदर्शन, प्रविधियां तथा मापन का प्रयोग किया जाता है। मापन का ढंग लचीला तथा गतिशील होता है। विकास तथा प्रगति निरन्तर होती रहती है, उसका कहीं भी अन्त नहीं होता।

इसलिए परीक्षा का ढंग मापन के साधन और प्रतिदर्शन का चुनाव गतिशील होना चाहिए। प्रत्येक अधिगम अवस्था में बालक-शिक्षक का मार्ग दर्शन विद्यालय का प्राध्यापक ही करता है, इसलिए बालक-शिक्षक का मूल्यांकन करते समय बालक-शिक्षक सम्पूर्ण व्यवहार का मूल्यांकन किया जाना चाहिए, इसलिए मूल्यांकन का लचीला होना आवश्यक है।

1.2.4 रचनात्मक प्रतिमान में अधिगम के आकलन एवं मूल्यांकन परिप्रेक्ष्य

आकलन एवं मूल्यांकन का रचनावादी दृष्टिकोण आकलन व मूल्यांकन के तंत्र को अधिगम के रचनावादी परिप्रेक्ष्य में संगठित करता है। आकलन व मूल्यांकन की प्रक्रिया रचनावादी अधिगम के संप्रत्ययों को केन्द्र में रखकर शिक्षार्थियों के अधिगम तथा विकास का मूल्यांकन करती है। यह अधिगम उपलब्धि के स्थान पर अधिगम प्रक्रिया का आकलन करती है। वस्तुत: यह एक सिद्धान्त है जो व्यक्ति कैसे सीखते हैं इस संबंध में अवलोकन करते हैं। यह अधिगम प्रक्रिया निरन्तर एवं व्यापक आकलन करते हुए निष्कर्ष निकालती है कि शिक्षार्थियों की अधिगम संलग्नता या अनुभव उनकी रुचि, अभिरुचि, अभिक्षमता या अधिमान शैली के अनुरूप है या नहीं। अधिगम प्रक्रिया बताती है कि शिक्षार्थी किस प्रकार तथा किस सीमा तक अधिगम उद्देश्यों की पूर्ति करता है? अर्थात् शिक्षार्थी कैसे सीखता है, उसके सीखने के तरीके क्या हैं? तथा वह कैसे सीखता है? तथा उसके सीखने की व्यवस्था किस प्रकार की जाए कि उसका अधिगम सुनिश्चित हो सके। रचनावादी दृष्टिकोण शिक्षार्थी की अधिगम प्रक्रिया के दौरान संलग्नता तथा खोज की प्रवृत्ति को उसके अधिगम एवं विकास के आकलन का आधार मानती है। यदि शिक्षार्थी अधिगम गतिविधियों के नियोजन तथा संचालन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, वह सम्पूर्ण अधिगम प्रक्रिया के दौरान अपनी विशिष्ट क्षमताओं को व्यवहार में लाता है। वह स्वयं तो अभिप्रेरित होता ही है, दूसरों को भी अभिप्रेरित करने का प्रयास करता है। वह अधिगम के लिए विभिन्न आवश्यक तथ्यों की खोज करने के लिए विभिन्न स्रोतों का चयन एवं मूल्यांकन करता है तथा इन तथ्यों को अपनी क्षमता तथा सहपाठियों एवं शिक्षक के साथ अंत:क्रिया के आधार पर क्रमबद्ध एवं विश्लेषित करके निष्कर्ष निकालता है। इन्हें ही उसके द्वारा निर्मित ज्ञान कहा जाता है। और इसी आधार पर यह मान लिया जाता है कि उसे अधिगम प्राप्त हो गया अर्थात् उसने वांछित लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है अथवा नहीं। शिक्षकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर उन्हीं के अनुदेशन या व्याख्यान के अनुरूप देने पर अधिगम उपलब्धि नहीं कहलाती अपितु शिक्षकों द्वारा दिए गए अनुदेशन या व्याख्यान को ज्ञान के एक स्रोत के रूप में समझना, उस पर गहन विचार-विमर्श करना, चिंतनशील प्रश्न पूछना तथा टिप्पणी करना उनके अधिगम के द्योतक माने जाते हैं।

आकलन व मूल्यांकन के रचनावादी प्रारूप में अधिगम उद्देश्य अधिगम संलग्नता के रूप में निर्धारित किए जाते हैं तथा इनका निर्धारण संबन्धित शिक्षक के मार्गदर्शन में शिक्षार्थियों द्वारा अपनी रुचि, अभिरुचि, अभिक्षमता तथा अधिगम शैली के अनुरूप किया जाता है। इस प्रकार एक ही पाठ को सीखने के लिए शिक्षार्थियों के अधिगम उद्देश्य तथा गतिविधियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। यदि शिक्षार्थी इस प्रक्रिया में संलग्न रहता है तथा इसे सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लेता है तो उसका अधिगम सुनिश्चित हो जाता है।

आकलन व मूल्यांकन की प्रक्रिया नियमित रूप से चलती रहती है, शिक्षार्थियों के अधिगम तथा विकास के लिए आवश्यक प्रतिपुष्टि भी नियमित रूप से प्राप्त होती है। इससे शैक्षणिक गतिविधियों तथा शिक्षार्थियों की अधिगम युक्तियों में गुणात्मक सुधार आता है। रचनावादी मूल्यांकन की प्रकृति रचनात्मक, निदानात्मक एवं उपचारात्मक होती है। इसके साथ-साथ यह व्यापक या समग्र रूप से शिक्षार्थियों के अधिगम का आकलन करती है। उनके अधिगम के विभिन्न आयामों - संज्ञानात्मक, क्रियात्मक तथा भावात्मक सभी पक्षों का आकलन होता है। उनकी पाठ क्रियाओं से सम्बन्धित क्षमताओं के आकलन के साथ-साथ पाठ सहगामी क्रिया सम्बन्धी क्षमताओं का भी आकलन होता है। इस प्रकार रचनावादी आकलन एवं मूल्यांकन की प्रकृति सतत् एवं व्यापक होती है। रचनावादी आकलन तथा मूल्यांकन में स्व-मूल्यांकन या समूह मूल्याकंन के लिए भी विशेष स्थान होता है। रचनावादी दृष्टिकोण द्वारा शिक्षार्थी आकलन को अधिगम के रूप में अनुभव करते हैं। यह उनकी पाठ्य वस्तु की समझ में वृद्धि करता है तथा उनमें परा संज्ञानात्मक कौशलों का भी विकास करता है।

आकलन व मूल्यांकन की प्रक्रिया परम्परागत आकलन उपकरणों एवं युक्तियों के साथ-साथ वैकल्पिक आकलन उपकरणों एवं युक्तियों को व्यवहार में लाती है जैसे- प्रदत्त कार्य, पोर्ट फोलियो, साक्षात्कार, परियोजना, प्रस्तुतीकरण रेटिंग स्केल, अवलोकन, समूह-साथी मूल्यांकन, प्रश्नोत्तरी तथा रचनात्मक अभिव्यक्ति आदि। ये वैकल्पिक आकलन उपकरण एवं युक्तियाँ परम्परागत आकलन व्यवस्था को रचनावादी प्रारूप प्रदान करते हैं। शिक्षार्थियों के अधिगम तथा विकास का सतत् मूल्यांकन सहज तथा प्रभावशाली ढंग से संचालित होता है। इन उपकरणों द्वारा व्यापक आकलन भी सम्भव है क्योंकि इसमें शिक्षार्थियों के अधिगम के विभिन्न आयामों-संज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावात्मक आदि का समावेश होता है। रचनावादी मूल्यांकन के लिए लिखित एवं मौखिक परीक्षाओं में संरचनात्मक व संगठन में परिवर्तन लाकर उनका उपयोग किया जाता है। इसमें उच्च चिंतन कौशलों या विचारशील चिंतन पर आधारित प्रश्नों की समुचित संख्या होनी चाहिए जिससे शिक्षार्थियों में रटने की प्रवृत्ति के स्थान पर विचारशील चिंतन की क्षमता विकसित हो। प्रश्नपत्र में पूछे गए प्रश्नों में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में बहुविकल्पीय प्रश्नों की संख्या समुचित होनी चाहिए।

शिक्षार्थियों के अधिगम का सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन उनके परीक्षा के प्रति भय के भाव एवं रटने की प्रवृत्ति को कम कर देता है तथा उनकी विशिष्ट क्षमताओं एवं सृजनात्मकता का संवर्धन करता है एवं उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करता है।

1.2.5 'अधिगम का आकलन', 'अधिगम के लिए आकलन' और 'अधिगम के रूप में आकलन' के मध्य अंतर

आकलन को शैक्षिक अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण भाग माना जाता है जिसकी विभिन्न श्रेणियां निम्न हैं-

1 **अधिगम का आकलन :** अधिगम का आकलन वह होता है जो सार्वजनिक हो जाता है। बालक कितना ठीक प्रकार से सीख रहा इसकी जानकारी देने के लिए विभिन्न कथनों या प्रतीकों प्रयोग किया जाता है। अधिगम का आकलन बच्चों के भविष्य के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण निर्णयों में योगदान देता है,क्योंकि इसके द्वारा अंतनिर्हित तर्क और अधिगम की माप विश्वसनीय एवं रक्षायुक्त होती है। इसके अन्तर्गत निम्न प्रकार से आकलन किया जाता है-

- अधिगम के आकलन में संख्या या अक्षर ग्रेड जैसे A,B,C,D आदि के द्वारा निरूपण किया जाता है।
- अधिगम के आकलन में मानकों के साथ बालक की उपलब्धियों की तुलना की जाती है।
- अधिगम का आकलन इकाई के समाप्त होने पर किया जाता है।
- अधिगम के आकलन का परिणाम माता-पिता अथवा अभिभावक और बालकों को सूचित किया जाता है।

2 **अधिगम के लिए आकलन :** अधिगम के लिए आकलन में ध्यान योगात्मक (Summsative) से सरंचनात्मक (Formative) आकलन की ओर विस्थापित हो जाता है। अधिगम के लिए आकलन अधिगम पूर्ण होने की अपेक्षा अधिगम की अवधि के दौरान ही होता है। बालक निश्चित रूप से ये जानते हैं कि उन्हें क्या अधिगम करना है, उनसे क्या आशा की जाती है, और उन्हें अपने कार्य/अधिगम में कैसे सुधार लाना है। इसके संबंध में प्रतिपुष्टि और सलाह दी जाती है।

- अधिगम के लिए आकलन में दो पद शामिल होते हैं-

  (1) निदानात्मक आकलन (Diagnostic Assessment)

  (2) रचनात्मक आकलन (Formative Assessment)

- अधिगम के लिए आकलन विभिन्न प्रकार के स्रोतों जैसे पोर्टफोलियो (Portfolios) कार्य प्रगति पत्रक, शिक्षक अवलोकन पर आधारित हो सकता है।
- अधिगम के लिए आकलन अगले चरणों के लिए अंक, चुनौतियों की पहचान, क्षमता पर जोर देने तथा बालक के लिखित व मौखिक रूप में दिए गये प्रश्नों के उत्तरों के पृष्ठपोषण (Feedback) आदि पर बल देता है।
- अधिगम के लिए आकलन अधिगम की प्रक्रिया के दौरान अध्ययन के पाठ्यक्रम के प्रारम्भ से लेकर योगात्मक आकलन के समय तक होता है।
- अधिगम के लिए आकलन के अन्तर्गत ग्रेड या अंक प्रदान नहीं किए जाते हैं। इसमें रिकॉर्ड व्याख्यात्मक या वर्णनात्मक तथा उपाख्यानात्मक के रूप में रखा जाता है।
- अधिगम के लिए आकलन बालकों को सही दिशा में आगे बढ़ाने के लिए उचित निर्देशन समायोजन के लिए शिक्षकों का मार्ग प्रशस्त करता है।

अधिगम के रूप में आकलन (Assessment as Learning) : अधिगम के रूप में आकलन के माध्यम से बालक अपने स्वयं के बारे में अधिगमकर्त्ता के रूप में जानने के योग्य होते हैं। और इस संबंध में उन्हें पूरा ज्ञान होता है कि वे कैसे सीखते हैं-

- अधिगम के रूप में आकलन बालकों द्वारा स्वयं सीखने की प्रक्रिया के दौरान किया जाता है।
- अधिगम के रूप में आकलन से तात्पर्य छात्र स्वामित्व तथा छात्र छात्राओं की सोच को आगे बढ़ाने के लिए जिम्मेदारी का निर्वहन करना आदि शामिल होते हैं ।

- अधिगम के रूप में आकलन में बालक अधिगम प्रक्रिया के लिए लक्ष्य निर्धारण करना, प्रगति की जांच करना तथा परिणामों को प्रतिबिम्बित करना शामिल होता है।
- अधिगम प्रक्रिया में छात्रों के लिए शिक्षा के लक्ष्यों एवं प्रदर्शन के लिए मानदंडों के विषय में पता आकलन के माध्यम से ही लगाया जा सकता है।

अधिगम का आकलन एवं अधिगम के लिए आकलन में अन्तर

अधिगम का आकलन	अधिगम के लिए आकलन
अधिगम के आकलन से हमारा आशय छात्र द्वारा प्राप्त वास्तविक या व्यवहारिक ज्ञान से है जो यह विद्यालय, समुदाय तथा समाज आदि स्थानों से सीखता है।	अधिगम के लिए आकलन से हमारा आशय छात्रों के ज्ञानात्मक तथा अन्य पहलुओं की जानकारी के अभाव में भी पाठ्यक्रम का निर्माण करना तथा उन्हें सरल एवं सहज माध्यम से ज्ञान प्रदान करना।
इसका प्रारम्भ छात्र के औपचारिक शिक्षा के ग्रहण करने से साथ हो जाता है। तथा ये प्रक्रिया जीवनपर्यन्त चलती रहती है।	इसका प्रारम्भ औपचारिक शिक्षा की रूपरेखा निर्माण करते समय होता है।
यह छात्रों को सैद्धान्तिक ज्ञान का उपयोग व्यवहारिक जीवन में कैसे करना है इसकी शिक्षा प्रदान करता है।	इसमें मनोवैज्ञानिक या अनुसंधानकर्ता छात्रा के ज्ञान को महत्व न देकर जो सभी के हित में होता है उन शिक्षण विधियों का निर्माण करता है।
ये छात्र को व्यवहारिक एवं वास्तविक जीवन जीने का अनुभव प्रदान करता है।	इसमें सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक ध्यान दिया जाता है यद्यपि अब दोनों में सामंजस्य पर ध्यान दिया जाने लगा है।
इसका आकलन कोई भी व्यक्ति कर सकता है। अर्थात इसमें साक्षर या निरक्षर का कोई भेद नहीं होता है।	इसमें आकलन के लिए व्यक्ति का साक्षर होने के साथ ज्ञानी और अन्वेषी प्रवृत्ति का होना आवश्यक है।
इसके आकलन की कोई निश्चित पद्धति नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर दूसरे के अधिगम का आकलन करता है।	इसके आकलन के लिए कई पद्धतियों का निर्माण किया गया है। तथा इन पद्धतियों में समय–समय पर परिवर्तन होते रहते हैं।
इसका आकलन वास्तव में छात्रों द्वारा सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने, समस्याओं के समाधान आदि से पता चलता है।	इसमे छात्र द्वारा सैद्धान्तिक या पुस्तकीय अभ्यास, समस्याओं के समाधान, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों आदि का आकलन होता है।
इसके अन्तर्गत छात्रों को सामाजिक परम्पराओं का व्यवहारिक ज्ञान पाठ्येत्तर गतिविधियों के माध्यम से स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।	इसमें छात्रों को सामाजिक नियम, परम्पराएँ, रीति–रिवाज आदि ज्ञान सैद्धान्तिक रूप में प्रदान किया जाता है।
छात्र द्वारा समाज के प्रति किया गया आचरण, समाज द्वारा अपने कर्णधारों को प्रदान किया जा रहा ज्ञान तथा अन्य पहलुओं की जानकारी स्वतः मिल जाती है।	ये औपचारिक माध्यम से ज्ञान प्रदान करने का एक माध्यम है अतः समाज द्वारा परिवर्तन होने के काफी समय बाद पहलुओं की जानकारी प्राप्त होती है।
छात्र द्वारा सफल जीवन जीने के कला व्यवहारिक ज्ञान से ही आती है अतः कोई छात्र अपना सामाजिक तथा भावी जीवन किस प्रकार व्यतीत कर रहा है। ये उसके अधिगम के आकलन द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।	शैक्षिक गतिविधिसाँ कैसे अच्छी तरह कार्य करें तथा छात्र अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। ये उसकी वार्षिक अंक पत्र तालिका देखकर पता किया जा सकता है तथा अधिगम के लिए पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधियों आदि में बदलाव भी किया जाता है।
अधिगम का आकलन का प्राथमिक कार्य विद्यार्थियों को ग्रेड एवं प्रमाण प्रदान करना है इसमें पृष्ठपोषण एक घटक के रूप में प्रयोग किया जाता है।	अधिगम के लिए आकलन का प्राथमिक कार्य विद्यार्थियों को पृष्ठपोषण प्रदान करना तथा उनके अधिगम का समर्थन करना है। इसके लिए शिक्षक भारांक एवं ग्रेड का प्रयोग करता है।
अधिगम का आकलन एक योगात्मक प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की उपलब्धियों को प्रमाणित करना एवं ग्रेड प्रदान करना है।	अधिगम के लिए आकलन एक संरचनात्मक प्रक्रिया है जिसका मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के अधिगम की प्रक्रिया को समायोजित करना होता है।
अधिगम का आकलन में अधिगम एवं शिक्षण प्रक्रिया के अन्त में आकलन की सूचना को सम्मिलित किया जाता है।	अधिगम के लिए आकलन में सूचनाएँ अधिगम एवं शिक्षण प्रक्रिया के मध्य में ही एकत्रित की जाती हैं।

अपनी प्रगति जांचिए

1. शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन का प्रतिपादन किसने किया?
   (क) प्रो. टेलर (ख) प्रो. गैरिसन
   (ग) प्रो. ब्लूम (घ) प्रो. फ्रीमैन
2. मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रथम पद कौन सा है?
   (क) परीक्षण (ख) मापन
   (ग) साक्षात्कार (घ) अवलोकन
3. अधिगम के लिए आकलन निम्न में से किस स्रोत पर आधारित है?
   (क) पोर्टफोलियो (ख) कार्य प्रगति पत्रक
   (ग) शिक्षक अवलोकन (घ) उपर्युक्त सभी

1.3 आकलन का उद्देश्य

आज की शैक्षिक आवश्यकताओं के संदर्भ में विद्यालयों के अनुकूल विकास और उन्नति के लिए आवश्यक सभी पहलुओं के नियमित मूल्यांकन के लिए आकलन की उचित व्यवस्था को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है। आकलन अधिगम प्रक्रिया का एक ऐसा अंग है जिसे सीखने के एक साधन के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। आकलन शिक्षा के क्षेत्र में यह समझने में मदद करता है कि शिक्षण किस प्रकार होना चाहिए।

1.3.1 शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आकलन की भूमिका

विद्यार्थियों का हित चिन्तन ही सभी प्रकार के शिक्षण का एकमात्र उद्देश्य होता है और विद्यार्थियों का हित इसी में है कि उनके उचित विकास एवं प्रगति के लिए उनके व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाए जाएं। इस प्रकार के परिवर्तनों को लाने हेतु किसी भी विशेष आयु तथा ग्रेड स्तर पर उचित रूप से नियोजन करना होता है। शुरुआत शिक्षण–अधिगम उद्देश्यों के निर्धारण से हो सकती है जिनके माध्यम से यह तय किया जाता है कि शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के फलस्वरूप व्यवहार में किस प्रकार के परिवर्तन लाए जाने हैं। ये परिवर्तन किस प्रकार लाए जा सकते हैं।

इस तरह विषय विशेष से संबंधित विषय सामग्री, पाठ्यक्रम, शिक्षण–अधिगम विधियों एवं तकनीक आदि का चुनाव करके विद्यार्थियों को अच्छे–से–अच्छे अधिगम अनुभव प्रदान करने का इस प्रकार प्रयत्न किया जाता है कि निर्धारित शिक्षण–अधिगम उद्देश्यों की प्रभावपूर्ण ढंग से उपलब्धि सम्भव हो सके। शिक्षण–अधिगम मार्ग पर आगे बढ़ते हुए एक स्थिति ऐसी आती है जबकि शिक्षार्थी और शिक्षक दोनों की ही यह इच्छा जागती है कि वे यह जानें कि उनके शिक्षण–अधिगम प्रयत्न किस रूप में आगे बढ़ रहे हैं, इसी बात की चाह पाते रहना ही शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया पर समुचित नियन्त्रण रखने हेतु आवश्यक चीज बन जाती है और यह कार्य आकलन द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इस प्रकार से जहां शिक्षण–अधिगम के लिए नियोजन का पहला चरण उद्देश्यों के निर्धारण से शुरू होता है और फिर अधिगम अनुभवों के उचित चयन एवं आयोजन तथा इन अनुभवों को प्रदान करने हेतु उपयुक्त विधियों, तकनीकों तथा शिक्षण सामग्री के

टिप्पणी

चयन एवं उपयोग द्वारा इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विशेष प्रयत्न किए जाते हैं, वहीं आकलन के परिणाम समय–समय पर यह बताने की चेष्टा करते रहते हैं कि जो कुछ भी हो रहा है वह ठीक दिशा और दशा में हो रहा है अथवा नहीं, शिक्षण अधिगम उद्देश्य ठीक प्रकार निर्धारित किए गए हैं या नहीं। अधिगम अनुभवों का चयन और आयोजन कितना उपयुक्त है, शिक्षण विधियां, तकनीक तथा सामग्री कितनी सार्थक है, विद्यार्थियों और शिक्षक के प्रयत्न कितने सही हैं, आदि–आदि। इस तरह सम्पूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया पर समुचित नियन्त्रण रखते हुए उसे आगे ठीक दिशा और दशा में आगे बढ़ाने हेतु उपयुक्त पृष्ठपोषण प्रदान करते रहना ही एक अच्छी आकलन प्रक्रिया का एकमात्र उद्देश्य होता है।

उपरोक्त प्रस्तुति से यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि किस प्रकार शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में निहित तत्त्व, अवयव या स्तम्भ एक–दूसरे पर निर्भर रहते हुए शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया और उसके परिणामों को किस रूप में प्रभावित करते हैं। आकलन की प्रक्रिया जहां निर्धारित शिक्षण अधिगम उद्देश्यों, अधिगम अनुभव, शिक्षण–अधिगम विधियों एवं तकनीकों की वांछनीयता तथा औचित्य के बारे में अपना फैसला सुनाने का प्रयत्न करती रहती है, वहीं इन चारों में से कोई भी एक तथा अन्य मिलजुलकर आकलन हेतु उचित विधियों एवं तकनीकों के चयन एवं उपयोग हेतु उपयुक्त सुझाव देते रहते हैं।

शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आकलन की आवश्यकता एवं उद्देश्य

किसी भी शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में आकलन की आवश्यकताओं और उद्देश्यों की जानकारी आकलन के द्वारा जो कार्य किए जाते हैं अथवा जिस प्रकार के प्रयोजनों को पूरा किया जाता है उनके माध्यम से हमें, आकलन की क्या आवश्यकता है और उसके करने का क्या प्रयोजन हो सकता है इन सभी से आसानी से मिल सकती है। आकलन द्वारा किए जाने वाले इन कार्यों तथा सेवाओं की ही हम यहां आगे जानकारी दे रहे हैं–

1. अभिप्रेरणात्मक कार्य : अध्ययन के दौरान अगर विद्यार्थियों को अपनी प्रगति और अधिगम परिणामों के बारे में पता चलता रहे तो इसमें उन्हें अधिगम पथ पर ठीक तरह आगे बढ़ते रहने हेतु वांछित अभिप्रेरणा प्राप्त होती रहती है। आकलन की प्रक्रिया एक सतत प्रक्रिया होती है। इसके परिणामों से बालकों की अपनी प्रगति और अधिगम पथ पर अपनी उचित दिशा और दशा का ज्ञान होता रहता है और यही बात उन्हें शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया में पूरी तरह अभिप्रेरित बनाए रखने में भरसक मदद करती रहती है।

2. सूचनात्मक या संप्रेषणात्मक कार्य : आकलन परिणामों को शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया की सफलता हेतु, वांछित संप्रेषण कायम रखने के लिए तथा सभी संबंधित व्यक्तियों को आवश्यक जानकारी प्रदान करने के काम में अच्छी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है। आकलन द्वारा दिए गए ऐसे कुछ कार्य निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

- आकलन के द्वारा विद्यार्थियों को अपनी अधिगम प्रगति के बारे में समय–समय पर वांछित सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं। अपनी ताकत और कमजोरियों का ज्ञान उन्हें लगातार ऐसा पृष्ठपोषण (Feedback) देता रहता है जिससे वे अपने–आपको अधिगम पथ पर उचित ढंग से आगे बढ़ा सकें।

- आकलन के परिणामों से अध्यापकों को भी अपने शिक्षण के बारे में उचित पृष्ठपोषण (Feedback) प्राप्त होता रहता है। वे अपनी शिक्षण की प्रभावशीलता तथा विधियों और शिक्षण सामग्री की उपयुक्तता या कमियों से परिचित होते रहते हैं।
- अंक, ग्रेड, सर्टीफिकेट, स्टार, प्रगति–पत्र तथा अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों की डायरी इत्यादि में दिए जाने वाले रिमार्क आदि आकलन परिणामों की ही देन होते हैं। इन सभी के द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से माता–पिता तथा अभिभावकों को अपने बालकों की प्रगति के बारे में लगातार वांछित सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं और इन्हीं के आधार पर अपने बालकों के कल्याण हेतु आगे उनका शिक्षकों तथा विद्यालय अधिकारियों से आवश्यक संप्रेषण और संपर्क बना रहता है।
- आकलन के द्वारा शिक्षकों के अतिरिक्त विद्यालय के अन्य संबंधित व्यक्तियों को भी विद्यार्थियों के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त होती रहती है। पुस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला तथा विद्यालय कार्यालय के कर्मचारियों, खेल अधिकारी आदि सभी व्यक्तियों को ऐसी सभी जानकारी विद्यार्थियों की उनकी प्रगति तथा प्रशासनिक सेवाओं को व्यवस्थित करने में काफी सहायता कर सकती है।

3. नियोजन संबंधी कार्य : आकलन द्वारा चाहे उसका स्वरूप निदानात्मक हो या रचनात्मक और संकलनात्मक, इसके परिणाम शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया के नियोजन में निम्न प्रकार के सहयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

- शिक्षण–अधिगम के क्रियान्वयन हेतु उचित शिक्षण–अधिगम उद्देश्यों का निर्माण आकलन परिणामों के सन्दर्भ में ही किया जाता है।
- उचित अधिगम अनुभवों का चयन तथा आयोजन एवं वांछित पाठ्यक्रम का विकास करने में आकलन परिणामों के आधार पर ही योजना बनाई जाती है।
- शिक्षण–अधिगम की विधियां एवं तकनीक तथा शिक्षण सहायक सामग्री आदि चयन संबंधी नियोजन में भी आकलन परिणामों की सहायता ली जाती है।
- उपचारात्मक शिक्षण, वैयक्तिक अनुदेशन तथा सामूहिक क्रियाओं एवं विशिष्ट शैक्षिक कार्यक्रम आदि के आयोजन का आधार भी आकलन परिणाम होते हैं।

4. निर्णय लेने संबंधी कार्य : आकलन परिणामों को ही आधार बनाकर बहुत से ऐसे शैक्षिक, प्रशासनिक तथा नीति निर्धारक निर्णय लिए जाते हैं जिससे विद्यार्थियों तथा समाज का अधिक–से–अधिक भला किया जा सके और शिक्षा की प्रक्रिया तथा परिणामों में अधिक–से–अधिक सुधार लाया जा सके। ऐसे कुछ कार्य निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

- आकलन परिणाम विभिन्न पाठ्यक्रमों तथा अध्ययन क्षेत्रों में किन विद्यार्थियों का चयन किया जाए तथा किनका नहीं, ऐसा निर्णय लेने में मदद करते हैं।
- विद्यार्थियों के पास फेल का निर्णय, उनके आगामी कक्षाओं में प्रवेश का निर्णय, उन्हें विभिन्न डिवीजन, ग्रेड, डिग्री, डिप्लोमा, प्रशस्तिपत्र, मैडल इत्यादि प्रदान करने का निर्णय आकलन परिणामों के आधार पर किया जाता है।

- किसी पाठ्यक्रम में बदलाव लाना, अनुदेशन विषयों में परिवर्तन लाना, अनुदेशनात्मक उद्देश्यों या आकलन प्रणाली में सुधार लाना आदि अनेक शैक्षिक निर्णयों को लेने में भी आकलन परिणाम की ही सहायता ली जाती है।
- किस विद्यार्थी को किस तरह की सहायता, मार्गदर्शन या परामर्श दिया जाए, इसका निर्णय लेने में आकलन के परिणाम ही सहायता करते हैं।

1.3.2 नैदानिक–निदानात्मक

'निदान' या नैदानिक शब्द शिक्षा में चिकित्साशास्त्र से लिया है। इसका अर्थ है; मूल कारण को जानना या रोग का निर्णय करना। जिस प्रकार चिकित्सक किसी रोगी के लक्षणों एवं विभिन्न परीक्षणों के आधार पर उसके रोग का निदान करता है। उसी प्रकार शिक्षक भी विशेष आवश्यकता युक्त विद्यार्थी की विषय सम्बन्धी कमजोरियों, सीखने सम्बन्धी कठिनाइयों और दोषों का पता निदानात्मक परीक्षण द्वारा लगाता है।

निदानात्मक परीक्षण वह विशिष्ट परीक्षण है; जो बालक में किसी विशिष्ट वस्तु का समुचित ज्ञान प्रतिबिम्बित करता है। यह एक ऐसा शैक्षिक अध्ययन है जिसके आधार पर पठित विषयवस्तु की सूक्ष्म से सूक्ष्म इकाई में विद्यार्थी की इकाईगत विशिष्टता एवं कमियां परिलक्षित होती है। जिसके आधार पर विद्यार्थी के निर्देशन तथा प्रभावी उपचारात्मक शिक्षण का विकास किया जा सके।

परिभाषा

योकम एवं सिम्पसन के अनुसार : ''निदान परीक्षण वह उपकरण है जो शिक्षा वैज्ञानिकों द्वारा विद्यार्थियों की कठिनाइयों को ज्ञात करने के और यथासम्भव उन कठिनाई के कारणों को व्यक्त करने के लिए रचा गया है।''

गुड के अनुसार : ''निदान अधिगम संबंधी कठिनाइयों और कमियों के स्वरूप का निर्धारण करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि निदानात्मक परीक्षण के द्वारा शिक्षक विद्यार्थियों की अधिगम कठिनाइयों को ज्ञात करता है।

नैदानिक परीक्षण के उद्देश्य

नैदानिक परीक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

1. किसी विद्यार्थी की एक या एक से अधिक क्षेत्र में योग्यता अथवा कमजोरी की जांच करना, जिससे शिक्षक को यह ज्ञात हो जाता है कि उसकी शिक्षण–विधि और विद्यार्थी की ग्रहण शक्ति कहां तक सफल या असफल रही?
2. विद्यालयी विषयों में विद्यार्थियों की कठिनाइयों को ढूंढ़ना जिससे आवश्यक उपचारात्मक शिक्षण प्रदान किया जा सके।
3. किसी भाषा के भ्रामिक तत्वों के अर्जन में समहित अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया में पद्धति सुधार के लिए सुझाव देना।

4. वैधानिक परीक्षण में प्राप्त अंकों के आधार पर अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन लाया जा सके।

निदानात्मक परीक्षण

वर्तमान में समस्त शैक्षिक स्तरों पर निदानात्मक उपचारात्मक परीक्षणों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जा रहा है। एक सफल शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि इनका ज्ञान रखें जिससे वह अपनी शिक्षण पद्धति में विद्यार्थियों की आवश्यकता अनुसार सुधार कर सकें। इनके ज्ञान के अभाव में शिक्षक सदैव असफल रहेगा एवं अपने अमूल्य समय को नष्ट करेगा।

निदानात्मक परीक्षण

जिस विषय का निदानात्मक या उपचारात्मक परीक्षण का निर्माण करना होता है, उस विषय का सर्वप्रथम विश्लेषण करने के पश्चात् निम्नलिखित सोपानों को उपयोग में लाते हैं –

(1) **उपयुक्त विद्यार्थियों का चयन** : विशेष आवश्यकता युक्त विद्यार्थियों जिन्हें निदान की आवश्यकता है का चयन शिक्षक अनुभव, विद्यालय की विभिन्न परीक्षाओं के परिणामों तथा बुद्धि परीक्षणों के आधार पर करते हैं।

(2) **विद्यार्थियों के कठिनाई क्षेत्रों की पहचान करना** : प्रमाणीकृत अथवा अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षणों के द्वारा विशेष आवश्यकताओं युक्त विद्यार्थियों के विषय विशेष में कठिनाई क्षेत्रों की पहचान की जाती है।

(3) **कठिनाई के कारणों का विश्लेषण** : शिक्षक, स्वयं के अनुभवों तथा साक्षात्कार के द्वारा विद्यालयी, व्यक्तिगत एवं पारिवारिक कारणों को ज्ञात करता है।

(4) **उपचारात्मक प्रक्रियाएं** : विद्यार्थी की कमजोरी का निदान होने पर शिक्षक उसे दूर करने के उपाय करते हैं तथा उपचारात्मक कार्यक्रम की योजना बनाते हैं।

(5) **त्रुटियों के रोकथाम के उपाय** : विद्यार्थी विषय सम्बन्धी गलती भविष्य में नहीं करें, इसके लिए बहुमुखी योजना का निर्माण करना पड़ता है, जिससे बालक को सीखने का उत्तम वातावरण मिल सके।

गतिविधि : कक्षा को पांच समूहों में विभक्त करें। प्रत्येक समूह को निदानात्मक परीक्षण के निर्माण का एक सोपान देकर समूह चर्चा करावें तथा प्रत्येक समूह से प्रस्तुतीकरण कराएं।

निदानात्मक शिक्षण की प्रक्रिया

उपचारात्मक शिक्षण से तात्पर्य 'सुधार' से है। विशेष आवश्यकता युक्त विद्यार्थियों की कठिनाइयों के सुधार का मार्ग/तरीका/विधि को उपचार कहते हैं। जब शिक्षक अधिगम कठिनाइयों का सुधार करते हुए शिक्षण करते हैं तो इसे 'उपचारात्मक शिक्षण' कहते है।

जहां निदानात्मक परीक्षण में शिक्षक विद्यार्थियों की त्रुटियों के आधार पर अधिगम की कठिनाइयों के कारणों का पता लगाते हैं। वही अधिगम कठिनाइयों को सुधारने में शिक्षण की जो पृथक व्यवस्था वह करते हैं उन्हें उपचारात्मक शिक्षण कहते हैं।

योकम तथा सिम्पसन के अनुसार : ''उपचारात्मक शिक्षण का उद्देश्य सभी प्रकार की अधिगम सम्बन्धी त्रुटियों को शुद्ध करने के लिए प्रभावशाली विधियों का विकास करना है।''

टिप्पणी

उपचारात्मक शिक्षण की विधियां

उपचारात्मक शिक्षण हेतु व्यक्तिगत एवं सामूहिक उपचारात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है। उपचारात्मक शिक्षण की सामान्य विधियां अग्रलिखित हैं –

1. **अनुवर्ग शिक्षण** : इस विधि के अन्तर्गत कक्षा को छोटे–छोटे समूहों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक समूह को एक शिक्षक द्वारा सभी कठिनाइयों के समाधान में सहायता प्राप्त होती है।
2. **शास्त्रीय अभिक्रमित अनुदेशन** : शास्त्रीय अभिक्रमित अनुदेशन का प्रयोग एक उपचारात्मक प्रविधि के रूप में करते हैं। इसमें विषयवस्तु तथा अधिगम अनुभवों को छोटे–छोटे पदों में व्यवस्थित करते हुए शिक्षक विद्यार्थी को अधिगम कठिनाई से संबंधित व्यक्तिगत अनुदेशन प्रदान करता है।
3. **समायोजन प्रविधियां** : यह अभिक्रमिक अनुदेशन के अतिरिक्त द्वार पद, उपचारात्मक लूप तथा माध्यमिक मार्ग है। इसके अन्तर्गत विद्यार्थी अपनी आवश्यकताओं, योग्यताओं, कौशलों तथा बोधगम्यता के अनुसार अपने अधिगम को समायोजित करता है।।

गतिविधि : अध्यापन कक्ष के विद्यार्थियों को तीन समूह में विभाजित करके सभी समूहों को उपचारात्मक शिक्षण की शिक्षण विधि आवंटित करके उन्हें निर्देशित करें कि प्रत्येक समूह आवंटित विधि से विद्यार्थियों को उपचारात्मक शिक्षण कैसे करवायेगा, इसका कक्षा–कक्ष में प्रस्तुतीकरण करें।

उपचारात्मक शिक्षण कार्यक्रम का निर्माण

उपचारात्मक शिक्षण से पूर्व शिक्षक द्वारा नैदानिक परीक्षण लिया जाता है। तत्पश्चात् निम्नलिखित सोपानों का उपयोग करते हैं –

(1) **निदानात्मक परीक्षण द्वारा ज्ञात की गयी त्रुटियों का विश्लेषण करना** : शिक्षक, वार्तालाप, अवलोकन, प्रश्नावली, प्रमाणीकृत परीक्षण अथवा स्व निर्मित परीक्षणों द्वारा अधिगम त्रुटियों का निदान करता है। त्रुटियों का विश्लेषण कर तत्पश्चात व्यक्तिगत अथवा सामूहिक उपचार किया जाता है।

(2) **प्रत्येक त्रुटि के आधार पर विधियों का चयन करना** : विद्यार्थी द्वारा अधिगम में की जा रही त्रुटियां व्यक्तिगत हैं अथवा सामूहिक हैं; के आधार पर उपचारात्मक विधियों का चयन किया जाता है। जैसे– व्यक्तिगत उपचार हेतु केस अध्ययन का प्रयोग किया जा सकता है।

(3) **त्रुटियों का निदान कर उनकी रोकथाम करना**– विभिन्न उपचारात्मक प्रक्रियाओं के अभ्यास के साथ–साथ विद्यार्थियों द्वारा की जाने वाली सामान्य त्रुटियों की रोकथाम के लिये भी कार्यक्रम बनाना चाहिए जिससे प्रारम्भ में ही उनकी रोकथाम हो सके तथा विद्यार्थियों को सीखने में कठिनाई न हो।

उपचारात्मक शिक्षण को प्रयोग करने में सावधानी

उपचारात्मक शिक्षण के प्रयोग में निम्न सावधानियां बरतनी चाहिएः–

1. सामान्यतः उपचार मंद बुद्धि बालकों पर अधिक सफल होते हैं।
2. बुद्धिमान विद्यार्थियों की गलत आदतों को छुड़ाने में अधिक समय लगता है; अतः शिक्षक को धैर्य रखना चाहिए।
3. उपचारात्मक कार्यक्रम में आवश्यकतानुरूप परिवर्तन करना चाहिए।
4. प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति को चार्ट / ग्राफ द्वारा दर्शाना चाहिए।
5. प्रगति करने वाले विद्यार्थी को प्रशंसा / सम्मान द्वारा पुनर्बलन देना चाहिए।
6. आकर्षक सहायक सामग्री एवं प्रभावी शिक्षण विधि का प्रयोग करना चाहिए।

1.3.3 अधिगम की निगरानी

विद्यार्थियों के कार्यप्रदर्शन में सुधार करने में लगातार निगरानी करना और उन्हें प्रतिक्रिया देना शामिल होता है, ताकि उन्हें पता रहे कि उनसे क्या अपेक्षित है और उन्हें कामों को पूरा करने पर प्रतिक्रिया प्राप्त हो। आपकी रचनात्मक प्रतिक्रिया के माध्यम से वे अपने कार्यप्रदर्शन में सुधार कर सकते हैं।

शिक्षक अपने विद्यार्थियों के काम की निगरानी करते हैं। वे कक्षा में जो कुछ करते हैं उसे सुनकर और देखकर करते हैं। विद्यार्थियों की प्रगति की निगरानी करना महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इससे उन्हें निम्नलिखित में मदद मिलती है-

- किसी विद्यार्थी की प्रगति की दर ज्ञात करना।
- मानदंडों तथा उपलब्धियों के बीच के अन्तरों का विश्लेषण और व्याख्या करना।
- शिक्षण की प्रभावशीलता के बारे में जानकारी प्रदान करना और उसके आधार पर यदि आवश्यक हो तो प्रयास में संशोधन करना।
- छात्रों को दी जाने वाली प्रतिक्रिया सफल सीखने को पुष्टि करता है और विशिष्ट शिक्षण त्रुटियों की पहचान करती है जिनमें सुधार की आवश्यकता होती है।
- शिक्षक को दी जाने वाली प्रतिक्रिया अधिकतम जीवन के निर्देश और समूह और व्यक्तिगत उपचारात्मक कार्यों को निर्धारित करने के लिए जानकारी प्रदान करती है।
- अपनी सीखने की प्रक्रिया में सुधार करना।
- प्रादेशिक और स्थानीय मानकीकृत परीक्षाओं में उपलब्धि का पूर्वानुमान करना।
- अधिक ऊँचे ग्रेड प्राप्त करना।
- अपने कार्यप्रदर्शन के बारे में अधिक सजग रहना और अपनी सीखने की प्रक्रिया के प्रति अधिक जिम्मेदार होना।

एक शिक्षक के रूप निम्नलिखित बातें तय करने में भी मदद मिलती है–

- एक काम में विद्यार्थियों के अलग–अलग समूहों को कैसे शामिल करें।
- कब प्रश्न पूछें या प्रोत्साहित करें।
- कब प्रशंसा करें।
- चुनौती दें या नहीं।

टिप्पणी

- गलतियों के विषय में क्या करें।
- विद्यार्थी सबसे अधिक सुधार तब करते हैं जब उन्हें उनकी प्रगति के बारे में स्पष्ट और शीघ्र प्रतिक्रिया दी जाती है। निगरानी (मानीटिरंग) करते रहने से आप बच्चों को नियमित रूप से प्रतिक्रियाएं दे पाने में सक्षम बनेंगे, जैसे- वे कैसे काम कर रहे हैं और उनके सीखने की प्रक्रिया को उन्नत बनाने में उन्हें किस चीज की जरूरत है।

आने वाली चुनौतियों में से आपके सामने एक होगी अपने विद्यार्थियों की उनके स्वयं के सीखने के लक्ष्यों को तय करने में मदद करना, जिसे स्व-निगरानी भी कहा जाता है। विद्यार्थी विशेष तौर पर, कठिनाई अनुभव करने वाले विद्यार्थी, अपनी स्वयं की सीखने की प्रक्रिया का बोझ उठाने के आदी नहीं होते हैं। लेकिन आप किसी परियोजना के लिए अपने स्वयं के लक्ष्य या उद्देश्य तय करने, अपने काम की योजना बनाने और समय सीमाएं तय करने एवं अपनी प्रगति की स्व-निगरानी करने में किसी भी विद्यार्थी की मदद कर सकते हैं। स्व-निगरानी के कौशल की प्रक्रिया का अभ्यास और उसमें महारत हासिल करना उनके लिए विद्यालय और उनके सारे जीवन में उपयोगी साबित होगा।

विद्यार्थियों की बात सुनना

अधिकांश समय, शिक्षक स्वाभाविक रूप से विद्यार्थियों की बात सुनते और उनका प्रेक्षण करते हैं। यह निगरानी करने का एक सरल साधन है। उदाहरण के लिए, आप-

- अपने विद्यार्थियों को ऊँची आवाज में पढ़ते समय सुन सकते हैं।
- जोड़ियों या समूहकार्य में चर्चाएं सुन सकते हैं।
- विद्यार्थियों को कक्षा के बाहर या कक्षा में संसाधनों का उपयोग करते देख सकते हैं।
- समूहों के काम काम करते समय उनकी शारीरिक भाषा का प्रेक्षण कर सकते हैं।

सुनिश्चित करें कि आप जो विचार एकत्रित करते हैं वे विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया या प्रगति का सच्चा प्रमाण हों। सिर्फ वही बात रिकार्ड करें जो आप देख सकते हैं, सुन सकते हैं, उचित सिद्ध कर सकते हैं या जिस पर आप विश्वास कर सकते हैं।

जब विद्यार्थी काम करें, तब कमरे में घूमें और संक्षिप्त प्रेक्षण नोट्स बनाएं। आप कक्षा सूची का उपयोग करके नोट कर सकते हैं कि किन विद्यार्थियों को अधिक मदद की जरूरत है, किसी भी उभरती गलतफहमी को भी नोट कर सकते हैं। इन प्रेक्षणों और नोट्स का उपयोग आप सारी कक्षा को प्रतिक्रिया देने या समूहों अथवा व्यक्ति विशेष को प्रेरित और प्रोत्साहित करने के लिए कर सकते हैं।

1.3.4 प्रतिपुष्टि प्रदान करना

आकलन का उद्देश्य प्रतिपुष्टि प्रदान करना है। रचनात्मक मूल्यांकन के आधार पर थोड़े समय के अन्तराल पर विभिन्न प्रकार के परीक्षण दिए जाते हैं इससे विद्यार्थियों की क्षमता क्षीणता एवं सामर्थ्य का क्षेत्र ज्ञात किया जाता है और उनमें सुधार के लिए आवश्यक सुझाव दिए जाते हैं।

1.3.5 उन्नति, नियोजन, प्रमाण पत्र प्रदान करना

आकलन मूल्यांकन का उद्देश्य उन्नति नियोजन तथा प्रमाणपत्र प्रदान करना होता है। आकलन की सहायता से यह ज्ञात किया जाता है कि बालक ने कितनी उन्नति की है।

आकलन या मूल्यांकन विद्यार्थियों की नियोजन में मदद करता है। मूल्यांकन से बालक की उपलब्धि का पता चलता है। बालक को उसकी उपलब्धि के लिए प्रमाण पत्र भी प्रदान किया जाता है।

टिप्पणी

1.3.6 ग्रेडिंग प्रदान करना

मूल्यांकन आकलन को ग्रडिंग प्रदान करने के लिए किया जाता है। ग्रेडिंग प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थियों को उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों को मूल्यांकन परिणामों के रूप में व्यक्त करने के लिए उन्हें फेल, पास करने या पूर्णांकों में से कितने प्रतिशत अंक प्राप्त किए हैं, इनका प्रयोग नहीं किया जाता अपितु विद्यार्थियों को A,B,C,D,E आदि अक्षरों का प्रयोग करके ग्रेड प्रदान किए जाते हैं।

1.3.7 रचनात्मक उपागम में आकलन के उद्देश्य

आज की दुनिया में सीखने की प्रभावशाली शैली रचनावादिता का सिद्धांत है जो यह प्रतिपादित करता है कि शिक्षा सार्थक संदर्भों और सामाजिक मेल–जोल के अंतर्गत विभिन्न दृष्टिकोणों के समर्थन से ज्ञान की सक्रिय संरचना से मिलती है। (ओलिवर, 2002) ऐसे माहौल सीखने के अनोखे लक्ष्यों और ज्ञान की रचना को सहारा देने वाले आईसीटी और संसाधनों का उपयोग कर दिलचस्प और सामग्री–प्रासंगिक अनुभव का निर्माण करते हैं। रचनावादी यह मानते हैं कि सच्चाई का कोई एक कथन नहीं होता, बल्कि प्रत्येक विद्यार्थी के भीतर अनेक प्रकार की सच्चाई छिपी होती है। इस कारण, सीखना सीखने वाले के विश्लेषण, संक्षेपण और सूचना का आकलन कर सार्थक, व्यक्तिगत ज्ञान की रचना की क्षमता पर निर्भर करता है।

रचनात्मक शिक्षा

किसी कक्षा के परिवेश का दार्शनिक दृष्टिकोण जो मूल रूप से बताता है कि शिक्षक और छात्रों के विचारों और युक्तियों का आदान–प्रदान कैसे किया जाता है, वे कक्षा में अपने समय का उपयोग कैसे करते हैं और कैसे कक्षा की स्थिति या छात्रों के बीच अथवा छात्रों और उनके प्रशिक्षकों के बीच संतुलन की स्थिति होती है, संक्षेप में इसे रचनात्मकता कहा जाता है। इस प्रकार के सामाजिक परिवेश में, रचनात्मकता बातचीत की गुंजाइश पर जोर देती है जिसमें कोई भी संवाद ज्ञान के हस्तांतरण की नहीं, बल्कि लक्षित छात्रों के बीच ज्ञान की व्याख्या का उद्देश्य रखता है।

रचनात्मक वर्ग के लक्षण

- रचनात्मक क्लासरूम में सीखने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि शिक्षकों और छात्रों के बीच तथा आपस में छात्रों के बीच शिक्षाप्रद बातों का आदान–प्रदान हो।
- रचनात्मक क्लासरूम में छात्रों और शिक्षकों के बीच भूमिकाओं की सहज अदला–बदली होती है। जहां शिक्षक की यह मुख्य जिम्मेदारी होती है कि वह सीखने का अनुकूल माहौल तैयार करे, वहीं छात्रों को वही जिम्मेदारी सीखने माहौल के प्रति रचनात्मक प्रतिक्रिया के जरिए अभिमान के साथ उठानी चाहिए।
- अवधारणात्मक, तथ्यात्मक और प्रक्रिया संबंधी ज्ञान आदि में व्यापक तौर पर ऐसा ज्ञान शामिल होता है जो रचनात्मक क्लासरूम में सीखने के लायक होता है।

ऐसे परिवेश में किसी छात्र में पहले से मौजूद ज्ञान की सराहना की जाती है और उसे चालू पाठ्यक्रम में सक्रिय रूप से शामिल कर लिया जाता है। शिक्षक ऐसे प्रश्नों का स्वागत करते हैं जिनका उन्हें उत्तर मालूम नहीं होता और क्लासरूम में निर्देशात्मक बातचीत के हिस्से के तौर पर संभावित हल की तलाश करते हैं।

- रचनात्मक क्लासरूम का माहौल बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक रूप से सुरक्षित होता है। इस प्रकार के सौहार्दपूर्ण माहौल में छात्रों में साथ समय बिताने की इच्छा होती है क्योंकि अपनी धुन और सनक के बावजूद वे परिचित और स्वीकार किए गए होते हैं। साथ ही, क्लासरूम के माहौल में अभिरुचियां महत्व रखती हैं।
- रचनात्मक क्लासरूम शिक्षण में अवधारणात्मक समझ मुख्य होती है और निर्देशात्मक आकलन के लिए शिक्षक और छात्रों के बीच गतिशीलता को संतुलित करने के लिए शिक्षण संबंधी आकलन के लिए विभिन्न रणनीतियों का इस्तेमाल किया जाता है।

रचनात्मक उपागम में आकलन के उद्देश्य

जब विभिन्न पृष्ठभूमि वाले छात्रों को पढ़ाने की बारी आती है, तब निम्नलिखित कारणों से रचनात्मक आकलन बेहद कारगर साबित होता है–

1. सबसे पहले, वह परंपरावादी तरीका जो किसी को पढ़ाने के लिए सबके लिए एक ही फिट होता है के फॉर्मूले पर चलता है, और पहले से तय पाठ्यक्रम को अपनाता है, उसमें नयापन नहीं होता। अकसर, गैर–मुख्यधारा की पृष्ठभूमि वाले छात्रों की अनोखी क्षमताओं को कम आंकता है जो उस स्कूल में आती हैं। वैसे तो सारे छात्रों में तथाकथित "आधिकारिक" स्कूली ज्ञान में महारत होना चाहिए, लेकिन यह छात्र जो पहले से जानता है उसकी कीमत कम नहीं होना चाहिए। रचनावादी माहौल में सभी छात्रों को शिक्षक द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है ताकि उनके मौजूदा ज्ञान को बढ़ाया जा सके।
2. दूसरा, किसी छात्र/छात्रा के मौजूदा ज्ञान की पहचान और उसकी सराहना निश्चित रूप से उसके लिए क्लासरूम की गतिविधियों में शामिल होने के लिए प्रोत्साहन का कार्य करेगी और वह प्रश्नों की ओर अधिक आत्मविश्वास से बढ़ेगा/बढ़ेगी। इससे उन्हें सफलता से सीखने में मदद मिलेगी।
3. तीसरा, किसी रचनावादी क्लासरूम में, एक भी सीखने का 'सामान्य' तरीका नहीं होता, न ही उन छात्रों के लिए "गुंजाइश" होती है जो क्लास के दूसरे छात्रों से पीछे रह जाएं। इसकी बजाए, प्रत्येक छात्र–छात्रा को अपनी ही गति और तरीके से सीखने दिया जाता है। इसके लिए शिक्षण को ओपन–एंडेड बनाना पड़ता है ताकि विभिन्न पृष्ठभूमियों से आए छात्रों की अलग–अलग सीखने की शैलियों को शामिल किया जा सके। इस प्रकार, शिक्षकों द्वारा हाथ के हाथ और परियोजना–आधारित तरीकों का इस्तेमाल किए जाने से शिक्षकों को अपनी ही रफ्तार से सीखने का मौका मिलता है और वे अपने पिछले ज्ञान को आगे बढ़ाने के साथ ही सीखने के दौरान अपने ही तरीके से उनका अर्थ समझते हैं।
4. चौथा, सभी छात्रों से समान व्यवहार रचनावादी तरीके का आधार है। शिक्षण को छात्र केंद्रित होना पड़ेगा क्योंकि इसका उद्देश्य छात्रों के मौजूदा ज्ञान को बढ़ाने पर फोकस करना है, साथ ही साथ उसे नया आयाम भी दिया जाना है।

5. आखिर में, रचनावाद सहयोगात्मक रूप से सीखने का समर्थन करता है, छात्र एक–दूसरे के साथ काम करते और सीखते हैं, और सीखने वालों का एक मजबूत समुदाय बनता है।

शिक्षकों की भूमिका और रचनात्मकतावाद

रचनात्मकतावादी शिक्षण की अवधारणा अधिगम के रचनात्मकतावादी सिद्धांत की बुनियाद पर टिकी है। रचनात्मकतावादी शिक्षण पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि सीखने वाले तब सीखते हैं जब वे अर्थ और ज्ञान के निर्माण में सक्रिय रूप से शामिल रहते हैं न कि पारंपरिक सीखने के माहौल की तरह निष्क्रिय रूप से ज्ञान को प्राप्त करते हैं जहां वे अर्थ और ज्ञान के सक्रिय निर्माता होने की बजाय सूचना के महज निष्क्रिय प्राप्तकर्ता बन जाते हैं।

रचनात्मकतावादी अधिगम का सिद्धांत शिक्षण के रचनात्मकतावादी सिद्धांत का आधार है। जॉन ड्यूवी और जीन पिआजे ने बचपन के विकास और शिक्षा पर शोध किया था। दोनों ही अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में प्रभावशाली सिद्धांत प्रतिपादक थे। ड्यूवी के अनुसार, शिक्षा की भूमिका शिक्षा देने वालों की भूमिका से संबंधित लोगों को शामिल करने और उनसे जुड़ी सोच और चिंतन को व्यापक बनाने वाली होनी चाहिए। पिआजे ने रचनात्मकतावादी दृष्टिकोण से यह प्रतिपादित किया कि कोई भी अपने ज्ञान के विस्तार से प्रमुख रूप से अपने शैशवकाल से वयस्क होने तक के अनुभवों से सीखता है। इसके साथ ही यह भी कहा कि किसी के सीखने के लिए इस तरह के अनुभव आवश्यक होते हैं।

पिआजे और ड्यूवी की ओर से प्रतिपादित सिद्धांत प्रगतिशील शिक्षा के व्यापक आंदोलन के रूप में सघन हो चुके हैं। रचनात्मकतावादी सीखने के सिद्धांत के अनुसार एक पूर्ववर्ती ज्ञान आधार सारे ज्ञान के लिए निर्माण खंड का कार्य करता है। इस दृष्टि से, यह कहा जा सकता है कि एक बच्चा खाली स्लेट नहीं होता और आप बच्चे को इस प्रकार नहीं सिखा सकते कि वह उन बातों का मतलब अपने अपने मौजूदा विचारों या अवधारणाओं के आधार पर निकालने का प्रयास खुद ना करे। इसलिए, किसी बच्चे को सबसे अच्छी तरह तब सिखाया जा सकता है जब उसे उसके अनुभवों और उन अनुभवों पर चिंतन से बनी व्यक्तिगत समझ के आधार पर सिखाया जाता है।

डेविड जोनासन के अनुसार, तीन प्रमुख लेकिन मौलिक भूमिकाएं हैं जिन्हें शिक्षकों को रचनात्मकतावादी माहौल में छात्रों को पढ़ाते समय अपनाना चाहिए। ये हैं– मॉडलिंग, कोचिंग और स्कैफोल्डिंग।

ऊपर वर्णित भूमिकाओं का वर्णन यहां किया जा रहा है–

1. मॉडलिंग

डेविड जोनासन के अनुसार, मॉडलिंग सीखने के रचनात्मकतावादी माहौल में सबसे आम तौर पर इस्तेमाल की जाने वाली निर्देशात्मक रणनीति है। उनके मुताबिक मॉडलिंग के माहौल के दो प्रकार हैं–

- सीएलई में प्रत्यक्ष प्रदर्शन की व्यवहार संबंधी मॉडलिंग यह दिखाने के लिए की जाती है कि उन कार्यों को कैसे करना है जिन्हें क्लासरूम में नोट किया गया है और गतिविधि की संरचना से चुना गया है।

- सीएलई में गुप्त संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की संज्ञानात्मक मॉडलिंग उस तर्क की क्षमता (काम में चिंतन) को स्पष्ट करती है जिनका इस्तेमाल सीखने वालों को किसी कार्य को करते समय करना चाहिए।

टिप्पणी

2. कोचिंग

जोनासन के अनुसार, एक कोच या शिक्षक की भूमिका जटिल और सटीक होती है। एक अच्छा शिक्षक या कोच सीखने वालों को अपने प्रदर्शन का आकलन करने देता है और उनके प्रदर्शन पर आवश्यक प्रतिक्रिया और सुझाव देता है। शिक्षक को छात्रों को बताना ही चाहिए कि अब तक उन्होंने जो सीखा है उस पर सोच–विचार और उन बातों को स्पष्ट कर वे 'कैसे काम करें' या अपने प्रदर्शन में सुधार पर काम कैसे करें। यही नहीं, जोनासन यह भी कहते हैं कि कोचिंग (सहायता) की इच्छा खुद सीखने वालों की ओर से प्रकट किया जाना चाहिए। सीखने वाले अपने शिक्षक से पूछ सकते हैं– 'मैं कैसा कर रहा हूं?' तब शिक्षक को सीखने वाले के क्लास में प्रदर्शन को देखना चाहिए और उन्हें सुधार के लिए जरूरी प्रतिक्रिया देनी चाहिए जिससे कि वे सही दिशा में काम कर सकें, और तब कोचिंग की जरूरत नहीं रह जाती है।

कोचिंग स्वाभाविक और आवश्यक रूप से ऐसी प्रतिक्रियाओं को शामिल रखती है जो सीखने वाले के कार्य के प्रदर्शन में ही स्थित रहती हैं।

3. स्कैफफोल्डिंग

सीखने वालों को अपने कार्य, माहौल, शिक्षक और सीखने वालों पर ध्यान केंद्रित करने में मदद देने वाला सीखने के एक व्यवस्थित दृष्टिकोण को स्कैफफोल्डिंग कहा जा सकता है। स्कैफफोल्डिंग का मकसद सीखने वालों को उनके प्रदर्शन को बेहतर करने और अपनी उत्कृष्ट क्षमता के साथ काम को करने में मदद के लिए अस्थायी संरचना उपलब्ध कराना है। किसी वयस्क (शिक्षक) द्वारा प्रदर्शन या संज्ञानात्मक गतिविधि में सुधार को बेहतर करने के लिए की गई कोई भी सहायता जब सीखने वाला और वह वयस्क कार्यों को साथ मिलकर कर रहा हो, स्कैफफोल्डिंग की अवधारणा का ही प्रतिनिधित्व करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

4. नैदानिक के उद्देश्य कितने प्रकार के होते हैं?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

5. A, B, C, D आदि अक्षरों का प्रयोग करके विद्यार्थियों को क्या प्रदान किया जाता है?

   (क) प्रतिपुष्टि (ख) प्रमाण पत्र

   (ग) ग्रेड (घ) अंक

6. शिक्षक को रचनात्मकवादी माहौल में छात्रों को पढ़ाते समय किन भूमिकाओं को अपनाना चाहिए?

   (क) मॉडलिंग (ख) कोचिंग

   (ग) स्कैफोल्डिंग (घ) उपर्युक्त सभी

1.4 आकलन के दृष्टिकोण

आकलन व मूल्यांकन शिक्षा के क्षेत्र में एक नवीन धारणा है जो एक सतत् व जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है इसकी सहायता से साधन, शैक्षिक-विधियों, पाठ्य-वस्तु, शैक्षिक उद्देश्य, शैक्षिक कार्यक्रम, शिक्षा योजना आदि का मूल्यांकन किया जाता है। इसके साथ-साथ शिक्षा से जुड़े विभिन्न व्यक्तियों, प्रशासक, शिक्षक, अभिभावकों की क्रियाओं तथा विद्यार्थियों की मानसिक एवं शैक्षिक योग्यता का मूल्यांकन करते हैं । इनका आकलन करने के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षण तैयार किए जाते हैं। परीक्षण के द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया के गुणों की जाँच की जाती है। लेकिन शैक्षिक के क्षेत्र में परीक्षणों का अर्थ उन विधियों अथवा उपकरणों से लगाया जाता है जो बालक की मानसिक एवं शैक्षिक योग्यता का मापन करने में सक्षम हों। विभिन्न आधारों पर मूल्यांकन प्रक्रिया को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

आकलन का वर्गीकरण

1. उद्देश्यों के आधार पर
   - निदानात्मक आकलन (Prognostic Assessment)
   - नैदानिक आकलन (Diagnostic Assessment)
   - संरचनात्मक आकलन (Formative Assessment)
   - योगात्मक आकलन (Summative Assessment)
2. क्षेत्र के आधार पर
   - अध्यापक निर्मित परीक्षण (Teacher Made Test)
   - मानकीकृत परीक्षण (Standardized Tests)
3. गुण मापन के आधार पर
   - उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test)
   - अभिक्षमता (Aptitude Test)
   - अभिवृत्ति (Attitude Test)
4. एकत्र सूचनाओं की प्रकृति के आधार पर
   - गुणात्मक एवं (Qualitative)
   - परिणामात्मक (Quantitative)

5 प्रतिक्रिया के आधार पर
   - मौखिक (Oral)
   - लिखित (Written)
   - वस्तुनिष्ठ (Objective)

6 निर्वचन की प्रकृति के आधार पर
   - मानक सन्दर्भित (Norm Referenced)
   - निकष सन्दर्भित परीक्षण (Criterion Referenced)

टिप्पणी

7. निर्देशों के आधार पर

- आन्तरिक परीक्षा (Internal Exams)
- बाह्य परीक्षा (External Exams)

1.4.1 उद्देश्यों के आधार पर (निदानात्मक, नैदानिक, संरचनात्मक और योगात्मक)

उद्देश्य के आधार पर आकलन को चार वर्गों में विभाजित किया गया है- निदानात्मक और नैदानिक, योगात्मक और संरचनात्मक।

(अ) निदानात्मक : शैक्षिक निदान से अभिप्राय है अधिगम तथा शैक्षिक सम्बन्धी मुख्य एवं विशिष्ट कठिनाइयों का पता लगाना के लिए तैयार की गई अनेक तकनीकी प्रविधियों के उपयोग से है और यदि सम्भव हो तो उनके कारणों का पता लगाने तथा उसके निराकरण का प्रबन्ध करना है। जिस प्रकार एक चिकित्सा विशेषज्ञ नियन्त्रित अवस्थाओं में रोगी की सावधानीपूर्वक और गहन चिकित्सीय जांच करता है। इसके लिए डॉक्टर थर्मामीटर, स्टेथॉस्कोप, माइक्रोस्कोप जैसे उपकरणों का प्रयोग करता है। ताकि निश्चित, यथार्थ और वस्तुगत निदान सम्भव हो सके। और वह रोगों का पता लगाता है तथा उनके लिए उपचार सुझाता है। ठीक उसी प्रकार शैक्षणिक निदान में अनेक परीक्षणों एवं सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग होता हे। निदानात्मक मूल्यांकन के द्वारा विद्यार्थियों के दोषों, कमियों, न्यूनताओं एवं कठिनाइयों का पता लगाया जाता है। इससे उन्हें दूर करने में सहायता मिलती है और इस प्रकार ये वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं। इनके द्वारा केवल यह पता लगाना नहीं होता कि उनकी योग्यता कितनी है और क्या-क्या कमियां है अपितु निदानात्मक मूल्यांकन इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि कमियों को कैसे दूर किया जा सकता है। शिक्षक भी शैक्षिक अधिगम को प्रभावशाली बनाने के लिए शैक्षिक विधियों/प्रविधियों में परिवर्तन अथवा सुधार करते हैं ताकि शैक्षिक क्रिया प्रभावी हो सके। कमियों को दूर करने के लिए उपचारात्मक तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए विशिष्ट शैक्षणिक व्यवस्था की जा सकती है। इससे विद्यार्थी विशेष रूप से लाभान्वित होते हैं और उनकी प्रगति में सहायता मिलती है। शैक्षणिक निदान चिकित्सक निदान जितना यथार्थ एवं वस्तुनिष्ठ नहीं होता। दिन-प्रतिदिन शैक्षणिक निदान में वैज्ञानिक/उपागम का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। शैक्षणिक निदान की उपयोगिता एवं यथार्थता बहुत कुछ शिक्षक की योग्यता एवं श्रेष्ठता पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त इस बात पर निर्भर करती है कि पाठ्यक्रम का विश्लेषण किस सीमा तक और कितनी स्पष्टता से किया गया है। शैक्षिक क्षेत्र में निदान के दो रूप हैं-

(क) सामान्य कठिनाइयों का निदान तथा

(ख) विशिष्ट कठिनाइयों का निदान

शैक्षणिक क्षेत्र में निदान के लिए जो परीक्षण बने हैं वे अनेक विषयों से संबंध रखते हैं। जैसे शब्दों के अर्थो का ज्ञान, वाक्यों का अर्थ समझने की योग्यता, विचारों एवं वाक्यों को तर्कसंगत रूप में प्रवाहित करने की क्षमता और इच्छित विषय-वस्तु तक शीघ्र पहुंचने की योग्यता, भाषा की समझ, चिन्तन की स्पष्टता, स्मरण शक्ति आदि पर निर्भर है। इनमें से किस पर बालक कमजोर है यह नैदानिक परीक्षण द्वारा जाँचा जा सकता है।

(ब) नैदानिक : शैक्षणिक निदान का सम्बन्ध विद्यार्थियों की योग्यताओं एवं क्षमताओं की जांच से नहीं वरन् उनकी क्षमताओं, कमजोरियों एवं कठिनाइयों के उपचार से भी है।

विशिष्ट बालकगत कमजोरी एवं कठिनाई को दूर करने के लिए शिक्षक को अपनी शैक्षिक विधि में आवश्यक परिवर्तन लाना पड़ता है। ताकि बालक अपनी योग्यतानुसार अधिगम प्राप्त कर सके। इस प्रक्रिया को उपचारात्मक अध्यापन कहते हैं।

एक सफल शिक्षक सर्वप्रथम उन छात्रों की खोज करता है जो विद्यालय में समायोजन कर पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे होते हैं। ये वे विद्यार्थी होते हैं जो किसी एक या अधिक विषयों में कमजोर होते हैं तथा विद्यालय की कुछ क्रियाओं में ठीक से समायोजन नहीं कर पाते हैं। उनकी कठिनाइयों के स्थल कौन-कौन से हैं। इन कठिनाइयों अथवा अयोग्यताओं के स्वभाव को समझने के पश्चात वह उन कारणों को जानने के लिए उन बालकों का अध्ययन करता हैं। कठिनाइयों के कारणों, शारीरिक दोषों में, रुचि की न्यूनता में, हीन भावनाओं में, संवेगों में बुरी आदतों में, दोषपूर्ण अध्ययन विधि में तथा घरेलू दूषित वातवारण में ढूंढ़ने का प्रयास करता है। शिक्षक का यह कार्य अत्यन्त जटिल होता है। लेकिन शिक्षा सम्बन्धी कारण इतने जटिल होते हैं कि उनका विश्लेषण करना कठिन होता है। जिसके लिए शिक्षक को विभिन्न विधियों, उपकरणों एवं परीक्षणों का सहारा लेता है। कमजोरियों का पता करने के बाद शिक्षक उपचारिक विधियों की सहायता से उपचार करता है। "निदानात्मक परीक्षण व्यक्ति की जांच करने के बाद किसी एक या अधिक क्षेत्रों में उसकी विशेषताओं एवं कमियों को व्यक्त करता है।"

निदानात्मक मूल्यांकन का उद्देश्य-

1. अध्ययन प्रक्रिया में समुचित सुधार लाने के लिए।
2. विषय सम्बन्धी कमियों, हीनताओं एवं कठिनाइयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए।
3. विशिष्ट विषय वस्तु अधिगम इकाई में प्राप्त गुणों के आधार पर विद्यार्थी एवं अभिभावकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करना।
4. शैक्षिक अधिगम की परिस्थितियों को प्रभावशाली बनाना।
5. मूल्यांकन प्रक्रिया को और अधिक सार्थक एवं प्रभावशाली बनाने के लिए।
6. उपचारात्मक शैक्षिक की व्यवस्था के लिए।
7. सफल परीक्षा निर्माण के लिए।

(स) संरचनात्मक (आरंभिक) आकलन : वह आकलन जो अध्ययन–अध्यापन के दौरान चरणबद्ध रूप से ज्ञान और समझदारी को लेकर छात्रों की समीक्षा करता है उसे संरचनात्मक आकलन या आरंभिक आकलन कहते हैं। यह अध्यापन और अध्ययन की प्रक्रिया और उत्पाद से जुड़े निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देता है–

- क्या किसी विशेष विषय या कंटेंट या कोर्स या पाठ्यक्रम की शिक्षा से जुड़े उद्देश्यों को प्राप्त किया जा रहा है?
- क्या छात्रों के बोध संबंधी, प्रभाव और मनोप्रेरणा के क्षेत्रों का विकास सही तरीके से हो रहा है?
- क्या अध्ययन करने वालों के पाठ्यक्रम और गैर–पाठ्यक्रम संबंधी व्यक्तित्व के क्षेत्रों का विकास सही तरीके से हो रहा है?
- अध्ययन करने वालों की प्रगति संतोषजनक है या नहीं?

टिप्पणी

- किसी भी जारी शैक्षिक प्रोग्राम के पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को पूर्ण किया जा रहा है या नहीं?

आरंभिक आकलन निगरानी के जैसा आकलन है जिसका प्रयोग क्लास, कोर्स या सेशन के दौरान छात्रों की निगरानी के लिए किया जाता है। आरंभिक आकलन के बाद, छात्रों को फीडबैक दिया जाता है, ताकि वे अपने आगे की पढ़ाई उसके अनुसार कर सकें। आरंभिक आकलन का लक्ष्य अध्यापन–अध्ययन की प्रक्रिया में सुधार लाना है।

(द) योगात्मक

जैसा कि नाम से ही संकेत मिलता है, योगात्मक आकलन (summative evaluation) कोर्स सेमेस्टर, या किसी क्लास या विषय के अंत में किया जाता है। इसका उद्देश्य अंतिम उत्पाद की गुणवत्ता का आकलन करना है तथा यह पता लगाना है कि किस हद तक निर्देशात्मक उद्देश्यों को प्राप्त किया गया है।

योगात्मक आकलन के बाद किसी भी प्रकार की सुधार संबंधी शिक्षा नहीं दी जाती है। सर्टिफिकेट दिए जाने की प्रक्रिया योगात्मक आकलन के परिणामों के आधार पर की जाती है। इस आकलन के परिणाम पाठ्यक्रम के संचालन की प्रक्रिया के प्रभावी होने की झलक देते हैं। योगात्मक आकलन के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं– वार्षिक परीक्षा, सेमेस्टर एंड परीक्षा और टर्मिनल परीक्षा। इसका उद्देश्य अंतिम उत्पाद पर फैसला सुनाना होता है। योगात्मक परीक्षा के महत्वपूर्ण उपकरण हैं उपलब्धि परीक्षण, रेटिंग स्केल, एक्सपर्ट द्वारा प्रोजेक्ट आकलन, इंटरव्यू, मौखिक परीक्षा आदि। योगात्मक आकलन की विशेषताएं इस प्रकार हैं–

- यह आकलन विषय, क्लास, चैप्टर, यूनिट या कोर्स निर्देशन के अंत में किया जाता है।
- आकलन के परिणाम से किसी क्लास में छात्रों की विषय में, किसी कोर्स में या किसी भी शिक्षण प्रोग्राम में अंतिम प्रगति का पता चलता है।
- योगात्मक आकलन के परिणामों के आधार पर मेरिट लिस्ट, फाइनल पोजिशन, पास/फेल/प्रोमोट करने तथा डिग्री या डिप्लोमा देने का फैसला किया जाता है।

संरचनात्मक और योगात्मक आकलन के बीच अंतर

तालिका में आरंभिक और योगात्मक आकलन के बीच अंतर सार प्रस्तुत किया गया है।

संरचनात्मक और योगात्मक आकलन के बीच अंतर

संरचनात्मक आकलन	योगात्मक आकलन
1. अध्यापन और अध्ययन के दौरान, क्लास के दौरान, सेमेस्टर या सत्र के दौरान कराया जाता है।	1. अध्यापन और अध्ययन की प्रक्रिया के अंत में, यानी क्लास, सेमेस्टर, सत्र के अंत में कराया जाता है।
2. किसी छोटे कार्य में कम समय में उपलब्धि के स्तर का पता लगाता है।	2. किसी बड़े कार्य में लंबे समय के दौरान प्राप्त उपलब्धि के स्तर को तय करता है।
3. क्लास, कोर्स या सत्र के दौरान नियमित रूप से आयोजित करता है।	3. कोर्स या प्रोग्राम के अंत में आयोजित करता है।
4. सीमित सामान्यीकरण करता है।	4. व्यापक सामान्यीकरण उपलब्ध कराता है।
5. सीमित कंटेंट क्षेत्र और क्षमता कवर होती है।	5. विशाल कंटेंट क्षेत्र और क्षमता कवर होती है।

टिप्पणी

संरचनात्मक आकलन	योगात्मक आकलन
1. अध्यापन और अध्ययन के दौरान, क्लास के दौरान, सेमेस्टर या सत्र के दौरान कराया जाता है।	1. अध्यापन और अध्ययन की प्रक्रिया के अंत में, यानि क्लास, सेमेस्टर, सत्र के अंत में कराया जाता है।
2. किसी छोटे कार्य में कम समय में उपलब्धि के स्तर का पता लगाता है।	2. किसी बड़े कार्य में लंबे समय के दौरान प्राप्त उपलब्धि के स्तर को तय करता है।
3. क्लास, कोर्स या सत्र के दौरान नियमित रूप से आयोजित करता है।	3. कोर्स या प्रोग्राम के अंत में आयोजित करता है।
4. सीमित सामान्यीकरण करता है।	4. व्यापक सामान्यीकरण उपलब्ध कराता है।
5. सीमित कंटेंट क्षेत्र और क्षमता कवर होती है।	5. विशाल कंटेट क्षेत्र और क्षमता कवर होती है।

1.4.2 क्षेत्र के आधार पर (शिक्षक निर्मित और मानकीकृत)

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। इसलिए शैक्षिक के क्षेत्र में शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया में एक निश्चित समयान्तर में यह जानने का प्रत्यन करते हैं कि बालकों का जो पढ़ाया सिखाया गया है उसमें उन्होनें कितना सीखा है इसको मापने के लिए परीक्षण तैयार किए जाते हैं। सरल शब्दों में बालकों की विभिन्न विशेषताओं तथा ज्ञान का मापन जिन परीक्षणों के द्वारा किया जाता है उन परीक्षणों को उपलब्धि परीक्षण कहते हैं। छात्रों में विद्यालयी विषयों के अध्ययन द्वारा होने वाले ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक परिवर्तनों को मापने के लिए जो परीक्षण तैयार किए जाते हैं उन्हें निष्पत्ति/उपलब्धि परीक्षण कहा जाता है। उपलब्धि परीक्षण मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं- मानकीकृत एवं अमानकीकृत परीक्षण। शैक्षिक उपलब्धि के जो अमानकीकृत परीक्षण होते हैं ये परीक्षण अध्यापक निर्मित उपलब्धि परीक्षण भी कहे जाते हैं।

(अ) **शिक्षक निर्मित परीक्षण :** शिक्षक कक्षा शैक्षिक में एक महत्वपूर्ण अंग है। वह समय-समय पर अपने विद्यार्थियों की विषयगत परीक्षा लेकर अपनी तथा अपने विद्यार्थियों की सफलता के बारे में जांच करता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण वे परीक्षण है जिन्हें शिक्षक अपनी आवश्यकतानुसार तात्कालिक रूप से तैयार कर लेता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण सीमित पाठ्यवस्तु के सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तैयार किए जाते हैं। इनका निर्माण शिक्षकों द्वारा अधिकांशत: अपने कक्षाकक्ष के भीतर ही किया जाता है। इसलिए इन्हें शिक्षक निर्मित परीक्षण का निर्माण शिक्षक द्वारा बालकों की अधिगम प्रक्रिया के आकलन के लिए तथा उस विषय-वस्तु के अधिगम में यदि कोई कठिनाई है तो उसकी पहचान करने के लिए किया जाता है। शैक्षिक तथा अधिगम में शिक्षक निर्मित परीक्षणों का निर्माण तथा उपयोग शिक्षक का एक नियमित कार्य है। इससे उसे अपने विद्यिार्थियों को प्रेरणा प्रदान करने में सहायता मिलती है। साथ ही वे अपने विद्यार्थियों की विषयगत योग्यता के बारे में अपनी निश्चित धारणा बना सकने में सफल होते हैं। इससे शिक्षक स्वयं भी अपनी कक्षा शैक्षिक की कमियों एवं क्षमताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सफल होता है। शिक्षक निर्मित परीक्षणों का निर्माण शिक्षक द्वारा पढ़ाये गये विषय के पाठ्यक्रम के उतने भाग पर आधारित होता है जो उसके द्वारा एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत पढ़ाया गया है। शिक्षक निर्मित परीक्षणों का निर्माण करने के लिए वस्तुनिष्ठ प्रकार अथवा निबंधात्मक प्रश्न अथवा दोनों प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में इन परीक्षणों का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है। विद्यार्थियों की साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाओं में इन्हीं परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। ये परीक्षण विभिन्न विषयों के लिए तैयार किए जाते हैं। इन परीक्षणों को निर्माण मानकीकृत परीक्षणों से भिन्न होता है। ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ होते हैं लेकिन प्रमापीकृत नहीं। इन परीक्षणों में इनकी विश्वसनीयता, वैधता एवं वस्तुनिष्ठता के सम्बन्ध में कुछ भी दावे के साथ नहीं कहा जा सकता इसलिए ये परीक्षण सार्वजनिक परीक्षाओं के लिए पूर्णरूपेण प्रयुक्त नहीं किए जा सकते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षणों के उद्देश्य : शिक्षक निर्मित उपलब्धि परीक्षण शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों की दृष्टि से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। इन परीक्षणों को निर्मित करने के प्रमुख उद्देश्य निम्न होते हैं-

1. बालकों की उपलब्धि के सामान्य स्तर को निर्धारित करना।
2. बालकों की विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं में वास्तविक स्थिति को ज्ञात करना।
3. यह जानने के लिए कि शिक्षक अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कहां तक सफल हुआ है।
4. बालकों को विभिन्न क्षेत्रों में दिए गये प्रशैक्षिक के परिणामों का मूल्यांकन करना।
5. पाठ्यक्रम के लक्ष्यो एवं उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बालकों की प्रगति की जानकारी प्राप्त करना।
6. बालकों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों को ज्ञात करना और उनका निवारण करने के लिए पाठ्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन करना।
7. सीमित पाठ्यवस्तु के अनवरत मूल्यांकन की दृष्टि से ये परीक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।
8. शिक्षक निर्मित परीक्षण शिक्षक को अपने शैक्षिक को ओर अधिक प्रभावशाली बनाने के अवसर प्रदान करते हैं।
9. निदानात्मक दृष्टि से इन परीक्षणों द्वारा शिक्षक को यह संकेत प्राप्त होता है कि उसे शैक्षिक कार्य में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है और कहां तक नहीं। जबकि दूसरी ओर बालक यह अभ्यास करते हैं कि उसे कौन-कौन सी विषय-वस्तु ठीक से समझ नहीं आयी।

शिक्षक निर्मित परीक्षणों की विशेषताएं : शिक्षक निर्मित परीक्षणों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं-

1. शिक्षक निर्मित परीक्षणों के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं।
2. ये परीक्षण मानकीकृत नहीं होते हैं।
3. ये परीक्षण सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं।
4. ये परीक्षण सीमित पाठ्य वस्तु के सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तैयार किए जाते हैं।
5. ये परीक्षण किसी विषय अध्यापक द्वारा ही तैयार किए जाते हैं।
6. इन परीक्षणों में प्रश्नों के विभिन्न रूपों का समावेश सरलता से किया जा सकता है।

7. ये परीक्षण परीक्षक की मनोवृत्ति के प्रभाव से पूर्ण एवं स्वतन्त्र होते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षणों की सीमाएं : शिक्षक निर्मित परीक्षणों में विभिन्न विशेषताओं के बावजूद कुछ सीमाएं होती हैं-

1. ये परीक्षण किसी विषय के पूर्ण ज्ञान की परीक्षा नही कर पाते हैं।
2. इन परीक्षाओं में परीक्षार्थी को अनुमान से उत्तर देने के पर्याप्त अवसर मिल जाते हैं।
3. इन परीक्षणों का निर्माण करना सरल नहीं होता है।
4. कभी-कभी परीक्षार्थी इन परीक्षणों की प्रकृति से परिचित नही होते है तो विषय सम्बन्धी योग्यता रखते हुए भी अच्छे अंक प्राप्त नहीं कर पाते।
5. इस प्रकार के परीक्षणों में नकल की सम्भावना अधिक होती है।
6. इन परीक्षणों द्वारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अध्ययन नहीं हो पाता है।
7. ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ होते हुए भी प्रमापीकृत न होने के कारण परीक्षक की मनोवृत्ति से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है।
8. इन परीक्षणों के माध्यम से बालक की कठिनाइयों को जानना कठिन होता है।

मानकीकृत परीक्षण : मानकीकृत का अर्थ होता है- किसी मानक या स्तर तक लाया हुआ। मानकीकृत परीक्षण वह परीक्षण है जिनका निर्माण विशेषज्ञों द्वारा एक विशेष प्रकार से किया जाता है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम मापीय लक्ष्यों को ध्यान में रखकर परीक्षण का प्रारूप तैयार किया जाता है।फिर उसे उसी स्तर के बालकों पर प्रशासित किया जाता है। इन परीक्षणों के आधार इनमें से अनावश्यक सामग्री को निकाल कर आवश्यक सामग्री को जोड़कर उन्हें वैध, विश्वसनीय तथा वस्तुनिष्ठ बनाया जाता है।

मानकीकृत परीक्षणों में पदों का चयन पाठ्यक्रम के अनुकूल किया जाता है तथा जिनकी प्रशासन विधि, निर्देश, समय-सीमा, फलांकन विधि एवं विवेचना समान रूप से निश्चित होती है तथा जिनके मानकों की सारणी तैयार की गई हो

मानकीकृत परीक्षणों से तात्पर्य उन परीक्षाओं से है जिनका प्रमापीकरण कर दिया गया हो अर्थात् जिसके लिए सामान्य स्तर(Norms) तैयार किए गये हों। एक मानकीकृत परीक्षण का अभिप्राय केवल यह है कि सभी बालक समान निर्देशों और समय की समान सीमाओं के अन्तर्गत समान प्रश्नों का उत्तर दें।

सी.वी. गुड के अनुसार : "एक मानकीकृत परीक्षण वह है जिसमें विषय-वस्तु अनुभव से चुनी गयी हो या जांची गयी हो, जिसमें मानक स्थापित किए गए हो, जिसमें प्रशासन एवं अंकन की समान विधियों/रीतियों का विकास किया गया हो एवं जिनका अंकन सापेक्ष तथा वस्तुनिष्ठ विधि से हो सके।"

वी.एच. नॉल के अनुसार : "मानकीकृत परीक्षण एक ऐसा परीक्षण है जिसमें विशेषज्ञों द्वारा स्वीकार्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर, सावधानीपूर्वक निर्मित किया जाता है, जिसमें प्रशासन विधि, अंकन एवं अंकों की व्याख्या का विशिष्टीकरण विस्तार से किया जाता है। जिसमें चाहे जो कोई भी उस परीक्षण को दे, परिणाम तुलनात्मक रहें और जिसमें प्रतिमान एवं विभिन्न आयु वर्ग के लिए माध्यम एवं कक्षा स्तर का पूर्व निर्धारण किया जाता है।"

मानकीकृत परीक्षण की विशेषताएं : मानकीकृत परीक्षणों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं-

1. इनका निर्माण एक विशेषज्ञ या विशेषज्ञों के समूह द्वारा किया जताा है।
2. इनका निर्माण विभिन्न कक्षाओं एवं विषयों के लिए किया जाता है। एक कक्षा एवं एक विषय के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षण होते हैं।
3. इन परीक्षणों का निर्माण निश्चित नियमों और सिद्धान्तों के अनुसार किया जाता है।
4. ये परीक्षण निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ होते हैं।
5. ये परीक्षण विद्यार्थियों का वर्गीकरण करने में सहायक होते हैं।
6. ये परीक्षण विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का पूर्ण परीक्षण करते हैं।
7. तुलनात्मक अध्ययन में इन परीक्षणों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।
8. ये परीक्षण विद्यार्थी का शैक्षिक एवं व्यवसायिक मार्गदर्शन करने में सहायक होते हैं।
9. इन परीक्षणों में सम्मिलित प्रश्नों को निश्चित निर्देशों के अनुसार निश्चित समय सीमा के अन्दर करना पड़ता है। इनमें मूल्यांकन का अंक प्रदान करने के लिए निर्देश दिए होते हैं।
10. इन परीक्षणों की सहायता से विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों की उपलब्धियों में सह-सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।
11. ये परीक्षण विभिन्न विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों अथवा एक ही कक्षा में पढ़ने वाले विभिन्न विद्यार्थियों की योग्यता में विभेद करने में सहायक होते हैं।

मानकीकृत परीक्षणों की सीमाएं : मानकीकृत परीक्षणों की सीमाएं निम्नलिखित हैं-

1. परीक्षण विस्तृत मापन प्रदान नहीं करता है।
2. ये परीक्षण यह तो स्पष्ट कर सकते हैं कि विद्यार्थी परीक्षा की परिस्थितियों में क्या कर सकता है लेकिन ये यह स्पष्ट नहीं करते कि विद्यार्थी अन्य परिस्थितियों में क्या करेगा।
3. ये परीक्षण विद्यार्थी क्या कर सकता है? इसका प्रमाण तो दे सकते हैं लेकिन उनके लिए निर्णय नहीं ले सकते ।
4. ये परीक्षण कभी-कभी ऐसे उद्देश्यों के लिए प्रयोग लाए जाते हैं जिनके लिए वे बने ही नहीं।
5. इनका निर्माण कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता इनके निर्माण के लिए शिक्षा जगत के प्रबुद्ध व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।
6. परीक्षण कार्यक्रम, निर्देशन कार्यक्रम का एक अंग हैं ये सब कुछ नहीं होते हैं।
7. इन परीक्षणों के निर्माण में धन, समय और श्रम आदि का बहुत अधिक व्यय होता है।

मानकीकृत परीक्षणों तथा शिक्षक निर्मित परीक्षणों में अन्तर : यद्यपि मानकीकृत परीक्षणों एवं शिक्षक निर्मित परीक्षणों के उद्देश्य समान होते हैं फिर भी इनमें कुछ अन्तर होते हैं जो निम्न प्रकार हैं-

टिप्पणी

क्र.स.	मानकीकृत परीक्षण	अध्यापक निर्मित परीक्षण
1	सफल परीक्षण मानकीकृत होते हैं।	अध्यापक निर्मित परीक्षण प्रमापीकृत नहीं होते हैं।
2	इन परीक्षणों में विभिन्न समूहों या स्तरों के मानक ज्ञात होते हैं।	इन परीक्षण में किसी प्रकार के मानक ज्ञात नहीं किए जाते हैं।
3	इन परीक्षण का सम्बन्ध ज्ञान के व्यापक क्षेत्र से होता है।	इन परीक्षणों का सम्बन्ध विशिष्ट एवं सीमित पाठ्य वस्तु से होता है।
4	ये परीक्षण किसी विद्यालय विशेष के पाठ्यक्रम पर आधारित न होकर समस्त विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम पर आधारित होते हैं।	ये परीक्षण किसी विशेष विद्यालय अथवा कक्षा में पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम पर आधारित होते हैं। और विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनाये जाते हैं।
5	इन परीक्षणों का प्रयोग बालक के विकास सम्बन्धी आलेखपत्र तैयार करने में किया जाता है।	इन परीक्षणों का निर्माण यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि छात्रों ने किसी विशिष्ट कौशल में किस सीमा तक दक्षता प्राप्त की है।
6	इन परीक्षण का प्रयोग छात्रों के वर्गीकरण चयन एवं नियोजन के लिए किया जाता है।	इन परीक्षणों का प्रयोग किसी विशिष्ट प्रकरण के विस्तार से परीक्षण के लिए किया जाता है।
7	इन परीक्षणों में विषय–वस्तु का चयन शैक्षिणिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है।	इन परीक्षणों में विषय–वस्तु का चयन शिक्षण उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है।
8	मानकीकृत परीक्षण पाठ्यक्रम में हुए नये–नये परिवर्तनों के अनुरूप अपने को ढालने में सक्षम नहीं होते हैं।	ये परीक्षण आसानी से पाठ्यक्रम में हुए नये–नये परिवर्तनों के अनुरूप अपने को ढालने में सक्षम होते हैं।
9	मानकीकृत परीक्षणों की रचना में ग्रन्थों , विभिन्न परीक्षणों, निर्णायकों आदि के प्रयोग की आवश्यकता होती है।	इन परीक्षणों में अध्यापक के अनुभवों को ही सहारा माना जाता है।
10	ये परीक्षण विशेषज्ञों द्वारा तैयार किए जाते हैं।	ये परीक्षण अध्यापक द्वारा तैयार किए जाते हैं।
11	परीक्षण के प्रकरणों का निर्धारण विशिष्टीकरण तालिका या ब्लू प्रिंट के आधार पर किया जाता है।	इस परीक्षण के प्रकरणों का निर्माण शीघ्रता से किया जाता है।
12	इन परीक्षणों का प्रशासन एवं फलांकन पूर्व निर्धारित होता है और सभी परीक्षकों के लिए प्रशासन एवं फलांकन का तरीका समान होता है।	इन परीक्षणों के प्रशासन एवं फलांकन के कोई निश्चित नियम नहीं होते हैं। परीक्षणों का प्रशासन एवं उनका फलांकन अध्यापक अपनी सूझ–बूझ से करता है।
13	इन परीक्षणों की सहायता से राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर विद्यार्थियों की तुलना की जा सकती है।	इसमें एक कक्षा तथा अन्य विद्यालयों के छात्रों की तुलना की जा सकती है।
14	परीक्षण के निर्माण में पदों का पद विश्लेषण ओर पूर्व परीक्षण किया जाता है।	इन परीक्षणों के निर्माण ऐसा नहीं किया जाता है।
15	इन परीक्षणों की विश्वसनीयता एवं वैधता को सुनिश्चत करने के लिए विश्वसनीयता एवं वैधता गुणांक की गणना की जाती है।	इन परीक्षणों की विश्वसनीयता एवं वैधता ज्ञात नहीं की जाती है।
16	ये परीक्षण अमितव्ययी होते हैं इनमें धन समय एवं श्रम का अधिक व्यय होता है।	इन परीक्षणों में धन समय एवं श्रम तुलनात्मक रूप से कम व्यय होते हैं।

1.4.3 गुण मापन के आधार पर (उपलब्धि अभिक्षमता और अभिवृत्ति)

बालक के गुणों का आकलन करने के लिए उसके गुणों की माप की जाती है। गुणों के आधार पर किए जाने वाले आकलन/मूल्यांकन को निम्न तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

(अ) उपलब्धि परीक्षण : शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है इसके तीन अवयव होते हैं विद्यार्थी, पाठ्यक्रम एवं शिक्षक। पाठ्य वस्तु को माध्यम बनाकर शिक्षार्थी एवं शिक्षक के बीच में जो अन्त:क्रिया होती है उसका उद्देश्य बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। सभी स्कूलों में सभी कक्षाओं में विद्यार्थी साल भर ज्ञान अर्जित करते हैं। किसी भी एक कक्षा में सभी विद्यार्थियों का ज्ञान एवं ज्ञान प्राप्त करने का स्तर एक समान नहीं होता है। कुछ विद्यार्थी जल्दी ज्ञान अर्जित कर लेते है और कुछ देर से। शिक्षक शैक्षिक के दौरान एक निश्चित समयान्तर पर परीक्षणों के माध्यम से यह जानने का प्रयास करता है कि जो पढ़ाया-सिखाया गया उसमें उन्होंने कितना सीखा है अर्थात् विद्यार्थियों के ज्ञान एवं ज्ञान के स्तर/सीमा का आकलन करने के लिए जिन परीक्षणों को तैयार किया जाता है उन्हें उपलब्धि परीक्षण कहते हैं। उपलब्धि मूल्यांकन/परीक्षण के सम्बन्ध में इस प्रकार से कहा जा सकता है- उपलब्धि परीक्षण वे परीक्षण होते हैं जिनकी सहायता ये विद्यार्थियों के विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ज्ञान एवं ज्ञान की सीमा ज्ञात की जाती है।

फ्रीमैन के अनुसार, "उपलब्धि परीक्षण किसी एक विषय या विषयों में बालक के द्वारा अर्जित ज्ञान, सूझ-बूझ तथा कौशल का मापन करते हैं।"

थार्नडाइक के अनुसार, "जब हम उपलब्धि परीक्षाओं का प्रयोग करते है तब हम इस बात को निश्चित करने में रुचि रखते है कि एक विशेष प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति ने क्या सीखा है"

गैरिसन और अन्य, "उपलब्धि परीक्षण, बालक की वर्तमान योग्यता या किसी विशिष्ट विषय के क्षेत्र में उसके ज्ञान की सीमा का मापन करती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में विद्यालयी विषयों के अध्ययन द्वारा होने वाले ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक परिवर्तनों को मापने के लिए जो परीक्षण तैयार किए जाते हैं, उन्हें उपलब्धि परीक्षण कहा जाता है।

उपलब्धि परीक्षणों के उद्देश्य : उपलब्धि परीक्षणों को निम्न उद्देश्यों के लिए तैयार किया जाता है-

1. इनकी सहायता से शिक्षक यह ज्ञात कर सकता है कि वह अपने शैक्षिक कार्य में कितनी सफलता प्राप्त कर रहा है।
2. उपलब्धि परीक्षणों की सहायता से यह ज्ञात किया जा सकता है कि किसी कक्षा के विभिन्न विद्यार्थियों ने वर्ष भर में अलग-अलग विषयों में कितना ज्ञान अर्जित किया।
3. इनकी सहायता से यह ज्ञात किया जाता है कि कक्षा में कौन-सा विद्यार्थी निम्न, सामान्य एवं उच्च श्रेणी का है।
4. इनके माध्यम से विद्यार्थी की अगली कक्षा में प्रवेश की योग्यता सुनिश्चित की जाती है।

उपलब्धि परीक्षण के सामान्य सिद्धान्त

1. परीक्षा का अभिकल्प व्यापक होना चाहिए।
2. परीक्षण में वैधता एवं विश्वसनीयता होनी चाहिए।
3. परीक्षण में प्रश्नों की संख्या अधिक होनी चाहिए।
4. द्विअर्थी एवं भ्रामक प्रश्नों को परीक्षण में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।
5. परीक्षार्थियों को उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय एवं स्थान दिया जाना चाहिए। प्रश्नों की भाषा सरल, सुबोध एवं संक्षिप्त होनी चाहिए।
6. एक से प्रश्न एक ही स्थान पर देने चाहिए।
7. प्रश्न ऐसे होने चाहिए जो बालक की व्यावसायिक क्षमता एवं शैक्षिक ज्ञान का सही मूल्यांकन करें।

उपलब्धि परीक्षणों की विशेषताएं : उपलब्धि परीक्षणों की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. इन परीक्षणों के उद्देश्य पूर्व निर्धारित होते हैं।
2. ये परीक्षण धन, समय एवं शक्ति के दृष्टिकोण से मितव्ययी होते हैं।
3. इन परीक्षणों की विषय सामग्री व्यापक होती है।
4. ये परीक्षण विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग बनाये जाते हैं।
5. इन परीक्षणों की पाठ्य वस्तु विद्यार्थियों के स्तर, योग्यताओं, रुचियों एवं अभिक्षमताओं के अनुकूल होती है।
6. इन परीक्षणों का प्रशासन, अंकन, समय सीमा आदि सभी पहले से ही निर्धारित होते हैं।
7. इन परीक्षणो के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं।
8. ये परीक्षण विभेदकारी होते हैं। इसके साथ ही विश्वसनीय एवं वैध भी होते हैं।
9. इन परीक्षणों के परीक्षाफलों से अध्यापक को ऐसी सामग्री प्राप्त हो जाती है जिसके आधार पर शिक्षक आगे की समस्त शैक्षिक योजना का निर्माण कर सकता है।
10. इन परीक्षणों में प्रमापीकृत परीक्षणों की सभी विशेषताएं विद्यमान होती हैं जैसे अंकन कुंजी, निर्देशपुस्तिका, मानक आदि। ये परीक्षण भी पहले से ही तैयार किये जाते हैं
11. निर्देशन एवं चिकित्सा के क्षेत्र में इन परीक्षणों को प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। शैक्षिक उपलब्धियों विशेष रूप से पिछड़े विद्यार्थियों की पहचान करके निदान एवं उपचारात्मक शैक्षिक की दृष्टि से ये अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।
12. ये परीक्षण विभिन्न शैक्षिक विधियों की प्रभावात्मकता का भी मूल्यांकन करते हैं तथा श्रेष्ठ विधि का चयन करने में शिक्षक की सहायता करते हैं।
13. उपलब्धि परीक्षण विद्यार्थी की सर्वतोन्मुखी मानसिक योग्यता का ज्ञान कराते हैं।
14. उपलब्धि परीक्षण अभिभावकों को रिपोर्ट देने तथा विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र प्रदान करने में सहायता करते हैं।

टिप्पणी

(ब) अभिक्षमता : बुद्धि किसी व्यक्ति की सामान्य योग्यता की प्रतीक है। कार्य निष्पादन के लिए किसी क्षेत्र विशेष में सामान्य योग्यता के साथ-साथ कुछ विशिष्ट योग्यता की भी आवश्यकता होती है। उन योग्यताओं को अभिक्षमता कहकर पुकारा जाता है। जिनके माध्यम से किसी क्षेत्र विशेष में ठीक से कार्य करने के लिए आवश्यक ज्ञान तथा कौशलों में दक्षता प्राप्त होने सम्भावना होती हैं। कला, संगीत, खेलकूद, इन्जीनियरिंग आदि में अलग-अलग अधिक्षमताओं की आवश्यता होती है। वास्तव में अभिक्षमता से अभिप्राय उस ज्ञान तथा उन कौशलों की भिन्नता से है जो इन क्षेत्रों में दक्षता प्राप्त करने के लिए आवश्यक होते हैं। विभिन्न शिक्षाविद्ों ने अभिक्षमता को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है।

प्रो. ट्रेक्सलर, "अभिक्षमता किसी व्यक्ति की वह वर्तमान दशा है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करती है।"

प्रो. वारेन, "अभिक्षमता एक ऐसी दशा अथवा समुच्य है जो किसी व्यक्ति की उस योग्यता की ओर संकेत करती है जो प्रशैक्षिक के द्वारा कुछ ज्ञान, कौशल अथवा अनुक्रिया समूह को प्राप्त करने में सहायक होती है। जैसे संगीत रचना।" फ्रीमैन के अनुसार, "अभिक्षमता कुछ विशेषताओं का संयोजन है जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी विशिष्ट ज्ञान, कौशल अथवा संगठित अनुक्रिया को सीखने की क्षमता की ओर संकेत करती है।"

इन परिभाषाओं के आधार पर अभिक्षमता की प्रकृति एवं उसकी विशेषताओं के विषय में निम्न बातें सामने आयी हैं-

1. अभिक्षमता की धारणा किसी विशेष क्षेत्र में कार्य निष्पादन के लिए जिन योग्यताओं के माध्यम से आवश्यक ज्ञान एवं कौशल प्राप्त होते हैं उसे अभिक्षमता कहते हैं।
2. अभिक्षमता एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के क्रियात्मक पक्ष से जुड़ा हुआ शब्द है लेकिन यह एक अमूर्त संकल्पना है।
3. अभिक्षमताएं सदैव एक स्तर पर नहीं रुकी रहती हैं, ये परिवर्तनीय होती हैं अर्थात् अभिक्षमता का स्तर परिवर्तित होता रहता है।
4. वर्तमान में उपस्थित गुणों का समूह किसी व्यक्ति की भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करता है।
5. प्रत्येक व्यक्ति में सभी गुण न्यूनाधिक मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु कुछ गुण अधिक मात्रा में उपस्थित होते हैं ऐसे गुणों के समूह हो अभिक्षमता कहकर पुकारा जाता है।

शिक्षा तथा व्यवसाय के क्षेत्र में अधिक्षमता मापन के लिए कुछ विशिष्ट अधिक्षमता परीक्षाओं की रचना की गई है ये परीक्षण कला, संगीत, चिकित्सा, शैक्षिक विज्ञान, अभियान्त्रिकी आदि के क्षेत्र में अधिक्षमता का मापन करने के लिए उपयोगी होती हैं।

(स) अभिवृत्ति : अभिवृत्ति व्यक्ति का वह गुण है जो किसी की पसंद या नापसंद से संबंधित होता है। वास्तव में यह एक ऐसा गुण होता है जो किसी व्यक्ति के सामाजिक व्यावहार को निर्देशित करता है। किसी वस्तु, व्यक्ति तथा विचार आदि के प्रति व्यक्ति का व्यवहार उसकी अपनी अभिवृत्तियों से प्रभावित होता है। अभिवृत्तियां एक ओर व्यक्ति के स्वयं से संबंधित होती हैं दूसरी ओर सामाजिक परिस्थितियों से संबंधित होती हैं। इसीलिए अभिवृत्तियों के मानसिक व सामाजिक दोनों ही पक्ष होते हैं।

अभिवृत्ति एक जटिल संकल्पना है इसकी व्याख्या करना सरल नहीं है।

थर्सटन के शब्दों में, "अभिवृत्ति, किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति धनात्मक अथवा ऋणात्मक प्रभावों की मात्रा है।"

ड्रेवर के अनुसार, "अभिवृत्ति, रुचि, विचार अथवा प्रयोजन का एक न्यूनाधिक स्थिर समुच्य अथवा विन्यास है जिसमें एक विशेष प्रकार के अनुभव तथा एक उपयुक्त अनुक्रिया की तत्परता की प्रत्याशा निहित होती है।"

रेमर्स, रूमेल और गेज के विचारानुसार, "अभिवृत्ति अनुभवों के द्वारा बनाई गई एक संवेगात्मक प्रवृत्ति है जो किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करने को प्रोत्साहित करती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर अभिवृत्ति की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. अभिवृत्तियां जन्मजात तथा अर्जित दोनों प्रकार की होती हैं।
2. अभिवृत्ति एक द्विध्रुवीय गुण है जिससे कोई व्यक्ति किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति अपने सकारात्मक अथवा नकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।
3. अभिवृत्ति के दो पहलू होते हैं सामाजिक और मानसिक।
4. अभिवृत्ति सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों प्रकार की हो सकती है।
5. विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न प्रकार की अभिवृत्तियां पायी जाती हैं।
6. अभिवृत्ति का स्वरूप बाह्य अथवा आन्तरिक हो सकता है।
7. अभिवृत्ति को मापने के लिए अनेक परीक्षण उपलब्ध हैं। इन्हें अभिवृत्ति-मापक कहकर पुकारते हैं। जैसे Attitude Scale, Dowry Attitude, Attitude scale of Religion, sexuality scale etc.

जहां एक ओर बुद्धि तथा सृजनशीलता व्यक्तित्व के ज्ञानात्मक पक्ष के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं और दूसरी ओर अभिवृत्ति व्यक्तित्व का भावात्मक आयाम है। अत: इनके मापन उपकरणों एवं विधियों का ज्ञान होना जरूरी है। अभिक्षमता की प्रकृति कुछ ऐसी है कि इसे हम व्यक्तित्व के ज्ञानात्मक तथा क्रियात्मक दोनों पक्षों से जुड़ा हुआ पाते हैं। इन्हें ज्ञात करके बालक की व्यवसाय संबंधी सम्भावनाओं के विषय में बालक को अवगत करा सकते हैं।

1.4.4 सूचना की प्रकृति के आधार पर (गुणात्मक एवं परिमाणात्मक)

वर्तमान समय में मानव जीवन को भौतिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार के विज्ञानों की आवश्यकता होती है। सामाजिक विज्ञानों में शिक्षा तथा मनोविज्ञान को भी शामिल किया जाता है। मनोवैज्ञानिक मापन सूक्ष्म तथा गुणात्मक (Qualitative)होते हैं। इनका संबंध मानसिक मापन से होता है।

इसके विपरीत भौतिक विज्ञानों में तथ्य स्थूल होते हैं, उन्हें भौतिक रूप से मापा जा सकता है। अत: भौतिक विज्ञान की माप परिमाणात्मक (Quantitative)होती है। परिमाणात्मक से तात्पर्य है ऐसी कोई वस्तु जिसे देखा जा सके अनुभव किया जा सके।

(क) गुणात्मक मापन : किसी वस्तु, प्राणी, घटना अथवा क्रिया की विशेषताओं को गुणों के रूप में देखने पहचानने को गुणात्मक मापन कहते हैं। मनोविज्ञान एवं शिक्षा में भी मापन का बहुत अधिक महत्व है। इनका संबंध भौतिक मापन से न होकर मानसिक मापन से होता है। यह एक अत्यन्त कठिन एवं जटिल कार्य है। क्योंकि मनोविज्ञान में मानव व्यवहार का मापन किया जाता है। व्यवहार परिस्थिति एवं उद्दीपक के साथ बदलता रहता है। व्यवहार में परिवर्तन होने के कारण मानसिक मापन कभी निश्चित नहीं होता है। ये मापन भौतिक तथा स्थूल न होकर सूक्ष्म तथा गुणात्मक होते हैं और इनका मापन निश्चित एवं निर्दिष्ट इकाइयों में नहीं हो सकता है इसलिए सामाजिक विज्ञानों का मापन गुणात्मक (Qualitiative) होता है। इसके अन्तर्गत आत्मनिष्ठा का गुण पाया जाता है। और साथ-साथ वस्तु एवं घटना के संबंध में व्यक्ति की राय भी शामिल होती है। जैसे किसी विद्यार्थी को अति बुद्धिमान, कम बुद्धिमान या बुद्धिमान कहना गुणात्मक मापन के उदाहरण हैं। यदि हमें किसी शिक्षक के कार्यो का मापन करना है या किसी के द्वारा बनाये गये किसी चित्र, किसी भोजन प्रतियोगिता में भोजन, नृत्य प्रतियोगिता आदि के विषय में निर्णय लेना हो तो किसी मानक को आधार बनाना पड़ता है। उक्त निर्धारित मानक की सत्ता मूल्यांकन के मन में ही रहती है। मूल्यांकनकर्ता द्वारा निर्धारित मानक आवश्यक नहीं है कि वह सर्वमान्य एवं उचित ही हो। एक विद्यार्थी के द्वारा विज्ञान विषय के निबन्धात्मक प्रश्न के उत्तर का मूल्यांकन उसकी विषय-वस्तु मौलिक चिंतन, भाषा, व्याकरण, या शब्दों की संख्या आदि के आधार पर किया जा सकता है। और उसी अनुसार बालक को अंक प्रदान किए जाते हैं। विद्यार्थी से प्राप्त उत्तर में किस प्रकार की विषय-वस्तु, मौलिक चिंतन या शब्दों की संख्या आदि का कोई निश्चित निर्धारित आदर्श नहीं है जिसके परिणामस्वरूप यह मूल्यांकनकर्ता की मनः स्थिति पर निर्भर होता है।

गुणात्मक मापन की विशेषताएं : गुणात्मक मापन में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं-

- गुणात्मक मापन परिवर्तनशील होते हैं क्योंकि मानसिक मापन गुणात्मक मापन का रूप होता है जो समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं।
- गुणात्मक मापन का आधार प्रायः मानदण्ड(Norms) होते हैं सामान्य वितरण में औसत निष्पादन के आधार पर प्राप्त किए जाते हैं।
- गुणात्मक मापन के मापदण्ड सर्वमान्य नहीं होते हैं। यदि किसी एक बालक को एक शिक्षक उत्तम बालक कहे तो यह जरूरी नहीं कि अन्य शिक्षक भी उसको उत्तम बालक का दर्जा प्रदान करे।
- गुणात्मक मापन में शून्य की स्थिति नहीं होती है।
- गुणात्मक मापन कभी भी शत-प्रतिशत नहीं किया जा सकता है।
- गुणात्मक मापन में इकाइयों का सम्बन्ध निरपेक्ष न होकर सापेक्ष होता है।

परिमाणात्मक मापन : परिमाणात्मक मापन का अर्थ ठीक प्रकार से जानने के लिए परिमाण के अर्थ को समझना आवश्यक है। परिमाण से अभिप्राय ऐसी कोई वस्तु जिसकी भौतिक जगत में सत्ता हो, जिसे देखा जा सके, जिसकी मौजूदगी व नमौजूदगी को अनुभव किया जा सके। इस प्रकार भौतिक मापन को परिमाणात्मक मापन/ मात्रात्मक मापन भी कहा जाता है। जैसे- लम्बाई, ऊंचाई, भार क्षेत्रफल आदि परिमाणात्मक मापन के उदाहरण हैं।

परिमाणात्मक मापन की विशेषताएं : परिमाणात्मक मापन में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं-

- परिमाणात्मक मापन का आधार सदैव इकाई अंक होते हैं इकाई का अर्थ होता है शून्य से ऊपर जैसे 25 किग्रा. अर्थात 0 से ऊपर 25 किग्रा.।
- परिमाणात्मक मापन में परिशुद्धता अधिक पायी जाती है जिसके आधार पर भविष्य कथन भी अधिक विश्वसनीयता के साथ दिए जाते हैं।
- परिमाणात्मक मापन में प्रयुक्त यंत्र पर समान इकाइयां समान परिमाण को व्यक्त करती हैं।
- परिमाणात्मक मापन की विवेचना की कोई विशेष आवश्यकता नहीं होती है।
- परिमाणात्मक मापन में गणितीय संबंध पाया जाता है क्योंकि यह इकाई पर आधारित होता है।
- परिमाणात्मक मापन शत-प्रतिशत सम्भव है।
- परिमाणात्मक मापन स्थिर एवं निरपेक्ष रहता है इसमें आत्मनिष्ठता के स्थान पर वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है।

गुणात्मक एवं परिमाणात्मक मापन में अन्तर

गुणात्मक एवं परिमाणात्मक मापन में अन्तर निम्न आधारों पर किया जा सकता है-

क्र.सं.	परिमाणात्मक मापन	गुणात्मक परिवर्तन
1.	परिमाणात्मक मापन का आधार शून्य (0) होता है।	गुणात्मक मापन का संबंध शून्य से नहीं होता है बल्कि यह एक प्रतिमान या मानक होता है।
2.	परिमाणात्मक मापन में दो या अधिक मापों में तुलना करना सम्भव है।	गुणात्मक मापन में दो विभिन्न मापों की तुलना करना कठिन है।
3.	परिमाणात्मक मापन में शत–प्रतिशत माप सम्भव है। किसी बालक का भार (52 किग्रा) शत–प्रतिशत मापा जा सकता है।	गुणात्मक मापन में शत–प्रतिशत माप सम्भव नहीं है। जैसे बालक की रुचि, अभिरुचि का मापन शत–प्रतिशत सम्भव नहीं है।
4.	परिमाणात्मक मापन की इकाइयाँ पूर्ण निर्दिष्ट एवं निश्चित होती हैं।	गुणात्मक मापन की इकाइयाँ पूर्ण निर्दिष्ट एवं निश्चित नहीं होती हैं।
5.	परिमाणात्मक मापन गुणात्मक मापन की अपेक्षा कम परिवर्तनशील होते हैं।	गुणात्मक मापन परिवर्तनशील होता है।
6.	परिमाणात्मक मापन वस्तुनिष्ठ होते हैं।	गुणात्मक मापन मापन में वस्तुनिष्ठता नहीं पायी जाती है। ये आत्मनिष्ठ होते हैं।
7.	परिमाणात्मक मापन अपने आप में पूर्ण होता है। अतः इसके स्पष्टीकरण के लिए विवेचना या व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है।	गुणात्मक मापन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विवेचना या व्याख्या की आवश्यकता होती है।

1.4.5 उत्तर देने के आधार पर (मौखिक, लिखित और वस्तुनिष्ठ)

बालकों के गुणों की जांच करने के लिए गुणात्मक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है जिनका उत्तर बालक कई प्रकार से दे सकते हैं जैसे बोलकर, लिखकर विभिन्न विकल्पों में से चयन करके और रिक्त स्थान पर आपूर्ति करके। इसी आधार पर ये परीक्षाएं निम्न प्रकार से वर्गीकृत होती हैं– मौखिक परीक्षा, लिखित परीक्षा, चयन एवं आपूर्ति।

टिप्पणी

(अ) मौखिक परीक्षण- कुछ परीक्षाएं ऐसी होती हैं जिनमें पेंसिल-कागज की आवश्यकता नहीं होती है। बालकों को कुछ लिखना नहीं पड़ता है। ये परीक्षा मौखिक होती हैं। प्राचीन समय में मौखिक परीक्षाओं का प्रचलन अधिक था। लेकिन मध्यकाल में आकर जब लिखित परीक्षाओं का प्रचलन बढ़ गया तब मौखिक परीक्षाएं उपेक्षित होकर रह गईं। किन्तु वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिकों ने मौखिक परीक्षाओं के महत्व को पुन: समझा और समुचित मूल्यांकन के लिए लिखित परीक्षाओं के साथ-साथ मौखिक परीक्षाओं के आयोजन का सुझाव दिया। मौखिक परीक्षाओं में परीक्षक और विद्यार्थी आमने-सामने बैठते हैं। इसमें परीक्षक सम्बन्धित विषय पर आयोजित प्रश्न पूछते हैं और विद्यार्थी पूछे गये प्रश्नों के उत्तर मौखिक रूप से देते हैं। विद्यार्थी के ज्ञान को जानने के लिए आरम्भिक कक्षाओं में मौखिक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। इन परीक्षणों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों की तुरन्त अभिव्यक्ति तथा क्रियाशीलता की जांच करना होता है। इन परीक्षाओं के माध्यम से प्रतिक्रिया की तीव्रता की जांच की जाती है। कभी-कभी परीक्षक परीक्षार्थी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसे कम या अधिक अंक देता है। इसलिए इस प्रकार की परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता का अभाव होता है।

मौखिक परीक्षणों के लाभ: मौखिक परीक्षणों के लाभ निम्नलिखित होते हैं-

1. निदानात्मक कार्यों के लिए मौखिक परीक्षाएं अत्यन्त उपयोगी होते हैं।
2. विद्यार्थियों में व्यक्तिगत विकास जाग्रत करती हैं।
3. मौखिक परीक्षाएं उन क्षेत्रों में अधिक उपयोगी होती हैं जहां लिखित परीक्षाएं सम्भव न हो।
4. विचार, अभिव्यक्ति, उच्चारण, भाषण, कौशल आदि कुछ ऐसी विशेषताएं होती हैं जिनका मूल्यांकन केवल मौखिक परीक्षाओं द्वारा ही सम्भव है।
5. मौखिक परीक्षाएं प्रमुख रूप से व्यक्तिगत होती हैं।
6. इन परीक्षाओं से विद्यार्थियों के आत्मविश्वास का सहज ही मापन हो जाता है।
7. दैनिक नियमित शिक्षा के समय मौखिक परीक्षाओं को अत्यन्त सुगमता तथा सरलता से प्रयुक्त किया जा सकता है।
8. मौखिक परीक्षण में कागज, पेंसिल, प्रश्न पत्र आदि की कोई आवश्यकता नहीं होती है।
9. इस प्रकार के परीक्षण बालकों को मंचीय भय से मुक्त करने में सहायता करते हैं।
10. मौखिक परीक्षण से बालकों को यह स्वतन्त्रता मिल जाती है कि यदि प्रश्न समझ न आए तो उनका स्पष्टीकरण तुरंत प्राप्त हो।
11. इन परीक्षणों में बालकों को नकल करने का अवसर नहीं मिलता है।
12. इस परीक्षण के द्वारा कम समय में अधिक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं।

मौखिक परीक्षणों की कमियां : मौखिक परीक्षणों की प्रमुख कमियां निम्नलिखित होती हैं-

1. इसमें विश्वसनीयता और वैधता का अभाव होता है।
2. इस परीक्षण में बालकों का मूल्यांकन वैयक्तिक रूप से होता है। व्यक्तिगत परीक्षा होने के कारण इसमें समय बहुत अधिक लगता है।

3. इसमें पक्षपात की पर्याप्त सम्भावना होती है।
4. यह परीक्षा परीक्षकों के विचारों से प्रभावित होती है।
5. सभी विषय तथा सभी शिक्षा स्तरों पर इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इसमें व्यापकता नहीं होती है।
6. राइटस्टीन के अनुसार, मौखिक परीक्षाएं कितनी भी अच्छी क्यों न हों, किन्तु विद्यार्थियों को अंक प्रदान करने हेतु ये अत्यन्त ही निम्न स्तरीय होती हैं।
7. इसके आधार पर अंतिम, व्यापक तथा समग्र मूल्यांकन सम्भव नहीं हैं।
8. इस प्रकार के परीक्षण के पश्चात बालकों द्वारा दिए गए उत्तर का कोई आलेख उपलब्ध रखना सम्भव नहीं होता है।
9. मौखिक परीक्षण व्यक्तिनिष्ठ होते हैं।
10. मौखिक परीक्षाओं में मौके पर निर्णय लेने की प्रक्रिया मापन का अपूर्ण उपकरण कहलाती है।

(ब) लिखित परीक्षा : लिखित परीक्षण वे होते हैं जिनमें विद्यार्थियों को प्रश्नों के उत्तर लिखित में देने होते हैं। इस प्रकार के परीक्षणों में निबन्धात्मक, लघुउत्तरीय, और वस्तुनिष्ठ आदि किसी भी प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं।

लिखित परीक्षाओं का प्रयोग विस्तृत जानकारी के लिए किया जाता हैं मूल्यांकन के उपकरणों में लिखित कार्यों का विषेश योगदान होता है। प्रत्येक विषय में अभ्सास कार्य प्राय: लिखित रूप में कराया जाता है। इससे बालकों में समस्या को समाधान करने की क्षमता एवं सूझ का विकास होता है। इस प्रकार के परीक्षणों द्वारा विद्यार्थियों के विषय सम्बन्धी ज्ञान का गहनता से अध्ययन सम्भव होता है क्योंकि इसमें कम समय में अधिक प्रश्न किए जा सकते हैं। परीक्षक अपने प्रश्नों को समय पर ही परिवर्तित व परिमार्जित कर सकते हैं। प्रश्नों की रचना एवं उनके उत्तरों के स्वरूप के आधार पर परीक्षणों को निबन्धात्मक, लघुउत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ तीन भागों में विभक्त किया जाता है। शैक्षिक मूल्यांकन के लिए इन्हीं परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

निबन्धात्मक परीक्षण : इन परीक्षणों में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका उत्तर निबन्ध के रूप में देना होता है। इस परीक्षा प्रणाली का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है इसलिए विद्वान इन्हें प्राचीन प्रणाली परीक्षण कहते हैं। कुछ विद्वान परम्परागत परीक्षण कहते हैं। यह प्रणाली मापन करते समय मूल्यांकनकर्त्ता के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। इसी कुछ विद्वान इसे व्यक्तिनिष्ठ परीक्षण मानते हैं। निबन्धात्मक परीक्षण कई प्रकार के होते हैं- जैसे व्याख्यात्मक, वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, आलोचनात्मक, विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, निर्वचनात्मक, परिणामात्मक सारांशात्मक, रेखात्मक प्रश्न आदि।

निबन्धात्मक परीक्षणों के गुण : निबन्धात्मक परीक्षणों में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं–

1. निबन्धात्मक परीक्षणों से बालकों के ज्ञान, रुचि एवं अभिवृत्ति का मापन किया जाता है।
2. निबन्धात्मक परीक्षणों से बालकों की लेखन शैली का मापन आसानी से किया जा सकता है।

टिप्पणी

3. निबन्धात्मक परीक्षणों में प्रश्नों की रचना सरलता से की जा सकती है।
4. इन परीक्षणों के माध्यम से ज्ञान के अनुप्रयोग, भाषा कौशल तथा अभिव्यक्ति शक्ति का सफलतापूर्वक मूल्यांकन किया जा सकता है।
5. निबन्धात्मक परीक्षणों द्वारा बालकों को स्वयं की मानसिक शक्तियों के विकास में प्रोत्साहन तथा मापन शक्तियों का मापन किया जाता है।
6. निबन्धात्मक परीक्षणों से बालक की भावाभिव्यक्ति का बोध होता है।
7. निबन्धात्मक परीक्षण धन तथा समय की दृष्टि से मितव्ययी होते हैं निबन्धात्मक परीक्षण रचनात्मक चिंतन का विकास करते हैं।
8. कुछ पाठ्य वस्तु का मूल्यांकन केवल निबन्धात्मक परीक्षण से ही सम्भव है। निबन्धात्मक परीक्षण से बालक की लेखनकला एवं भाषा शैली का मापन सम्भव होता है।
9. निबन्धात्मक परीक्षण सामूहिक परीक्षण के लिए उत्तम होते हैं।
10. इन प्रश्नों की रचना सरल एवं सुगम होती है।
11. इन परीक्षणों का मानकीकरण करना अपेक्षाकृत सरल होता है।
12. ये परीक्षण रचना, प्रशासन, और मूल्यांकन दृष्टि से व्यावहारिक होते हैं।
13. इन परीक्षणों में वैधता एवं विश्वसनीयता के गुण पाये जाते हैं।
14. निबन्धात्मक परीक्षणों की सहायता से बालकों की तर्कशक्ति का सफलतापूर्वक आकलन किया जा सकता है।
15. निबन्धात्मक परीक्षणों की सहायता से बालकों की सृजनात्मकता का सफलतापूर्वक आकलन किया जा सकता है।
16. निबन्धात्मक परीक्षणों से परिक्षार्थियों की स्वतन्त्र चिन्तन का सफलतापूर्वक आकलन किया जा सकता है।

निबन्धात्मक परीक्षणों के दोष : निबन्धात्मक परीक्षणों में अनेक गुण होने के बावजूद इसमें अनेक दोष हैं-

1. निबन्धात्मक परीक्षणों में प्रतिनिधित्व का गुण कम पाया जाता है।
2. इन परीक्षणों में परीक्षार्थियों को परीक्षा निपुणता का लाभ मिलता है।
3. निबन्धात्मक परीक्षणों में परीक्षा, प्रशासन में भिन्नता का प्रभाव पाया जाता है।
4. ये परीक्षण साधन न होकर साध्य हो जाते हैं।
5. निबन्धात्मक परीक्षणों में वस्तुनिष्ठता का गुण विद्यमान नहीं होता है।
6. निबन्धात्मक परीक्षण चान्स फैक्टर पर निर्भर करते हैं।
7. निबन्धात्मक परीक्षणों में एकरूपता की कमी पाई जाती है।
8. निबन्धात्मक परीक्षण बालकों को रटने के लिए बाध्य करते हैं।
9. निबन्धात्मक परीक्षणों में व्यापकता की कमी होती है।
10. निबन्धात्मक परीक्षणों में आत्मसात फलांकन का गुण पाया जाता है।

11. निबन्धात्मक परीक्षणों के उत्तर के मूल्यांकन से विद्यार्थी अनभिज्ञ होते हैं।
12. इन परीक्षणों की विभेदकारिता संदिग्ध होती है।
13. निबन्धात्मक परीक्षण अनैतिकता को प्रोत्साहन देते हैं।
14. इन परीक्षणों में विश्वसनीयता के गुणों का अभाव होता है।

लघु उत्तरीय परीक्षण : वे परीक्षण जिनमें छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते हैं इन प्रश्नों के उत्तर 100 शब्दों या इससे कम में दिये जाते है, लघु उत्तरीय परीक्षण कहलाते हैं। इनमें दो प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं-

- लघु उत्तरीय प्रश्न
- अति लघु उत्तरीय प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न : इन प्रश्नों के उत्तर निबन्धात्मक प्रश्नों की तुलना में बहुत कम शब्दों मे देने होते हैं। इनके उत्तर 50-100 शब्दों के बीच हो सकते हैं। जैसे–

- गद्य एवं पद्य में क्या अन्तर है?
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से क्या लाभ होता है?
- व्यापक एवं सूक्ष्म अर्थशास्त्र में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

अति लघु उत्तरीय प्रश्न : इन प्रश्नों के उत्तर लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तर की तुलना में और भी छोटे होते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक दो लाइनों के ही होते हैं। उदाहरण के लिए-

- उपमा अलंकार का उदाहरण दीजिए।
- तुलसीदास की माता का नाम बताइए।
- बक्सर का युद्ध कब हुआ था?
- हल्दी घाटी का युद्ध किस-किस के बीच हुआ?

लघु उत्तरीय परीक्षणों के गुण अथवा विशेषताएँ : लघु उत्तरीय परीक्षण कई अर्थों में निबन्धात्मक परीक्षणों से अच्छे माने जाते हैं। इनमें निम्नलिखित गुण होते हैं-

1. लघु उत्तरीय प्रश्न निबान्धात्मक प्रश्नों की तुलना में बहुत छोटे होते हैं। जितने समय में एक लघु प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है उतने समय में 5-6 लघु प्रश्नों तथा 8-10 अति लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दिए जा सकते हैं। इस प्रकार इन प्रश्नों के आधार पर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम से प्रश्न पूछे जा सकते हैं।
2. इनका प्रशासन ठीक निबन्धात्मक परीक्षणों की भांति किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में जो व्यक्ति निबन्धात्मक परीक्षणों का सम्पादन करते हैं वे इन परीक्षणों का भी सरलता से कर सकते हैं।
3. इनमें लगभग पूरे पाठ्यक्रम पर प्रश्न पूछे जा सकते हैं इसलिए ये परीक्षण निबन्धात्मक परीक्षणों की अपेक्षा अधिक व्यापक होते हैं। और उसी के अनुरूप ये अधिक विश्वसनीय होते हैं।
4. इन परीक्षणों में पूरे पाठ्यक्रम से प्रश्न पूछे जाते हैं इसलिए विद्यार्थियों को पूरे पाठ्यक्रम को पढ़ना होता है समझना होता है। जो बालक जितना अधिक समझ

पाते हैं उनका रैंक उतना ऊँचा होता है। इस प्रकार इन परीक्षणों में विभेदीकरण का गुण भी पाया जाता है।

5. इन परीक्षणों के माध्यम से विद्यार्थी के ज्ञानात्मक पक्ष का ही मापन हो पाता है। परन्तु ये बहुत ही व्यापक रूप से होता है कि ये निबन्धात्मक परीक्षणों से अधिक वैध होते हैं।
6. इन प्रश्नों के उत्तर प्राय: निश्चित होते हैं तब इनका मापन वस्तुनिष्ठ होना चाहिए।

लघु उत्तरीय परीक्षणों के दोष अथवा कमियां : लघु उत्तरीय परीक्षण कई अर्थों में निबन्धात्मक परीक्षणों से अच्छे माने जाते हैं। इन परीक्षणों का निर्माण निबन्धात्मक परीक्षणों के दोषों को दूर करने के लिए किया जाता है। ये बहुत कुछ दोष दूर करने में सफल हुए लेकिन फिर भी इनकी भी कुछ कमियां हैं जो निम्नलिखित हैं-

1. इन परीक्षणों से केवल तथ्यों की जानकारी मिल पाती है कौशल या अभिव्यक्ति की नहीं। इनके उत्तर देने में बालकों को पूरी स्वतन्त्रता नहीं होती है।
2. इन परीक्षणों में उत्तर संक्षिप्त होते हैं इसलिए इनके उत्तरों के द्वारा बालक की भाषा-शैली एवं अभिव्यक्ति शक्ति का मापन उतने अच्छे ढंग से नहीं किया जा सकता है जितना कि निबन्धात्मक परीक्षणों से।
3. ये परीक्षण प्राय: सूचना-प्रधान होते हैं। इनका उत्तर देने में बालकों को न तो तर्क प्रस्तुत करने होते हैं और न ही अपने मत। इसलिए इन परीक्षणों के द्वारा बालकों की तर्क एवं निर्णय आदि शक्तियों का मापन नहीं किया जा सकता है।
4. इन परीक्षणों में तथ्यों पर बल रहता है। इनके द्वारा मुख्य रूप से ज्ञान की परख की जाती है अत: बालकों में रटने की प्रवृत्ति पायी जाती है।
5. इन परीक्षणों में समस्यात्मक और आलोचनात्मक प्रश्न नहीं पूछे जा सकते है अत: इनसे बालकों की दूरदृष्टि का मापन नहीं किया जा सकता है।

(स) वस्तुनिष्ठ परीक्षण : निबन्धात्मक परीक्षणों के दोषों को दूर करने के लिए वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का निर्माण किया गया। वस्तुनिष्ठ परीक्षण बीसवीं शताब्दी में अमेरिका की देन हैं इन्हें नवीन परीक्षण भी कहा जाता है। इन परीक्षणों में सभी प्रश्नों के उत्तर निश्चित होने और मूल्यांकन विधि निश्चित होने के कारण ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहलाते हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के गुण या विशेषताएं : वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में एक अच्छे परीक्षण के सभी गुण विद्यमान होते हैं। वस्तुनिष्ठ परीक्षण में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं-

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षण में फलांकन अधिक वस्तुनिष्ठ होते हैं।
2. इन परीक्षणों को हल करने में छात्रों में रुचि की प्रचुरता पायी जाती है।
3. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में व्यापकता का गुण विद्यमान होता है।
4. इन परीक्षणों में विश्वसनीयता के गुण पाये जाते हैं।
5. इन परीक्षणों में उच्च वैधता पाई जाती है।
6. इन परीक्षणों का मानकीकरण करना अपेक्षाकृत सरल होता है।
7. इन परीक्षणों की रचना में कम व्यय होता है।

8. इन परीक्षणों द्वारा उत्तरों के रूप में गप-शप लिखकर उत्तर देना सम्भव नहीं होता है।
9. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में बालकों रटने पर जोर नहीं दिया जाता है।
10. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की रचना, परीक्षण के प्रशासन एवं मूल्यांकन की दृष्टि से व्यवहारिक होते हैं।
11. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में व्यक्तिगत पक्षपात की सम्भावना कम ही रहती है।
12. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों द्वारा पारस्परिक जांच सम्भव है। अर्थात् परीक्षार्थी परीक्षण के उत्तरों को एक-दूसरे से मिलाकर तुलना करके उत्तरों की जांच कर सकता है।
13. इन परीक्षणों में प्रश्नों की संख्या अधिक होने के कारण न्यादर्श अधिक प्रतिनिधिकारी होता है।
14. इन परीक्षणों का फलांकन बहुत कम समय में ही हो जाता है।
15. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में गति एवं सुन्दर लेख अंकन का पर्याप्त साधन नहीं होता है।
16. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों द्वारा बालकों का वर्गीकरण सही ढंग से किया जाता है। इनमें विभेदकारिता का गुण पाया जाता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के दोष : वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं-

1. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में नकल की सम्भावना अधिक होती है।
2. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों में अनुमान की सम्भावना अधिक होती है।
3. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के माध्यम से बालकों की कमजोरियों का पता लगाना सम्भव नहीं होता है।
4. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के प्रयोग में शिक्षक के कार्य का बोझ बढ़ जाता है।
5. प्रायः वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का कोई नैदानिक महत्व नहीं होता है।
6. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के द्वारा मूलतः स्मरण शक्ति का मापन किया जाता है।
7. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों द्वारा मूलरूप से ज्ञान पक्ष का मापन किया जाता है।
8. इन परीक्षणों में असत्य कथन देने से भविष्य में हानि होती है क्योंकि कालान्तर में गलत उत्तर देने को सही मान लेते हैं।
9. वस्तुनिष्ठ परीक्षणों द्वारा विद्यार्थियों को अपने विचारों को संगठित करने का अवसर नहीं मिलता।

1.4.6 चयन और पूर्ति

निबन्धात्मक परीक्षणों के दोषों को दूर करने के लिए लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। वस्तुनिष्ठ परीक्षण इस युग की देन हैं इसलिए इन्हें नवीन परीक्षण भी कहा जाता है। इन परीक्षणों में प्रश्न अनेक प्रकार से पूछे जाते हैं जैसे वर्गीकृत प्रश्न, सत्य-असत्य प्रश्न, बहुविकल्पीय प्रश्न, समरूपी प्रश्न, चयन और पूर्ति प्रश्न तथा अनुपात पूरक प्रश्न मुख्य होते हैं-

- **वाक्य पूर्ति प्रश्न/रिक्त स्थान भरो**- इन प्रश्नों में वाक्यों में एक या दो स्थान रिक्त छोड़ दिए जाते हैं बच्चों को अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर उन्हें पूरा करना होता है, जैसे-

साकेत महाकाव्य के रचयिता .... हैं।

भूषण .... रस के कवि हैं।

महात्मा गांधी का जन्म .... हुआ था।

- **वर्गीकृत प्रश्न :** इन प्रश्नों मे किसी एक वर्ग की वस्तुओं या व्यक्तियों के नामों अथवा आविष्कारों को लिख दिया जाता है। तथा कोई एक अलग नाम अथवा आविष्कार लिख दिया जाता है, बालकों को उस अलग को पहचान कर लिखना होता है, जैसे–

नीला, पीला, काला, आम, सफेद .... ( )

सूरदास, तुलसीदास, नेहरू, प्रसाद .... ( )

- **सत्य-असत्य :** इस प्रकार के प्रश्नों में कुछ सत्य और कुछ असत्य कथन लिखे होते हैं बालकों को पहचान कर उन्हें सही व गलत का निशान लगाकर उत्तर देना होता है जैसे-

रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास हैं। ( )

कवितावली सूरदास जी की रचना है। ( )

- **बहुविकल्पीय प्रश्न :** इन प्रश्नों के उत्तर के लिए बालकों के पास 3-4 विकल्प होते हैं उनमें कोई एक सही होता है। बालक को उसे चुन कर लिखना होता है, जैसे-

प्रसाद मूलरूप से हैं-

(1) कवि (2) नाटककार (3) उपन्यासकार (4) पंचवटी

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे-

(1) महात्मा गांधी (2) जवाहर लाल नेहरू (3) राजेन्द्र प्रसाद (4) इन्दिरा गांधी

- **चयन एवं पूर्ति प्रश्न :** ये प्रश्न बहुविकल्पीय एवं पूर्ति प्रश्नों के योग से बनाए जाते हैं, जैसे–

रामचरितमानस के रचयिता .... हैं। (सूरदास, बिहारी तुलसीदास)

लखनऊ .... नदी के किनारे बसा है। (यमुना, गोमती, गंगा)

अर्थशास्त्र में धन सम्बन्धी परिभाषा .... ने दी है। (स्मिथ, मार्शल, रॉबिन्स)

1.4.7 निर्वचन की प्रकृति के आधार पर (मानक संदर्भित परीक्षण और निकष संदर्भित परीक्षण)

परीक्षणों के मापन की प्रकृति के आधार पर अमेरिकी मनोवैज्ञानिक राबर्ट ग्लेसर ने मापन को दो वर्गों में वर्गीकृत किया– (1) मानक सन्दर्भित परीक्षण तथा (2) निकष सन्दर्भित परीक्षण। मानक सन्दर्भित परीक्षण द्वारा किसी समूह में किसी विद्यार्थी या किसी विषय में योग्यता की केवल सापेक्षिक स्थिति का ज्ञान होता है, जबकि निकष सन्दर्भित परीक्षण के द्वारा किसी विद्यार्थी की किसी विषय में योग्यता की वास्तविक स्थिति का ज्ञान होता है।

(अ) मानक सन्दर्भित परीक्षण (Norm Referenced Test) : परम्परागत तरीके से बनाए गए प्रमाणिक निष्पत्ति परीक्षण अथवा शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षणों को मानक

सन्दर्भित परीक्षण कहते हैं। मानक सन्दर्भित परीक्षण में केवल वे परीक्षण होते हैं जो केवल मानक सन्दर्भित मापन करते हैं। इनका लक्ष्य पाठ्यक्रम संबंधित उपलब्धियों का मापन करना होता है और विद्यार्थी की उपलब्धि स्तर का मूल्यांकन समूह में स्तरीकरण (मानक) के रूप में किया जाता है। ये अनुदेशात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं तथा यह भी बताते हैं कि विद्यार्थी के सीखने में कहां तक कमजोरी रही। अर्थात् वे इस तथ्य का मापन करते हैं कि किसी समूह में किसी बालक की किसी विषय में योग्यता की दृष्टि से सापेक्षिक स्थिति क्या है? निबन्धात्मक परीक्षण जिनमें 10-12 प्रश्न पूछकर उनमें से परीक्षार्थी को 5-6 प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों का सम्पादन एवं मूल्यांकन करना काफी सरल होता है। इस प्रकार के परीक्षण में विषय से संबंधित सम्पूर्ण सामग्री पर प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं इसलिए इनसे विद्यार्थी के किसी भी विषय में सम्पूर्ण ज्ञान का मापन नहीं किया जा सकता है। इस परीक्षण में विद्यार्थियों की उपलब्धि तथा कौशल की व्याख्या किसी समूह विशेष के सन्दर्भ में करनी होती है। इन परीक्षणों की रचना तथा उपयोग मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर किया जाता है।

मानक सन्दर्भित परीक्षणों की विशेषताएं : मानक सन्दर्भित परीक्षणों की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं:-

1. इनका प्रयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि अनुदेशन तथा शैक्षिक के उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हो सकी है।
2. इनकी सहायता से विभिन्न विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की गतिविधियों में वर्गीकृत करके उनका ठीक प्रकार से मूल्यांकन किया जा सकता है।
3. इन परीक्षणों में पद विश्लेषण में पद कठिनाई तथा भिन्नता मान के अतिरिक्त उद्देश्यों को भी महत्व दिया जाता है।
4. इन परीक्षणों में विद्यार्थियों के उत्तरों के अंकन से यह पता चलता है कि उद्देश्यों की प्राप्ति में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है।
5. मानक सन्दर्भित परीक्षणों के परिणाम विद्यार्थियों की अपेक्षा शिक्षकों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं, जिनसे वह अपने अनुदेशन की प्रक्रिया में सुधार लाता है। ये पुनर्बलन का कार्य भी करते हैं।

(ब) निकष सन्दर्भित परीक्षण (Criterion Referenced Test) : निकष सन्दर्भित परीक्षण वे परीक्षण होते हैं जो निकष के सन्दर्भ में मापन करते हैं। अर्थात् ये किसी समूह में किसी विद्यार्थी की किसी विषय में योग्यता की वास्तविक स्थिति का मापन करते हैं। चूंकि ग्लेसर महोदय ने निकष का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है जिसके परिणामस्वरूप विद्वान अपने-अपने दृष्टिकोण से निकष का अर्थ स्पष्ट करते हैं। कुछ विद्वान निकष का अर्थ पाठ्यवस्तु से, कुछ विद्वान इसका अर्थ शैक्षिक के लक्ष्यों से लगाते हैं। इसलिए निकष सन्दर्भित परीक्षणों को पाठ्य वस्तु सन्दर्भित परीक्षण अथवा योग्यता सन्दर्भित परीक्षण और लक्ष्य सन्दर्भित परीक्षण के नाम से भी जाना जाता है। इन परीक्षणों द्वारा ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों का मापन होता है। यदि वस्तुनिष्ठता को ध्यान में रखा जाए तो इनसे विद्यार्थियों के किसी विषय में सम्पूर्ण ज्ञान का मापन किया जा सकता है। इस प्रकार की परीक्षणों में निबन्धात्मक, लघुउत्तरीय, अति लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जाते हैं।

निकष सन्दर्भित एवं मानक सन्दर्भित परीक्षणों में अन्तर (Difference between Criterion Referenced and Norm Referenced Test) : निकष सन्दर्भित एवं मानक सन्दर्भित परीक्षणों में अन्तर निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है-

टिप्पणी

1. निकष सन्दर्भित परीक्षण में विद्यार्थी द्वारा अर्जित विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्यों का पता चलता है, जबकि मानक सन्दर्भित परीक्षणों में विद्यार्थी द्वारा अर्जित कुल ज्ञान का पता चलता है।
2. निकष सन्दर्भित परीक्षण से यह पता चलता है कि बालक द्वारा विशिष्ट शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति कहां तक हुई है, जबकि मानक सन्दर्भित परीक्षण से उन प्रश्नों की संख्या ज्ञात होती है, जिनका विद्यार्थियों ने सही हल दिया है।
3. निकष सन्दर्भित परीक्षण में परीक्षण के पद कुछ विशिष्ट उद्देश्यों तक सीमित होते हैं, जबकि मानक सन्दर्भित में इनका क्षेत्र काफी विस्तृत होता है।
4. निकष सन्दर्भित परीक्षण द्वारा विद्यार्थियों के सीखने की मात्रा सुनिश्चित की जाती है, जबकि सीखने की सफलता का मूल्यांकन मान सन्दर्भित परीक्षणों के माध्यम से किया जाता है।
5. किसी विद्यार्थी ने कितना ज्ञान अर्जित किया है इसका ज्ञान निकष सन्दर्भित परीक्षण द्वारा किया जाता है, जबकि किसी समूह के सन्दर्भ में बालक विशेष ने अन्य बालकों की अपेक्षा कितना ज्ञान अर्जित किया है इसका मूल्यांकन मानक सन्दर्भित परीक्षणों द्वारा किया जाता है।

1.4.8 संदर्भ के आधार पर (आंतरिक और बाह्य)

संदर्भ के आधार पर आकलन को दो वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है-

(अ) आन्तरिक आकलन : विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में आन्तरिक मूल्यांकन की प्रणाली प्रचीन काल से चली आ रही है। यह वह मूल्यांकन है जिसमें शैक्षिक उपलब्धि का आकलन विद्यालय एवं महाविद्यालयों में पढ़ाने वाले कक्षा/विषय अध्यापकों द्वारा किया जाता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक शैक्षिक उपलब्धि को मापने के लिए साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाओं का आयोजन करते हैं। जब शिक्षक विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन निरन्तरता के आधार पर करता है तब इस प्रणाली को आन्तरिक परीक्षा तथा सतत् मूल्यांकन कहते हैं। इस आन्तरिक परीक्षा प्रणाली में प्रश्न पत्रों की कितन गोपनीयता होगी तथा बालकों के शैक्षिक उपलब्धि का मूल्यांकन कितना विश्वसनीय एवं वैध है यह परीक्षक की ईमानदारी, उत्तरदायित्व, चरित्र एवं विश्वास पर निर्भर करता है। आधुनिक युग में आन्तरिक परीक्षा की विश्वसनीयता, वैधता, उपयुक्तता एवं उपयोगिता गुणों एवं अवगुणों की सीमा के बीच में घूमती रहती है।

कक्षा अध्यापक ही अपने विद्यार्थी का वास्तविक एवं विश्वसनीय मूल्यांकन कर सकता है। बालक का वास्तविक एवं विश्वसनीय मूल्यांकन तब ही किया जा सकता है जब मूल्यांकन आन्तरिक परीक्षा एवं सतत् मूल्यांकन के साथ-साथ बाह्य परीक्षा प्रणाली के द्वारा किया जाए। दोनों मूल्यांकन परीक्षाओं द्वारा ही विश्वसनीय एवं वैध मूल्यांकन किया जा सकता है।

टिप्पणी

आन्तरिक परीक्षा और सतत् मूल्यांकन प्रणाली द्वारा मूल्यांकन जहां एक ओर कक्षा अध्यापक की ईमानदारी, उत्तरदायित्व चरित्र एवं विश्वास पर निर्भर करता है वहीं दूसरी तरफ बाह्य परीक्षा प्रणाली भी बाह्य परीक्षक की ईमानदारी,चरित्र, उत्तरदायित्व और विश्वास पर निर्भर करती है।

विश्वद्यिालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ने आन्तरिक परीक्षा एवं सतत् मूल्यांकन प्रणाली में सुधार के लिए यह प्रस्तावित किया है कि प्रत्येक बालक की प्रारम्भिक कक्षा में ही संकलित गणना होनी अति आवश्यक है। इस संकलित गणना के अन्तर्गत गणना कार्ड में बालक के समस्त गुणों एवं अवगुणों को समय-समय पर अंकित किया जाना चाहिए। वास्तव में यह संकलित गणना कार्ड बालक के गुणों एवं अवगुणों का एक रिकार्ड ही नहीं होगा अपितु यह बालकों के गुण-अवगुणों का दर्पण भी होगा।

आन्तरिक आकलन के गुण : आंतरिक मूल्यांकन के कुछ प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं-

1. आन्तरिक एवं सतत् मूल्यांकन का कार्यक्रम पूरे शैक्षिक सत्र चलता है इसलिए संबंधित बालक पूरे सत्र में शैक्षिक प्रक्रिया में संलग्न रहता है।
2. इस मूल्यांकन प्रणाली के द्वारा बालक के शारीरिक गुणों, मानसिक गुणों नैतिक एवं सांस्कृतिक गुणों का भी मूल्यांकन हो जाता है। इस मूल्यांकन प्रणाली में मूल्यांकन करने वाला शिक्षक संकलित कार्ड बनाता है इससे बालकों में अनुशासन बढ़ता है अनुशासनहीनता पैदा नहीं होती है।
3. आन्तरिक सतत् मूल्यांकन व्यय की दृष्टि से बहुत सस्ते होते हैं।
4. यह मूल्यांकन कक्षा अध्यापक द्वारा किया जाता है। अध्यापक बालक की शैक्षिक रुचियों, शैक्षिक योग्यताओं एवं व्यक्तित्व के गुणों से भली प्रकार परिचित होता है। अत: वह बालक का शैक्षिक मूल्यांकन वास्तविक एवं विश्वसनीय तरीके से करता है।
5. कक्षा अध्यापक इस पद्धति से बालक का शैक्षिक मूल्यांकन तीन घंटे में न करके समय-समय पर पूरे शिक्षा सत्र करता रहता है।
6. इस विधि द्वारा जब एक अध्यापक विद्यार्थियों की शैक्षिक योग्यताओं का मूल्यांकन करता है तो उसे सिर्फ बालकों की शैक्षिक योग्यताओं का ज्ञान नहीं होता है अपितु उसे बालक की कमजोरियों एवं त्रुटियों की भी जानकारी हो जाती है और इस ज्ञान के आधार पर मूल्यांकन करने वाले अध्यापक बालकों की कमजोरियों को दूर करने में सफल होते हैं।
7. सतत् मूल्यांकन करने वाले शिक्षकों को बालकों की शैक्षिक असफलताओं व कमजोरियों का जब पता चल जाता है तो वे अपनी शैक्षिक प्रविधि में परिवर्तन करके वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।
8. आन्तरिक मूल्यांकन और सतत् मूल्यांकन प्रणाली में मूल्यांकनकर्त्ता पर समय विशेष का बंधन नहीं होता है।
9. आन्तरिक सतत् मूल्यांकन के द्वारा बालकों को अपने बारे में पूर्ण जानकारी मिल जाती है अथवा उन्हें अपनी योग्यताओं एवं कमजोरियों का पता चलता रहता है जो उन्हें और अच्छा करने के लिए प्रेरणा का कार्य करते हैं।

आन्तरिक आकलन के दोष : आन्तरिक प्रणाली द्वारा मूल्यांकन करने के दोष इस प्रकार हैं-

1. आन्तरिक प्रणाली का एक महत्वपूर्ण दोष यह है कि कक्षा अध्यापक निरन्तर बालकों के सम्पर्क में रहता है इसलिए उसमें बालकों के प्रति एक विशिष्ट धारणा रहती है यह धारणा प्राय: मूल्यांकन को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। और ऐसे में मूल्यांकन विश्वसनीय नहीं रह पाता है।
2. आन्तरिक मूल्यांकन के न कोई निश्चित नियम होते हैं और न ही निश्चित विधि होती है। सभी शिक्षक अपनी इच्छानुसार और मनमाने ढंग से मूल्यांकन का कार्य करते हैं इसलिए इसमें विश्वसनीयता संदेहपूर्ण होती है।
3. नियमों एवं प्रविधियों के अभाव में आन्तरिक मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण होता है।
4. पूरे शैक्षिक सत्र में शिक्षक को शैक्षिक कार्य के साथ-साथ मूल्यांकन कार्य में व्यस्त रहना पड़ता है। इससे उस पर कार्य का बोझ अधिक रहता है।
5. आन्तरिक मूल्यांकन में बालकों को जो अंक या ग्रेड मिलते हैं वे बाह्य परीक्षक द्वारा दिए गये अंक या ग्रेड से मेल नहीं खाते हैं और दोनों में अन्तर अधिक होता है तो मूल्यांकन की विश्वसनीयता पर प्रश्न खड़ा हो जाता है।
6. इस प्रणाली का एक दोष यह भी है कि शिक्षकों को मनमाने ढंग से अंक प्रदान करने की छूट होती है। इस कारण वे कभी-कभी अच्छे बालकों को भी कम अंक प्रदान करते हैं, जिनसे वे प्रभावित होते हैं। इसके विपरीत कभी-कभी सामान्य बालकों को अधिक अंक प्रदान कर दिए जाते हैं।

(ब) बाह्य आकलन : कक्षा में पढ़ाने वाला शिक्षक कक्षा के विद्यार्थियों के सर्वाधिक सम्पर्क में रहता है। वह बालकों की योग्यताओं एवं अभिक्षमताओं से अच्छी प्रकार से परिचित होता है उसे बालकों की रुचियों एवं गुणों का भी ज्ञान होता है। इसी लिए परिचित शिक्षक ही बालकों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन विश्वसनीय और वैध ढंग से कर सकता है। जहां एक ओर परिचित शिक्षक बालकों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन बहुत अच्छे तरीके से कर सकता है वहीं इस बात की प्रबल सम्भावना रहती है कि जब बालक शिक्षक से परिचित होता है तो उनमें घनिष्ठ संबंध भी स्थापित हो सकते हैं। यदि शिक्षक इन घनिष्ठ सम्बन्ध वाले बालकों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन करता है तो मापन न तो वस्तुनिष्ठ होगा और न ही वैध होगा और न ही विश्वसनीय होगा। इस प्रकार मूल्यांकन पर परिचितता एवं घनिष्ठता के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है। इसलिए जरूरी हो जाता है कि बालकों की उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन अपरिचित शिक्षकों या परीक्षकों द्वारा करवाया जाता रहा है। ऐसा माना जाता रहा है कि इस प्रकार के परीक्षकों द्वारा किया गया मूल्यांकन पूर्णरूप से पक्षपात रहित होता है। बाह्य परीक्षकों द्वारा किया गया मूल्यांकन न केवल निरपेक्ष होता है अपितु इसमें एकरूपता रहने की भी पूरी सम्भावना रहती है। अत: शैक्षिक उपलब्धि में विश्वसनीयता एवं उपयोगिता बनाये रखने के लिए उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन बाह्य परीक्षकों द्वारा करवाया जाता है। बाह्य परीक्षा प्रणाली दो प्रकार की होती है।

(1) इसमें उत्तर-पुस्तिकाओं को मूल्यांकन के लिए बाह्य परीक्षकों के पास भेजा जाता है।

(2) बालकों की प्रयोगात्मक परीक्षा के लिए बाह्य परीक्षकों को बुलाया जाता है।

टिप्पणी

बाह्य आकलन की कठिनाइयां एवं उपाय : बाह्य परीक्षकों से आकलन कराने में कुछ दोष पाए जाते हैं जो निम्न प्रकार से हैं-

1. जब बाह्य परीक्षक के पास उत्तर-पुस्तिकाओं को मूल्यांकन के लिए भेजा जाता है तो कभी-कभी वह अधिक व्यस्तता के कारण या अन्य कई कारणों से उत्तर-पुस्तिकाओं को अपने घर पर रख लेता है कई बार एक बाह्य परीक्षक के पास कई बोर्ड या विश्वविद्यालय की उत्तर-पुस्तिकाएं अंकन के लिए आती हैं। इस लिए समय अधिक लगता है।

   यदि कोई बाह्य परीक्षक समय अधिक लगाता है तो ऐसे परीक्षकों उत्तर-पुस्तिकाएं जांचने के लिए नहीं दी जानी चाहिए। अथवा अथवा उत्तर-पुस्तिका देरी से लौटाने पर दंड स्वरूप उत्तर-पुस्तिकाओं के पारिश्रमिक में से उपयुक्त कटौती की जानी चाहिए ताकि बाह्य परीक्षक उत्तर पुस्तिकाओं को मूल्यांकन में विलम्ब न करें।

2. बाह्य परीक्षकों के मूल्यांकन में एक दोष यह भी देखा गया है कि बाह्य परीक्षक कम समय में अधिक से अधिक उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करते हैं। ऐसे बाह्य परीक्षकों का मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण और अविश्वसनीय होता है। ये बाह्य परीक्षक अधिक से अधिक उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करके अधिक से अधिक पारिश्रमिक पाना चाहते हैं।

   इस दोष को दूर करने के लिए पुनर्मूल्यांकन की व्यवस्था की जा सकती है। यदि पुनर्मूल्यांकन में प्राप्त प्राप्तांक और बाह्य परीक्षकों द्वारा दिए गये प्राप्तांकों में अन्तर होता है तो ऐसे बाह्य परीक्षक को दंडित करने का प्रावधान किया जाना चाहिए। ये दंड दो प्रकार के हो सकते हैं-

   (1) पारिश्रमिक में से दंडस्वरूप कुछ धनराशि काटी जा सकती है।

   (2) भविष्य में उसे बाह्य परीक्षक के पद से वंचित किया जा सकता है।

3. बाह्य परीक्षकों के संबंध में ऐसा भी देखा गया है कि वे जिन बालकों की उत्तर-पुस्तिका को मूल्यांकन करते हैं उन बालकों अथवा उनके अभिभावकों से सम्पर्क साध लेते हैं इसका उद्देश्य कुछ धनराशि लेकर अंक प्रदान करना होता है।

   इस दोष को दूर करने के लिए परीक्षक के पास उत्तर-पुस्तिक भेजने को अति गोपनीय रखना चाहिए।

4. प्रायः बाह्य परीक्षक उत्तर-पुस्तिकाओं का मूल्यांकन मनमाने ढंग से करते हैं वे मूल्यांकन करते समय अपने विशिष्ट उत्तरदायित्वों को भूल जाते हैं।

   इस दोष को दूर करने के लिए बाह्य परीक्षा में उन्हीं अध्यापकों को आमन्त्रित करना चाहिए जो ईमानदार और वरिष्ठ हों।

5. बाह्य परीक्षक जब दूसरे केन्द्रों पर जाते हैं और इन केन्द्रों पर परीक्षा प्रशासन के कड़े नियम नहीं होते हैं और फलांकन के कोई नियम नहीं होते हैं। तब ये बाह्य परीक्षक मनमानी करते हैं।

   बाह्य परीक्षकों की इस मनमानी को नियम बनाकर और परीक्षा को प्रमापीकृत करके सही और विश्वसनीय मूल्यांकन किया जा सकता है।

6. बाह्य परीक्षा प्रणाली के दोषों को देखते हुए सुधार का एक उपाय यह भी है कि बाह्य परीक्षाओं का आयोजन कम से कम होना चाहिए जिससे इसके दुष्प्रभावों को

कम किया जा सके या दूर किया जा सके। बाह्य परीक्षा में प्राय: यह देखा गया है कि बाह्य परीक्षा निबन्धात्मक प्रश्नों के आधार पर आयोजित की जाती है, तब बालक पूरे पाठ्यक्रम का गहनता से अध्ययन नहीं कर पाते हैं ये पाठ्यक्रम से केवल चयनित अध्ययन सामग्री का अध्ययन करते हैं। इससे बालकों की शैक्षिक योग्यता बढ़ने के बजाय सीमित रह जाती है।

इस दोष को दूर करने का सरल उपाय यह है कि निबन्धात्मक प्रश्नों के स्थान पर वस्तुनिष्ठ प्रश्नों और लघु उत्तरीय प्रश्नों को प्रश्न पत्र में प्रयोग किया जाना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

7. परिमाणात्मक मापन का आधार क्या होता है?
   (क) योगात्मक (ख) शून्य
   (ग) धनात्मक (घ) ऋणात्मक
8. "उपलब्धि परीक्षण किसी एक विषय या विषयों में बालक के द्वारा अर्जित ज्ञान, सूझ–बूझ तथा कौशल का मापन करते हैं।" उपर्युक्त कथन किस मनोवैज्ञानिक का है?
   (क) फ्रीमैन (ख) गैरिसन
   (ग) थार्नडाइक (घ) टेलर
9. विचार, अभिव्यक्ति, उच्चारण, भाषण, कौशल आदि का मूल्यांकन किस परीक्षा द्वारा किया जाता है?
   (क) वस्तुनिष्ठ परीक्षा (ख) मौखिक परीक्षा
   (ग) लिखित परीक्षा (घ) प्रयोगात्मक परीक्षा

1.5 सतत् और व्यापक मूल्यांकन

अधिगम एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। शैक्षिक अधिगम एक सतत् प्रक्रिया है अत: आकलन एवं मूल्यांकन भी एक सतत् प्रक्रिया होनी चाहिए। आकलन तथा मूल्यांकन शैक्षिक-अधिगम प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग हैं। इनका उद्देश्य केवल छात्रों को ग्रेड तथा प्रमाणपत्र देना नहीं है, बल्कि शैक्षिक-अधिगम की प्रक्रिया तथा अधिगम संसाधनों को बेहतर बनाना है। मूल्यांकन केवल बच्चों की प्रगति एवं उपलब्धि ही नहीं मापता बल्कि शैक्षिक-अधिगम सामग्री एवं विधियों जो कि पाठयचर्या की संपादन में प्रयोग की जाती है उनके प्रभाव को भी जांचता है।। यह पाठय्चर्या का एक अभिन्न घटक है इसका प्रमुख उद्देश्य प्रभावशाली निष्पादन हो तथा शैक्षिक-अधिगम प्रक्रिया में सुधार हो। इसलिए यह विद्यार्थियों के लिए ही नहीं बल्कि शिक्षकों के लिए भी महत्वपूर्ण है।

आकलन की भूमिका केवल विषयवस्तु ज्ञान अथवा छात्रों की उपलब्धि को आंकना नहीं है बल्कि उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को आंकना है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.

सी.एफ., 2005) ने यह स्पष्ट किया है कि विद्यालयी पाठ्यचर्या के विषयवस्तु क्षेत्र के मौलिक ज्ञान के आकलन के अतिरिक्त, विद्यार्थी के अन्य क्षेत्रों के प्रदर्शन को आंकना, जैसे कि कला तथा शिल्प शिक्षा, शारीरिक तथा शिक्षा आदि में भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। इसके लिए हमारी आकलन व्यवस्था को सतत् एवं व्यापक होना चाहिए। सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन योजना विद्यार्थियों के विद्यालय आधारिक मूल्यांकन की ओर इशारा करती है। जिसमें विद्यार्थी के सभी पक्ष आ जाते हैं।

टिप्पणी

1.5.1 सतत् और व्यापक मूल्यांकन की अवधारणा, प्रकृति, उद्देश्य और कार्य

जब मूल्यांकन शैक्षिक क्रिया का अभिन्न अंग बनकर उसे नियमित रूप से दिशा एवं गतिशीलता प्रदान करता है तो उसे सतत् मूल्यांकन का नाम दिया जाता है। सतत् से तात्पर्य निरन्तर से है। इसका अर्थ है कि आकलन को शैक्षिक अधिगम प्रक्रिया में एक नियमित गतिविधि बनाना। आकलन की पारम्परिक व्यवस्था में विद्यार्थी के विषय वस्तु के ज्ञान को आंकने के लिए वर्ष भर में एक बार या दो बार परीक्षाएं ली जाती हैं तथा उनके आधार पर विद्यार्थियों को अंक अथवा ग्रेड प्रदान किए जाते हैं। जो उन्हें अपने ज्ञान को बढ़ाने में शायद ही कोई सहायता करते हों। सतत् आकलन में विद्यार्थियों के प्रदर्शन को औपचारिक तथा अनौपचारिक तरीके से आंका जाता है। यह मूल्यांकन शैक्षिक के साथ-साथ चलता रहता है। विद्यार्थियों के आकलन के लिए शिक्षक अवलोकन, साक्षात्कार, स्व एवं सहपाठी आवलोकन समूह कार्य परियोजना आदि विभिन्न तरीकों का प्रयोग करते हैं। शैक्षिक अधिगम का आकलन करने के लिए त्रैमासिक, छमाही और वार्षिक परीक्षाओं को आयोजन किया जाता है। सतत आकलन का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को उनके अध्ययन में नियमित रूप से शामिल करना तथा उन्हें अधिगम में अपनी प्रगति को समझने में सहायता करना होता है। शिक्षा के क्षेत्र मे सतत् का अर्थ अधिगम की कमियों का नियमित परीक्षण एवं विश्लेषण भी है तथा सुधारात्मक उपायों को लागू करना, शिक्षक एवं शिक्षार्थियों को उनका स्वयं का मूल्यांकन आदि के लिए पुन: परीक्षण और प्रतिपुष्टि करना होता है। सतत् मूल्यांकन, बालक क्या जानता है? अधिगम परिस्थिति में किन-किन कठिनाइयों का अनुभव करता है? अधिगम में उसकी प्रगति क्या है? आदि को समझने के लिए नियमित अवसर प्रदान करता है। सतत् आकलन के निम्न चार घटक हैं- (1) उद्देश्य (2) विषयवस्तु (3) अधिगम अनुभव (4) आकलन की प्रक्रिया।

आकलन के उपरोक्त चारों घटकों के बीच अंतरसंबंध यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि घटक एक-दूसरे पर निर्भर हैं। सतत् आकलन में शिक्षक इस बात पर विचार करते हैं कि उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं या नहीं? विद्यार्थियों ने विषयवस्तु में दक्षता प्राप्त की या नहीं? बालकों को वांछित अधिगम अनुभव प्राप्त हुए हैं या नहीं? अन्तत: आकलन ने बालकों को किस हद तक अपना अधिगम बेहतर करने में सहायता की है। यह तभी सम्भव है जब शिक्षक आकलन को शिक्षण के साथ जोड़ दें तथा बालकों को विभिन्न अधिगम गतिविधियों में शामिल करें। यदि शिक्षक विद्यार्थियों के अधिगम व्यवहार को बेहतर बनाने के लिए, विद्यार्थियों में सुधारात्मक प्रक्रिया और शिक्षण में सुधार के माध्यम से प्रतिपुष्टि करता है तथा उन्हें अर्थपूर्ण अधिगम अनुभव देने के लिए शैक्षिक रणनीतियों में परिवर्तन करना चाहता है तो सतत् आकलन आवश्यक है।

व्यापक मूल्यांकन : व्यापक शब्द शैक्षिक और सह-शैक्षिक दोनों क्षेत्रों में विद्यार्थियों के विकास को बताता है। विद्यालय का प्रकार्य केवल संज्ञानात्मक योग्यताओं का निर्माण करना ही नहीं है अपितु असंज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करना भी है। जब मूल्यांकन के अन्तर्गत केवल संज्ञानात्मक पक्ष पर ही जोर न देकर संज्ञानेतर पक्षों पर जैसे कौशल, रुचि, अभिरुचि अभिवृत्ति, मूल्य एवं व्यक्तित्व के आकलन को भी मूल्यांकन की परिधि में लाया जाता है। इसे ही व्यापक मूल्यांकन कहते हैं।

विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले मूलभूत विषयों पर आधारित गतिविधियां शैक्षिक क्षेत्र का निर्माण करती हैं तथा अन्य सह-शैक्षिक गतिविधियां सह-शैक्षिक क्षेत्रों का निर्माण करते हैं। शैक्षिक क्षेत्र में विषय से संबंधित बालक की समझ और ज्ञान तथा अपरिचित स्थिति से उसके आरोपण की योग्यता सम्मिलित हैं। सह-शैक्षिक या अशैक्षिक क्षेत्र का सम्बन्ध बालक की मनोवृत्ति, व्यक्तिगत एवं सामाजिक विशेषताओं और दैहिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित वांछित व्यवहार सम्मिलित है। शैक्षिक क्षेत्र का संबंध बौद्धिक विकास से होता है जबकि अशैक्षिक क्षेत्र का संबंध भौतिक विकास, सामाजिक व्यक्तिगत विशेषताएं रुचियां, अभिवृत्तियां मूल्य आदि से होता है। बालक के सभी पक्षों का मूल्यांकन करने के लिए बहुविध तकनीकियों का प्रयोग किया जाता है। सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन में बहुविध तकनीकियों का एक संघ और भिन्न लोग जैसे अध्यापक विद्यार्थी अभिभावक एवं समाज आदि सम्मिलित होते हैं।

1.5.2 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रकृति एवं विशेषताएं

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रकृति एवं विशेषताओं को निम्न प्रकार से समझाया गया है-

1. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन विद्यार्थियों का स्कूल आधारित मूल्यांकन है जिसमें विद्यार्थी के सभी पक्षों को शामिल किया जाता है।
2. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का सतत् पक्ष मूल्यांकन की निरन्तरता और आवर्तिता पर ध्यान केन्द्रित करता है।
3. आवर्तित प्रत्यय को ऋणात्मक अर्थों में नहीं लगाना चाहिए। अर्थात् अधिक से परीक्षणों का आयोजन होना चाहिए इन्हें किसी प्रकार का भार नहीं मानना चाहिए।
4. सतत् का अर्थ है विद्यार्थियों का शिक्षा के प्रारम्भ से मूल्यांकन और शैक्षिक प्रक्रिया की अवधि में मूल्यांकन करना तथा अनौपचारिक रूप में बहुविध तकीनीकियों का मूल्यांकन करने के लिए प्रयोग करना।
5. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का व्यापक घटक बालक के व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास के आकलन का रखता है। इसमें विद्यार्थी के विकास के विकास के शैक्षिक तथा अशैक्षिक दोनों पक्षों का आकलन सम्मिलित होता है।
6. शैक्षिक क्षेत्र में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार से मूल्यांकन की बहुविध तकनीक का निरन्तर प्रयोग करके निरन्तर एवं आवर्तिता के रूप में किया जाता है। तथा नैदानिक मूल्यांकन यूनिट/इकाई के अन्त में किया जाता है। बालकों के खराब निष्पादन के कारण नैदानिक मूल्यांकन परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।
7. सह-शैक्षिक क्षेत्र में आकलन निश्चित कसौटियों के आधार पर बहुविध तकनीकियों के प्रयोग द्वारा किया जाता है, जबकि सामाजिक और व्यक्तिगत विशेषताओं का

आकलन व्यवहारपरक सूचकांकों के प्रयोग द्वारा किया जाता है। इन्हीं के द्वारा मूल्यों, मनोवृत्तियों, रुचियों, अभिक्षमताओं एवं अभिवृत्तियों आदि का आकलन किया जाता है।

टिप्पणी

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के कार्य

सतत् एवं व्यापक विभिन्न परीक्षणों के माध्यम से बालक की क्षमताओं का सतत् आकलन करना है। ये परीक्षण संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक क्षेत्रों पर केन्द्रित होते हैं। इसमें बालकों के शैक्षिक एवं सह-शैक्षिक दोनों क्षेत्रों का आकलन किया जाता है।

1. यह शिक्षक को प्रभावकारी कार्यनीतियां लागू करने में सहायता करता है।
2. सतत् मूल्यांकन कमजोरियों का निदान करने का कार्य करता है। यह शिक्षक को विद्यार्थियों की शक्तियों एवं कमजोरियों और उनकी आवश्यकताओं का पता लगाने में मददगार सिद्ध होता है।
3. मूल्यांकन द्वारा बालक अपनी कमजोरियों को जान लेते हैं जो बालकों में शिक्षा की अच्छी आदतें डालने, वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक होते हैं
4. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन अभिरूचियों और प्रवृत्ति वाले क्षेत्र ज्ञात करता है। यह अभिरुचियों और मूल्य प्रणालियों में होने वाले परिवर्तनों की जांच करता है।
5. यह शैक्षिक तथा सह-शैक्षिक क्षेत्रों में विद्यार्थियों की प्रगति के बारे में जानकारी देता है और बालक को भावी सफलताओं के बारे में पूर्वानुमान लगाने में सहायता करता है।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के आधार : सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन निम्न आधारों पर किया जाता है–

लिखित परीक्षा : लिखित परीक्षा में निबन्धात्मक, लघु उत्तरीय, और वस्तुगत/ वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्नों को शामिल किया जाता है।

बौद्धिक परीक्षण : वाचिक या जबानी परीक्षणों द्वारा उन कौशलों का परीक्षण किया जाता है जो लिखित प्रश्नों द्वारा नहीं हो सकता हो। इन परीक्षणों में प्रदत्तों को पढ़ने की गति और शुद्धता तथा मानसिक गणना कर उनकी व्याख्या, भाषा की समझ आदि शामिल होते हैं।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के लाभ : सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन सीखने वाले बालकों का तनाव निम्नांकित तरीकों से कम करता है-

1. विभिन्न विद्यार्थियों की अधिगम आवश्यकताओं और क्षमताओं के आधार पर शिक्षण के विविध सुधारात्मक उपायों को प्रयोग करना।
2. विषय-वस्तु के छोटे भाग पर नियमित रूप से कुछ समयान्तराल पर बालकों के अधिगम की प्रगति को बताना।
3. विविध शैक्षिक सहायकों और तकनीकियों के प्रयोग से अधिगम को प्रोत्साहित करना।
4. अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्त्ता के क्रियाकलापों को सम्मिलित करना।
5. अधिगमकर्त्ता की विशिष्ट योग्यताओं की पहचान करना और प्रोत्साहित करना। विद्यार्थियों के निष्पादन पर ऋृणात्मक टिप्प्णी से रोकना।

1.5.3 योगात्मक / संकलनात्मक आकलन : अर्थ, उद्देश्य, लाभ और सीमाएं

टिप्पणी

योगात्मक आकलन को योगदेय मूल्यांकन / आकलन भी कहा जाता है। Summative शब्द का संबंध Summation से होता है। जिसका अर्थ योग होता है। जब बालक सभी इकाइयों के शिक्षण के अन्त में अलग–अलग रूप में देय परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर लेता है तब फिर अन्त में योगात्मक मूल्यांकन किया जाता है, जिससे शिक्षार्थियों के सामान्य स्तर का बोध होता है। और शिक्षार्थियों की सफलता के आधार पर शिक्षण व अनुदेशन की प्रभावशीलता का मूल्यांकन होता है। जिससे शिक्षक एवं अनुदेशन को पुनर्बलन मिलता है। योगात्मक परीक्षण के द्वारा शिक्षार्थियों की अधिगम संबंधी कठिनाइयों को महत्व दिया जाता है और इस परीक्षण से शिक्षण की प्रभावशीलता का मापन किया जाता है। शैक्षिक मूल्यांकन के क्षेत्र में योगात्मक आकलन वह है जो किसी पूर्वनिर्मित एवं चालू शिक्षा नीति, योजना व कार्यक्रम, पाठ्य वस्तु शिक्षण विधि, शिक्षण सामग्री अथवा मूल्यांकन विधि की उपयोगिता की जाँच करने के लिए किया जाता है। प्रो. एस.के. दुबे के अनुसार योगात्मक मूल्यांकन एक व्यापक प्रक्रिया है जो कि बालकों का शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं व्यावहारिक मूल्यांकन करती है तथा बालकों के सभी पक्षों के विकास स्तर को स्पष्ट करती है।

योगात्मक आकलन के उद्देश्य (Objective of Summative Assessment) : इस मूल्यांकन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- प्रगति का मूल्यांकन।
- पाठ्यक्रम, कोर्स अथवा शैक्षिक योजना की प्रभावशीलता की जाँच करना।
- शिक्षक के शिक्षण की प्रभावशीलता की जाँच।
- विद्यार्थियों को ग्रेड प्रदान करना तथा उन्हें प्रमाणित करना।

योगात्मक आकलन की विशेषताएँ (Characteristics of Summative Assessment) : योगात्मक आकलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

- योगात्मक आकलन एक निश्चित कालावधि, कोर्स, कार्यक्रम, सत्र अथवा सेमेस्टर के अन्त में होता है।
- योगात्मक आकलन का गठन इस बात को निर्धरित करने के लिए किया जाता है कि विद्यार्थियों को अनुदेशन के लक्ष्य कहाँ तक प्राप्त हुए हैं।
- यह अन्तिम एवं निर्णायक होता है।
- विशेष अवस्था अथवा सेमेस्टर के लिए निर्धरित किया गया कोर्स योगात्मक मूल्यांकन के आधार पर होता है।
- परीक्षा की मदों द्वारा निर्धरित किए जाने वाले सामान्यीकरण का स्तर योगात्मक मूल्यांकन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

योगात्मक आकलन की उपयोगिता (Uses of Summative Assessment) : ब्लूम तथा उनके साथियों ने योगात्मक मूल्यांकन की निम्नलिखित उपयोगिताओं का वर्णन किया है–

- संकलनात्मक आकलन आगामी सम्बन्धित कोर्स में विद्यार्थियों की सफलता की भविष्यवाणी करता है। यह मूल्यांकन उन्हें शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन करने का आधार प्रस्तुत करता है।

- इस मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों को उपलब्धि–स्तर का ज्ञान प्रदान किया जाता है।
- योगात्मक मूल्यांकन संरचनात्मक मूल्यांकन के समान विद्यार्थियों को प्रगति का ज्ञान प्रदान करता है। इसके द्वारा उन्हें अपनी कमियों को जानने तथा उन्हें दूर करने में मदद मिलती है। इस प्रकार यह बालकों के लिए उपयोगी पृष्ठपोषण का काम करता है।
- योगात्मक मूल्यांकन ग्रेड देने का आधार प्रदान करता है। ग्रेड अंकों अथवा अक्षरों के रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है

योगात्मक आकलन के गुण (Merits of Summative Assessment) : योगात्मक आकलन में संरचनात्मक आकलन की अपेक्षा विद्यार्थियों के सम्पूर्ण पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है। इसके प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

- योगात्मक मूल्यांकन के द्वारा बालकों के ज्ञान स्तर का भी मूल्यांकन किया जाता है।
- यह मूल्यांकन व्यापक होता है।
- इसके अन्तर्गत बालकों के सम्पूर्ण पक्षों का मूल्यांकन किया जाता है।
- इस आकलन का उद्देश्य किसी पूर्व निश्चित शिक्षा नीति, विधि की जाँच करके उसके संबंध में निर्णय लिए जाते हैं।
- इसमें विशेषज्ञों की सम्मति भी प्राप्त की जाती है।
- सूचना एकत्रित करने के लिए वैध एवं विश्वसनीय उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

योगात्मक आकलन के दोष (Demerits of Summative Assessment) : योगात्मक आकलन के दोषों को निम्नलिखित तथ्यों की सहायता से स्पष्ट किया जाता है–

- योगात्मक आकलन में सूचनाओं का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण पक्षों का आकलन किया जाता है।
- सूचनाओं को एकत्र करना अमितव्ययी होता है।
- यह आकलन प्रारम्भिक स्तर पर कम प्रभावशाली होता है।

संरचनात्मक (आरंभिक) आकलन : वह आकलन जो अध्ययन–अध्यापन के दौरान चरणबद्ध रूप से ज्ञान और समझदारी को लेकर छात्रों की समीक्षा करता है उसे संरचनात्मक आकलन या आरंभिक आकलन कहते हैं। यह अध्यापन और अध्ययन की प्रक्रिया और उत्पाद से जुड़े निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देता है–

- क्या किसी विशेष विषय या कंटेंट या कोर्स या पाठ्यक्रम की शिक्षा से जुड़े उद्देश्यों को प्राप्त किया जा रहा है?
- क्या छात्रों के बोध संबंधी, प्रभाव और मनोप्रेरणा के क्षेत्रों का विकास सही तरीके से हो रहा है?
- क्या अध्ययन करने वालों के पाठ्यक्रम और गैर–पाठ्यक्रम संबंधी व्यक्तित्व के क्षेत्रों का विकास सही तरीके से हो रहा है?

- अध्ययन करने वालों की प्रगति संतोषजनक है या नहीं?
- किसी भी जारी शैक्षिक प्रोग्राम के पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को पूर्ण किया जा रहा है या नहीं?

टिप्पणी

आरंभिक आकलन निगरानी के जैसा आकलन है जिसका प्रयोग क्लास, कोर्स या सेशन के दौरान छात्रों की निगरानी के लिए किया जाता है। आरंभिक आकलन के बाद, छात्रों को फीडबैक दिया जाता है, ताकि वे अपनी आगे की पढ़ाई उसके अनुसार कर सकें। आरंभिक आकलन का लक्ष्य अध्यापन–अध्ययन की प्रक्रिया में सुधार लाना है।

अपनी प्रगति जांचिए

10. विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले मूलभूत विषयों पर आधारित गतिविधियां किसका निर्माण करती हैं?

    (क) राजनैतिक क्षेत्र (ख) आर्थिक क्षेत्र

    (ग) सामाजिक क्षेत्र (घ) शैक्षिक क्षेत्र

11. शैक्षिक क्षेत्र का संबंध किस विकास से होता है?

    (क) भौतिक विकास (ख) बौद्धिक विकास

    (ग) आर्थिक विकास (घ) समुदाय विकास

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (ख)
3. (घ)
4. (क)
5. (ग)
6. (घ)
7. (ख)
8. (क)
9. (ख)
10. (घ)
11. (ख)

1.7 सारांश

अधिगम एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन में जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। उसने क्या सीखा यह उसके व्यवहार से पता चलता है। अधिगम का उद्देश्य मानव/बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। कितना परिवर्तन हुआ,

वांछित लक्ष्य क्या है, उस लक्ष्य तक पहुंचने में क्या-क्या सुधार करने हैं इसके लिए किसी न किसी रूप में मूल्यांकन करते हैं।

आकलन सीखने की प्रक्रिया का एक अंग है जो अध्यापक को यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि उसका शिक्षण कैसा होना चाहिए? जब शिक्षक कक्षा में बालकों का आकलन करते हैं तो वे स्वयं का भी आकलन कर रहे होते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन की भूमिका अहम होती है। शिक्षा के क्षेत्र में बालक ने क्या और कितनी उपलब्धि अर्जित की इसका पता मूल्यांकन द्वारा ही लगाया जाता है। मूल्यांकन शिक्षक, शिक्षार्थी एवं अभिभावक तीनों के लिए ही आवश्यक है क्योंकि शिक्षक और अभिभावक बालक की शैक्षणिक उपलब्धियों को जानने के पश्चात अगली परीक्षाओं के लिए उचित मार्ग दर्शन करते हैं तथा उन्हें प्रोत्साहित करने का प्रयास करते हैं।

मापन शिक्षा प्रक्रिया की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। इसका जीवन में अत्यन्त महत्व है। सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय अन्य अनेक अवसरों पर हम मापन का उपयोग करते हैं।

शैक्षिक निदान से अभिप्राय अधिगम तथा शिक्षण सम्बन्धी मुख्य एवं विशिष्ट कठिनाइयों का पता लगाने के लिए तैयार की गई अनेक तकनीकी प्रविधियों के उपयोग से है और यदि सम्भव हो तो उनके कारणों का पता लगाना तथा उनके निराकरण का प्रबन्ध करना है।

शिक्षक कक्षा में एक महत्वपूर्ण अंग है। वह समय-समय पर अपने विद्यार्थियों की विषयगत परीक्षा लेकर अपनी तथा अपने विद्यार्थियों की सफलता के बारे में जांच करता है।

लिखित परीक्षाओं का प्रयोग विस्तृत जानकारी के लिए किया जाता है। मूल्यांकन के उपकरणों में लिखित कार्यों का विषेश योगदान होता है। प्रत्येक विषय में अभ्यास कार्य प्राय: लिखित रूप में कराया जाता है। इससे बालकों में समस्या का समाधान करने की क्षमता एवं सूझ का विकास होता है।

सह-शैक्षिक या अशैक्षिक क्षेत्र का सम्बन्ध बालक की मनोवृत्ति, व्यक्तिगत एवं सामाजिक विशेषताओं और दैहिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित वांछित व्यवहार से है। शैक्षिक क्षेत्र का संबंध बौद्धिक विकास से होता है जबकि अशैक्षिक क्षेत्र का संबंध भौतिक विकास, सामाजिक व्यक्तिगत विशेषताओं, रुचियों, अभिवृत्तियों, मूल्यों आदि से होता है।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **आकलन** : किसी के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रिया।
- **मूल्यांकन** : मूल्यांकन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें बालक की प्रगति के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयास किए जाते हैं।
- **मापन** : किसी निश्चित स्वीकृत नियमों के अनुसार वस्तुओं को अंक प्रदान करना।
- **परीक्षण** : ऐसी प्रक्रिया जो बुद्धि, व्यक्तित्व, अभिवृत्ति या निष्पादन के संदर्भ में समूह के किसी व्यक्ति की सापेक्षिक स्थिति को स्पष्ट करती है।

- **आत्म आकलन** : आत्म आकलन एक बच्चे के स्वयं के अधिगम और विकास को दर्शाता है।
- **उपलब्धि परीक्षण** : किसी एक विषय या विषयों में बालक के द्वारा अर्जित ज्ञान, सूझ–बूझ तथा कौशल का मापन उपलब्धि परीक्षण कहलाता है।
- **अभिक्षमता** : किसी व्यक्ति की वह वर्तमान दशा है जो उसके भविष्य की क्षमताओं की ओर संकेत करती है।

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. आकलन से आप क्या समझते हैं? इसकी दो विशेषताओं को बताइए।
2. मूल्यांकन को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताएं बताइए।
3. आकलन के कार्य एवं उद्देश्यों का समझाइए।
4. मापन से क्या तात्पर्य है? इसकी मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
5. परीक्षण और परीक्षा में क्या अंतर है?
6. योगात्मक और संरचनात्मक आकलन से क्या तात्पर्य है?
7. अध्यापक निर्मित परीक्षण के उद्देश्य बताइए।
8. निकष संदर्भित परीक्षण से क्या अभिप्राय है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. आकलन को समझाते हुए इसकी विशेषताओं, आवश्यकताओं और महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. शिक्षण के क्षेत्र में मूल्यांकन के महत्व की विवेचना कीजिए।
4. मापन को समझाते हुए इसके महत्व व कार्यों का उल्लेख कीजिए।
5. मापन, आकलन एवं मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट कीजिए।
6. आकलन, मापन, परीक्षण, परीक्षा और मूल्यांकन के मध्य अंतर्संबंध का विश्लेषण कीजिए।
7. एक रचनात्मक प्रतिमान में अधिगम का आकलन एवं मूल्यांकन की विवेचना कीजिए।
8. शिक्षक निर्मित एवं मानकीकृत परीक्षण के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

Agarwal, Y.P. (1990). Statistical methods : concepts, applications and computations. New Delhi: Sterling Publishers.
Burke,K. (2005), How to assess authentic learning Thousand Oaks, CA: Corwin.
Garrett, H.E.(1973) Statistics in psychology and education Bombay : .
Popham, W.J. (1993). Educational evaluation. Boston :Allyn and Bacon
Popham, W.J. (1993). Modern educational measurement : Englewood Cliffs, NJ. : Prentice Hall.
Popham, W.J. (2010). Classroom assessment : What teachers need to know New York: Prentice Hall.

इकाई 2 आकलन के लिए उपकरण और तकनीक

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 क्या आकलन करें
- 2.2.1 अधिगम के आयाम : संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोपेशीय कौशल का निष्पादन
- 2.2.2 संज्ञानात्मक अधिगम का आकलन : संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग
- 2.2.3 चिन्तन कौशल : अभिसरण, अपसरण, आलोचनात्मक तर्क एवं समस्या हल और निर्णय लेना
- 2.2.4 पद और उसके आकलन की प्रक्रिया
- 2.2.5 प्रभावी अधिगम का आकलन : मनोवृत्ति और मूल्य, रुचि, आत्मसंप्रत्यय : पद और उसके आकलन की प्रक्रिया
- 2.2.6 निष्पादन का आकलन : कौशल के मूल्यांकन के लिए उपकरण एवं प्रविधियां

2.3 आकलन के लिए उपकरण
- 2.3.1 अवलोकन
- 2.3.2 साक्षात्कार
- 2.3.3 अनुसूची
- 2.3.4 चेकलिस्ट
- 2.3.5 रेटिंग स्केल
- 2.3.6 आकस्मिक निरीक्षण रिकॉर्ड
- 2.3.7 मानकीकृत और अध्यापक निर्मित उपकरण

2.4 आकलन के लिए कार्य : प्रोजेक्ट, असाइनमेंट, कार्य पत्रक, परीक्षा के प्रकार : मौखिक प्रतिक्रिया और लिखित
- 2.4.1 आकलन के लिए उपकरण
- 2.4.2 परीक्षा के प्रकार : मौखिक और लिखित प्रक्रिया, शिक्षक निर्मित परीक्षण, सहपाठी आकलन
- 2.4.3 पोर्टफोलियो आकलन : अर्थ, क्षेत्र और प्रयोग, मूल्यांकन प्रक्रियाओं के लिए रूब्रिक प्रयोग
- 2.4.4 समूह प्रक्रियाओं का आकलन–सहयोगात्मक/सहकारी अधिगम और सामाजिक कौशल
- 2.4.5 सहयोगात्मक और सहकारी अधिगम परिस्थिति में सहपाठी का स्व–मूल्यांकन

2.5 एक अच्छे उपकरण के मापदंड
- 2.5.1 मूल्यांकन के उपकरण के आवश्यक मानदंड
- 2.5.2 वैधता : अवधारणा, प्रकृति और प्रकार
- 2.5.3 विश्वसनीयता : अवधारणा विश्वसनीयता के प्रकार एवं इसके निर्धारण की विधियां
- 2.5.4 विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक
- 2.5.5 विश्वसनीयता और वैधता के मध्य संबंध
- 2.5.6 वस्तुनिष्ठ और उपयोगिता
- 2.5.7 पद मूल्यांकन के लिए पैरामीटर : पद विश्लेषण, कठिनाई स्तर और विभेदन शक्ति

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

2.0 परिचय

अधिगम का आकलन शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। आकलन विद्यार्थी की क्षमताओं, रुचियों एवं सीमाओं की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है। उसकी सम्पूर्णता को समझने में सहायता प्रदान करता है। आकलन सम्पूर्ण शिक्षण-अधिगम की गुणवत्ता को उन्नत बनाने के लिए आवश्यक है। वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था में सर्वाधिक जोर आकलन की प्रक्रिया में व्यापक परिवर्तन पर है। सामान्य अर्थों में आकलन का अर्थ किसी व्यक्ति या समूह से संबंधित सूचना ग्रहण की प्रक्रिया से है ताकि व्यक्ति या समूह-विशेष के सम्बन्ध में निर्णय लिए जा सकें।

आकलन का अर्थ उद्देश्यपूर्ण क्रियाओं द्वारा सूचना संग्रहण एवं व्यवस्थापन की प्रक्रिया से है ताकि शिक्षण-अधिगम एवं विभिन्न व्यक्तियों के सन्दर्भ में उनका अर्थ निकाला जा सके और प्रायः पूर्व निर्धारित मानदंडों से उसकी तुलना की जा सके।

प्राचीन काल से ही व्यक्ति के ज्ञान उसकी क्षमता तथा उसकी योग्यता का पता लगाने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता रहा है। समय-समय पर उन विधियों का उपयोग भी होता रहा है। आज शिक्षक शिक्षार्थियों की अधिगम की प्रगति को जानने के लिए अनेक प्रविधियों एवं उपकरणों का प्रयोग करते हैं। आकलन उपकरण का प्रयोग साक्ष्य को एकत्र करने के लिए किया जाता है। आकलन में प्रयुक्त उपकरण विद्यार्थी की क्षमताओं, प्रगति और उनके विकास को पहचानने के महत्वपूर्ण साधन है। ये शिक्षक को विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अधिगम की माप एवं प्रगति तथा संबंधित सूचनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं। कोई भी आकलन उपकरण तब तक उपयुक्त नहीं माना जाता है जब तक वह कसौटियों पर खरा न उतरे। आकलन उपकरणों द्वारा शिक्षण विधियों में सुधार, शिक्षा के लक्ष्यों का स्पष्टीकरण, शिक्षण कार्य की उन्नति व मार्गदर्शन तथा पाठ्यक्रम में सुधार करने हेतु अनेक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

इस इकाई में अधिगम के आयाम, संज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा क्रियात्मक आकलन, आकलन के विभिन्न उपकरण, आकलन के लिए कार्य तथा अच्छे उपकरण के मानदंड को विस्तार से समझाया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- आकलन के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो पाएंगे;
- आकलन के विभिन्न उपकरणों की विवेचना कर पाएंगे;
- आकलन के लिए कार्यों का उल्लेख कर पाएंगे;
- एक अच्छे उपकरण के मानदंड को समझ पाएंगे।

2.2 क्या आकलन करें

बालकों के आकलन के लिए उनके बौद्धिक विकास की अवस्थाओं को समझने और उन्हें ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही संदर्भयुक्त अर्थपूर्ण स्थितियों में

विज्ञान प्रक्रियाओं और समस्याओं पर काम करने के अवसर प्रदान करने की आवश्यकता होती है ताकि विज्ञान के क्षेत्र में वे स्वतन्त्र रूप से अपनी समझ को विकसित कर सकें। वे केवल कक्षा में करवाये जाने वाले अभ्यासों तक सीमित न रहें। इस आधार पर आकलन की प्रक्रिया में निम्न को शामिल किया जाता है-

टिप्पणी

- आवधारणाएं एवं प्रक्रियाएं।
- वैज्ञानिक तार्किकता।
- विज्ञान के प्रति झुकाव।
- समस्या समाधन के लिए विज्ञान का ज्ञान एवं तकनीकों का उपयोग।
- सम्प्रेषण।

विज्ञान की अवधारणाएं प्राय: श्रेणीबद्ध रूप से समझाई जाती हैं। और किसी अवधारण विशेष के लिए उसके पहले की जानकारी आवश्यक होती है। इस प्रकार पूर्व अपेक्षित जानकारियों का विश्लेषण आकलन में सार्थकता को उत्पन्न करता है तथा पूर्व अपेक्षित जानकारियों के विश्लेषण पर आधरित आकलन यह सुनिश्चित करने में सहायता प्रदान करता है कि बालक जो जानते-समझते हैं उसे पूरे विश्वास के साथ प्रस्तुत भी करते हैं।

आकलन के घटक : एक व्यवस्था के रूप में आकलन के कुछ घटक/अवयव होते हैं जो आकलन की रणनीति को प्रयोग में लाने के बारे में सहायक सिद्ध होते हैं हार्लेन ने एक व्यवस्था के रूप में आकलन के निम्न घटकों/ अवयवों का सुझाव दिया है-

1. उद्देश्य
   - रचनात्मक
   - योगात्मक
2. प्रयोग
   - अधिगम सहायता
   - शिक्षकों, अभिभावकों तथा बालकों को प्रगति के बारे में सूचना प्रदान करना
   - बालकों की प्रगति पर नजर रखना
3. कार्य के प्रकार
   - नियमित कार्य
   - परीक्षण / शिक्षक द्वारा विकसित कार्य
   - परीक्षण/बाहर से निर्धरित कार्य
   - शिक्षण अधिगम में अंत:स्थापित कार्य
4. निर्णय का एजेंट
   - शिक्षक
   - शिक्षक तथा बालक दोनों
   - बाहरी एजेंट

टिप्पणी

5. निर्णय का आधार
   - मानदंड
   - कार्य विशेष मानदंड
   - सामान्य मानदंड
   - छात्रों के सन्दर्भ में
6. रिपोर्ट अथवा प्रतिपुष्टि
   - अंक अथवा स्कोर
   - रूपरेखा
   - कुल मिलाकर स्तर अथवा श्रेणी अथवा वर्ग
   - टिप्पणी अथवा मौखिक प्रतिपुष्टि
7. संतुलन
   - कक्षा/ विद्यालय के अंदर (आंतरिक संतुलन)
   - अंतर-विद्यालय संतुलन प्रक्रिया
   - बाहरी निरीक्षण
   - अनौपचारिक अथवा शिक्षक केन्द्रित

यह उन घटकों का समूह है जो हमें विभिन्न परिस्थितियों में आकलन की रणनीतियों के प्रयोग के संबंध में निर्णय लेने में सहायता करते हैं। पहला सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक उद्देश्य है जिसके लिए आकलन का प्रयोग किया जाना है। यदि यह रचनात्मक उद्देश्य के लिए है तो उसके अनुसार तकनीक का चयन किया जायेगा। यदि योगात्मक आकलन के लिए है तो परीक्षण का आयोजन टर्म अथवा सैमेस्टर के अन्त में या फिर सत्र के समाप्त होने की रणनीति का प्रयोग किया जायेगा। प्रयोग घटक यह बताता है कि किस प्रकार की आकलन की रणनीति सहायता कर सकती है। कार्य की प्रकृति भी आकलन का एक महत्वपूर्ण घटक है इसके अन्तर्गत देखा जाता है कि संबंधित कार्य क्या रचनात्मक आकलन के समान नियमित अभ्यास है या फिर एक प्रकार का आंतरिक अथवा बाहरी परीक्षण है। परीक्षण भी शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षण है या फिर मानकीकृत परीक्षण। अन्य सभी घटक आकलन की रणनीति तैयार करने में इसी प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आकलन योजना

आकलन क्यों करना है (Why Assessing)। अधिगम के आकलन का उद्देश्य मापन, प्रमाणित करना तथा बालक के अधिगम के स्तर की आख्या देना होता है। बालक के सम्बन्ध में उपरोक्त निर्णय लेने से पूर्व आकलन की योजना बनायी जाती है। आकलन के लिए योजना बनाने तथा उसका क्रियान्वयन करने से पहले यह आवश्यक होता है कि बालकों में उनके सीखने के बारे में निर्णय लिए जाते हैं कि बच्चे कैसे समझते हैं कैसे सीखते हैं। इसी प्रकार सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान बालकों के आकलन की

योजना सुनिश्चित की जानी चाहिए। यह स्पष्ट होना चाहिए कि किस बात का आकलन करना है। अर्थात आकलन का उद्देश्य पूर्व निर्धरित होना चाहिए।

वर्ष भर शिक्षक कक्षा में सभी बच्चों को सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के समय अवलोकन करता है और साथ ही साथ सुधारात्मक प्रयास भी करता रहता है। औपचारिक रूप से शिक्षक आकलन का कार्य निश्चित अन्तराल पर कर सकता है। आकलन गतिविधि आधारित होना चाहिए। बालकों से विभिन्न प्रकार की गतिविधियां करवा कर उनके शैक्षिक स्तर की जानकारी एकत्र की जा सकती है। आकलन के दौरान कक्षा की दिनचर्या अन्य दिनों की भांति सामान्य रहे तो ज्यादा अच्छा होता है। बालकों की कठिनाइयों को ध्यान में रखकर उनके विकास के लिए अधिक प्रभावी योजना बनायी जानी चाहिए।

आकलन गतिविधियों, चर्चा, प्रश्नोत्तर के दौरान किया जा सकता है। इसके लिए यह तय किया जाता है कौनसी गतिविधियां उनके लिए उपयुक्त होंगी तथा किस प्रकार उन्हें सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। प्रत्येक बालक का विवरण नोट तैयार किया जाता है बालक के सम्बन्ध में टिप्पणी सटीक और विश्लेषणात्मक हो ताकि बालक को सिखाने के लिए उनका उपयोग किया जा सके। इस प्रकार आकलन में शिक्षक अपना तथा अपने द्वारा करवाई गयी शिक्षण प्रक्रिया का आकलन करे और शिक्षण प्रक्रिया में आवश्यकता हो तो आवश्यक सुधार करे। प्रत्येक चरण में आकलन के बाद सीखने के अवसरों में भी सुधार करे। आकलन के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर प्रगति पत्र प्रदान करें जो सकारात्मक प्रतिक्रियाओं के लिए सम्भावनाएं जुटा सके तथा बालक को बेहतर करने में मददगार हो। बालकों की प्रगति और सीखने सम्बन्धी सूचनाओं की जानकारी अगली कक्षा के शिक्षक को उपलब्ध कराएं।

प्रगति सम्बन्धी सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। आकलन के लिए चयनित विधियां ऐसी होनी चाहिए जो पाठ्यक्रम के वांछित परिणामों और अधिगम के अनुरूप हों जिनकी आवश्यकता परिणाम तक पहुंचने के लिए आवश्यक हो। आकलन विधि ऐसी होनी चाहिए जिसके द्वारा बालक अपनी समझ और अधिगम गुणवत्ता तथा प्रकृति के सम्बन्ध में प्रमाणिक एवं रक्षायुक्त कथन का समर्थन करने योग्य पर्याप्त सूचनाएं प्रस्तुत कर सके। अधिगम आकलन के लिए केवल परीक्षण और परीक्षाएं ही नहीं होतीं वरन् प्रदर्शनियां, प्रस्तुतीकरण, निष्पादन, प्रोजेक्टस आदि अन्य अनेक विधियां भी होती हैं।

विकास के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति तथा अधिगम की जानकारी अथवा प्रमाण एकत्र करने के लिए आकलन की कोई एक विधि अथवा तकनीक अपने आप में पर्याप्त नहीं है अत: विषय सम्बन्धी गतिविधियों का आकलन करने के लिए कई प्रकार की वैकल्पिक पद्धतियों का प्रयोग करना पड़ता है। यह शिक्षक को चयन करना होता है कि उसे कौन सी तकनीक का कब प्रयोग करना है।

आकलन कैसे किया जाए : कक्षा में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया काफी जटिल होती है जो विद्यालय के वातावरण और उसकी संस्कृति पर निर्भर करती है। एक सुरक्षित, चिंतामुक्त, सुविधाजनक और खुशनुमा वातावरण बालक को बेहतर तरीके से सीखने और कुछ अधिक सीखने में सहायता प्रदान करता है। बालक किस प्रकार सीखते हैं इसी आधार पर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का दौरान आकलन की प्रक्रिया सुनिश्चित की जाती है।

टिप्पणी

आजकल बालकेन्द्रित शब्दावली का प्रयोग अधिक प्रचलन में है। बालकेन्द्रित और शिक्षक केन्द्रित कक्षा को और उनकी गतिविधियों को निम्न चार्ट के माध्यम से समझ सकते हैं-

क्रम. सं.	**शिक्षक केन्द्रित कक्षा**	**बाल केन्द्रित कक्षा**
1.	कक्षा में शिक्षक का नियन्त्रण होता है। बालकों की भागीदारी बहुत कम होती है।	बालक अनुभव बाँटते हैं और सहयोग करते हैं।
2.	शिक्षक केन्द्रित कक्षा में बालकों के बैठने की व्यवस्था पहले से ही तय होती है।	बाल केन्द्रित कक्षा में गतिविधि के अनुसार बालकों के बैठने की व्यवस्था में परिवर्तन होता रहता है।
3.	शिक्षक निर्देश देते हैं और बालकों से अपेक्षा की जाती है कि वे अनुशासन में रहें।	शिक्षक सीखने के अवसर प्रदान करता है सीखने की दिशा देता है और बालक विभिन्न गतिविधियों और कार्यकलापों में क्रियाशील होते हैं।
4.	शिक्षक के शिक्षण के दौरान बालक सिर्फ सुनते हैं।	शिक्षक ऐसी अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करता है जहाँ बालकों को खोजबीन करने, अवलोकन करने, अनुभव लेने तथा विभिन्न अवधारणाओं के प्रति अपनी समझ बनाने के अवसर प्राप्त होते हैं।
5.	समय सारणी में लचीलापन नहीं होता है वह कक्षा के अनुरूप होती है।	समय सारणी में लचीलापन होता है बालक क्या करना चाहते है यह उन पर निर्भर करता है।
6.	शिक्षक पाठ्यपुस्तक पढ़ते हैं और बालक सुनते हैं। शिक्षक श्यापट्ट पर प्रश्न–उत्तर लिखते हैं और बालक उन्हें कापी पर लिखते हैं। बच्चे किसी पाठ को पढ़ते नहीं बल्कि सुनते हैं।	बच्चे केवल पढ़ते ही नहीं अपितु अपने लिए ज्ञान का निर्माण करते हैं जो विद्यालय में अथवा विद्यालय के बाहर प्राप्त अनुभवों पर आधारित होता है।
7.	पाठ्य पुस्तक में दिए गये तथ्यों को और शिक्षक द्वारा बताए गए तथ्यों को बालक याद कर लेते हैं।	बालक व्यक्तिगत रूप से भी कार्य करते हैं और समूह में भी विभिन्न तथ्यों की चर्चा करते हैं।
8.	बालकों में उकताहट और अरुचि का भाव व्याप्त रहता है।	यहाँ छात्र क्रिया द्वारा शिक्षा ग्रहण करते हैं जिससे उनमें सीखने के दौरान रुचि उत्पन्न होती रहती है।
9.	इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली में शिक्षण सामग्री केवल प्रदर्शन के लिए होती है।	इस प्रणाली में बालक क्रिया द्वारा सीखते हैं अतः वे कक्षा में उपलब्ध तरह–तरह की समग्री व उपकरणों का प्रयोग करते हैं।

बालकों के सीखने के सम्बन्ध में समझ बनाने के लिए तथा विकास के विभिन्न पहलुओं का आकलन करने के लिए शिक्षक को बाल केन्द्रित कक्षा पद्धतियों का प्रयोग करना चाहिए तब ही शिक्षक सतत् एवं सारगर्भित आकलन करने में सफल हो पाएगा।

आकलन की विधियां : प्रायः यह देखा गया है कि विद्यालयों में सूचनाओं का मुख्य स्त्रोत शिक्षक होता है और वही बालकों के अधिगम का आकलन भी करता है। क्योंकि आकलन अधिगम प्रक्रिया का एक भाग है, अतः इसे बालक स्वयं भी कर सकते हैं और वे अपने स्वयं के अधिगम और प्रगति के आकलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। शिक्षक बच्चों को स्वयं आकलन करने में सहायता दे सकते हैं वे बच्चों में यह समझ विकसित कर सकते हैं कि उनसे क्या आशा की जाती है और वे अपने कार्य और निष्पादन को आलोचनात्मक ढंग से कैसे देख सकते हैं। इसके लिए शिक्षक बच्चों से यह कह सकते हैं कि वे अपने सर्वोत्तम कार्य का चयन करें और फिर इस बात पर चर्चा करें कि उन्होंने उस कार्य को ही क्यों चयन किया है।

टिप्पणी

बच्चों के स्वयं के अतिरिक्त अनेक व्यक्ति भी होते हैं जो आकलन किये जाने वाले बालक के सम्बन्ध में सूचना प्रदान कर सकते हैं। वे निरन्तरता के आधार पर शामिल किये जा सकते हैं ताकि बच्चों के विकास के सभी पक्षों को पूर्ण रूप से चित्रित किया जा सके। अध्यापक निम्नलिखित लोगों से बातचीत करके बालक के विकास का पूर्ण चित्रण कर सकता है-

- अभिभावक।
- बालक के मित्र, सहपाठी और भाई-बहन।
- अन्य अध्यापक।
- समुदाय के सदस्य।

आकलन को व्यवस्थित करने की चार मुख्य विधियां इस प्रकार हैं-

1. **व्यक्तिगत आकलन :** इस विधि के अन्तर्गत एक बालक पर, जब वह किसी कार्य अथवा क्रिया में व्यस्त होता है तो उस पर सारा ध्यान केन्द्रित किया जाता है।
2. **समूह आकलन :** इसके अन्तर्गत उन सभी बच्चों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जो एक समूह में मिलकर किसी कार्य को पूरा करने के उद्देश्य से एकत्रित होकर कार्य करते हैं। यह विधि सामाजिक कौशल, सहयोगात्मक अधिगम प्रक्रियाओं तथा अन्य मूल्यों से सम्बन्धित आयामों के सन्दर्भ में बालक के व्यवहार के आकलन के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होती है।
3. **आत्म आकलन :** यह विधि एक बच्चे के स्वयं के अधिगम और विकास के आकलन को दर्शाती है। इसमें बालक अपने ज्ञान, कौशल, रुचियों, अभिरुचियों, क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं आदि के विकास का आकलन करता है।
4. **साथी आकलन :** यह बालक द्वारा दूसरे बालक के आकलन को बताता है यह जोड़ी या समूह में निष्पादित किया जा सकता है।

2.2.1 अधिगम के आयामः संज्ञानात्मक, भावात्मक और मनोपेशीय कौशल का निष्पादन

आकलन एक शिक्षक को अपने शिक्षण उद्देश्य एवं उनके सन्दर्भ में विद्यार्थियों की सम्प्राप्ति को जानने में, अधिगम में विद्यार्थी को आ रही कठिनाई और उसके कारणों का विश्लेषण करने में तदानुसार नैदानिक शिक्षण की योजना बनाने में सहायता करता है।

अधिगम के आयाम एक व्यापक प्रारूप है जो शोधकर्त्ता और सिद्धान्तवेत्ता अधिगम के सम्बन्ध को जानने के लिए प्रयोग करते हैं ताकि वे अधिगम प्रक्रिया को परिभाषित कर सकें। इसके क्षेत्र को एक पांच प्रकार के चिन्तन (Thinking) के द्वारा बताया गया है, जिसे हम अधिगम के पांच आयामों के नाम से जानते हैं। ये पांच आयाम सफल अधिगम के लिए अनिवार्य हैं। ये आयाम निम्न प्रकार से सहायक होते हैं-

- अधिगम के क्षेत्र को बनाये रखने में।
- अधिगम प्रक्रिया के अध्ययन में।

टिप्पणी

- पाठ्यक्रम की योजना, शिक्षण और आकलन पक्षों को ध्यान में रखता है।

अधिगम के पांच आयाम निम्न प्रकार से हैं-

1. **प्रथम आयाम- मनोवृत्तियां एवं धारणाएं :** मनोवृत्तियां एवं धारणाएं विद्यार्थियों की अधिगम क्षमता को प्रभावित करती हैं। जैसे यदि विद्यार्थी कक्षा को अव्यवस्थित एवं असुरक्षित स्थिति के रूप देखता है तो इस बात की पूरी सम्भावना होती है कि वह ऐसी स्थिति में कम अधिगम कर पायेगा क्योंकि असुरक्षा के कारण उसका मन भटकता रहेगा। ठीक इसी प्रकार यदि विद्यार्थी क्लास रूम में कार्यो के प्रति अपनी ऋणात्मक मनोवृत्ति रखता है तो इस बात की भी पूरी सम्भावना होती है कि उस कार्य के प्रति उसकी रुचि नहीं होगी और वह उसे करने का प्रयास भी नहीं करेगा। अत: शिक्षक को प्रभावी शिक्षा के लिए ऐसे प्रयास करते रहना चाहिए कि विद्यार्थियों में अधिगम के लिए सकारात्मक मनोवृत्ति एवं धारणा का विकास हो सके और उन्हें अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करने में मदद मिल सके।

2. **द्वितीय आयाम- ज्ञान प्राप्त और समन्वित करना :** नये ज्ञान को प्राप्त करना तथा उसे अर्जित ज्ञान से समन्वित करने में विद्यार्थियों की सहायता करना अधिगम का दूसरा महत्वपूर्ण आयाम है। जब विद्यार्थी कुछ नया-नया सीखते हैं तब उन्हें उस नवीन ज्ञान को, जो कुछ वे पहले सीख चुके हैं; उसके साथ सम्बन्धित करना चाहिए। उसके बाद प्राप्त जानकारी को इस प्रकार एकीकृत किया जाना चाहिए जिससे वह स्मृति पटल पर दीर्घकाल तक स्थापित रहे। जब विद्यार्थी नए कौशल एवं प्रक्रियाओं को सीखते हैं तो उन्हें एक मॉडल के रूप में सीखना चाहिए। उसके पश्चात कौशल एवं प्रक्रियाओं को एक ऐसा प्रारूप प्रदान करना चाहिए ताकि वह उनके लिए कुशल एवं प्रभावी हो सके और अन्तत: उसे आत्मसात करना या कौशल का अभ्यास करना चाहिए ताकि वे उसका सरलता से निष्पादन कर सकें। अर्थात् अपने कौशल को आसानी से प्रदर्शित कर सकें।

3. **तृतीय आयाम : ज्ञान का विस्तृतीकरण एवं परिष्कृतीकरण :** अधिगम ज्ञान को अर्जित करने एवं उसे एकीकृत करने से ही समाप्त नहीं हो जाता है बल्कि अधिगमकर्त्ता ज्ञान के विस्तृतीकरण एवं परिष्कृतीकरण के माध्यम से समझ को गहराई तक विकसित करता है। वे इस बात का विश्लेषण करते हैं कि उन्होंने जो तार्किक प्रक्रिया अपनायी है, वह भ्रान्तियों को दूर करके उसके ज्ञान का विस्तार करने तथा उसे परिष्कृत करने में सहायक है अथवा नहीं। अधिगमकर्त्ता अपने ज्ञान को परिष्कृत करने और उसका प्रसार करने के लिए कुछ तार्किक प्रक्रियाओं का प्रयोग करता है ये निम्न प्रकार हैं- तुलना, वर्गीकरण, पृथीकरण, आगमनात्मक तार्किकता, निगमनात्मक तार्किकता, निर्माणात्मक सहयोग, विश्लेषण त्रुटियां, विश्लेषण परिप्रेक्ष्य।

4. **चतुर्थ आयाम : ज्ञान का सार्थक प्रयोग :** एक सर्वोत्तम प्रभावी अधिगम तब उत्पन्न होता है, जब हम उस ज्ञान का प्रयोग सार्थक कार्यो को करने के लिए करते हैं। उदाहरण के लिए- विद्यार्थी ने लैपटॉप के बारे में अपने मित्रों से सुना और पत्रिकाओं तथा अखबार में पढ़ा तो उसे ये ज्ञान हो गया कि कौन-सा लैपटॉप अच्छा है लेकिन वास्तविक ज्ञान उसे तब ही होगा जब वह लैपटॉप खरीदने जाता

टिप्पणी

है तो वह अपने सीखे हुए ज्ञान का प्रयोग करके विभिन्न प्रकार के लैपटॉपों को देखकर उनमें तुलना करके पूर्णरूप से आश्वस्त होने के बाद ही उचित लैपटॉप का चुनाव करता है। इस प्रकार वह अपने पूर्व ज्ञान का सार्थक रूप से प्रयोग करता है। यही प्रभावी अधिगम है। अधिगम आयामों के प्रारूप में छः प्रकार की तार्किक प्रक्रियायें होती हैं जो कि ज्ञान के सार्थक उपयोग के लिए प्रोत्साहित करती हैं वे क्रियाएं निम्न हैं- निर्णय लेना, समस्या समाधान, आविष्कार, जांच पड़ताल, प्रायोगिक जांच, प्रणाली विश्लेषण।

5. **पांचवां आयाम : मस्तिष्क की उत्पादक आदतें :** प्रभावशाली अधिगमकर्त्ता वे होते हैं जो मस्तिष्क की प्रभावशाली आदतों को विकसित करते हैं तथा जो उन्हें सृजनात्मक चिन्तन, आलोचनात्मक चिन्तन और व्यवहारों को नियन्त्रित करने की क्षमता प्रदान करता है। इन मानसिक आदतों की सूची नीचे है-

- **सृजनात्मक चिन्तन :** इसके अन्तर्गत निम्न गतिविधियों को शामिल किया जाता है-
  - I. दृढ़ रहना।
  - II. अपने ज्ञान एवं योग्यता की क्षमता का विस्तार करना।
  - III. अपने स्वयं के द्वारा मूल्यांकन मानकों का निर्माण करना, उस पर विश्वास रखना तथा उन्हें बनाए रखना।
  - IV. किसी भी परिस्थिति के अवलोकन के लिए नए तरीके उत्पन्न करना जो उस परिस्थिति के पूर्व मानकों (परम्परागत मानकों)से अलग हों।
- **आलोचनात्मक चिन्तन :** आलोचनात्मक चिन्तन के अन्तर्गत निम्न गतिविधियों को विकसित करना चाहिए-
  - I. यथार्थ होना एवं यथार्थता को जांचने का प्रयत्न करना।
  - II. स्पष्ट होना एवं स्पष्टता को जांचने का प्रयत्न करना।
  - III. खुले विचारों को बनाए रखना।
  - IV. संवेगों को नियन्त्रित रखना।
  - V. दूसरों की भावनाओं एवं उनके ज्ञान के स्तरानुसार उचित प्रतिक्रिया करना।
- **आत्म नियमन चिन्तन :** आत्म नियमन चिन्तन के अन्तर्गत निम्न गतिविधियों को शामिल किया जाता है-
  - I. अपने विचारों को नियन्त्रित करना।
  - II. उचित योजना बनाना।
  - III. आवश्यक संसाधनों की पहचान करना एवं उनका उपयोग करना।
  - IV. पृष्ठपोषण देने के लिए उचित प्रतिक्रिया करना।
  - V. अपने कार्यों के प्रभावों का मूल्यांकन करना।

अधिगम के आयामों के सम्बन्ध में यह अनुभव करना महत्वपूर्ण है कि अधिगम के आयाम एकान्त में क्रियाशील नहीं होते वरन् एक साथ मिलकर क्रियाशील होते हैं।

टिप्पणी

साररूप में सभी अधिगम अधिगमकर्त्ता की मनोवृत्ति और प्रत्यक्षीकरण (आयाम 1) और उनके प्रयोग (आयाम 5) की पृष्ठभूमि में होता है। यदि विद्यार्थी अधिगम के सम्बन्ध में ऋृणात्मक मनोवृत्ति या धारणा रखता है तो अधिगम कम होता है। यदि उनकी मनोवृत्ति और धारणा सकारात्मक है तो वे अधिक सीखेंगे और अधिगम सरल होगा। आयाम एक तथा आयाम पांच सदैव ही अधिगम प्रक्रिया के कारक हैं।

जब सकारात्मक मनोवृत्ति और अवधारणा पर अपने स्थान पर होते हैं और मस्तिष्क की उत्पादक आदतों का प्रयोग होता है तब अधिगमकर्त्ता अन्य तीन आयामों का वांछित चिन्तन अधिक प्रभावकता से कर सकता है। इसका मतलब यह है कि ज्ञान प्राप्त और समन्वित करना, ज्ञान का विस्तार और उसे परिष्कृत करना और ज्ञान का सार्थक प्रयोग करना। जब अधिगमकर्त्ता ज्ञान को विस्तृत एवं परिष्कृत करता है तो वह ज्ञान प्राप्त करता रहता है और जब वह ज्ञान का सार्थक प्रयोग करता है तो वह ज्ञान प्राप्त करता है और फिर उसका विस्तार करते हैं। अधिगम के आयाम अत्यन्त जटिल अधिगम प्रक्रिया के सम्बन्ध में चिन्तन की विधि प्रदान करते हैं जिससे प्रत्येक पक्ष पर ध्यान दिया जा सके तथा अर्न्तदृष्टि प्राप्त की जा सके।

अधिगम के आयामों का प्रयोग : अधिगम के आयाम वास्तव में अधिगम के एक व्यापक प्रारूप के रूप में शिक्षा के प्रत्येक पक्ष पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं क्योंकि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अधिगम की वृद्धि करना है। इसका मतलब यह है कि शिक्षा की पद्धति का प्रारूप ऐसा होना चाहिए जो प्रभावकारी अधिगम के लिए कसौटी का प्रतिनिधित्व करे कसौटी जिसका उपयोग निर्णय लेने एवं विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने के लिए किया जा सके। यद्यपि आयाम अधिगम का एक मात्र प्रारूप नहीं हैं फिर भी ये अधिगम पर ध्यान देने के प्रभावशाली उपकरण हैं। तथा अनेक सम्भावित विधियों को सुझाने में सहायक हो सकता हैं।

अधिगम अनुभव होने के बाद बालक के व्यवहार में परिवर्तन आता है मूल्यांकनकर्त्ता बालकों के व्यवहार परिवर्तनों को मूल्यांकित करने के लिए अनेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक परीक्षणों के माध्यम से तथा अनेक मूल्यांकन प्रविधियों लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा, प्रयोगात्मक एवं निरीक्षण विधि, बुद्धि परीक्षा, उपलब्धि परीक्षा, व्यक्तित्व परीक्षा, का प्रयोग करता है। बालक के व्यवहार में क्या और कितना परिवर्तन हुआ है। व्यवहार परिवर्तन को मुख्यत: तीन पक्षों में विभाजित किया जाता है– संज्ञानात्मक पक्ष, भावात्मक पक्ष तथा क्रियात्मक पक्ष।

- **संज्ञानात्मक पक्ष :** यह पक्ष ज्ञान के उद्देश्य पर प्रकाश डालता है। ज्ञान पक्ष इस बात पर बल देता है कि बालक को नवीन तथ्यों, सूचनाओं एवं सत्यों से परिचित कराया जाए। ज्ञानात्मक उद्देश्य में मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया क्रियाशील रहती है इसे प्रत्येक विषय का अनिवार्य अंग समझा जाता है। आधुनिक शिक्षा में इस पक्ष को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। इस पक्ष में निम्न प्रकार के ज्ञान को शामिल किया जाता है–

  - विशेष तथ्यों का ज्ञान
  - मापदंडों का ज्ञान
  - विशिष्ट तथ्यों को प्राप्त करने की विधियों का ज्ञान
  - सिद्धान्तों एवं सामान्यीकरण का ज्ञान

- घटनाओं का ज्ञान
- विधियों एवं प्रणालियों का ज्ञान
- मान्यताओं एवं परम्पराओं का ज्ञान

• **भावात्मक पक्ष :** व्यवहार के इस पक्ष के अन्तर्गत वे उद्देश्य शामिल किए जाते हैं जिनका सम्बन्ध बालक की रुचियों, संवेगों तथा मनोवृत्तियों से होता है। ये बालक के व्यक्तित्व की कसौटी समझे जाते हैं। बालक के इस पक्ष को विकसित करना शिक्षक के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य समझा जाता है। इसके अन्तर्गत निम्न को शामिल किया जाता है-

- ग्रहण करना
- प्रतिक्रिया करना
- विचारण
- अनुमूल्यन
- चरित्रीकरण
- व्यवस्थापन

• **मनोपेशीय कौशल का प्रदर्शन :** मनोपेशीय कौशल का उद्देश्य व्यवहार या कौशल में परिवर्तन और विकास पर केंद्रित है। इस पक्ष के अन्तर्गत वे उद्देश्य आते हैं जिनका सम्बन्ध गतिवाही कौशल तथा ऐसी क्रियाओं से होता है जिनके लिए हमारी मांसपेशियों एवं आंगिक गतिविधियों की आवश्यकता होती है। व्यवसायिक शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा, हस्तलेखन, टाइपिंग, वाद्य उपकरणों को बजाना पेंटिंग बनाना एवं ऐसे ही अन्य कार्य बालक के व्यवहार के क्रियात्मक पक्ष में शामिल रहते हैं। इसमें निम्न प्रमुख होते हैं-

- उत्तेजना
- क्रियान्वयन
- समायोजन
- उत्पत्ति
- निर्देशात्मक अनुक्रिया
- जटिल प्रत्यक्ष अनुक्रिया
- प्रत्यक्षीकरण
- स्वभावीकरण
- नियन्त्रण
- कौशल

शैक्षिक मूल्यांकन प्रक्रिया का अंतिम सोपान परिणामों का पृष्ठपोषण होता है। जब शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं होती तो शिक्षक को अपने शिक्षण कार्यों में सुधार करना होता है। वह शिक्षण बिन्दुओं का नये सिरे से चयन करता है। नए ढंग से अधिगम क्रियाओं को आयोजित करता है। वह ऐसा इसलिए करता है ताकि विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति अधिक से अधिक हो सके। शैक्षिक मूल्यांकन के परिणामों को शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के पृष्ठ पोषण के द्वारा अधिक प्रभावी बनाया जाता है।

टिप्पणी

2.2.2 संज्ञानात्मक अधिगम का आकलन : संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग

अधिगम एक निरन्तर चलने वाली व्यापक प्रक्रिया है। केवल तथ्यों को एकत्र करना और समंकों को स्मरण रखना ही अधिगम नहीं कहलाता है। अधिगम इससे कहीं अधिक होता है। प्रभावी अधिगम का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष संज्ञानात्मक अधिगम होता है। संज्ञानात्मक अधिगम वह प्रक्रिया है जो यह बताए कि अधिगम कैसे किया जाए। संज्ञानात्मक अधिगम के अन्तर्गत उस ज्ञान एवं कौशल को शामिल किया जाता है जो तत्काल एवं प्रभावी अधिगम के लिए आवश्यक है।

संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकार : अवबोध और प्रयोग

संज्ञानात्मक अधिगम में जो कौशल वांछित होता है उसमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता, तार्किक तर्क का प्रयोग और महत्वपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता शामिल रहते हैं। संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर होते हैं- ज्ञान, अवबोध, प्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण एवं मूल्यांकन। संज्ञानात्मक अधिगम के ये स्तर तथ्यों के सरल प्रत्यास्मरण एवं पहचान (Recall or Recognisation) के निम्न स्तर से मूल्यांकन के उच्चतम स्तर तक जाते हैं। संज्ञानात्मक क्षेत्र के घटकों का आकलन परीक्षणों में निम्नांकित प्रकार से किया जा सकता है-

1. **ज्ञान :** यह सबसे निम्न स्तर होता है। इस वर्ग में विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु के विशिष्ट तथ्यों, पदों, प्रचलनों, परम्पराओं, वर्गों, कसौटियों प्रनियमों सामान्यीकरण सिद्धान्तों एवं संरचनाओं का प्रत्यक्ष प्रश्नों द्वारा विद्यार्थी की प्रत्यास्मरण एवं पहचानने की योग्यता का परीक्षण किया जाता है। तथा दी हुई सूचना की पुनरावृत्ति करने की योग्यता देखी जाती है। कक्षा में इसके लिए समुचित परिस्थितियां उत्पन्न की जाती हैं।

    - सूचना का निरीक्षण और प्रत्यास्मरण
    - तिथि, घटना तथा स्थानों का ज्ञान
    - मुख्य विचारों का ज्ञान
    - पदों का ज्ञान
    - विषय सामग्री की पारंगतता
    - विशिष्टताओं का ज्ञान
    - विशिष्ट तथ्यों का ज्ञान
    - विशिष्ट तथ्यों से सम्बन्ध स्थापित करने के उपायों एवं परम्पराओं का ज्ञान
    - ज्ञान के किसी क्षेत्र के सार्वभौमिक तथा अमूर्त प्रत्ययों को ज्ञान
    - प्रचलन एवं तारतम्य का ज्ञान
    - कसौटियों का ज्ञान
    - वर्गीकरण एवं वर्गो का ज्ञान
    - सन्नियमों तथा सामान्यीकरण का ज्ञान

    इसके अन्तर्गत प्रश्न संकेत इस प्रकार के होते हैं, जैसे- सूची तैयार कीजिए, बताइये, विवरण दीजिए, पहचानिए, अनुमान लगाइये, विभेद कीजिए, विवेचन कीजिए आदि।

टिप्पणी

2. **विश्लेषण :** यह मध्यम स्तर का मूल्यांकन होता है। इसके अन्तर्गत किसी प्रत्यय का परीक्षण करना और उसे विभिन्न भागों मे विभाजित करना शामिल होता है। विद्यार्थियों को अध्ययन के समय दी गई परिस्थिति के समयरूप परिस्थिति न देकर उसी प्रकार की एक परिस्थिति प्रस्तुत करके उसे विश्लेषित करके उपयुक्त प्रक्रिया का वर्णन अथवा समस्या के हल का आकलन किया जाता है। संक्षेप में इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों को तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों आदि का विश्लेषण, उनके सम्बन्धों का विश्लेषण तथा उनका व्यवस्थित सिद्धान्तों के रूप में विश्लेषण करना होता है। इस ज्ञान के लिए ज्ञान, बोध एवं प्रयोग के उद्देश्यों की प्राप्ति जरूरी है। इसके अन्तर्गत निम्न को शामिल किया जाता है –

- तत्वों को पहचानना एवं विश्लेषण करना
- भागों में व्यवस्थित करना
- छिपे हुए अर्थों को पहचानना
- घटकों को पहचानना
- सम्बन्धों का विश्लेषण करना
- संगठनात्मक प्रनियमों का विश्लेषण

इस स्तर पर विश्लेषण, विभक्त, वर्गीकरण, व्याख्या, व्यवस्थित, तुलना, चयन, अनुमान लगाना आदि प्रश्नों के द्वारा आंकलन किया जाता है।

3. **संश्लेषण :** यह मध्यम स्तर का मूल्यांकन है। विद्यार्थी पहले चार उद्देश्यों की प्राप्ति के बाद प्राप्त ज्ञान आदि तत्वों को नवीन रूप में व्यवस्थित करके एक नयी सम्प्रेषण योजना का प्रारूप तैयार किया जाता है। अर्थात् इसमें सूचना को नवीनतम या अद्वितीय रूप में हल प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया जाता है विद्यार्थियों के समक्ष अद्वितीय रूप में समस्या प्रस्तुत कर उपयुक्त सूचना के प्रयोग द्वारा हल करने की योग्यता का आकलन किया जाता है।

- नवीन विचारों को उत्पन्न करने के लिए नवीन विचारों का प्रयोग करना
- किसी प्रस्तावित कार्यवाही के लिए योजना बनाना
- अमूर्त सम्बन्धों के समुच्चय का निर्माण
- पूर्वानुमान करना और निष्कर्ष निकालना
- दिये गये तथ्यों का सामान्यीकरण करना

निर्मित कीजिए, सामान्यीकृत कीजिए, परिवर्द्धित कीजिए, सृजन कीजिए, सम्मिलित कीजिए, पुन:व्यवस्थित करिए आदि प्रकार के प्रश्नों से आकलन किया जाता है।

4. **मूल्यांकन :** यह उच्चतर स्तर का होता है। किसी भी शिक्षण कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि विद्यार्थी यह निर्णय ले सके कि उन्होंने जो भी अधिगम किया है वह मूल्य की दृष्टि से उपयोगी है। मूल्यांकन के विभिन्न मानकों का प्रयोग करते हुए गुणात्मक एवं मात्रात्मक निर्णय लिए जाते हैं। विद्यार्थियों को समस्या और हल दोनों की सम्मिलित परिस्थिति प्रस्तुत करके हल को तर्कसंगत ठहराने की योग्यता का आकलन किया जाता है।

टिप्पणी

- विचारों में तुलना या विभेद करना
- प्रस्तुतीकरण और सिद्धांतों सद्य के मूल्य का आकलन
- तार्किक आधार पर चयन करना
- साक्ष्य के मूल्य का सत्यापन करना
- आत्मसात को पहचानना
- आकलन, श्रेणी, ग्रेड, निर्णय, परीक्षण, माप, अनुशंसा, सार प्रकार के आधार पर मूल्यांकन करना।

अवबोध और प्रयोग-संज्ञानात्मक स्तर के अवबोध और प्रयोग को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

ज्ञान के बाद निम्न स्तर में पर अवबोध आता है। इसके अन्तर्गत ज्ञान वर्ग में जिन तथ्यों, पदों, परम्पराओं, नियमों, वर्गों आदि का प्रयोग किया जाता है इसमें विद्यार्थी उस प्राप्त ज्ञान को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकता है, बाह्य गणना तथा उल्लेख कर सकता है। ज्ञान के बिना बोध नही होता अत: बोध के लिए ज्ञान होना आवश्यक है।

- एक प्रारूप से दूसरे प्रारूप में अनुवाद करना।
- सूचनाओं को समझना
- अर्थों को आत्मसात करना
- ज्ञान का अनुवाद नवीन सन्दर्भो में करना
- तथ्यों की व्याख्या करना, उनकी तुलना करना और विवेचना करना
- व्यवस्थित करना, समूहबद्ध करना तथा कारणों का पता लगाना
- परिणामों का पूर्व कथन करना।

इसके अन्तर्गत सार कीजिए, वर्णन कीजिए, व्याख्या कीजिए, विभेद कीजिए, विवेचना कीजिए आदि प्रश्न संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

5. **प्रयोग :** किसी भी तथ्य नियम के सिद्धान्त को सामान्यीकरण करने, उनकी कमजोरियों का निदान करने तथा पाठ्यवस्तु का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि पहले उस वस्तु का ज्ञान व बोध होना चाहिए। तब ही विद्यार्थी उचित ढंग से अपनी योग्यतानुसार व्यक्तिगत परिस्थितियों में उस ज्ञान का प्रयोग करते हैं। इसके अन्तर्गत सूचना का नवीन परिस्थितियों में प्रयोग शामिल रहता है। विद्यार्थियों को नवीन परिस्थितियां देकर समस्या का हल करने के लिए अपने ज्ञान का प्रयोग करने का आकलन किया जाता है।

- इसमें सूचनाओं का प्रयोग।
- नवीन परिस्थितियों, विधियों, सिद्धान्तों, प्रत्यायों का प्रयोग करना।
- समस्याओं को वांछित कौशल या ज्ञान का प्रयोग करके हल करना।

इसके अन्तर्गत दर्शाइए, पूर्ण कीजिए, गणना कीजिए, चित्रित कीजिए, वर्गीकृत कीजिए, खोजिए, हल कीजिए, परीक्षण कीजिए आदि प्रश्न संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

2.2.3 चिन्तन कौशल : अभिसरण, अपसरण, आलोचनात्मक तर्क एवं समस्या हल और निर्णय लेना

चिंतन कौशल से अभिप्राय हर सामान्य व्यक्ति में चिंतन करने या सोचने की योग्यता एवं क्षमता से होती है। समय एवं आयु के साथ–साथ यह क्षमता और योग्यता बढ़ती चली जाती है। जीवन के अनुभव जितने अधिक होते जाएंगे, यह भी उतनी ही अधिक होगी। मनुष्य की परिपक्वता और चिंतनशीलता में गहरा संबंध होता है। मनुष्य जितना अधिक परिपक्व होगा, उसमें विचार भी उतने ही अधिक होंगे। चिंतन एक उच्चस्तरीय मानसिक प्रक्रिया है। इसमें स्मृति, कल्पना, समस्या, समाधान आदि प्रक्रिया शामिल होते हैं। अतः चिंतन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसे अधिगमन, स्मृति, कल्पना आदि से जुदा नहीं किया जा सकता है।

बारेन के अनुसार, "चिंतन विचारों से जुड़ी एक प्रक्रिया है। इसकी प्रकृति संकेतात्मक होती है तथा यह एक समस्या या कार्य द्वारा प्रारंभ होती है जिसका व्यक्ति सामना कर रहा होता है। उसमें व्यक्ति कुछ प्रयास एवं भूलें करता है लेकिन वह समस्या के प्रभाव में रहता है और अंत में वह समस्या के समाधान रूपी निष्कर्ष तक पहुंचता है।"

चिंतन समस्या से शुरू होता है तथा समस्या के समाधान के साथ समाप्त होता है। इस दृष्टि से चिंतन समस्या पर निर्भर करता है। भिन्न–भिन्न व्यक्ति समस्या को भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। कुछ लोग समस्या को बड़ी गंभीरता से लेते हैं तथा कुछ हलकेपन से लेते हैं।

रॉस के अनुसार, "चिंतन एक मानसिक क्रिया है जिसका संबंध बौद्धिक तथ्यों या मानसिक क्रिया से मनोवैज्ञानिक विषय के संबंध में होता है।"

गैरेट के अनुसार, "चिंतन एक व्यवहार है जो प्रायः अंतर्निहित और छुपा हुआ होता है और जिसमें संकेत (कल्पना, विचार, संप्रत्यय) साधारणतः निहित होते हैं।"

वैलेन्टाइन के अनुसार, "दृढ़ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में चिंतन को एक क्रिया के रूप में रखा गया है जिसमें विचार या तारतम्य आवश्यक रूप से जुड़ा होता है जो किसी उद्देश्य या लक्ष्य की ओर निर्देशित होते हैं।"

गिल्मर के अनुसार, "चिंतन समस्या समाधान प्रक्रिया है जिसमें हम स्पष्ट क्रिया के स्थान पर विचार या संकेतों का प्रयोग करते हैं।"

किसी भी गहन चिंतन के लिए निम्न विशेषताएं होनी चाहिए–

1. गहन विचारों या चिंतन से स्वीकार्य दृष्टांत देना संभव होता है।
2. गहन चिंतन से तथ्यों के आधार पर पूर्वकल्पनाएं संभव हैं।
3. गहन चिंतन पूर्वकल्पनाओं के निष्पक्ष परीक्षण में सहायक होते हैं।
4. सही और पूर्ण विचार भी गहन चिंतन की विशेषता होते हैं।
5. समस्या से जुड़े सभी तथ्य चिंतन के विकास के सहायक होते हैं।
6. गहन सामान्यीकरण गहन चिंतन का परिणाम होता है।

श्रेष्ठ चिंतनशील व्यक्ति की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित होती हैं–

टिप्पणी

1. वह एक सही व्यक्ति होता है।
2. वह सदा सत्य खोजने को इच्छुक रहता है।
3. उसमें किसी प्रकार की चालाकी नहीं होती। वह जो कुछ भी सोचता या करता है, सब सही होता है।
4. वह ध्यान केंद्रित करने में सक्षम होता है।
5. वह सदा शब्द भंडार विकसित करने हेतु प्रयत्नशील रहता है।
6. उसका चिंतन द्वेष–रहित होता है।
7. वह अपनी भाषा को विकसित करने में लगा रहता है।

चिंतन कौशल की प्रकृति एवं विशेषताएं

निम्नलिखित विशेषताएं चिंतन कौशल की प्रकृति को स्पष्ट करती हैं–

1. चिंतन एक बौद्धिक प्रक्रिया मानी जाती है।
2. चिंतन निरंतर होता रहता है।
3. चिंतन कभी ठीक होता है तथा कभी त्रुटिपूर्ण भी हो सकता है।
4. चिंतन प्रक्रिया के दौरान सक्रिय क्रियाओं को रोकना पड़ता है।
5. चिंतन की अभिव्यक्ति केवल बोल कर ही की जाती है यह अशाब्दिक नहीं होती।
6. चिंतन का विकास सामाजिक परिस्थितियों में होता है।
7. चिंतन किसी अवधारणा या संप्रत्यय के बिना संभव नहीं होता।
8. चिंतन में वस्तु की अपेक्षा प्रतीकों का प्रयोग होता है।
9. चिंतन कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्देशित होता है।
10. चिंतन किसी व्यक्ति की समस्या समाधान प्रकृति होती है।
11. यह आंतरिक बौद्धिक व्यवहार है अर्थात सब कुछ व्यक्ति के मस्तिष्क के अंदर ही घटित होता है।
12. लाभदायक चिंतन सभी को अच्छे लगते हैं, क्योंकि वे समस्या समाधान पर केंद्रित होते हैं।
13. चिंतन में अभिव्यक्ति मूक होती है लेकिन गहन चिंतन के दौरान हाव–भाव देखे जा सकते हैं।

चिंतन के प्रकार एवं प्रक्रिया

चिंतन के प्रकार विभिन्न होते हैं जो कि निम्नलिखित बातों पर निर्भर करते हैं–

1. चिंतन का विशिष्ट या सामान्य होना।
2. चिंतन का उच्च्च स्वर में या मूक होना।
3. चिंतन नियत या अनियत होना।

चिंतन प्रक्रिया

चिंतन की प्रक्रिया निम्न प्रकार की हो सकती है–

टिप्पणी

1. यथार्थ या मूर्त चिंतन
2. चिंतनशील सोच
3. आत्मकेंद्रित चिंतन
4. सारभूत या अमूर्त चिंतन
5. आलोचनात्मक चिंतन
6. सृजनात्मक चिंतन।

1. **यथार्थ या मूर्त चिंतन** : इस प्रकार का चिंतन का आधार मूर्त होता है। यह चिंतन विकसित हो रहे बच्चों के लिए बहुत लाभदायक होता है। इस प्रकार के चिंतन पर निर्भर करके चिंतन की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाते हैं। यदि एक बार विचार करने की आदत बन जाए तो यह आदत भविष्य में बहुत सहायता देती है। यह सोचने की सबसे सरल पद्धति है। इस प्रकार के विचार को इंद्रियगम्य विचार कहते हैं। इसमें चिंतनकर्ता अपने अनुभवों के अनुसार अपनी संवेदनाओं की व्याख्या कर सकता है।

2. **चिंतनशील सोच** : इस प्रकार की सोच को तर्कशील सोच भी कहा जा सकता है। आमतौर पर ऐसे चिंतन का लक्ष्य समस्या के समाधान को ढूंढ़ना होता है। इस प्रकार के चिंतन द्वारा कठिन से कठिन समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। जो व्यक्ति चिंतनशील होता है वह समस्या समाधान की नई–नई विधियों की खोज करने में लगा रहता है। वह विभिन्न रुकावटों को दूर करने में व्यस्त रहता है। इस प्रकार के चिंतन में चिंतनकर्ता का अंतःकरण और तर्क दोनों ही सक्रिय होते हैं।

3. **आत्मकेंद्रित चिंतन** : यौवनकाल में हर युवा एक विशेष प्रकार का व्यवहार करता है। युवा लड़के और लड़कियां एक ऐसे संसार में रहते हैं जो वास्तविक संसार से कोसों दूर होता है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि ऐसा व्यवहार फिल्मों और उपन्यासों के प्रभाव के कारण ही होता है। उनकी विचार शक्ति भी बिल्कुल अलग होती है। उनके चिंतन में रूढ़ियों, रिवाजों या समाज के नियमों का कोई स्थान नहीं होता तथा वे इनकी परवाह भी नहीं करते। सामाजिक रिवाजों के विरुद्ध वे अपनी आवाज बुलंद करते हैं। उनके सोचने के ढंग को ही 'आत्मकेंद्रित चिंतन' कहा जाता है। अतः आत्मकेंद्रित विचार का अर्थ हुआ– केवल अपने बारे में सोचना और दूसरों की परवाह न करना। ऐसे चिंतनकर्ता समाज की परवाह नहीं करते। वे दूसरों द्वारा की गई आलोचना की परवाह भी नहीं करते। इस प्रकार का चिंतन असाधारण प्रकृति का होता है। इस प्रकार का चिंतन सामान्यतः दिवास्वप्न देखने वालों में होता है। आत्मकेंद्रित चिंतन वाले व्यक्ति में 'असामान्यता' के लक्षण होते हैं। अतः आत्मकेंद्रित चिंतनकर्ता के निम्न लक्षण पाए जाते हैं–

   (क) वे स्वयं के बारे में सोचते हैं।

   (ख) वे दूसरों की परवाह नहीं करते।

   (ग) वे समाज की परवाह नहीं करते।

टिप्पणी

(घ) वे दूसरों की आलोचना की भी परवाह नहीं करते।

(ङ) ऐसे व्यक्ति असामान्य होते हैं।

(च) ऐसे व्यक्ति दिवास्वप्न देखते हैं।

4. **सारभूत या अमूर्त चिंतन** : इस प्रकार के चिंतन में वास्तविक वस्तुएं या घटनाएं आधार नहीं होतीं। यथार्थ विचार के साथ इसकी तुलना करने पर यह अधिक श्रेष्ठ है। एक व्यक्ति जिसका भाषा पर अच्छा अधिकार होता है वही अच्छे ढंग से सारभूत या अमूर्त चिंतन कर सकता है। इसे धारणागत या संप्रत्यात्मक चिंतन भी कहते हैं।

इस प्रकार का चिंतन स्पष्ट बोध या समय में सहायक होता है। यह आविष्कार और खोज में सहायक होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि–

(क) सारभूत या अमूर्त चिंतन यथार्थ की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है।

(ख) ये स्पष्ट समझ में सहायक होते हैं।

(ग) यह चिंतन खोज और आविष्कार में सहायक होता है।

(घ) यह चिंतन वास्तविक घटनाओं या वस्तुओं पर आधारित नहीं होता।

5. **आलोचनात्मक चिंतन** : यह एक चुनौतीपूर्ण चिंतन प्रक्रिया होती है। इसमें व्यक्तिगत विश्वासों, विचारधारा और पूर्वाग्रहों आदि को एक तरफ रखकर सच्चाई की खोज की जाती है। इसमें एकत्रित की गई या संप्रेषित सूचना की व्याख्या, विश्लेषण, मूल्यांकन और निष्कर्ष निकालने वाली उच्च ज्ञानात्मक योग्यताएं और कौशल सक्रिय होते हैं। इस प्रकार के चिंतन के परिणामस्वरूप उद्देश्यपूर्ण और निष्पक्ष निर्णय प्राप्त होते हैं।

6. **सृजनात्मक चिंतन** : सृजनात्मक चिंतन में कुछ नया सृजन किया जाता है। इस प्रकार के चिंतनकर्ता द्वारा नए संबंध और नए सहयोगियों को दर्शाया जाता है। इस प्रकार के चिंतन का परिणाम वैज्ञानिक खोज होता है। इस प्रकार का चिंतन सर्वोत्तम माना जाता है। सृजनात्मकता व्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता मानी जाती है। हर प्रकार का वैज्ञानिक ज्ञान सृजनात्मक चिंतन पर आधारित होता है। सृजनात्मक चिंतन के निम्नलिखित स्तर होते हैं–

(क) **तैयारी** : सर्वप्रथम समस्या से संबंधित तथ्य एकत्रित किए जाते हैं। निरर्थक और अवांछनीय वस्तुओं को हटा दिया जाता है।

(ख) **विचारमंथन** : सचेतक मस्तिष्क उन तथ्यों पर मंथन करता है। इस प्रकार विचार तथा एकाग्रता का अच्छा व्यवहार होता है।

(ग) **ज्ञानबोध** : तथ्यों पर विचार करने से व्यक्ति में उत्साह आता है। विचारकर्ता कई स्रोतों से प्रेरणा लेता है। इससे वह मौलिक चिंतक बन जाता है। यह ज्ञानबोध की स्थिति कहलाती है।

(घ) **जांच–पड़ताल** : काल्पनिक चिंतन या सोच की जांच–पड़ताल भी अवश्य होनी चाहिए। ज्ञानबोध के अंतर्गत विचारों की जांच–पड़ताल अवश्य होनी चाहिए। ऐसी जांच–पड़ताल चिंतन या विचारों की प्रामाणिकता को सुनिश्चित करती है।

टिप्पणी

चिंतन के विभिन्न उपकरण

चिंतन की प्रक्रिया को प्रेरित करने के लिए कई चीजें उत्तरदायी होती हैं। चिंतन की प्रक्रिया के प्रारंभिक स्तर पर कौन–सी चीज प्रेरक एवं सहायक होती है? हमें चिंतन के लिए कौन–कौन से कारक मजबूर करते हैं? यह सब कुछ जानना अति आवश्यक है। निम्नलिखित कुछ उपकरण ऐसे हैं जो चिंतन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं–

- **भाषा** : चिंतन प्रक्रिया में भाषा विशेष रूप से सहायक होती है। यह मूक अभिव्यक्ति को स्मरण करने में सहायता करती है। जब भी हम अकेले होते हैं या सामाजिक समूह में, भाषा हमें सोचने में सहायता करती है। एकांत में, जब हम सोचते हैं यह पुनरावृत्ति हो सकती है परंतु इसमें भाषा प्रयोग की जाती है। सामाजिक स्थितियों में वाद–विवाद या सामाजिक प्रतिक्रिया होती है और वहां हमारी सोच भाषा की सहायता से विकसित होती है। इस प्रकार विचार–प्रक्रिया में भाषा एक अच्छा उपकरण है।

  भाषा की सहायता से ही व्यक्ति के विचारों को स्पष्टता मिलती है तथा उसी भाषा से वह अपने साथियों से बातचीत करने के योग्य होता है। लोग अपने विचारों को भाषा के माध्यम से संचित कर सकते हैं।

  लेकिन कई बार भाषा के इस उपकरण का दुरुपयोग भी हो सकता है। अस्पष्ट भाषा के प्रयोग के दौरान कई बार व्यक्ति गलत अर्थ भी निकाल लेता है तथा हमारा चिंतन भी त्रुटिपूर्ण होने लगता है।

- **फार्मूले** : चिंतन की प्रक्रिया में विभिन्न फार्मूले महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि हम किसी भी फार्मूले को देखें तो वह बहुत ही छोटा दिखाई देता है लेकिन वास्तविकता यह होती है कि उसमें बहुत कुछ छुपा होता है। विज्ञान तथा गणित के क्षेत्र में ये फार्मूले ही लाभकारी होते हैं। जैसे पानी का फार्मूला है H_2O तथा ऑक्सीजन का फार्मूला O_2 है। अर्थात कहने का अभिप्राय है कि दो अणुओं, हाईड्रोजन और ऑक्सीजन के मिलने से पानी बनता है।

- **शब्द और प्रतीक** : शब्द कुछ निश्चित पदार्थों के लिए निर्धारित किए हुए होते हैं। उस स्थिति में वे शब्द प्रतीक का कार्य करते हैं तथा उस पदार्थ का प्रतिनिधित्व करते हैं। विभिन्न शब्द और प्रतीक चिंतन को विकसित करते हैं। विभिन्न शब्द खुशी, दुख, हैरानी आदि अनुभवों की अभिव्यक्ति होते हैं– जैसे खुशी के लिए 'हुर्रा', दुख के लिए 'ओह', हैरानी के लिए 'आह!' इत्यादि। इन शब्दों को देखने से या सुन लेने से ही हमारा चिंतन प्रारंभ होने लगता है।

- **हमारे प्रत्यक्षीकरण** : हमारा प्रत्यक्षीकरण हमारे चिंतन को प्रेरित करता है। हम जो–जो आंखों से देखते हैं उसके बाद के प्रभाव हमारे ऊपर रहते हैं। उदाहरणार्थ हम जैसे ही किसी बच्चे को कोई गलत कार्य करते हुए देखते हैं, उसी क्षण हमारा चिंतन शुरू हो जाता है। हम यह सोचना शुरू कर देते हैं कि उस बच्चे को गलत कार्य करने से रोका जाए। यदि हम प्रतिक्रिया नहीं करते और बच्चे को उसी समय नहीं मना करते तो ये प्रत्यक्षीकरण बाद में मस्तिष्क को कुछ चिंतन करने के लिए बाध्य करेंगे। तब उस बच्चे के सुधार के उपायों पर चिंतन हो सकता है। इस प्रकार हमारे प्रत्यक्षीकरण का हमारे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ता है। ये प्रत्यक्षीकरण निरंतर हमारा पीछा करते हैं। अतः जो कुछ भी

हमने अपनी अपनी आंखों से देखा या कानों से सुना होता है, वह सभी कुछ प्रत्यक्षीकरणों और कल्पनाओं के साथ हमारा पीछा करता है।

- **चिह्न** : प्रतीक और चिह्न आपस में संबंधित होते हैं। हमारी दैनिक स्थितियों में विभिन्न प्रकार के प्रतीक अधिकतर चिह्नों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ खेल के मैदान में बड़ी सीटी हमें रैफरी की उपस्थिति का आभास कराती है। इसी प्रकार घर के अंदर जब हम बैठे होते हैं तो बाहर कार का हॉर्न किसी कार की उपस्थिति का आभास कराता है। चौराहे पर लाल बत्ती या हरी बत्ती, रेलवे का सिग्नल (ऊपर या नीचे) आदि चिह्न गाड़ी के छूटने या रुकने का संदेश देते हैं। इसी प्रकार झंडों या नारों का प्रयोग प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के लिए होते हैं। ये सभी चिह्न हमारे चिंतन को अभिप्रेरित करते रहते हैं।
- **संप्रत्यय और सिद्धांत** : संप्रत्यय किसी पदार्थ या वस्तु की सामान्यीकृत अवस्था होती है। संप्रत्यय के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण किया जाता है। संप्रत्यय हमें वस्तुओं के सामान्य रूप और उसके गुणों आदि का ज्ञान करवाते हैं। ये सभी वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुणों का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार संप्रत्यय चिंतन की प्रक्रिया में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमारे ज्ञान–संग्रह में संप्रत्यय और सिद्धांत चिंतन के उपकरणों के रूप में प्रयुक्त होते हैं। किसी भी समस्यात्मक स्थिति में हम प्रायः सिद्धांतों को याद करते हैं। उन सिद्धांतों को प्रयुक्त करके हमारा चिंतन सही दिशा की ओर अग्रसर होने लगता है तथा समस्या का समाधान सहज ही उपलब्ध हो जाता है। इससे समय और शक्ति की भी बचत होती है।
- **वस्तु चित्र** : चिंतन प्रक्रिया विभिन्न वस्तु चित्रों से भी अभिप्रेरित होती रहती है। कभी–कभी तो साधारण सा चित्र भी देख लेने से आश्चर्यजनक विचार मस्तिष्क में उत्पन्न होने लगते हैं। उदाहरणार्थ घर का निर्माण करते समय घर का नक्शा हमें नए–नए विचार प्रदान करके हमारे चिंतन को प्रेरित करता है। इससे कई बार समय, धन एवं शक्ति की भी बचत होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चिंतकों के पास उपलब्ध विभिन्न उपकरणों के प्रयोग से चिंतन प्रक्रिया को बल मिलता है तथा चिंतन प्रक्रिया सही दिशा की ओर चलने लगती है।

उचित चिंतन के कारक

हर व्यक्ति चिंतनशील होता है लेकिन चिंतन की प्रकृति दोष रहित एवं तर्कपूर्ण होनी चाहिए। इसके लिए उचित चिंतन का विकास आवश्यक है। उचित चिंतन के विकास के लिए कुछ कारक उत्तरदायी होते हैं जो कि निम्नलिखित हैं–

1. **सचेतनता** : अच्छे चिंतन के लिए सचेतन मस्तिष्क आवश्यक होता है। सचेतन बुद्धि क्षण भर के लिए भी असावधान नहीं रहती। सचेतनता व्यक्ति को अच्छे मन से सोचने की अनुमति भी नहीं देती। यह विचार को क्षण भर के लिए भी पथभ्रष्ट होने से रोकती है। अतः सचेतनता का होना उचित चिंतन के लिए अति आवश्यक है।

2. **समय का लचीलापन** : चिंतन प्रक्रिया के दौरान समय सीमा नहीं होनी चाहिए। मान लीजिए किसी को एक समस्या के समाधान के बारे में विचार करना है और हम उसे केवल इतने समय तक सोचने के लिए कहते हैं। कठोरता से दिया गया समय उसके सही और स्पष्ट चिंतन में बाधक होगा। समय को सीमित कर देने से मानसिक शक्ति कार्य करना बंद कर देती है। यह कार्य धीमा हो जाता है। परिणामस्वरूप वे व्यक्ति असामान्य हो जाते हैं।
3. **अंतर्दृष्टि** : जो व्यक्ति समग्रता में अंतर्दृष्टि रखते हैं वे व्यक्ति अधिक से अधिक चिंतन करने में सक्षम माने जाते हैं अर्थात उनका चिंतन बहुत ही उच्च कोटि का तथा तर्कपूर्ण होता है।
4. **मनोयोग या ध्यान** : जो भी कारक किसी व्यक्ति को पूरी तरह से एकाग्र कर देता है उसी की तरफ उस व्यक्ति का पूरा ध्यान जाता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक हो जाता है कि तब वह चीज महत्वपूर्ण लगने लगती है। यदि एक समस्या चिंतन के ध्यान को अधिक आकर्षित करती है तो उसे समस्या का ध्यान भी अवश्य ही प्राप्त होगा। ध्यान और प्रतिक्रिया दोनों साथ–साथ चलते हैं। वे अच्छे और सही चिंतन के अनुकूल होते हैं।
5. **मंथन** : कई बार सही चिंतन के लिए मंथन क्रिया भी सहायक होती है। कई बार ऐसा होता है कि एक व्यक्ति समस्या समाधान के विषय में सोचता है। वह अपनी पूरी क्षमता उसमें झोंक देता है किंतु समाधान दिखाई नहीं देता। ऐसी स्थिति में यह सही होता है कि उसे त्याग दिया जाए और फिर व्यक्ति को कुछ और प्रारंभ करना चाहिए। कुछ समय बाद जब समस्या को दोबारा लिया जाता है तब उस समस्या का समाधान अकस्मात ही मस्तिष्क में आ सकता है। कुछ व्यक्ति कामचोर भी होते हैं। इस आदत के अधीन यदि कोई व्यक्ति काम छोड़ देता है तो वैसा मंथन व्यर्थ होता है।
6. **अभिप्रेरणा** : उचित और सही चिंतन के लिए अभिप्रेरणा का होना अति आवश्यक है। चिंतन में समस्या का समाधान निहित होता है। अभिप्रेरणा जितनी अधिक होगी, अच्छे समाधान की आशा उतनी अधिक रहती है। अभिप्रेरणा चिंतक के विचार करने तथा समस्या समाधान में पूरे उत्साह के साथ निरंतर प्रयास करने में सहायक रहती है। पूर्ण अभिप्रेरणा के अंतर्गत व्यक्ति को थकान भी न के बराबर ही होती है।
7. **बुद्धि एवं विवेक** : प्रायः बुद्धिमान व्यक्ति सही चिंतक माने जाते हैं तथा सही ढंग से सोचने में सक्षम होते हैं। वे चिंतन के लिए उचित बिंदुओं की पहचान कर लेने में सक्षम होते हैं। बुद्धिमान और विवेकशील चिंतक का चिंतन सही और धारा–प्रवाह होता है। इस प्रकार के व्यक्ति की बौद्धिक योग्यता पूरी तरह विकसित दिखती है। अतः व्यक्ति जितना अधिक बुद्धिमान होगा उसमें उतनी ही चिंतन की क्षमता अधिक होगी।

चिंतन अवरोधक कारक

जहां कुछ कारक चिंतन की प्रक्रिया को अभिप्रेरित करने में सहायक होते हैं वहीं कुछ ऐसे कारक भी हैं जो चिंतन प्रक्रिया में रुकावट डालते हैं। ऐसे कारक निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. **सुझाव** : कई बार दूसरे व्यक्ति के सुझाव किसी व्यक्ति की विचारधारा में रुकावट पैदा करते हैं। किसी प्रकार के भी सुझाव हों सही या गलत, विचार प्रक्रिया में बाधक का कार्य करते हैं। ये विचार प्रक्रिया को अस्वाभाविक बनाते हैं। प्रस्तुत सुझावों के प्रभाव में आकर व्यक्ति उनके पक्ष में हो जाता है और सुझावों के बारे में ही सोचना शुरू कर देता है। लेकिन ऐसा चिंतन निरंतर नहीं होता। व्यक्ति को इसके लिए निरंतर प्रयास करना चाहिए ताकि वह एकनिष्ठ चिंतन कर सके।
2. **अंधविश्वास** : अंधविश्वास तर्क या बौद्धिकता के समर्थक नहीं होते। अंधविश्वासी व्यक्ति पहले से ही कुछ राय बना लेता है तथा उसका दृढ़ता से पालन करता है। वह नए दृष्टिकोण को अपनाने का साहस ही नहीं जुटा पाता। तब यह स्वाभाविक हो जाता है कि अंधविश्वासी व्यक्ति अच्छा चिंतक नहीं बन सकता। अच्छा चिंतक पूर्ण रूप से मौलिक हो जाता है। उसका चिंतन सदा ताजा और नवीन होता है।
3. **दोषपूर्ण व्यक्तित्व** : प्रायः सामान्य व्यक्ति ही सही चिंतन करने में सक्षम होता है। यदि किसी व्यक्ति के साथ कुछ असामान्यता होती है तो वह सही चिंतन नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति में उत्तम मानवीय गुण की उपस्थिति होती है वह अच्छे व्यक्तित्व का मालिक होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी सही सोच या चिंतन के द्वारा समस्याओं का समाधान ढूंढ सकता है। दोषपूर्ण व्यक्तित्व तर्कपूर्ण एवं सही चिंतन में बाधा डालता है।
4. **पक्षपात और पूर्वाग्रह** : जिस व्यक्ति में पक्षपात और पूर्वाग्रह होते हैं वह सही चिंतन की कल्पना भी नहीं कर सकता। मान लो कोई व्यक्ति किसी समस्या पर विचार करता है। वह सोचना शुरू करता है किंतु उसके मन में उस समस्या के बारे में पहले से ही पूर्वाग्रह मौजूद होते हैं। तब ऐसी स्थिति में वह सही चिंतन से भटक जाता है। उसका चिंतन निष्पक्ष नहीं रहता। स्वाभाविक है कि तब वह समस्या समाधान के अपने कर्तव्य को पूरा करने में असफल होगा। सही सोच के लिए निष्पक्षता एवं पूर्वाग्रहों से मुक्ति आवश्यक होती है।
5. **संवेग** : व्यक्ति के संवेग व्यक्ति के व्यवहार को बहुत प्रभावित करते हैं। कई बार अवांछित संवेग अवरोधक का कार्य करते हैं। जब भी कोई व्यक्ति संवेगात्मक स्थिति में होता है तो उसकी सामान्य बुद्धि भी प्रभावित होती है। यह स्थिति उसके चिंतन में रुकावट डालती है। उत्तेजना के क्षणों में व्यक्ति बुद्धिमत्तापूर्वक सोच ही नहीं सकता। सही चिंतन तभी हो सकता है जब व्यक्ति सामान्य स्थिति में होता है और उसका व्यवहार सामान्य होता है तथा जब वह संवेगों से मुक्त होता है।

गिलफोर्ड Guilford ने चिन्तन सम्बन्धी विचारों का वर्णन करते हुए समस्या के हल सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत किया है। गिलफोर्ड ने पांच बौद्धिक प्रक्रियाओं को सुझाया है जो इस प्रकार हैं–

• **अभिसरण चिन्तन :** जब हमें उपलब्ध सूचना (ज्ञान) एक सही उत्तर की और ले जाती है या ऐसे उत्तर की ओर अग्रसर करती है जो सर्वोत्तम हो या परम्परागत हो तो हम अभिसरण चिन्तन का प्रयोग करते हैं।

• **अभिसारी चिंतन :** चिंतन की सर्वप्रथम व्याख्या पॉल गिलफर्ड ने की थी। अभिसारी चिंतन में किसी मानक प्रश्न का उत्तर देने में किसी सृजनात्मक योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है। इसका प्रयोग विद्यालय में होने वाले अधिकांश कार्यों, बुद्धि आदि के परीक्षण में बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर देने में होता है। इस प्रकार के चिंतन में व्यक्ति एक पदानुक्रमिक ढंग से अनुसरण करते हुए चिंतन करता है। वस्तुतः यह चिंतन परंपरागत प्रकार की क्रमबद्ध विचार प्रक्रिया का परिणाम होता है। इसके द्वारा व्यक्ति अपनी समस्याओं के समाधान खोजने का प्रयास करता है।

• **अपसरण चिन्तन :** अपसरण चिन्तन के अन्तर्गत विभिन्न दिशाओं की ओर विचार किया जाता है। कभी कुछ खोज करते हैं और कभी विविधता की खोज की जाती है। एक नवीन अथवा जो आमतौर पर अस्वीकृत हो, ऐसे उत्तरों की खोज निकालने को गिलफोर्ड ने अपसरण चिन्तन कह कर पुकारा है। अन्य लोग इसे सृजनात्मक चिन्तन, कल्पनात्मक चिन्तन या मौलिक चिन्तन भी कहते हैं।

किसी समस्या के विभिन्न समाधनों या कार्य को करने के विभिन्न प्रयत्नों में से किसी एक उत्तम समाधन या प्रयत्न को चुना जाना अपसरण चिंतन कहलाता है। यह अभिसारी चिंतन के विपरीत होता है क्योंकि अभिसारी चिंतन में किसी समस्या का समाधान निश्चित संख्या में समाधन उपस्थित होते हैं जबकि अपसरण चिंतन में विभिन्न प्रकार के अनेक समाधन होते हैं। अपसरण चिंतन में सृजनात्मक तथा खुले प्रकार के प्रश्न तथा सृजनात्मकता सम्मिलित होती है।

आलोचनात्मक चिंतन : आलोचनात्मक चिंतन अधिगम के सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। आलोचनात्मक चिंतन की आवश्यकता विश्लेषण और तर्क के क्षेत्र में चिंतन के स्तर को बढ़ाने के लिए होती है। यह समाज की वर्तमान समस्याओं को समझने में शिक्षार्थी की मदद करता है और उनका न्यायपूर्ण ढंग से विश्लेषण करने में सहायता करता है। किसी वस्तु या तथ्य की सच्चाई को स्वीकार करने से पहले उसके गुण व दोष को पूरी तरह से परख लेना ही आलोचनात्मक चिंतन कहलाता है।

आलोचनात्मक चिंतन की परिभाषा

रॉबर्ट एनिस के अनुसार, "आलोचनात्मक चिंतन क्या करना है या किस पर विश्वास करना है का कारण युक्त तथा प्रभावी चिंतन है।"

"यह किसी उत्तर या निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए सक्रिय रूप से और कुशलतापूर्वक संकल्पना, आवेदन, विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन करने की प्रक्रिया है।"

इस तरह से कह सकते हैं कि आलोचनात्मक चिंतन एक स्व-निर्देशित प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम उच्चतम गुणवत्ता पर विचार करने के लिए विचारात्मक कदम उठाते हैं।

आलोचनात्मक चिंतन की विशेषताएं : आलोचनात्मक चिंतन की विशेषताओं को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

1. आलोचनात्मक चिंतन शिक्षण की सबसे महत्वपूर्ण विचारधरा का चयन करके शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में सहायता करता है।

टिप्पणी

2. यह छात्रों द्वारा कक्षा में तर्क देने और सबसे प्रांसगिक विचारधरा को अपनाने में सहायता करता है।
3. यह किसी विशेष वस्तु या तथ्य के गुण व दोषों पर विचार करता है। इस प्रकार यह निर्णय को तर्कसंगत बनाता है।
4. आलोचनात्मक चिंतन किसी विशेष समस्या के बारे में कारण और प्रभाव संबंध विकसित करने में शिक्षार्थी की मदद करता है जिसके कारण शिक्षार्थी में वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न होता है।
5. यह व्यक्तिगत क्षमता तथा विविधता पर आधरित होता है।
6. यह निष्पक्षता को दर्शाते हैं। इसके अंतर्गत गुण व दोषों का निष्पक्ष मूल्यांकन किया जाता है।
7. आलोचनात्मक चिंतन में कार्य, कारण तथा संबंध का विशेष महत्व होता है।

आलोचनात्मक चिंतन का महत्व : आलोचनात्मक चिंतन के महत्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. आलोचनात्मक चिंतन व्यक्तित्व के निर्माण तथा उसके विकास के लिए आवश्यक होता है।
2. वैज्ञानिक चिंतन तथा तार्किक चिंतन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
3. आलोचनात्मक चिंतन भाषा चिंतन, कौशल चिंतन तथा सहकारी अधिगम कौशल के विकास में सहायक है।
4. आलोचनात्मक चिंतन शिक्षार्थी के अच्छे या तर्कसंगत निर्णय लेने और गलत निर्णय को अस्वीकार करने में मदद करता है।
5. यह शिक्षार्थियों के विश्वास को समझने और मूल्यांकन करने में सहायता करता है।
6. वैज्ञानिक चिंतन तथा तार्किक चिंतन में आलोचनात्मक चिंतन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
7. आलोचनात्मक चिंतन शिक्षार्थी को अवधरणाओं, अनुप्रयोगों और विचारों का विस्तार करने में मदद करता है।

शिक्षक की भूमिका : छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन को बढ़ावा देने में शिक्षक की निम्न भूमिका होती है–

1. छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन को विकसित करने के लिए एक शिक्षक को अधिक से अधिक अवसर प्रदान करने चाहिए।
2. रचनात्मक लेखन, क्षेत्रीय यात्रा, सर्वेक्षण, चर्चा, बहस आदि का आयोजन शिक्षक को समय-समय में करवाते रहना चाहिए।
3. छात्रों को तर्क करने का अवसर प्रदान करना चाहिए।
4. तर्क के बाद छात्रों की समस्या का समाधन करने में उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।
5. शिक्षक को कक्षाओं में विविधता और बहुलता बनाए रखने की सदैव कोशिश करनी चाहिए।

टिप्पणी

छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन विकसित करने की गतिविधियां : छात्रों में आलोचनात्मक चिंतन को विकसित करने की गतिविधियां निम्नलिखित हैं–

1. शिक्षक को तर्क पर आधरित विधियों के बजाय शिक्षण की अवलोकन विधि पर ध्यान देना चाहिए।
2. शिक्षक को छात्रों के अंदर जोखिम लेने की भावना को विकसित करना चाहिए। यह छात्रों को आत्म–जागरूक बनाती है।
3. यदि छात्र विचार, अवधरणा या समस्या का समाधन आदि को नियोजित करने में असफल हो जाता है तो शिक्षक को उनकी असफलता पर भी प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्हें फिर से कार्य करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

• **समस्या हल :** तर्क, युक्तिसंगत तथा नियमित चिन्तन का ही एक रूप है जिसकी सामग्री पूर्व के पुन:स्मरण किये हुए अनुभव हैं। अधिगम और तर्क में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि दोनों ही समस्या का समाधान करने के महत्वपूर्ण साधन हैं।

तर्क शक्ति क्रमश: धीरे-धीरे विकसित होती है। इसका उद्भव/प्रादुर्भाव अचानक नहीं होता है। बालकों विद्यालय में जाने से पूर्व की अवस्था में समस्याओं को सुलझा सकने की क्षमता होती है। लेकिन बालकों और वयस्कों की समस्या के समाधान में अन्तर होता है वयस्क बालकों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से समस्या हल कर सकते हैं । अत: दोनों की समस्या समाधान में केवल मात्रा का अन्तर होता है ढंग का नहीं अर्थात् समस्या का समाधान किस प्रकार से किया जाना है इसमें कोई अन्तर नहीं होता है।

समस्या हल के चरण : डीवी(Deway)ने तर्कपूर्ण चिन्तन के लिए निम्नांकित उपाय सुझाये हैं-

1. **कठिनाई का अनुभव करना :** सबसे पहले समस्या को हल करने वाला समस्या से परिचित होता है। वह उसके लक्ष्यों के सम्बन्ध में विचार करके उद्देश्यों को निर्धारित करता है। वह समस्या हल करने में आने वाली कठिनाइयों और निर्देशों के सम्बन्ध में विचार करता है। वह दीर्घकालीन स्मृति से प्रासंगिक सूचना का प्रतिउत्पादन करता है या कार्य के सम्बन्ध में अतिरिक्त सूचना संकलित करता है।
2. **कठिनाई का निर्धारण करना :** समस्या की पहचान करने के पश्चात उस समस्या को समझना होता है। उसे अन्य समस्याओं से अलग करके उसकी भली प्रकार से व्याख्या करनी चाहिए। समस्या के महत्वपूर्ण अवयवों के बारे में जानकारी रखना, सफल चिन्तन की कुंजी माना जाता है। समस्या को भली प्रकार समझने के बाद उसका हल करने में काफी सहायता मिलती है।
3. **सूचना को ढूंढ़ना, व्यवस्थित करना, उसका मूल्यांकन निर्धारित करना तथा प्रदत्तों का वर्गीकरण करना :** समस्या को समझने के बाद समस्या का सम्भावित हल प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को पर्याप्त सूचनाओं की आवश्यकता होती है। यदि पर्याप्त सूचनाएं नही होती हैं तो समस्या से सम्बन्धित सूचनाओं को खोजा जाता है। पर्याप्त सूचनाएं प्राप्त करने के बाद उन्हें व्यवस्थित करके उनका मूल्य निर्धारण किया जाता है जो सूचनाएं एकत्रित की गयी है उनका वर्गीकरण किया जाना आवश्यक होता है।

टिप्पणी

4. **उपकल्पना का मूल्य-निर्धारण करना :** समस्या के लिए परिकल्पना का निर्धारण किया जाता है। उपकल्पना के मूल्य का निर्धारण करते समय इन तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए -
   (1) क्या प्राप्त निष्कर्ष द्वारा समस्या का पूर्ण हल प्राप्त हो जाता है।
   (2) क्या प्राप्त हल पूर्व में स्थापित तथ्यों और सिद्धान्तों के अनुकूल है?
   (3) उन नकारात्मक कारकों को दृष्टि में रखना चाहिए जिनके कारण निष्कर्ष पर सन्देह हो सकता है।
5. **समाधान को प्रयोग में लाना :** समस्या का हल प्राप्त करने लेने मात्र से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है। बल्कि समस्या के लिए प्राप्त हल का प्रयोग करने पर ही समस्या के हल का वास्तविक उद्देश्य पूरा होता है।

• **निर्णय लेना :** समस्या के हल के उपरोक्त चरणों की पूर्ति हो जाने पर और यह स्पष्ट हो जाने पर कि कारक किस प्रकार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, और चित्रणों की सहायता से समस्या की जटिलता को सरलीकृत कर लिया जाता है तब निर्णय लेने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। निर्णय कैसे लिया जाय? हमारा निर्णय कितना अच्छा है? आदि प्रश्न निर्णय लेते समय उठते हैं।

निर्णय लेने में उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर तथा उनकी गुणवत्ता का आकलन अनेक प्रारूपों के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से किया गया है-

1. व्रूम-येटन-जागो (Vroom-Yetton-Jago)का निर्णय मॉडल- जो यह बताता है कि निर्णय कैसे लिया जाए।
2. केपनर-ट्रेगो मेट्रिक्स (Kepner-Tregoe Matrix)-जोखिम आकलन निर्णय।
3. औडा-लूप्स (OODA LOOPS)-निर्णय चक्र को समझने का प्रारूप।
4. मुख्य निर्णय प्रक्रिया को पहचानना (Recognition Primed Decision (RPD) Process) विकल्पों से चयन करना।
5. निर्णय मेट्रिक्स विश्लेषण (Decision Matrix Analysis)-अनेक कारकों में सन्तुलन बनाना तथा चयन करना।
6. युग्म तुलना विश्लेषण (Paired Comparison Analysis)-सापेक्षिक महत्व की गणना करना।
7. विश्लेषक पदानुक्रम प्रक्रिया (Analytic Hierarchy Process)-अनेक आत्मगत कारकों के महत्व को आंकना।
8. पेरटो विश्लेषण (Pareto Analysis)-यह निर्णय लेना कि क्या परिवर्तन करना है।
9. भावी परिणाम (Gutures Wheel)-परिवर्तन के भावी परिणाम, परिवर्तन के कारण भविष्य में क्या-क्या प्रतिक्रिया होगी।
10. यह निर्णय लेना कि इसी पर आगे बढ़ना है, अथवा नहीं।
11. अन्त में निर्णय के लाभ-हानि पर विचार करना। आकलन के लिए जो प्रश्न दिये जाएं वे इस प्रकार के होने चाहिए जैसे- 9 बिन्दुओं को इस प्रकार व्यवस्थित करो

कि वे 3 पंक्तियां बनायें और दृश्य पंक्ति में 3 बिन्दु हों। अब बिना पेन्सिल उठाये 4 सीधी रेखायें खींचों जो प्रत्येक बिन्दु से सम्बन्धित हों।

2.2.4 आकलन हेतु पद एवं प्रक्रियाएं

शिक्षण कार्य करने के बाद प्रत्येक शिक्षक में यह जानने की उत्सुकता होती है कि जो उसने पढ़ाया है वह बालकों की समझ में आया है अथवा नहीं। अपनी इस उत्सुकता को शान्त करने के लिए शिक्षक परीक्षणों की रचना करते हैं। एकांशों अथवा पदों के समूह से एक परीक्षण (Test) तैयार होता है जिसके माध्यम से किसी भी विद्यार्थी के गुणों की जाँच की जा सकती है। इन परीक्षणों के माध्यम से छात्रों की मानसिक एवं शैक्षणिक योग्यताओं का मापन किया जाता है।

जिस प्रकार लम्बाई को नापने के लिए मीटर छड़ तथा भार नापने के लिए तुला का प्रयोग किया जाता है ठीक उसी प्रकार विद्यार्थी की उपलब्धि को मापने के लिए परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। किसी भी परीक्षण में पूछे जाने वाले प्रश्नों को ही पद या एकांश कहा जाता है। इस प्रकार परीक्षण अनेक पदों/एकांशों का समूह होते हैं। एक अच्छे परीक्षण के लिए पद/एकांश अनिवार्य रूप से अच्छे होने चाहिए।

प्रो. बीन ने पद/एकांश को इस प्रकार परिभाषित किया है- "एक एकल कार्य या प्रश्न जिसे प्राय: किसी छोटी इकाई में विभक्त न किया जा सके।" "A single task or question that usually cannot be broken down into any smaller units."

"किसी परीक्षण की सबसे छोटी इकाई को प्रश्न, पद अथवा एकांश कहते हैं।"

एक हस्तचालित कार्य अंकगणित की एक समस्या एक पद हो सकता है इन्हीं अर्थों में ननली ने पद को परीक्षण का निम्नतम सामान्य पद कहकर पुकारा है जिसका फलांकन किया जा सकता है।

पद की विशेषताएँ- एक परीक्षण में एक अच्छे पद के लिए निम्न विशेषताओं का होना जरूरी है-

1. पद न बहुत सरल हो न ही बहुत कठिन।
2. पदों अथवा एकांशों का प्रयोग किया जाता है।
3. पद का कथन स्पष्ट होना चाहिए। यह शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों के लिए किसी भी प्रकार की भ्रान्ति न उत्पन्न करता हो।
4. पद में विभेदक क्षमता होनी चाहिए।
5. पद को पढ़ने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए।
6. पदों की रचना करते समय कठिनाई स्तर को भी ध्यान में रखना चाहिए। पद सरल से कठिनाई की ओर होने चाहिए।
7. प्रत्येक पद परीक्षण के उद्देश्य को पूरा करने वाला होना चाहिए।
8. पद द्वारा ज्ञान के महत्वपूर्ण पक्षों का मापना किया जाना चाहिए।

पद लेखक के समक्ष एक समस्या होती है कि वह कितने पद लिखे। पदों की संख्या वांछित विश्वसनीयता गुणांक पर भी निर्भर करती है। प्राय: एक परीक्षण में जितने पद रखने होते है उसके दुगुने पद लिखने चाहिए। लेखक को परीक्षण में उन पदों को

शामिल करना चाहिए जिनमें विश्वसनीयता एवं वैधता के गुण हों और जो वांछित उद्देश्यों की भी पूर्ति करते हों। एक परीक्षण में पदों की संख्या मापित प्रत्यय पर निर्भर करती है। जिस परीक्षण की रचना की जा रही है उसके कितने क्षेत्र हैं और कितने अवयव हैं इनकी संख्या अधिक होने पर पद अधिक तथा कम होने पर पदों की संख्या कम होती है। यह ध्यान रहे कि पदों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए।

पदों के प्रकार : परीक्षण अनेक पदों/एकांशों का समूह होते हैं। परीक्षण में पदों के प्रकार बहुत कुछ मापित क्षेत्र या अवयवों की संख्या और उसकी प्रकृति पर निर्भर करते हैं। पद निम्न प्रकार के होते हैं-

पदों के प्रकार

- निबन्धात्मक पद
- लघु उत्तरीय पद
- अतिलघु उत्तरीय पद
- वस्तुनिष्ठ पद

• **निबन्धात्मक पद :** निबन्धात्मक पद वे होते हैं जिनके उत्तर निबन्ध के रूप में देने होते हैं। इन पदों के उत्तर छात्र अपनी स्मृति तथा गत साहचर्यो/अनुभवों के आधार पर देता है। इन पदों का उत्तर वह जैसे चाहे वैसे दे सकता है इसलिए इन पदों को मुक्त पद भी कहा जाता है। इस प्रकार के पद उच्च मानसिक योग्यताओं, घटनाओं के संश्लेषण, विश्लेषण तथा समालोचन के लिए श्रेष्ठ होता है। इन पदों का प्रयोग मौलिकता, तार्किक चिन्तन, विभिन्न घटनाओं के संश्लेषण तथा विश्लेषण की योग्यता को मापने के लिए किया जाता है।

उदाहरण

एक मानकीकृत परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता निर्धारित करने की विधियों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

लघु उत्तरीय पद : लघु उत्तरीय पद वे होते हैं जिनके उत्तर लगभग 100 शब्दों में अथवा 2-3 पंक्तियों में देने होते हैं।

उदाहरण

नाटक के मुख्य तत्व बताइए।

मुद्रा के मुख्य कार्य बताइए।

एक परीक्षण की रचना करते समय किन किन सावधानियों को ध्यान में रखना चाहिए।

• **अति लघु उत्तरीय पदः-** अति लघु उत्तरीय पदों के उत्तर एक या दो पंक्ति के होते हैं। इनका सम्बन्ध प्रायः एक केन्द्रीय प्रत्यय से होता है

उदाहरण

वैधता की परिभाषा दीजिए।

मूल्यांकन का क्या अर्थ है?

उपमा तथा रूपक अलंकार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

वर्तमान समय में इन पदों का प्रयोग छात्रों की उपलब्धि ज्ञात करने के लिए किया जाता है। इन पदों के माध्यम से छात्रों के उत्तरों के संगठन एवं प्रस्तुतीकरण की कला का

पता चलता है। इन पदों के उत्तर विस्तृत नहीं होने चाहिए अन्यथा वैधता कम हो जायेगी। इस प्रकार के पदों की रचना करते समय पद विशेष के लिए समय सीमा तथा प्रत्येक पद के भार का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

- **वस्तुनिष्ठ पद :** निबन्धात्मक पदों की कमियों को दूर करने लिए लघु उत्तरीय तथा अति लघु उत्तरीय पदों की रचना को परीक्षणों में स्थान दिया गया। लेकिन आजकल वस्तुनिष्ठ पदों का उपयोग अधिक किया जाता है। इनका उत्तर देने के लिए कुछ चिन्ह विशेष बनाने होते हैं या केवल एक दो शब्द लिखने होते हैं। इन पदों के उत्तर निश्चित होते हैं परीक्षको को मूल्यांकन में किसी प्रकार की व्यक्तिगत छूट नहीं होती है। वस्तुनिष्ठ पद कई प्रकार के होते हैं वस्तुनिष्ठ पदों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

1. **प्रत्यास्मरण पद (Recall Items) :** ये वे पद होते हैं जिनका उत्तर छात्र अपनी स्मरण शक्ति के आधार पर देते हैं। इनका प्रयोग बालक की स्मरण शक्ति को परखने के लिए किया जाता है। प्रत्यास्मरण पद निम्न प्रकार के होते हैं–

   - **अपूर्ण पद :** ये पद अपूर्ण होते हैं छात्र से इनको पूरा करने की अपेक्षा की जाती है।

   उदाहरण–

   - तत्व के छोटे –2 कणों को क्या कहते हैं?
   - भारत की राजधानी बताओ
   - विटामिन सी की कमी से होने वाले रोग का नाम बताओ
   - रामायण की रचना किसने की?
   - **रिक्त स्थान पूर्ति पद :** इस प्रकार के पदों में वाक्य में एक या अधिक स्थान छोड़ दिए जाते हैं और छात्र से उन स्थानों की पूर्ति करने के लिए कहा जाता है।

   उदाहरण–

   - भारत के प्रथम प्रधानमंत्री -------------थे।
   - लखनऊ --------नदी के किनारे बसा है।
   - डब्ल्यू टी ओ की स्थापना वर्ष-------- में हुई थी।
   - तजमहल ---------ने बनवाया था।

2. **अभिज्ञान पद (Recognition Items) :** इस प्रकार के पदों में कई सम्भावित उत्तर दिए जाते हैं। छात्रों को सही उत्तर का चयन करना होता है। इन पदों द्वारा पहचान शक्ति का आकलन किया जाता है। ये पद निम्न प्रकार के होते हैं–

   - **एकान्तर अनुक्रिया पद :** इसके अन्तर्गत छात्र को दी गई अनुक्रिया जैसे हाँ/नहीं अथवा सत्य/ असत्य अथवा सही/गलत के चिन्ह अंकित करने होते हैं।

उदाहरण

- भारत एक कृषि प्रधान देश है।
- रामचरित मानस की रचना तुलसीदास ने की थी।

टिप्पणी

- भारत की राजधानी कलकत्ता है।
- **बहुवैकल्पिक पद** : आजकल वस्तुनिष्ठ पदों में इनका प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है।

  इसमें कई सम्भावित उत्तर दिए जाते हैं छात्र को सर्वाधिक सही उत्तर का चयन करना होता है।

उदाहरण–

- यूनेस्को का मुख्यालय स्थित है-

  (अ) नैरोबी (ब) पेरिस (स) वियाना (द) मोर्गेज
- विटामिन बी की कमी से होने वाला रोग है-

  (अ) रतौंधी (ब) बेरी बेरी (स) स्कर्वी (द) बांझपन
- तुलसी सर्वश्रेष्ठ ---- थे (कवि, नाटककार, साहित्यकार, निबन्धकार)
- अनुपात पूरक पद- नगर : मेयर :: राज्यः --

  (अध्यक्ष, गर्वनर, राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री)
- 2: 4:: 6 : -

  (3, 10, 12, 18)

- **मिलान पद**-इस प्रकार के पदो में सामग्री दो भागों में विभक्त रहती हैं एक भाग में व्यवस्थित होती है तथा दूसरे भाग में अव्यवस्थित होती है छात्र को उसे व्यवस्थित करने के लिए कहा जाता है।

- (अ)

माप	सूत्र
प्रमाप विचलन	$\frac{\varepsilon x}{n}$
चतुर्थक विचलन	$\sqrt{\frac{\varepsilon x^2}{n}}$
प्रसरण	$\frac{Q_3 - Q_1}{2}$
मध्य	क^2

- (ब)

मिलान करों	
गगनचुम्बी	घोड़ा
घनघोर	धनुष
काला	इमारत
सप्तरंगी	घटा

- **वर्गीकरण पद** : इन पदों में कुछ ऐसे प्रतीक होते हैं जिनमें एक को छोड़कर अन्य सबका पारस्परिक संबंध होता है। छात्र को असंबन्धित प्रतीक अथवा शब्द को छांटने के लिए कहा जाता है।

उदाहरण-

- पुस्तक, कलम, नदी, दवात
- सूर, तुलसी, प्रेमचन्द, मीरा
- गंगा,यमुना, नीलगिरि, नर्मदा

परीक्षण पदों की रचना के सुझाव : पदों की रचना करने के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार हैं-

1. पद इस प्रकार के हों कि उनके उत्तर निश्चित हों। सत्य/असत्य पदों में द्विअर्थकता या संदेहात्मकता नहीं होनी चाहिए।
2. बहु विकल्पीय पदों में सही उत्तर की प्रतिक्रिया में केवल एक ही सही उत्तर होना चाहिए।
3. अनुमान प्रभाव को कम करने के लिए बहु-विकल्पीय पदों में विकल्पों की संख्या 4-5 होनी चाहिए।
4. एक पद में एक ही विषय-वस्तु से सम्बन्धित वाक्यांश या कथन होने चाहिए।
5. मिलान पदों में 10-15 पद होने चाहिए ताकि छात्र सही उत्तर दे सके।
6. पद रचना करते समय यह भी निश्चित कर लिया जाना चाहिए कि फलांकन किस विधि से होना है उसी के आधार पर कुंजी भी बनायी जानी चाहिए।
7. प्रत्येक प्रकार के पदों के लिए स्पष्ट एवं निश्चित निर्देश दिए जाने चाहिए।
8. परीक्षण को वस्तुनिष्ठ बनाने के लिए पदों की रचना पाठ्यक्रम में से ही की जानी चाहिए।

ब्लू प्रिंट : पदों की संख्या एवं प्रकार निश्चित करने के बाद शिक्षण लक्ष्यों के आधार पर पदों के अंकों का विभाजन किया जाता है इसके लिए एक विशिष्ट सारणी तैयार की जाती है जिसे ब्लू प्रिंट कहते हैं। इस सारणी से यह स्पष्ट होता है कि पदों एवं अंकों का विभाजन शिक्षण लक्ष्यों को दिए गए महत्व के अनुसार हुआ है।

पद विश्लेषण : एक बार पदों का लेखन एवं सम्पादन हो जाने के बाद पद विश्लेषण की प्रक्रिया शुरू होती है। पद विश्लेषण एक ऐसी तकनीक है जिसके द्वारा पदों की वैधता एवं विश्वसनीयता ज्ञात की जाती है। तथा इस बात की जांच की जाती है कि पद शिक्षण उद्देश्य के अनुरूप है अथवा नहीं जो पद वैध नहीं होते और जो लक्ष्यों के अनुरूप नहीं होते उन्हें परीक्षण में स्थान नहीं दिया जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा यह निश्चित किया जाता है कि किस पद को परीक्षण में स्थान देना है और किस पद को नहीं। पद विश्लेषण में प्रत्येक पद की सांख्यिकीय गणना की जाती है। इसके लिए निम्न दो आधार होते हैं-

(1) पद का कठिनाई स्तर : पद का कठिनाई स्तर पद के सरल होने अथवा कठिन होने की ओर संकेत करता है। पदों के कठिनाई स्तर को मापने का उद्देश्य उपयुक्त कठिनाई स्तर वाले पदों का चयन करना होता है। यदि किसी समूह के सभी छात्रों द्वारा पद का हल दिया जाता है तो ऐसे पद अत्यन्त सरल होते हैं इसके विपरीत किसी भी छात्र द्वारा न हल किये जा सकने वाले पद अत्यन्त कठिन होते हैं। एक अच्छे परीक्षण में दोनों ही प्रकार के पदों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि किसी पद को छात्रों के समूह के 50 प्रतिशत छात्रों द्वारा हल किया जाता है, तो वे उपयुक्त कठिनाई स्तर वाले पद माने जाते हैं। लेकिन केवल उन्हीं पदों को परीक्षण में शामिल नहीं किया जायेगा। परीक्षण में ऐसे पदों को भी शामिल किया जाता है जिन्हें केवल उच्च उपलब्धि स्तर वाले बालक ही हल कर सकें। सामान्यत: 30%से 70% के मध्य आने वाले पदों का चयन

टिप्पणी

उपयुक्त रहता है। पद का कठिनाई स्तर केवल औसत कठिनाई स्तर को ही नहीं अपितु अंकों के फैलाव एवं प्रसार को भी बताता है।

(2) विभेदात्मकता : किसी पद की विभेदात्मकता यह बताती है कि वह किस सीमा तक उच्च उपलब्धि एवं निम्न उपलब्धि छात्रों में विभेद कर सकता है। जिन पदों में विभेदन क्षमता नहीं होती वे पद वैध एवं विश्वसनीयता के अनुरूप नहीं माने जाते हैं तथा इन पदों का चयन नहीं किया जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक पद का विश्लेषण करने के बाद ही पदों को परीक्षण में उनकी वैधता एवं विश्वसनीयता के आधार पर तथा उद्देश्य के अनुरूप होने पर ही आकलन के लिए परीक्षण में शामिल किया जाता है।

2.2.5 प्रभावी अधिगम का आकलन : मनोवृत्ति और मूल्य, रुचि, आत्मसंप्रत्यय : पद और उसके आकलन की प्रक्रिया

शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य बालक के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाना होता है। बालक का व्यवहार उसके व्यक्तित्व के कई पक्षों से सम्बन्धित होता है। स्कूल में पढ़ाये जाने वाले सभी विषय बालक के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों को विकसित करने में सहायता करते हैं। व्यवहार का भावात्मक पक्ष दूसरा क्षेत्र होता है जिसके अन्तर्गत रुचियों, अभिवृत्तियों और मूल्यों में परिवर्तन तथा पर्याप्त समायोजन का विकास होता है। इसका वर्गीकरण 1964 में क्रथवाल, ब्लूम तथा मसीबा ने किया था।

प्रभावी अधिगम आकलन को निम्न तरह से समझाया गया है–

(क) मनोवृत्ति और मूल्य

मनोवृत्ति व्यक्ति के उस दृष्टिकोण को बताती है जिनके कारण वह किसी वस्तु, परिस्थिति, संस्था अथवा व्यक्ति के प्रति किसी विशिष्ट व्यवहार करता है। मनोवृत्ति व्यक्तित्व का वह गुण है जो किसी व्यक्ति की पसंद तथा नापसंद से सम्बन्धित होता है। वास्तव में यह गुण व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को निर्देशित करता है।किसी वस्तु, व्यक्ति,विचार, आदि के प्रति बालक का व्यवहार उसकी अपनी मनोवृत्तियों से ही प्रभावित होता है। एक ओर मनोवृत्तियां बालक के स्वयं के मानस से सम्बन्धित होती हैं। दूसरी ओर सामाजिक परिस्थितियां भी इनसे सम्बन्धित होती हैं। इस प्रकार मनोवृत्ति के सामाजिक एवं मानसिक दोनों ही पक्ष होते हैं। मनोवृत्तियां सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। यदि बालक किसी से घृणा करता है, या किसी के प्रति उसे विश्वास नहीं होता है तो उसकी मनोवृत्ति नकारात्मक होगी। इसके विपरीत यदि बालक किसी को बहुत पसन्द करता है या किसी कार्य के प्रति उसका विश्वास एवं इच्छा बढ़ती है तो यह सकारात्मक मनोवृत्ति की पहचान है।

"मनोवृत्ति को व्यक्ति के संसार के किसी अंग के प्रति प्रेरणात्मक, संवेगात्मक, प्रत्यक्षात्मक एवं ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के स्थायी संगठन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

"मनोवृत्तियां मन, रुचि या उद्देश्य की थोड़ी स्थायी प्रवृत्तियां हैं, जिनमें किसी प्रकार के पूर्वज्ञान की प्रत्याशा और उचित प्रक्रिया की तत्परता निहित है।"

"मनोवृत्ति किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति धनात्मक या ऋृणात्मक प्रभावों की मात्रा है।"

टिप्पणी

उपर्युक्त विश्लेषण से मनोवृत्ति की विशेषताओं एवं प्रकृति के विषय में निम्न तथ्य ज्ञात होते हैं-

1. मनोवृत्ति का स्वरूप बाह्य (overt) अथवा गुप्त (covert) किसी भी प्रकार का हो सकता है।
2. मनोवृत्तियां जन्मजात तथा अर्जित दोनों प्रकार की होती हैं।
3. मनोवृत्ति से बालक के संवेग जुड़े होते हैं, अत: यह व्यक्तित्व का एक धनात्मक पक्ष है।
4. मनोवृत्तियों के विकास में सामाजिक बन्धन एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं।
5. मनोवृत्ति व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार की होती है।

मनोवृत्तियों का वर्गीकरण: बोगार्डस ने अपनी पुस्तक समाज मनोविज्ञान में मनोवृत्तियों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है-

1. **प्राप्ति एवं कार्य-सम्बन्धी मनोवृत्तियां :** क्लाइबर्ग के अनुसार संग्रह एवं प्राप्ति की अभिलाषा जन्मजात नहीं है बल्कि उसका निर्धारण संस्कृतिजन्य है
2. **खेल सम्बन्धी मनोवृत्तियां :** ये स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक होती हैं।
3. **जिज्ञासात्मक एवं वैज्ञानिक मनोवृत्तियां :** विद्वानों एवं वैज्ञानिकों की मनोवृत्तियों को इनके अन्तर्गत रखा जाता है।

मनोवृत्तियों के आयाम : मनोवृत्ति के तीन पक्षों को मनोवृत्ति के आयाम की संज्ञा दी जाती है-

1. **दिशा :** मनोवृत्ति की दिशा से तात्पर्य किसी मनोवैज्ञानिक वस्तु के प्रति व्यक्त किये गये सकारात्मक अथवा नकारात्मक दृष्टिकोण से है। इसे मनोवृत्ति की धनात्मक अथवा ऋणात्मक दिशा कहकर पुकारा गया है।
2. **स्थिरता :** यह मनोवृत्ति का वह गुण है जिसके आधार पर किसी व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने की सम्भावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है।
3. **तीव्रता :** इस आयाम के आधार पर यह ज्ञात किया जाता है कि बालक/व्यक्ति अपने दृष्टिकोण पर कितना बल देता है। वास्तव में यह व्यक्ति द्वारा व्यक्त किए गये दृष्टिकोण के पीछे छिपे हुए मनोबल का माप है। मनोवृत्ति की तीव्रता उसके साथ जुड़े हुए संवेगों तथा भावनाओं पर निर्भर करती है।

मनोवृत्तियों के सिद्धान्त : मनोवृत्तियों के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं-

1. **आसन प्रतिक्रिया सिद्धान्त :** यह मनोवृत्ति निर्माण की एक अवयवी व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के प्रति प्रतिक्रिया करता है तथा उसके प्रति। इस अन्तर्प्रक्रिया में दूसरों के प्रति उसकी मनोवृत्ति का निर्माण हो जाता है। मनोवृत्तियां उद्दीपक-प्रतिक्रिया एवं मांसपेशियों की तत्परता के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं।
2. **मानसिक वृत्ति सिद्धान्त :** इसके अनुसार कुछ मनोवृत्तियां पूर्व-निश्चित होती हैं। जो स्वभाव का अंश बन जाती हैं। ये चेतन एवं सप्रयास होती हैं। यदि कोई व्यक्ति यह कहे कि पूंजीवाद या साम्यवाद बुरी अवस्था में है तो इसका अर्थ है कि उसकी मानसिक वृत्ति पूंजीवाद या साम्यवाद विरोधी है।

सीमाएं : इस मापनी की सीमाएं निम्न हैं-

1. इस मापनी में समय एवं धन अधिक खर्च होते हैं।
2. जटिल सांख्यिकी का प्रयोग करना पड़ता है।
3. यह मापनी केवल दिशा का मापन करती है।
4. यह विधि आत्मनिष्ठ है।
5. इस विधि द्वारा मनोवृत्ति मापनी बिन्दुओं के मध्य अन्तर की कोई विशेष रेखा नहीं है।
6. इस प्रकार की मनोवृत्ति मापनी द्वारा सभी प्रकार की मनोवृत्तियों को मापना सम्भव नहीं है।

मनोवृत्ति मापन में कठिनाइयां : मनोवृत्ति मापन में निम्न परेशानियों का सामना करना पड़ता है-

1. मनोवृत्ति मापनी निर्माण की कोई एक सर्वमान्य पद्धति नहीं है। प्रत्येक पद्धति की कुछ न कुछ सीमाएं हैं।
2. मनोवृत्ति अमूर्त होती है। इसका मापन अनुमान पर आधारित होता है।
3. मानकीकरण के बिना कोई भी मापनी उपयुक्त नहीं मानी जाती है।
4. मापनी निर्माण में सबसे कठिन कार्य कथनों को चयन करना होता है। यह कार्य बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिए।
5. मापनी में अधिक कथनों का अभिप्राय विश्वसनीयता में वृद्धि होता है। लेकिन लम्बी प्रश्नावली से प्रशासन संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

मूल्य : जब कभी स्कूली शिक्षा की बात होती है तो यह कहा जाता है कि स्कूल वह स्थल है जहां किसी देश की सांस्कृतिक विरासत को पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को हस्तान्तरित करती है। सांस्कृतिक विरासत में अनेक मूर्त एवं अमूर्त वस्तुएं प्राप्त होती हैं लेकिन जिस चीज पर हमारा ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित होता है वही मूल्य है। हमारे मूल्य ही हमारे व्यवहार को अधिक नियन्त्रित करते है और व्यक्ति की अलग पहचान बनाते हैं।

मूल्य एक ऐसी अवधारणा है जो वांछित लक्ष्यों, आदर्शो और कार्यशैली के आधार पर मानव व्यवहार को चयनात्मक बनाती है।

न्यूमैन ने मूल्य को एक ऐसा सिद्धान्त अथवा गुण माना है जो आन्तरिक रूप से वांछनीय हो।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर मूल्य की प्रकृति के विषय में निम्न जानकारियां प्राप्त होती हैं-

1. मूल्य जीवन शैली तथा लक्ष्य निर्धारित करने में सहायक होते हैं।
2. व्यक्ति का व्यवहार एवं विभिन्न प्रकार की क्रियायें उसके मूल्य से निर्देशित होती हैं।
3. आधारभूत मूल्यों की नींव बाल्यावस्था में ही पड़ जाती है।
4. मूल्य के आधार पर व्यक्ति अपने जीवन की प्राथमिकताओं को निर्धारित करते हैं।

5. मूल्यों के आधार पर विभिन्न विकल्पों में से कुछ का चयन करना।
6. मूल्य नैतिक दायित्वों का निर्धारण करते हैं।
7. आवश्यकताओं एवं द्वंद्व की स्थिति में मूल्य निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

टिप्पणी

मूल्यों को प्रभावित करने वाले कारक : ऐसे बहुत से कारक हैं जिनका प्रभाव व्यक्ति के मूल्यों पर पड़ता है-

1. उच्च तथा निम्न समाज-आर्थिक स्तर के परिवारों की अपेक्षा मध्यम श्रेणी के परिवारों में बालकों पर सामाजिक मूल्यों को अपनाने के लिए अधिक बल दिया जाता है।
2. लड़कियां, लड़कों की अपेक्षा सामाजिक मूल्यों का अधिक सम्मान करती हैं।
3. माता-पिता के निकट सम्पर्क वाले बालक माता-पिता को आदर्श मानकर उनके ही मूल्यों को अपना लेते हैं।
4. शैक्षिक वातावरण मूल्य विकसित करने का सशक्त माध्यम है। औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों प्रकार के शैक्षणिक वातावरण बालक के मूल्यों को प्रभावित करते हैं।
5. बालक में मूल्यों का विकास उनके परिवारिक-वातावरण पर निर्भर करता है। प्रायः अनुज्ञात्मक परिवारों के बालक अनुशासनात्मक परिवारों के बालकों की अपेक्षा असामाजिक मूल्यों की ओर अधिक झुके होते हैं।
6. बालक जिस समाज अथवा समुदाय में पलता है और जिस धर्म को अपनाता है उस समुदाय एवं धर्म में प्रचलित मूल्य उस बालक के मूल्यों को प्रभावित करते हैं।

मूल्यों के प्रकार : मूल्यों के प्रकारों की कोई निश्चित सूची तैयार नहीं की जा सकती है। लेकिन सुविधा की दृष्टि से मूल्यों को निम्न महत्वपूर्ण वर्गो में वर्गीकृत किया गया है-

1. **सामाजिक मूल्य :** इसके अन्तर्गत सहानुभूति, प्रेम,दया, दान जैसे मूल्यों को वर्गीकृत किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस मूल्य को धारण करने वाले अपने सुख अथवा लाभ की चिन्ता किए बिना दूसरों की सहायता करते हैं।
2. **धार्मिक मूल्य :** देवी-देवताओं में विश्वास रखना, ईश्वरीय शक्तियों का भय, धार्मिक ग्रन्थों में लिखी नीतियों तथा कर्मकाण्डों में विश्वास रखने वाले व्यक्ति अपने जीवन में पूजा-पाठ, तीर्थाटन, भजन कीर्तन, मनौती आदि मानने को अधिक महत्व देते हैं।
3. **सौन्दर्यात्मक मूल्य :** सौन्दर्य बोध, ललित कलाओं के प्रति झुकाव, काव्य एवं साज-सज्जा आदि ऐसे मूल्य हैं जिन्हें सौन्दर्यात्मक मूल्यों के अन्तर्गत सूचीबद्ध किया जाता है।
4. **सुखवादी मूल्य :** सुख के प्रति आसक्ति को सुखवादी मूल्यों के अन्तर्गत रखा जाता है। इन मूल्यों में विश्वास करने वाले दुखदायी परिस्थितियों से दूर रहना चाहते हैं।
5. **आर्थिक मूल्य :** धन तथा अन्य भौतिक उपलब्धियों को महत्व देने की प्रवृत्ति से पोषित व्यक्तियों में इस प्रकार का मूल्य अधिक पाया जाता है। ऐसे व्यक्ति केवल मूल्यवान

टिप्पणी

वस्तुओं को ही नहीं अपितु इसके साथ-साथ धनवान व्यक्तियों को भी महत्व प्रदान करते हैं।

(ख) रुचि

अधिगम में सफलता केवल अभिवृत्ति अथवा अभियोग्यता रखने से ही नहीं मिल सकती है। अधिगम के लिए अभिप्रेरण का होना जरूरी है। अभिप्रेरित करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न विधियों का उल्लेख किया है। इनमें रुचि एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। रुचि व्यक्ति की वह आन्तरिक शाक्ति है जो किसी व्यक्ति पदार्थ अथवा क्रिया की ओर आकृष्ट होने की प्रेरणा प्रदान करती है। व्यक्ति रुचि विशिष्ट प्रवृत्ति के कारण ही उस वस्तु विशेष की ओर ध्यान देता है।

ऐसा देखा जाता है कि जिस कार्य में बालकों की रुचि होती है उसे करने के लिए वे स्वत: ही अभिप्रेरित हो जाते हैं और शिक्षक को बाहर से कोई प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती है। जब बालक को कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है तो वे अपनी रुचि के अनुसार ही कार्य करने की चेष्टा करते हैं। वास्तव में किसी तथ्य, वस्तु या प्रतिक्रिया के प्रति ध्यान केन्द्रित करना रुचि है। जब किसी को कोई वस्तु, तथ्य या प्रतिक्रिया अच्छी लगती है तो स्वाभाविक रूप से उसमें उसकी रुचि उत्पन्न हो जाती है। रुचि से तात्पर्य उस मानसिक अवस्था से है जिसके कारण हम किसी वस्तु, विचार को पसन्द या नापसन्द करते हैं। जिन कार्यों में व्यक्ति की रुचि होती है उन कार्यों को करके व्यक्ति आत्म सन्तोष प्राप्त करता है तथा जिन कार्यो में व्यक्ति की रुचि नहीं होती पहले तो वह ऐसे कार्यों को करता ही नहीं यदि किसी कारणवश अथवा विवशता के कारण करना भी पड़ता है तो वह उस कार्य में सफल नहीं होगा। रुचि का अभिवृत्ति एवं अभियोग्यता से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जिस व्यक्ति में रुचि, अभिव्यक्ति एवं अभियोग्यता तीनों विद्यमान होती हैं उसे सम्बन्धित कार्य में विशेष सफलता मिलती है। रुचि के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रकट किये हैं-

गिल्फोर्ड के अनुसार,"किसी वस्तु, व्यक्ति या प्रक्रिया से आकर्षित होने, उसे पसन्द करने या उसमें सन्तुष्टि पाने की ओर ध्यान केन्द्रित करने वाली प्रवृत्ति को रुचि कहते हैं"

सुपर के शब्दों में, "रुचि पृथक, मनोवैज्ञानिक इकाई नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानव व्यवहार का एक पहलू है।"

बिघंम के अनुसार, "रुचि वह प्रवृत्ति है जो किसी अनुभव में लग जाती है तथा उसमें निरन्तर रहती है।"

उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण से रुचि की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्न तथ्य सामने आये हैं-

1 रुचि मानव व्यक्तित्व का एक पक्ष है।

2 रुचि व्यक्तित्व का भावात्मक पक्ष है।

3 रुचि आयु के साथ-साथ परिवर्तित होती रहती है। इसीलिए बालकों की रुचि किशोरों से भिन्न होती है। यह प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत है जो एक स्वतन्त्र व्यक्ति को अपनी पसन्द का कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करता है।

रुचि के प्रकार : व्यवहार में रुचियों को मुख्य रूप से निम्न चार भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. **अभिव्यक्तात्मक रुचियां :** किसी के पूछने पर बालक जब अपनी जिस रुचि का उल्लेख करता है उसे अभिव्यक्त रुचि कहते हैं। यह प्राय: अविश्वसनीय होती है क्योंकि इसमें व्यक्ति अपने वास्तविक विचारों को छिपाकर गलत उत्तर दे देता है। इस प्रकार की रुचियां सामान्यत: वयस्कों में स्थायी रूप से दिखायी देती हैं।
2. **व्यक्त रुचियां :** इस प्रकार की रुचियों को बालक के व्यवहार एवं क्रियाओं को देखकर ज्ञात किया जा सकता है। यदि कोई बालक क्रिकेट मैच अधिक देखता व खेलता है तो इससे ज्ञात होता है कि उसकी रुचि क्रिकेट में है। ये रुचियां अभिव्यक्त रुचियों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती हैं। लेकिन हो सकता है ये रुचियां वास्तविक न हों क्योंकि इन रुचियों के प्रेरक भिन्न हो सकते हैं।
3. **सूचीबद्ध रुचियां :** रुचियों को रुचि अनुसूची की सहायता से भी ज्ञात किया जा सकता है। इनमें केवल वे रुचियां होती हैं जिन्हें प्रमाणिक रुचि अनुसूचियों के द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।
4. **परीक्षण रुचियां :** जिन रुचियों को उपलब्धि परीक्षणों के माध्यम से ज्ञात किया जाता है उन्हें परीक्षण रुचियां कहा जाता है। विद्यालय में बालक की रुचि प्राय: इसी प्रकार ज्ञात की जाती है। जब बालक के अन्य विषयों की अपेक्षा कला में अधिक अंक आते हैं तो यह कहा जाता है कि अमुक बालक की कला में विशेष रुचि है।

रुचि को प्रभावित करने वाले कारक : यह कहना कठिन है कि किसी व्यक्ति की रुचि किस कारण से प्रभावित हो जाये लेकिन फिर भी अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रुचि मुख्य रूप से निम्न कारणों से प्रभावित होती है-

1. **आयु :** आयु बढ़ने के साथ-साथ बालकों की रुचियों का भी विकास होता है।
2. **बुद्धि :** ऐसा देखा गया है कि कम बुद्धि वाले बालकों में अधिक बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा रुचियों का विकास कम होता है।
3. **लिंग :** लड़कियों एवं लड़कों की रुचियों में भी भिन्नता पायी जाती है। लड़कियां प्राय: गृह कार्य, ललित कलाओं में रुचि रखती हैं जबकि लड़के मैदानी खेलों में।
4. **व्यक्तिगत अनुभव :** यदि किसी बालक को कोई कार्य रुचिकर लगता है और उसे उस कार्य को करने में आनन्द की अनुभूति होती है तो वह उस कार्य को करने में प्रोत्साहित अनुभव करता है। और यदि कार्य करने से सुख के स्थान पर दुख की अनुभूति होती है तो वह उस रुचि से विमुख हो जाता है।
5. **पारिवारिक रुचियां :** बालक प्राय: अपने परिवार में प्रचलित रुचियों को अपनाता है। यदि किसी परिवार में संगीत की ओर रूझान है तो बालक भी संगीत में रुचि रखता है।
6. **संस्कृति :** बालक जिस समुदाय में रहता है उसकी संस्कृति का प्रभाव बालक की रुचियों पर जरूर पड़ता है।

उपरोक्त कारकों के अतिरिक्त बालकों की अभिवृत्तियों, संवेगात्मक अवस्था, चिन्ता, साथी समूह, कुण्ठाओं आदि का प्रभाव भी उसकी रुचियों पर दिखायी देता है।

टिप्पणी

(ग) आत्म संप्रत्यय

मनुष्य के पास भाषा बुद्धि के अतिरिक्त चिन्तन की भी महत्वपूर्ण योग्यता होती है। चिन्तन के द्वारा व्यक्ति न केवल अपने शरीर और व्यवहार के सम्बन्ध में विचार करता है, अपितु चिन्तन के द्वारा वह यह भी विचार करता है कि दूसरों के सामने वह कैसा दिखायी देता है। अथवा समाज के अन्य लोग उसे किस रूप में देखते हैं। इस प्रकार चिन्तन आत्म (self)और आत्म प्रत्यय (self concept) से महत्वपूर्ण ढंग से सम्बन्धित होता है। इसके साथ-साथ चिन्तन व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। व्यक्तित्व को निर्देशन के द्वारा नियन्त्रित करके एक निश्चित दिशा प्रदान की जा सकती है, चूंकि व्यक्तित्व को परिवर्तित किया जा सकता है।

यह भी देखा गया है कि आत्म और आत्म प्रत्यय का विकास व्यक्ति की समाजीकरण प्रक्रिया को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है।

आत्म का अर्थ

जेम्स ड्रेवर के अनुसार "आत्म (self) शब्द का प्रयोग अक्सर अहं (Ego) के अर्थों में किया जाता है। यह वह एजेण्ट है जो अपने ही परिहान के स्थायित्व के संबंध में चेतन रहता है।"

आइजनेक एवं उसके साथियों के अनुसार, "अनुभवात्मक अनुसन्धान में आत्म का अर्थ मूल से उस प्रत्यक्षीकरण में है जो विषयी अपने ही संबंध में करता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि आत्म व्यक्तित्व का केन्द्र है। यह वह उप प्रणाली है जिसका अभिप्राय उस प्रत्यक्षीकरण या अभिवृत्तियों से है जो एक व्यक्ति अपने ही संबंध में रखता है। इस उपप्रणाली में व्यक्ति द्वारा अर्जित वे अन्तर्सम्बन्धित अभिवृत्तियां पायी जाती हैं जो मूर्त परिस्थितियों ओर क्रियाओं में उसकी सम्बद्धता को परिभाषित और नियन्त्रित करती हैं।

आलपोर्ट के अनुसार, "व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का वह गत्यात्मक संगठन है जो व्यक्ति के वातावरण के प्रति अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।"

व्यक्तित्व में शारीरिक एवं संज्ञानात्मक दोनों प्रकार के गुण सम्मिलित हैं, परन्तु इनमें अधिकांश और प्रमुख गुण प्रभावोत्पादक संज्ञानात्मक गुण स्थायीभाव अभिवृत्तियां, मानसिक ग्रन्थियां तथा अचेतन मनोरचनाएं रुचियां और विचार आदि होते हैं। ये सभी गुण व्यक्ति के विशिष्ट और भिन्न दिखाई देने वाले व्यवहार को निर्धारित करते हैं।

व्यक्तित्व के प्रतिमान : आत्म व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण निर्धारक है। आत्म में परिवर्तन, व्यक्तित्व और व्यवहार को परिवर्तित कर देते हैं आत्म व्यक्तित्व की धुरी है अत: आत्म में परिवर्तन सम्पूर्ण व्यक्तित्व को परिवर्तित या परिमार्जित कर सकते हैं। आत्म, अहं तथा आत्म प्रत्यय पदों का प्रयोग अधिकांश मनोवैज्ञानिक समान अर्थों में करते हैं। व्यक्तित्व प्रतिमान दो घटकों से मिलकर बना है। प्रथम घटक व्यक्तित्व का केन्द्रीय भाग (Core of the personality) है अर्थात् आत्म प्रत्यय (Concept of self) व्यक्तित्व का केन्द्रीय भाग है। द्वितीयक घटक पहिए की तीली (Spokes of Wheel) है अर्थात व्यक्तित्व लक्षणों (Trait of the personality)से है।

व्यक्ति अपने चारों ओर के वातावरण के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के प्रति ही अनुक्रिया नहीं करता अपितु वह अपने विचारों, भावनाओं और शरीर के प्रति भी अनुक्रिया करता है। इन्हीं अनुक्रियाओं और अन्त:क्रियाओं के फलस्वरूप उसमें आत्म की

टिप्पणी

उत्पत्ति होती है। और उत्पत्ति के बाद विकास प्रारम्भ हो जाता है। बालक अपने चारों ओर के वातावरण में जैसा अपने आप को देखता है और जैसे उसके परिवार के लोग और परिचित उसे देखते हैं, इसी आधार पर वह अपने प्रत्यय का निर्माण करता है। इसी कारण आत्म प्रत्यय को दर्पण कहा गया है। "The child's concept of himself as a person as a mirror image of what he believes significant people in his life think of him"

जैसे कभी -कभी परिवार के लोग बालक को शैतान समझते हैं। इसी प्रकार खेल के सभी साथी भी इस प्रकार का मत बना लेते हैं। तो बालक अपना आत्म प्रत्यय भी इसी प्रकार का बनाता है जिसमें वह अपने आपको शैतान बच्चे के रूप में देखता है।

एक बार आत्म प्रत्यय बनने के बाद यद्यपि यह स्थिर होते हैं परन्तु नये अनुभवों के बढ़ने के साथ-साथ इनमें भी संशोधन और परिवर्द्धन किया जा सकता है। आत्म प्रत्ययों में क्रमबद्धता पायी जाती है। बालक में प्रारम्भिक अवस्था में जो आत्म-प्रत्यय बनते हैं उन्हें प्राथमिक आत्म प्रत्यय (Primary Self Concept) कहा जाता है। यह आत्म प्रत्यय माता-पिता के शिक्षण के आधार पर अथवा परिवार के सदस्यों के शिक्षण के आधार पर बनते हैं। इन प्राथमिक आत्म प्रत्ययों में भी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार की आत्म प्रतिमाएं पायी जाती हैं। जब बालक दूसरों के साथ खेलता है और स्कूल जाने लगता है तब उसमें पहले से बने प्राथमिक आत्म प्रत्ययों का संशोधन एवं परिवर्द्धन होने लगता है। इस अवस्था के आत्म प्रत्यय उद्दीपक आत्म प्रत्यय (Secondary Self Concept) कहे जाते हैं। इस प्रकार आत्म प्रत्यय इस बात पर आधारित होते हैं कि दूसरे लोग बालक को किस प्रकार और किस दृष्टि से देखते हैं। प्रायः ऐसा देखा गया है कि बालक के प्राथमिक आत्म प्रत्यय अधिक अनुकूल होते हैं। जबकि द्वितीयक आत्म प्रत्यय उतने अनुकूल नहीं होते हैं। अध्ययनों मे ऐसा देखा गया है कि बालक अपने आत्म प्रत्ययों में अपने सामाजिक, सांस्कृतिक समूहों के मूल्यों, नियमों और प्रतिमानों के अनुसार संशोधिन करते रहते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास के लिए आत्म का विकास जरूरी है। आत्म व्यक्तित्व का केन्द्र है।

हरलॉक ने आत्म प्रत्यय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "आत्म प्रत्यय वे प्रतिमाएं हैं जो व्यक्ति स्वयं अपने संबंध में रखते हैं। आत्म प्रत्यय में व्यक्ति के वे विश्वास होते हैं जो एक व्यक्ति स्वयं अपने शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, समाजिक एवं संवेगात्मक विशेषताओं के संबंध में रखता है। इसमें आकांक्षाएं और उपलब्धियां भी शामिल होती हैं। संक्षेप में आत्म प्रत्यय में व्यक्ति की वे प्रतिमाएं निहित होती हैं जो उसके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के संबंध में होती हैं।"

आत्म प्रत्यय में निम्नांकित दो प्रकार की प्रतिमाएं पायी जाती हैं-

1. पहले प्रकार की प्रतिमाएं व्यक्ति अपनी शारीरिक विशेषताओं के संबंध में रखता है। अर्थात् व्यक्ति का शारीरिक दिखावा-लम्बाई, चौड़ाई रंग-रूप और शारीरिक बनावट कैसी है।
2. दूसरे प्रकार की आत्म प्रतिमाएं मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के संबंध में होती हैं। इस प्रकार की आत्म प्रतिमाएं विचारों, भावनाओं,और संवेगों के आधार पर बनती हैं। इन प्रतिमाओं में साहस, ईमानदारी, आत्म विश्वास, स्वतन्त्रता, आकांक्षाएं आदि विशेषताएं और योग्यताएं होती हैं। इस प्रकार की प्रतिमाओं में वे गुण और विशेषताएं शामिल रहती हैं जिनके द्वारा व्यक्ति समायोजन करता है।

टिप्पणी

आत्म संप्रत्यय के प्रकार

आत्म प्रत्यय मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं-

(1) वास्तविक आत्म संप्रत्यय : यह वह प्रत्यय है जो व्यक्ति अपने सम्बन्ध में निर्मित करता है कि वह क्या है? यह एक प्रकार की दर्पण प्रतिमा (Mirror Image) है। इस आत्म प्रत्यय का निर्धारण मुख्यतः बालक के कार्यों और दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों से होता है। उसके उन विश्वासों से भी प्रभावित होता है जो उसमें दूसरों के साथ प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं।

(2) आदर्श आत्म संप्रत्यय : यह स्वयं के सम्बन्ध में वह तस्वीर या प्रत्यय है जिससे यह स्पष्ट होता है कि बालक क्या करना चाहता है। व्यक्तित्व प्रतिमान का संगठन किस मात्रा में और कितना होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि बालक के आत्म प्रत्यय में कितनी स्थिरता है। व्यक्तित्व के संगठन में अस्थिरता उस समय उत्पन्न हो जाती है जब बालक के वास्तविक आत्म प्रत्यय और आदर्श आत्म प्रत्यय में अन्तर उत्पन्न होता है।

व्यक्तित्व लक्षण वास्तव में व्यवहार के विशिष्ट गुण (Specific Qualities of Behaiour) हैं। ये गुण आपस में समन्वित और प्रभावित होते हैं। कुछ व्यक्तित्व लक्षण भिन्न- भिन्न होते हैं। कुछ शीलगुण आपस में एक-दूसरे के साथ संयुक्त होते हैं। ये संयुक्त लक्षण (Syndromes) कहलाते हैं। अध्ययनों में यह देखा गया है कि जब बालक में आत्म प्रत्यय धनात्मक प्रकार का होता है तब बालक में निम्न लक्षण विकसित होते हैं- आत्मविश्वास, आत्म गौरव, दूसरों के साथ सम्बन्धों को सही करना, मूल्यांकन की योग्यता, स्वयं को वास्तविक रूप में देखने की योग्यता आदि। जब बालक में आत्म प्रत्यय ॠणात्मक प्रकार का होता है तो बालक में निम्न प्रकार के लक्षण विकसित होने लगते हैं- अनिश्चितता की भावना, अनुपयुक्तता, आत्मविश्वास का अभाव, तथा निम्न आत्म गौरव (Low Self Esteem)। जब बालक में धनात्मक आत्म प्रत्यय होता है तब उसका जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन अच्छा, मधुर और आरामदायक होता है। इसके विपरीत जब बालक का आत्म प्रत्यय ॠणात्मक दशा में होता है तब उसका समायोजन दुर्वल और दुःखदायक होता है। बालक के प्रतिमानों का विकास मुख्यतः वंशानुक्रम, अधिगम और पारिवारिक अनुभवों से अधिक सार्थक ढंग से प्रभावित होता है। पद और उसके आकलन की प्रक्रिया को पहले समझाया जा चुका है।

2.2.6 निष्पादन का आकलन : कौशल के मूल्यांकन के लिए उपकरण एवं प्रविधियां

निष्पादन/प्रदर्शन मूल्यांकन (Performance Assessment) जिसे वैकल्पिक अथवा प्रमाणिक मूल्यांकन के नाम से भी जाना जाता है। निष्पादन/प्रदर्शन मूल्यांकन परीक्षण का एक रूप है जिसमें छात्र पहले से ही तैयार सूची से उत्तर का चयन नहीं करता है, अपितु उसे स्वयं कार्य करने की आवश्यकता होती है। जैसे गणित की समस्याओं का हल करना, किसी दिए हुए विषय में शोध करना, किसी ऐतिहासिक घटना की अपने अनुभवों के आधार पर अपने शब्दों में व्याख्या करना, किसी वस्तु या आर्टिकल का निर्माण करना आदि विद्यार्थी के कौशल को बताते हैं। एक अनुभवी मूल्यांकर्त्ता जो एक शिक्षक हो सकता है अथवा कोई अन्य प्रशिक्षित कर्मचारी जो पहले से ही निश्चित मानदंडों के आधार पर छात्र के

टिप्पणी

कार्यों की गुणवत्ता की जांच करता है। मूल्यांकन की इस प्रविधि में परीक्षा निर्देशों के तहत विद्यार्थी द्वारा निर्मित लेख द्वारा उसकी लेखन क्षमता का प्रत्यक्ष आकलन किया जाता है। निष्पादन/प्रदर्शन मूल्यांकन से शिक्षार्थी को शिक्षा के दौरान उसके कौशलों में हुई वृद्धि की जानकारी प्राप्त होती है।

वर्तमान समय में अधिकांशत: सभी विद्यालयों में कौशल विकास कार्यों अथवा व्यावसायिक शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। नई शिक्षा नीति में भी कौशल विकास को प्रमुख स्थान दिया गया है। कौशल विकास के लिए बालकों को कम्प्यूटर कोर्स, सिलाई/कढ़ाई/बुनाई, ब्यूटीपार्लर, पेंटिंग, लैदर गुड्स, जूट के आर्टिकल बनाना, शिल्पकारी, संगीत के क्षेत्र में गायन/वादन, नृत्य कला, मेहंदी लगाना आदि बहुत से कार्यों को करने की शिक्षा प्रदान की जाती है। बालकों की कार्य कुशलता, दक्षता अथवा कार्य में प्रवीणता की जाँच करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है।

निष्पादन/प्रदर्शन मूल्यांकन की प्रविधियाँ एवं उपकरण : प्राचीन काल से ही बालकों के ज्ञान, उनकी कार्य क्षमता, उनकी योग्यता का पता लगाने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन विधाओं का प्रयोग किया जाता है। विज्ञान एवं दर्शन के विकास के साथ इनके स्वरूप एवं प्रकृति में भी परिवर्तन आया है। पहले मूल्यांकन के लिए केवल मौखिक एवं क्रियात्मक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता था लेकिन वर्तमान समय में मापन का काफी विस्तार हो गया है। आकलन प्रविधि व उपकरण का चयन इस बात पर निर्भर करता है कि क्या मापना है, किस प्रकार के परिवर्तनों को मापना है। आकलन उद्देश्यों के साथ-साथ उपकरण भी बदलते हैं।

परियोजना विधि : परियोजना मूल्यांकन निष्पादन आधारित तथा निरन्तर गामी आकलन होता है। इस विधि का प्रयोग करके बालक की प्रवीणता का आकलन किया जा सकता है। परियोजना वास्तविक जीवन का एक छोटा सा हिस्सा है। विद्यालय में विभिन्न विषयों में परियोजना कार्य उच्च स्तर के कौशलों को सीखने के लिए संरचनात्मक एवं रचनात्मक चिंतन के अवसर प्रदान करता है। इसमें विद्यार्थी विभिन्न क्रियाएं सम्पादित करते हैं और उनके कार्यों के माध्यम से विद्यार्थी की प्रदर्शन क्षमता को आंका जाता है। परियोजना में विद्यार्थीं के समक्ष एक समस्या प्रस्तुत की जाती है, जिसका हल विद्यार्थी को खोजना होता है। परियोजना विधि द्वारा विद्यार्थियों के छोटे समूह में निष्पादन मूल्यांकन किया जाता है। उदाहरण के लिए विद्यालय परिसर में सौन्दर्यीकरण, वृक्ष महोत्सव में पेड़-पौधे रोपना, स्थानीय उद्योगों का सर्वेक्षण करना आदि।

परियोजना विद्यार्थियों के शैक्षणिक एवं सह-शैक्षणिक दोनों क्षेत्रों में उनके व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिए एक प्रभावकारी तकनीक है। इससे बालकों की योग्यता एवं कार्यकुशलता के बारे में पता चलता है। परियोजना विधि द्वारा बालक स्वयं भी अपने कार्य -निष्पादन का आकलन कर सकता है। इससे व्यक्तिगत वृत्तियों जैसे कार्य के प्रति निष्ठा, कार्य में सफाई, व्यवस्थित प्रक्रिया का पालन करना तथा समूह में कार्य करने की योग्यता आदि का मूल्यांकन किया जा सकता है। बालकों के निष्पादन का आकलन/मूल्यांकन करने के लिए शिक्षक एक रूब्रिक विकसित कर सकता है। रूब्रिक्स में छात्र के निष्पादन की तुलना के लिए गुणवत्ता को स्तर प्रदान किया जाता है।

टिप्पणी

अधिक्षमता परीक्षण : अधिक्षमता परीक्षण भी एक उपकरण है जो प्रशिक्षण के माध्यम से व्यक्ति की योग्यता एवं अर्जित किये गये कौशल को मापने के लिए प्रयुक्त होता है। अधिक्षमता परीक्षण दो प्रकार के होते हैं- बहु-आयामी अधिक्षमता परीक्षण तथा विशेष अधिक्षमता परीक्षण। बहु-आयामी अधिक्षमता परीक्षण वे होते है जिनमें अधिक्षमता के विविध क्षेत्रों को स्वतन्त्र रूप से मापना होता है, जबकि विशेष परीक्षण केवल एक विशेषता का मापन करने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे चिकित्सा पाठ्यक्रम के लिए चिकित्सकीय अधिक्षमता जरूरी है तथा अभियांत्रिकी पाठ्यक्रम में अभियांत्रिकी क्षमता जरूरी है। अधिक्षमता परीक्षण विद्यार्थियों के भविष्य के निष्पादन के बारे में बताने के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

पोर्टफोलियो : विद्यार्थियों की संप्राप्तियों का आकलन करने के लिए आजकल पोर्टफोलियो प्रयोग किया जा रहा है लेकिन इनका प्रयोग बहुत पहले से चित्रकारों, कलाकारों आदि के द्वारा अपने कार्य के प्रदर्शन के लिए किया जाता रहा है। वर्तमान समय में बालक पढ़ाई के अतिरिक्त अनेक गतिविधियों में भागीदारी करते हैं जैसे उनके द्वारा अधिगम के प्रदर्शन, विभिन्न पाठ्यसहगामी गतिविधियों में भाग लेने, विभिन्न विषयों में जैसे पी.पी.टी. बनाना व दर्शाना, सेमिनार, वाद-विवाद प्रतियोगिता कविता पाठ, निबन्ध प्रतियोगिता, पोस्टर प्रतियोगिता, रंगोली, पाकशास्त्र प्रतियोगिता, खेलों में भागीदारी, क्लब आदि में शामिल होना इन सबका रिकार्ड पोर्टफोलियो में रखा जाता है। पोर्टफोलियो में विद्यार्थी की विद्यालय, घर तथा समाज में उपलब्धियों का साक्ष्य वर्णित होता है। इसमें ऐसे विभिन्न कौशलों में उसकी पारंगतता के प्रदर्शन के भी साक्ष्य होते हैं, जिनका मापन परीक्षाओं द्वारा सम्भव नहीं होता है। पोर्टफोलियो में पूर्व निर्धारित क्रेडिट प्रदान किए जाते हैं जो अगली कक्षा में जाने के लिए अनिवार्य होते हैं।

आकलन ई-पोर्टफोलियो : कार्यक्रम/पाठ्यक्रम की संपूर्ण अवधि के लिए बच्चों की गतिविधियों को एकत्र करने और रिकॉर्ड करने के लिए आकलन ई-पोर्टफोलियो का प्रयोग किया जाता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य विद्यार्थियों के विशिष्ट कौशल/पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों की योग्यता का आकलन और परीक्षण है। इन पोर्टफोलियो को अधिगम गतिविधि/कार्यक्रम के प्रदर्शन के आकलन और मूल्यांकन के लिए सबमिट किया जाता है। उदाहरण के लिए आठवीं कक्षा में अपने अध्ययन के दौरान प्रस्तुत एक विषय में असाइनमेंट का डिजिटल स्वरूप जिसे पोर्टफोलियो के अंतर्गत रखा जा सकता है।

पोर्टफोलियो के उद्देश्य (Objectives of Portfolio) उद्देश्यों के आधार पर पोर्टफोलियो को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है-

वृद्धि पोर्टफोलियो

- शक्तियों एवं कमजोरियों की पहचान करना।
- विकास का अनुगमन करना।
- एक निश्चित समय में हुई वृद्धि एवं बदलावों की जाँच करना।
- स्व-मूल्यांकन ,लक्ष्य निर्धारण एवं कौशल विकास में सहायता करना।

टिप्पणी

प्रदर्शन पोर्टफोलियो

- विद्यार्थी के पसंदीदा, सर्वोत्तम, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों को दिखाना।
- भविष्य के प्रयासों के लिए विद्यार्थी की वर्तमान रुचियों को संप्रेषित करना।
- विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा किये गये सर्वोत्तम कार्य के नमूने तैयार करना।
- सत्र, सेमेस्टर के अन्त में विद्यार्थियों की उपलब्धियों को दिखाना।

मूल्यांकन पोर्टफोलियो

- विद्यालय द्वारा निर्धारित मानकों के प्रति प्रगति का दस्तावेज तैयार करना।
- एक विशेष खण्ड या अधिगम समुदाय में विद्यार्थियों की उपयुक्तता दर्शाना।
- ग्रेडिंग उद्देश्य से विद्यार्थियों की उपलब्धि का दस्तावेज तैयार करना।

पोर्टफोलियो के अन्तर्गत अधिगम के निष्पादन, गतिविधियों, पाठ्यसहभागी गतिविधियों में भागीदारी का विवरण और पूरे सत्र में विद्यार्थी से सम्बन्धित अन्य प्रासंगिक आंकड़ों का रिकॉर्ड रखा जाता है। विद्यार्थियों द्वारा सम्पन्न किये गये कार्यों का उद्देश्यपूर्ण व्यवस्थित ढंग से संकलन करना विद्यार्थी का पोर्टफोलियो कहलाता है। यह विद्यार्थी की उपलब्धियों की गुणवत्ता को प्रदर्शित करता है। पोर्टफोलियो की सहायता से विद्यार्थी की वर्तमान उपलब्धि स्तर की जानकारी के साथ-साथ पिछले वर्षों की जानकारी भी प्राप्त हो जाती है और उसके पिछले तथा वर्तमान के स्तर की तुलना करके उसके भविष्य की पहचान की जा सकती है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किस उद्देश्य द्वारा बालक की रुचियों, अभिवृत्तियों एवं दृष्टिकोण का विकास होता है?

   (क) संज्ञानात्मक (ख) भावनात्मक

   (ग) क्रियात्मक (घ) निदानात्मक

2. निम्न में से कौन–सा घटक संज्ञानात्मक क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आता है?

   (क) ज्ञान (ख) बोध

   (ग) संश्लेषण (घ) साक्षात्कार

3. समस्या के हल संबंधी महत्वपूर्ण तथ्य को किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया है?

   (क) प्रो. क्रथवाल (ख) प्रो. ब्लूम

   (ग) प्रो. गिलफोर्ड (घ) प्रो. वुल्फ

4. सौंदर्यबोध, काव्य एवं साज सज्जा, ललित कलाओं के प्रति झुकाव किस प्रकार के मूल्य हैं?

   (क) सामाजिक मूल्य (ख) ज्ञान मूल्य

   (ग) सौंदर्यात्मक मूल्य (घ) धार्मिक मूल्य

2.3 आकलन के लिए उपकरण

टिप्पणी

आज शिक्षक शिक्षार्थियों की अधिगम की प्रगति को जानने के लिए अनेक प्रविधियों एवं उपकरणों का प्रयोग करते हैं। आकलन उपकरण का प्रयोग साक्ष्यों को एकत्र करने के लिए किया जाता है। अधिगम के आकलन के लिए सर्वप्रथम यह निर्णय लिया जाता है कि क्या मापना है? किस प्रकार के परिवर्तनों को मापना चाहते हैं? तथा उनके लिए किन उपकरणों का प्रयोग किया जाना है। इस प्रक्रिया में साधन एवं निर्देशों की व्याख्या की जाती है। आकलन में प्रयुक्त उपकरण विद्यार्थी की क्षमताओं, प्रगति और उनके विकास को पहचानने का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। ये शिक्षक को विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अधिगम से संबंधित प्रगति तथा संबंधित सूचनाओं की जानकारी प्रदान करते हैं। शिक्षक आकलन उपकरण कई प्रकार के होते हैं जिनका विश्लेषण निम्न प्रकार है–

2.3.1 अवलोकन

अवलोकन (निरीक्षण) एक पुरातन विधि है। प्राचीन काल में बाल विकास के अध्ययन के लिए प्रायः बालक के व्यवहार का प्रतिदिन निरीक्षण करते हुए उसकी विशेषताओं का क्रमबद्ध ढंग से रिकार्ड तैयार किया जाता था। इसे चरित्र लेखन विधि भी कहा जाता है। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में विभिन्न प्रकार का व्यवहार करता है, जिसका दूसरे व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण सम्भव होता है। निरीक्षण द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन का ढंग उसका शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक समायोजन तथा परिस्थितियों के प्रति व्यवहार करने का सम्पूर्ण तरीका सूक्ष्म रूप से जाना जा सकता है। निरीक्षण विधि प्रदत्त एकत्रीकरण की एक व्यवस्थित विधि है। मोसर के अनुसार निरीक्षण को स्पष्ट रूप से वैज्ञानिक पूछताछ की प्राचीन श्रेष्ठ विधि कहा जा सकता है, ठोस अर्थ में निरीक्षण में कानों एवं वाणी की अपेक्षा नेत्रों का प्रयोग किया जाता है।

निरीक्षण अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण विधि है। निरीक्षण शब्द अंग्रेजी के Observation शब्द का पर्यायवाची है जिसका अर्थ होता है देखना और अवलोकन करना। अवलोकन या निरीक्षण ने तथ्यपूर्ण सामग्री के संकलन के साधन के रूप में सदैव से ही वैज्ञानिक ज्ञान के विकास में सहायता की है चाहे प्राकृतिक हो चाहे सामाजिक विज्ञान निरीक्षण का सम्बन्ध सदैव विज्ञान से रहा है।

प्रो. गुडे एवं हाट के अनुसार, “विज्ञान निरीक्षण से आरम्भ होता है और इसे अन्तिम रूप में प्रमाणीकरण के लिए निरीक्षण पर ही वापस आना होता है।”

ए. वुल्फ के अनुसार, “वस्तुओं तथा घटनाओं, उनकी विशेषताओं एवं उनके मूर्त सम्बन्धों को समझने और उनके सम्बन्ध में हमारे मानसिक अनुभवों की प्रत्यक्ष चेतना को जानने की क्रिया को अवलोकन कहते हैं।

इसमें शोधकर्त्ता बालक के व्यवहार एवं आचरण का विभिन्न वातावरण में अवलोकन करता है। वह बालक की रुचियों एवं आदतों का निरीक्षण करता है। शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में बालक के व्यवहारों का निरीक्षण दो प्रकार की परिस्थितियों में किया जाता है–

- **नियन्त्रित निरीक्षण :** इस विधि के अन्तर्गत बालक के व्यवहारों का अध्ययन व्यवस्थित एवं नियन्त्रित परिस्थितियों में किया जाता है। सर्वप्रथम इसका प्रयोग नवजात

बालकों की ज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं के अध्ययन के लिए किया गया था। इस विधि को व्यवस्थित विधि भी कहते हैं। इस विधि में निरीक्षक पहले निरीक्षण की योजना बनाता है और फिर पूर्व निश्चित तथा व्यवस्थित योजना के अनुसार निरीक्षण करता है। इस योजना द्वारा निरीक्षण पर नियन्त्रण रहता है और निरीक्षण त्रुटियों में कमी आती है।

• **स्वाभाविक निरीक्षण :** जब किसी घटना का निरीक्षण प्राकृतिक परिस्थितियों में किया जाए तथा प्राकृतिक परिस्थितियों पर कोई बाह्य दबाव नहीं होता है तो इस प्रकार के निरीक्षण को अनियन्त्रित निरीक्षण कहते हैं। इस विधि के अन्तर्गत बालकों द्वारा किए गए व्यवहारों का स्वाभाविक परिस्थिति में निरीक्षण किया जाता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त विद्वानों ने निरीक्षण विधि में अध्ययन की सरलता व सुविधा के लिए इसे निम्न दो प्रकार से वर्गीकृत किया है-

• **सहभागी निरीक्षण :** इस विधि में निरीक्षणकर्त्ता स्वयं न्यूनाधिक रूप में उस समूह का सदस्य बन जाता है जिसके सदस्यों के व्यवहारों का वह अवलोकन करता है। समूह की सभी क्रियाओं में वह सक्रिय भाग लेता है। इस विधि द्वारा निरीक्षणकर्त्ता सूक्ष्म रूप से समूह के सदस्यों के व्यवहार का निरीक्षण कर सकता है। इस निरीक्षण में अन्य सदस्यों को निरीक्षणकर्त्ता के उद्देश्यों का ज्ञान नहीं होता है कि कोई उनका निरीक्षण कर रहा है।

सहभागी निरीक्षण की विशेषताएं : सहभागी निरीक्षण प्रविधि में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं-

1. इस प्रविधि में व्यवहार का प्रत्यक्ष अध्ययन करने के कारण तथ्यों में विश्वसनीयता एवं वैधता पायी जाती है।
2. निरीक्षणकर्त्ता समूह के सदस्यों के साथ मिलकर उनका निरीक्षण करता है इससे वह उनके वास्तविक व्यवहार का अध्ययन सूक्ष्म रूप से कर पाता है।
3. इसमें निरीक्षणकर्त्ता स्वयं भी समूह में शामिल होता है, अत: समूह के सदस्यों पर उसका विश्वास होता है जिससे निरीक्षणकर्त्ता को निरीक्षण करने में सुविधा होती है।
4. सहभागी निरीक्षण विधि द्वारा एकत्रित तथ्यों या सूचनाओं की वैधता की जांच निरीक्षणकर्त्ता आसानी से कर सकता है।

सहभागी निरीक्षण की परिसीमाएं या कमियां : सहभागी निरीक्षण प्रविधि की परिसीमाएं या कमियां निम्नलिखित हैं-

1. इस प्रकार के निरीक्षण में कभी–कभी पूर्ण सहभागिता का अभाव हो जाता है क्योंकि निरीक्षणकर्त्ता अपनी भिन्नताओं के कारण समूह के सदस्यों के समान नहीं हो पाता है।
2. जब निरीक्षणकर्त्ता समूह में अपना स्थान निश्चित कर लेता है तो समूह के सदस्य भी अपने व्यवहार में परिवर्तन कर लेते हैं।
3. इस प्रकार की विधि में समय और धन अधिक खर्च होता है।
4. निरीक्षणकर्त्ता का समूह से घनिष्ठ सम्बन्ध उसे समूह में सूक्ष्म निरीक्षण करने में बाधक सिद्ध होता है।
5. अनेक ऐसे समूह होते हैं जहां इस प्रकार का निरीक्षण असम्भव होता है।

टिप्पणी

• **असहभागी निरीक्षण :** इस प्रकार के निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता समूह के बाहर रहकर सदस्यों के व्यवहारों का अवलोकन करता है। निरीक्षणकर्त्ता तटस्थ रहकर एक बड़े समूह के अन्य सदस्यों के व्यवहार का अवलोकन कर सकता है। इस प्रविधि में समूह के सदस्यों एवं निरीक्षणकर्त्ता के मध्य पारस्परिक अन्त:क्रिया नहीं हो पाती है। इस प्रविधि में निरीक्षणकर्त्ताकी अभिवृत्ति पक्षपात रहित होती है। इस लिए इस प्रविधि द्वारा प्राप्त परिणाम निष्पक्ष एवं वस्तुगत होते हैं।

असहभागी निरीक्षण की मुख्य विशेषताएं : असहभागी निरीक्षण की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. निरीक्षणकर्त्ता समूह के कार्यों में भाग नहीं लेता इसलिए निरीक्षण में पक्षपात की सम्भावना नहीं होती है।
2. निरीक्षणकर्त्ता को निरीक्षण में अध्कि समय मिलने के कारण निरीक्षण अपेक्षाकृत विश्वसनीय एवं निष्पक्ष होता है।
3. इस प्रकार के निरीक्षण में समय व धन की बचत होती है।
4. इस प्रकार के निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता को व्यक्ति की क्रियाओं के बाहरी पक्ष का अध्ययन करने का अवसर मिलता है।

असहभागी निरीक्षण की परिसीमाएं या कमियां : असहभागी निरीक्षण की मुख्य परिसीमाएं या कमियां निम्न हैं-

1. इस प्रकार के निरीक्षण में निरीक्षणकर्त्ता घटनाओं व क्रियाओं को समझने में अपना दृष्टिकोण अपनाता है जिससे निरीक्षण में यथार्थता नहीं आ पाती है।
2. जब निरीक्षण समूह के सदस्यों को यह पता चलता है कि उनकी क्रियाओं का किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा निरीक्षित किया जा रहा है तो उनके व्यवहार में कृत्रिमता आ जाती है।
3. निरीक्षणकर्त्ता पूर्ण रूप से असहभागी रहकर निरीक्षण नहीं कर सकता है।

निरीक्षण विधि की विशेषताएं : इस विधि की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं-

1. निरीक्षण के द्वारा बालक के यथार्थ व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।
2. इस विधि द्वारा व्यक्ति या समूह का निरीक्षण एक ही समय में करना सम्भव है।
3. व्यवहार का अवलोकन स्वाभाविक परिस्थितियों में किया जाता है।
4. इस विधि का प्रयोग शिशु एवं वयस्कों दोनों के व्यवहार का अवलोकन करने के लिए किया जा सकता है।
5. इस प्रविधि का प्रयोग गूंगे, बहरे तथा अपंग व्यक्तियों के व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिए किया जा सकता है।
6. इस विधि का प्रयोग करने के लिए निरीक्षणकर्त्ता को किसी विशेष परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती है।
7. अबोध बालकों का अध्ययन करने के लिए यह विधि अत्यन्त उपयोगी है।

निरीक्षण विधि की सीमाएं : इस विधि की सीमायें निम्न हैं-

1. यह प्रविधि आत्मनिष्ठ एवं पक्षपात से पूर्ण होती हैं।

2. निरीक्षक विश्लेषण करते समय पूर्व धरणाओं से प्रभावित होता है। मनोवैज्ञानिक इसे व्याप्त प्रभाव के नाम से जानते हैं।
3. विभिन्न निरीक्षकों द्वारा दिया गया विवरण समान नहीं होता है।
4. निरीक्षण करने मे समय अधिक लगता है।
5. निरीक्षक के स्वयं के भाव उसकी मनोवृत्तियों, शारीरिक एवं मानसिक स्थिति थकान आदि का प्रभाव निरीक्षण कार्य पर पड़ता है।

टिप्पणी

यह विधि सरल होने के साथ-साथ उपयोगी भी है। इसमें सरलता के साथ यर्थाथता, सत्यापन एवं विश्वसनीयता का गुण पाया जाता है। इस पद्धति से एकत्र की गई सूचनाएं अध्कि विश्वसनीय होती हैं।

2.3.2 साक्षात्कार

साक्षात्कार अंग्रेजी के Interview का हिन्दी स्वरूप है जिसमें Inter कर अर्थ है आन्तरिक एवं view का अर्थ है देखना/ अवलोकन करना। इस प्रकार साक्षात्कार का अर्थ हुआ आन्तरिक अवलोकन। साक्षात्कार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा अध्ययन इकाइयों के अनुभवों एवं विचारों आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। यह एक अनुसन्धान प्रविधि है। जिसके माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यक सूचनाओं को एकत्र किया जाता है। साक्षात्कार आमने-सामने होने वाला वह वार्तालाप है जिसका उद्देश्य तथ्यपूर्ण सूचना प्राप्त करना होता है। पी.वी.यंग के अनुसार- "साक्षात्कार को ऐसी व्यवस्थित विधि माना जा सकता है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति काल्पनिक रूप से कम या अधिक एक ऐसे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करता है जो कि उसके लिए अपेक्षाकृत अपरिचित होता है।" मूल्यांकन की दृष्टि से साक्षात्कार एक जटिल प्रक्रिया है। इसके द्वारा मोटे तौर पर किसी व्यक्त्वि का मापन किया जाता है। साक्षात्कार एक प्रकार से प्रश्नावली का ही रूप है फर्क केवल इतना ही है कि प्रश्नावली लिखित होती है। किन्तु साक्षात्कार में सारा कार्य मौखिक होता है। साक्षात्कार में साक्षात्कार देने वाला तथा साक्षात्कार लेने वाला दोनों आमने-सामने उपस्थित होते हैं। साक्षात्कार के प्रमुख वर्गीकरण निम्नलिखित हैं-

- **संरचना के आधार पर :** इस आधार पर साक्षात्कार दो भागों में विभक्त किया जाता है-

    1. **संरचित साक्षात्कार :** इस प्रकार के साक्षात्कार में पहले प्रश्नों की सूची तैयार की जाती है फिर साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से उनके अनुरूप प्रश्न करता है। प्रश्नावली पहले से तैयार होती है अत: संरचित साक्षात्कार कहा जाता है। प्रश्नकर्त्ता प्रश्नकर्त्ता प्रश्नावली में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है। इसे निर्देशित साक्षात्कार भी कहा जाता है।

    2. **असंरचित साक्षात्कार :** इस प्रकार के साक्षात्कार अनियन्त्रित, अथवा अनिर्दिष्ट साक्षात्कार भी कहलाते हैं। क्योंकि इसमें कोई पूर्वनिर्मित प्रश्नों की सूची नहीं होती है। साक्षात्कारकर्त्ता अपनी इच्छानुसार प्रश्न पूछने के लिए स्वतन्त्र होता है और साक्षात्कारदाता किसी विवरण अथवा कहानी के रूप में अपने उत्तर प्रत्युत्तर प्रस्तुत करता है।

- **औपचारिकता के आधार पर :** औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है-

टिप्पणी

1. **औपचारिक साक्षात्कार :** औपचारिक साक्षात्कार को प्रमापीकृत साक्षात्कार भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत साक्षात्कारकर्त्ता पहले से ही भलीभांति तैयार की गयी साक्षात्कार अनुसूची में दिये गये प्रश्नों को ही पूछता है तथा उत्तरदाता द्वारा दिये गये जवाबों को लिखता है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता पर पूरा नियन्त्रण रहता है। वह अनुसूची के प्रश्नों की भाषा, उनके क्रम, और उनकी संख्या में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है।

2. **अनौपचारिक साक्षात्कार :** अनौपचारिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता होती है। इसी कारण इसे अनियन्त्रित या स्वतन्त्र साक्षात्कार भी कहा जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में किसी प्रकार की सूची की सहायता नहीं ली जाती है। साक्षात्कारकर्त्ता, साक्षात्कारदाता से कुछ मुख्य प्रश्न या किसी विषय पर उसके विचार पूछता है और उत्तरदाता एक वर्णनात्मक शैली में उनके उत्तर देता है।

- **उद्देश्यों के आधार पर :** उद्देश्यों के आधार पर साक्षात्कार को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-

1. **निदानात्मक साक्षात्कार :** जब किसी साक्षात्कार का उद्देश्य किसी गम्भीर सामाजिक घटना या समस्या के कारकों की खोज करना होता है तो उसे निदानात्मक साक्षात्कार कहते हैं।

2. **उपचारात्मक साक्षात्कार :** जब किसी साक्षात्कार का उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या को दूर करने के उपचार से सम्बन्धित सुझावों की खोज करना होता है तो उसे उपचारात्मक साक्षात्कार कहा जाता है।

3. **अनुसंधानात्मक साक्षात्कार :** जिस समय साक्षात्कार के द्वारा किसी सामाजिक समस्या से सम्बन्धित सभी आवश्यक कारकों की खोज का प्रयास किया जाता है तो उसे अनुसंधनात्मक साक्षात्कार कहते हैं।

- **उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर :** उत्तरदाताओं की संख्या के आधार पर साक्षात्कार को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है-

1. **व्यक्तिगत/ वैयक्तिक साक्षात्कार :** इसके अन्तर्गत एक समय में एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार लिया जाता है। इसके अन्तर्गत साक्षात्कारकर्त्ता एवं साक्षात्कारदाता के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है। बोगार्डस के अनुसार अभिवृत्तियों तथा उनमें आने वाले परिवर्तन व्यक्तिगत साक्षात्कार के द्वारा सर्वोत्तम रूप से जाने जाते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्त्ता एक के बाद एक प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता उनके उत्तर देता जाता है।

2. **सामूहिक साक्षात्कार**- व्यक्तिगत साक्षात्कार के विपरीत सामूहिक साक्षात्कार में एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया जाता है। इस साक्षात्कार में एक सीमा तक व्यक्तिगत साक्षात्कार की कमियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत कुछ प्रश्न सदस्यों से बारी-बारी से पूछे जाते है। और साक्षात्कारदाता उनके उत्तर देते हैं इसमें साक्षात्कारकर्त्ता को वास्तविक तथ्यों को चुनने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है।

- **अध्ययन पद्धति के आधर पर :** अध्ययन पद्धति के आधार पर साक्षात्कार को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

टिप्पणी

1. **अनिदेशित साक्षात्कार :** अनिदेशित साक्षात्कार को अनियन्त्रित, असंरचित अथवा अनिर्दिष्ट साक्षात्कार भी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत कोई पूर्व-निश्चित अनुसूची नहीं होती है। इसके अन्तर्गत जब साक्षात्कारकर्त्ता साक्षात्कारदाता से कोई प्रश्न/जटिल समस्या के बारे मे पूछता है तो साक्षात्कारदाता किसी विवरण अथवा कहानी के द्वारा प्रत्युत्तर प्रस्तुत करता है। साक्षात्कारकर्त्ता बीच में बिना टोके धैर्यपूर्वक उसका उत्तर सुनता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो अनौपचारिक एवं अनिदेशित साक्षात्कार लगभग एक जैसे हैं।
2. **केन्द्रित साक्षात्कार :** इस साक्षात्कार का प्रयोग सबसे पहले रॉबर्ट मटर्न तथा केन्डल ने सामाजिक जीवन पर आधुनिक संचार साधनों का प्रभाव जानने के लिए किया था। यह साक्षात्कार इस मान्यता पर आधरित है कि यद्यपि वैयक्तिक अनुभूतिपरक धरणाओं के सूक्ष्म स्वरूप की प्राप्ति सम्भव है किन्तु इसमें सम्बन्धित स्थिति का पूर्व विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक है। यह साक्षात्कार पूर्वविश्लेषित परिस्थितियों पर आधारित होता है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता अपना ध्यान इस बात पर केन्द्रित करता है कि घटना, अवस्था या परिस्थिति का अध्ययन करने वाले पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसके लिए साक्षात्कारकर्त्ता उस अवस्था या घटना के द्वारा उत्पन्न विभिन्न भावनाओं, विचारों तथा मानसिक स्थितियों का अध्ययन करता है। प्राय: केन्द्रित साक्षात्कार का प्रयोग नये अविष्कारों का समाज पर प्रभाव जानने के लिए किया जाता है।
3. **पुनरावृत्ति साक्षात्कार :** पुनरावृत्ति साक्षात्कार में एक ही समूह का एक से अधिक बार साक्षात्कार किया जाता है। इस प्रविधि का प्रयोग प्राय: सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप समुदायों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव किसी भी समूह पर एकदम नहीं हो जाता है। बल्कि प्रभाव धीरे-धीरे दृष्टिगोचर होता है। इसी कारण इन प्रभावों का अध्ययन एक बार साक्षात्कार करने से नहीं किया जा सकता है अत: बार-बार साक्षात्कार करना पड़ता है।

साक्षात्कार के उद्देश्य : साक्षात्कार के निम्न उद्देश्य होते हैं-

- पूर्व प्राप्त सूचनाओं की पुष्टि करने के लिए।
- आमने-सामने के सम्पर्क से सूचनाएं एकत्र करना।
- व्यक्ति के विचारों, मूल्यों एवं मनोवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए।
- व्यक्ति के शारीरिक रूप का अवलोकन करने के लिए।
- गुणात्मक तथ्यों का संकलन करना।
- व्यक्ति की प्रेरणात्मक शक्तियों एवं क्रियाओं की व्याख्या के लिए।
- व्यक्ति के अचेतन में निहित शक्तियों का पता लगाने के लिए।
- व्यक्ति के तनावों एवं कुंठाओं से प्रभावित व्यवहार का अध्ययन करने के लिए।

साक्षात्कार के लाभ : साक्षात्कार से निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं-

- साक्षात्कार का प्रारूप विभिन्न समस्याओं एवं उद्देश्यों के अनुरूप तैयार किया जा सकता है।

टिप्पणी

- साक्षात्कार विधि को प्रयोग में लाना अत्यन्त सुविधाजनक एवं सरल है।
- साक्षात्कार लेने में कोई विशेष समस्या नहीं आती है क्योंकि इसमें प्रत्याशी को लिखित में कुछ नहीं देना होता अत: यह सहर्ष सहयोग देता है।
- साक्षात्कार संवेगात्मक समस्याओं के अध्ययन के लिए सर्वश्रेष्ठ विधि है।
- साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार के उन आयामों का भी पता चलता है जिन्हें प्रकट करने में लोग संकोच करते हैं।
- साक्षात्कार प्रत्याशी की भाव-भंगिमा उसके बारे में अनेक रहस्यों को प्रकट कर देता है।
- साक्षात्कार व्यक्ति की अंतरदृष्टि उत्पन्न करने में मददगार सिद्ध होता है।

साक्षात्कार की सीमाएं : साक्षात्कार विधि की अपनी कुछ सीमाएं होती हैं जो निम्न हैं-

- यह दोहरी आत्मनिष्ठ विधि है। उत्तरदाता साक्षात्कारकर्त्ता को प्रसन्न करने के लिए उत्तर देता है।
- साक्षात्कार अधिक लचीला होता है परिणामस्वरूप वार्तालाप को वास्तविकता से दूर करके मनपसन्द ढंग से मोड़ देता है।
- साक्षात्कार में विश्वसनीयता एवं वैधता कम होती है।
- साक्षात्कार व्यक्तिगत भावनाओं से पूर्णरूपेण प्रभावित होता है।
- साक्षात्कारदाता जिन प्रश्नों के उत्तर देना नहीं चाहता है उनके उत्तर घुमा-फिराकर देकर स्वयं को सुरक्षित कर लेता है।
- कुछ सीमाओं में बंधे होने के कारण साक्षात्कारदाता स्पष्टवादिता भूल जाते हैं।

2.3.3 अनुसूची

प्रश्नावली तथा अनुसूची विधियों की अधिकतम आलोचना के बाद भी ये सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में सबसे अधिक प्रयोग की जाती हैं। अनुसूची प्राय: अनुसंधानकर्त्ता द्वारा भरी जाती है। अनुसूची व्यक्ति के व्यवहार अथवा समस्या सम्बन्धी बहुत से प्रश्नों का संकलन होती है। अनुसूची एक अर्थ में विभिन्न मदों अथवा पक्षों की एक विस्तृत, वर्गीकृत, नियोजित एवं श्रेणीबद्ध सूची से है जिस पर सूचनादाताओं की सूचना प्राप्त की जाती है। वास्तव में अनुसूची अनेक पश्नों की एक ऐसी सूची है जिसे मूल्यांकनकर्त्ता उत्तरदाता के पास स्वयं ले जाता है और उससे पूछ-पूछ कर सूचनाओं का आलेख करता है। अनुसूची तथ्यों को प्राप्त करने की एक औपचारिक विधि है जो स्थूल रूप में होते हैं तथा जिन्हें सरलता से देखा जा सकता है। अनुसूची अध्ययनकर्त्ता द्वारा स्वयं भरी जाती है। अथवा अनुसूची एक ऐसा अनुसंधान यन्त्र होता है जिसका उपयोग वैयक्तिक साक्षात्कार द्वारा सूचना संग्रह के लिए किया जाता है।

अनुसूची के उद्देश्य : पी.वी. यंग ने अनुसूची के निम्न उद्देश्यों का उल्लेख किया है-

1. **उत्तरदाताओं का परिसीमन करना (Delimitation of the Subject) :** अनुसूची सदैव पूछताछ के एक निश्चित पद से सम्बन्धित होती है। इसका विषय सामान्य न होकर एकल अलग-थलग पड़ा होता है। साक्षात्कारकर्त्ता एक विषय के संबंध में प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता के उत्तरों को लिख लेता है। अत: अनुसूची परिसीमन कर पूछताछ के विषय को इंगित कर देती है।

2. **स्मृति पर निर्भर न होना (No Dependance on Memory)** : साक्षात्कार में प्रश्नों का चयन पूर्ण रूप से साक्षात्कारकर्त्ता पर छोड़ दिया जाता है। वह कोई भी प्रश्न पूछ सकता है। इसमें कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं के छूट जाने की सम्भावना सदैव बनी रहती है। इसी कारण अनुसूची में प्रश्नों को योजनाबद्ध तरीके से लिख लिया जाता है। अत: साक्षात्कारकर्त्ता सदैव लिखित प्रश्नों में से प्रश्न पूछता है और उसे अपनी स्मृति पर निर्भर नहीं होना पड़ता है।

3. **वर्गीकरण एवं विश्लेषण में सहायक (Aid of Classification and Analysis) :** जब साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर लेता है तब वह उत्तरों को वर्गीकृत करके उनका विश्लेषण करता है। अनुसूचियों में अनेक सारणियों का प्रयोग किया जाता है क्योंकि उसमें प्रश्न भी बहुत प्रकार के होते हैं। कुछ प्रश्नों के उत्तर हां/नहीं में होते हैं और कुछ में विकल्प दिए होते हैं और उनमें से सही विकल्प का चयन करना होता है। कुछ प्रश्नों में चिन्तन की आवश्यकता होती है उनके उत्तर कुछ छोटे वाक्यों में देने होते हैं। अत: इस प्रकार के उत्तरों को उपयुक्त वर्गों में वर्गीकृत करना होता है।

अनुसूची के प्रकार : अनुसूची को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है-

- **अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule)**: इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग तब किया जाता है जब प्रदत्त एकत्र करने की मुख्य विधि अवलोकन विधि होती है। इस विधि का उद्देश्य उन सूचनाओं को प्रमापित रूप देना होता है। जिन्हें अनुसन्धनकर्त्ता एकत्र करना चाहता है। यह विधि लोगों की सामाजिक परिस्थितियों तथा समूहों की क्रियाओं के लेखे को समान रूप से वर्गीकृत करने की सुविधा प्रदान करती है। इस प्रकार की अनुसूची से एक साथ अनेक उद्देश्यों की पूर्ति हो जाती है।

- **प्रलेख अनुसूची (Documentry Schedule)** : इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग लिखित साधनों जैसे आत्मकथा, डायरी, सरकारी पत्र अथवा गैर-सरकारी कागजात एवं अन्य लिखित स्रोतों से सूचनाओं को एकत्र करने के लिए किया जाता है। सूचनाओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से इस प्रकार की अनुसूची में सीमित प्रश्न शामिल किए जाते हैं। ये प्रश्न ऐसे होते हैं जिनमें संबंधित सूचना अनेक लिखित स्रोतों से प्राप्त की जा सके।

- **साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule)** : इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग संरचित साक्षात्कार में किया जाता है। इस प्रकार की अनुसूची में निश्चित प्रश्न दिय होते हैं, जिन्हें साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता से उसी क्रम में पूछता है जिस क्रम वे लिखे होते हैं।

- **मूल्यांकन अनुसूची (Evaluation Schedule)** : इस प्रकार की अनुसूची का प्रयोग मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक अनुसंधान तथा व्यवसायों में संबंधित परामर्श के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग उत्तरदाता के मत, प्रवृत्ति, पसन्द आदि को ज्ञात करने के लिए किया जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न मत पसन्द आदि को महत्व के अनुरूप दर्शाया जाता है।

- **संस्था सर्वेक्षण अनुसूची (Institutional Survey Schedule)** : इस प्रकार की अनुसूचियां संस्थानों से संबंधित सूचनाओं को एकत्र करने के लिए प्रयोग में

लायी जाती हैं। संस्थान की समस्या की जटिलता के अनुसार की मूल्यांकन अनुसूची की लम्बाई तय की जाती है। समस्या जितनी जटिल होगी अनुसूची उतनी लम्बी होगी।

टिप्पणी

अनुसूची प्रणाली के गुण : अनुसूची प्रणाली में निम्न गुण पाये जाते हैं-

- इस प्रणाली में लोगों से सम्पर्क किया जा सकता है। अध्ययनकर्त्ता सूचनादाता के सामने होता है, इस कारण वह अधिकांश प्रश्नों के उत्तर दे देता है।
- अध्ययनकर्त्ता की उपस्थिति के कारण उत्तरदाता अपने भ्रमों एवं शंकाओं का निवारण कर प्रश्नों के सही उत्तर दे सकता है। कोई प्रश्न समझ न आने पर उसकी व्याख्या की जा सकती है। उत्तर स्पष्ट न होने पर अन्य सहायक प्रश्नों की सहायता से उपयुक्त एवं वांछित उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं।
- अनुसूची अध्ययनकर्त्ता द्वारा स्वयं भरी जाती है अत: वह उत्तरों को संकेतों अथवा लेखन की संक्षिप्त विधि को अपनाकर साक्षात्कार के तारतम्य को बनाये रख सकता है।
- उत्तरदाता से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो जाने के कारण उसके व्यक्तिगत जीवन के अनेक पहलुओं को अच्छी तरह समझा जा सकता है। इस प्रकार अतिरिक्त सूचना के कारण विश्वसनीयता बढ़ जाती है।

अनुसची प्रणाली की सीमाएं

- यह विधि काफी महंगी होती है। इस विधि के प्रयोग में अध्ययन का खर्च अपेक्षाकृत काफी अधिक होता है। प्रत्येक उत्तरदाता से सम्पर्क स्थापित करने में समय काफी नष्ट होता है। उत्तरदाताओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए कई साक्षात्कारकर्त्ताओं की नियुक्ति करनी पड़ती है।
- यदि अध्ययन क्षेत्र काफी बड़ा तथा विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ हो तो संगठन की समस्या उत्पन्न हो जाती है और कार्य निरीक्षण सुचारु रूप से नहीं हो पाता।
- अध्ययनकर्त्ता की उपस्थिति जहां एक ओर सहायक होती है वहीं दूसरी ओर अड़चन भी पैदा कर देती है, क्योंकि उत्तरदाता उससे प्रभावित होकर स्वतन्त्र रूप से उत्तर नहीं दे पाता है। इस दोष को किसी भी प्रकार कम नहीं किया जा सकता है।

2.3.4 चेकलिस्ट

मानक उपकरणों के आधार पर चेकलिस्ट प्रश्नावली के वर्ग में आती है चेकलिस्ट वास्तव में कुछ सतत् अथवा वर्गीकृत प्रश्नों की एक सूची होती है जिसे डाक द्वारा अथवा व्यक्तिगत दोनों प्रकार से प्रशासित किया जा सकता है। इसमें क्रमबद्धता एवं तर्कसंगतता को ध्यान में रखा जाता है। शैक्षणिक सर्वेक्षण के लिए सूचनाएं एकत्र करने हेतु चेकलिस्ट महत्वपूर्ण उपकरण सिद्ध होता है। चेकलिस्ट में मात्र ऐसे कथन होते हैं जो व्यक्तित्व से सम्बन्धित वर्णनात्मक कथन या शीलगुणों के रूप में व्यक्त होते हैं और अध्यापक यह जानना चाहता है कि वे शीलगुण बालक में हैं या नहीं। अध्यापक मिलान करके सही का निशान लगाता है। यह प्रविधि अत्यन्त वस्तुनिष्ठ बनायी जा सकती है। हार्टशोर्न तथा मे ने इस विधि का प्रयोग बालकों के चरित्र का मूल्यांकन करने के लिए किया था।

चेकलिस्ट की विशेषताएं : चेकलिस्ट की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. इसकी संरचना एवं प्रशासन अत्यन्त सरल कार्य है।
2. फलांकन गणना अत्यन्त सरल है।
3. इस विधि का प्रयोग अत्यन्त जटिल परिस्थितियों में भी किया जा सकता है।
4. इसमें साक्षात्कार की अपेक्षा कम समय लगता है।
5. इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि निर्णायक प्रशिक्षित एवं विभेदकारी हो।
6. एक बार अंकन कुंजी बन जाने पर विभिन्न निरीक्षकों का मूल्यांकन समान होता है।

चेकलिस्ट की सीमाएं : इस विधि की अपनी कुछ सीमाएं होती हैं-

1. व्यक्ति अपने स्वाभाविक व्यवहार पर नियन्त्रण करके प्रश्नों के उत्तर गलत दे सकता है।
2. परीक्षण में लिखी घटनाएं उनके जीवन में घटी ही न हों।
3. व्यक्ति प्रश्नों की भाषा ठीक प्रकार न समझ पाये और अनुमान से ही उत्तर दे।
4. इस विधि में निर्णायक केवल उन पदों अथवा कथनों की जांच-पड़ताल करता है जो उस पर प्रयुक्त हो। ऐसा होने पर निर्णायक को प्रत्येक पद पर प्रतिक्रिया नहीं करनी पड़ती है।

2.3.5 रेटिंग स्केल

मापनी के द्वारा व्यक्ति अपने आस-पास के वातावरण में विद्यमान विभिन्न वस्तुओं एवं तथ्यों का मापन करता है। भौतिक पदार्थों के मापन के लिए विभिन्न प्रकार की मापनियों का प्रयोग किया जाता है। इनका मापन शुद्ध एवं वैध होता है। भौतिक मापनियों की तरह मनोवैज्ञानिक मापनी होती हैं जिन्हें व्यक्तियों की कुछ विशेष अनुक्रियाओं एवं निष्पादन की स्थितियों को एक पूर्वनिश्चित सातत्य पर व्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिक मापनी में भैतिक मापनी की तरह निरपेक्ष शून्य बिन्दु नहीं होता है। अत: इसके माध्यम से एक सतत् सातत्य पर एक व्यक्ति एक विषय के प्रति अभिवृत्ति का मापन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक मापनियों के स्वरूप, स्थूल से लेकर विकसित एवं विशिष्ट रूप में देखने को मिलते हैं। एक मापनी मापन की वह युक्ति है जिसमें उद्दीपक वस्तु की तुलना एक प्रमाणिक सेट से करके अंक या गणितीय मूल्य प्रदान किए जाते हैं जो उद्दीपक वस्तु के परिणाम का प्रतिनिध्त्वि करते हैं।

रेटिंग स्केल/निर्धारण मापन : रेटिंग स्केल सूचनाओं के संकलन की एक विधि है जिसके द्वारा विचारों तथा अभिव्यक्तियों का क्रमबद्ध रूप से मापन किया जाता है। सभी मनोवैज्ञानिक विधियों में निर्धारण मापनी सबसे अधिक प्रचलित है। सामान्यत: इस मापनी का प्रयोग शिक्षक, अभिभावक तथा प्रशासकों द्वारा किया जाता है। निर्धारण मापनी किसी वस्तु के सीमित पक्षों अथवा व्यक्ति के गुणों का विवरण प्रस्तुत करती हैं। निर्धारण मापनी किसी चर की मात्रा, तीव्रता एवं बारम्बारता को निर्धारित करती है।

निर्धारण मापनी एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि किसी व्यक्ति ने कुछ विशिष्ट गुणों के सन्दर्भ में अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के ऊपर क्या

टिप्पणी

छाप छोड़ी है। यह एक आत्मनिष्ठ विधि है। व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं एवं उत्तेजनाओं के मूल्यांकन के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। निर्धारण मापनी में निम्नलिखित मानदंडों का प्रयोग किया जाता है जैसे- सर्वोत्तम, अति उत्तम, उत्तम, सामान्य, सामान्य से निम्न, असंतोषजनक, अत्यन्त असंतोषजनक। प्रंशसा पत्र, चरित्र प्रमाण पत्र, गोपनीय प्रतिवेदन आदि निर्धारण मापनी के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। निर्धारण मापनी में कुछ विशेषकों की सूची होती है जिनमें प्रत्येक के सामने कुछ विवरण अथवा अंक अथवा विश्लेषण लिखे होते हैं। निर्धारक को अपने ज्ञान के आधार पर अपेक्षित व्यक्ति के विषय में उल्लेखित निर्धारण अनुक्रिया में से एक को चिन्हित करना होता है। निर्धारण अनुक्रिया की प्रकृति के आधार पर निर्धारण मापनी को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है-

- भारित निर्धारण मापनी (Weightage Rating Scale)
- अंक प्राप्ति निर्धारण मापनी (Scoring Rating Scale)
- आलेखीय निर्धारण मापनी (Graphic Rating Scale)
- संख्यात्मक निर्धारण मापनी (Numrical Rating Scale)
- स्थैतिक निर्धारण मापनी (Ranking Rating Scale)
- शतमक तथा दशमक निर्धारण मापनी (Percentile and Decile Rating Scale)

निर्धारण मापनी के लाभ– निर्धारण मापनी के लाभ निम्नलिखित हैं-

1. निर्धारण मापनी से विद्यालय में अध्यापक को अभिभावकों के लिए उनके बालकों के लिए रिपोर्ट तैयार करने में सहायता मिलती है।
2. निर्धारण मापनी द्वारा जिन व्यक्तियों का मापन किया जाता है उन्हें अपने कार्य को करने के लिए प्रेरित भी किया जाता है।
3. निर्धारण मापनी अनुसंधान कार्य में किसी अन्य स्रोत से आंकड़ों की वैधता ज्ञात करने मे सहायता प्रदान करती है।
4. निर्धारण मापनी बालकों की आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों का पता लगाने में सहायता प्रदान करती है।
5. निर्धारण मापनी से कर्मचारियों के चुनाव में सहायता मिलती है।
6. निर्धारण मापनी से इस बात का निर्णय लिया जा सकता है कि छात्र विद्यालय में प्रवेश लेने के बाद कौन-कौन से पाठ्यक्रम का चयन करें।

परिसीमाएं : इन मापनियों में पक्षपात की सम्भावनाएं अधिक होती हैं–

1. अनेक व्यक्तियों द्वारा किये गये निर्णय एक समान नहीं होते।
2. यद्यपि इस मापनी में फलांकन विधि में परिवर्तन की सम्भावना रहती है, फिर भी फलांकों की गणना कठिन होती है। साथ ही काफी परिश्रम भी करना पड़ता है।
3. मौलिक रूप से मापनी को तैयार करना कठिन होता है।
4. व्यवहार में दो निर्धारकों के मत में समानता का अभाव पाया जाता है।
5. किसी व्यक्ति के बारे में निर्णय करते समय अध्यागणन (Over-estimation) तथा अवगणन (under-estimation)की सम्भावना होती है।

निर्धारण मापनी की त्रुटियां : निर्धारण मापनी की संरचना एवं इसके प्रयोग में अनेक त्रुटियां हैं जो निम्न हैं-

1. **उदारता की त्रुटि :** इस त्रुटि को उदारता की त्रुटि इसलिए कहा जाता है क्योंकि निर्धारक उन लोगों का मूल्यांकन उदारतापूर्वक करता है, जिन्हें वह जानता हो अथवा वे लोग अहं सन्निहित (Ego-involved) रहते हैं। यह एक सतत् प्रवृत्ति है इस प्रकार कुछ निर्धारक उदार होते हैं और कुछ कठोर । इसी के परिणामस्वरूप धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों प्रकार की उदारता जन्म लेती है।
2. **केन्द्रीय प्रवृत्ति की त्रुटि :** इस प्रकार की त्रुटि का कारण यह होता है कि निर्धारक प्राय: अति (Extreme) निर्णय देने में संकोच करते हैं। फलत: निर्धारक केन्द्र की ओर खिसक आता है। निर्धारक एक ऐसा विचार होता है कि किसी भी व्यक्ति में कोई भी गुण पूर्णत: उपस्थित या अनुपस्थित नहीं होता है जिसके कारण वह अपने निर्णय को मध्य में स्थान देता है। इसी कारण निर्णय निष्पक्ष नहीं हो पाता। इस त्रुटि को कम करने के लिए दोनों छोरों (Extreme Ends)के कथनों में अधिक अन्तर रखा जाये।
3. **विरोधी त्रुटि :** मूरे ने एक और अन्य प्रकार के पक्षपात की ओर संकेत किया है जिसे विपरीत या विरोधी त्रुटि कहते हैं। इस त्रुटि के अनुसार निर्धारक प्राय: व्यक्तियों को अपनी विशेषताओं के विपरीत आंकता है। उदाहरण के लिए सहयोग एवं स्वच्छता की विशेषताओं का मूल्यांकन करने वाला निर्धारक यदि दोनों विशेषताओं से पूर्ण है तो वह दूसरों में असहयोग तथा अस्वच्छता की प्रवृत्ति का अवलोकन करता है। जब हम उनको अपनी इच्छा के अनुरूप नहीं पाते हैं तो आलोचना करते हैं।
4. **परिवेश त्रुटि :** इस त्रुटि के अनुसार निर्धारक जो धारणा व्यक्ति विशेष के बारे में बना लेता है उसी के आधार पर उस व्यक्ति का मूल्यांकन करता है अत: इस प्रकार निर्णय अधिक वैध नहीं होते हैं।
5. **तार्किक त्रुटि :** जब निर्धारक दो बालकों के कार्य में समानता देखता है तो उनका एक सा ही निर्धारण करता है। न्यूकाम्ब के अनुसार निर्धारक के मस्तिष्क में जिन लक्षणों में तार्किक सम्बन्ध होता है उनका वे एक समान मूल्यांकन करते हैं इसे तार्किक त्रुटि कहते हैं।

2.3.6 आकस्मिक निरीक्षण रिकॉर्ड

आकस्मिक निरीक्षण प्रविधि के अन्तर्गत विद्यार्थियों द्वारा लिखित डायरियां, शिक्षकों द्वारा तैयार किए गए घटना वृत्त तथा संचयी आलेख पत्र इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रविधि के द्वारा छात्र के व्यक्तित्व का भी अध्ययन किया जाता है। शिक्षकों द्वारा छात्रों का प्रतिदिन किया गया निरीक्षण, यदा–कदा छात्रों के व्यवहार को अधिक स्पष्ट कर देता है। लेकिन शिक्षक पर अत्यधिक कार्य होने के कारण वह छात्रों के विशेष व्यवहार को विस्मृत कर जाता है। अतः इस समस्या के निराकरण हेतु ही आकस्मिक निरीक्षण विधि का निर्माण किया गया है। इस विधि के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु कतिपय मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

जॉन डी. विलार्ड के अनुसार– "किसी छात्र के जीवन की घटना का जो कि निरीक्षक द्वारा महत्वपूर्ण समझी जाती है, सरल वर्णन ही, आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख है।"

"An Anecdotal record is a simple statement of an incident deemed by the observer to the significant with respect to a given pupil"

—John D. Wiilard

ऑथुर जे. जोन्स के शब्दों में – "कतिपय निरीक्षित घटनाओं के घटना स्थल का ही विवरण और सम्भावित महत्व के कारण उनका अभिलेख आकस्मिक निरीक्षण है। जब ये प्रतिवेदन एक साथ एकत्रित कर दिए जाते हैं तो वे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के नाम से जाने जाते हैं।"

It may be defined as an "On the spot description of some incident, episode on occurrence that is observed and recorded as being of possible significance when these reports are gathered together they are known as anecdotal record" — Authur J. Jones

रैफ्स ल्यूउइस के मतानुसार– "किसी विद्यार्थी की जीवन संबंधी महत्वपूर्ण घटना की रिपोर्ट ही आकस्मिक निरीक्षण आलेख है।"

'An Anecdotal record is a report of significant episode in the life of a student.'

– Reaphs Luyes

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के प्रकार : विद्यालयों में अनेक प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेखों का प्रयोग किया जाता है। यहां मुख्यतः चार प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेखों का उल्लेख किया गया है–

1. प्रथम प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के अन्तर्गत, विद्यार्थी के व्यवहार का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होता है तथा इसमें किसी भी तरह के विचारों का उल्लेख नहीं किया जाता है।
2. द्वितीय प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में छात्र के व्यवहार के वर्णन के साथ ही संक्षिप्त टिप्पणी भी लिखी होती है।
3. तृतीय प्रकार के अभिलेख में, छात्र के व्यवहार का विवरण एवं टिप्पणी के अतिरिक्त उसमें उपचार का भी उल्लेख होता है।
4. चतुर्थ प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में व्यवहार का वर्णन उसके गुण व दोषों के साथ होता है तथा भावी जीवन में उपचार हेतु सुझावों का उल्लेख होता है।

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख से लाभ : इस अभिलेख से होने वाले लाभ निम्नलिखित हैं–

1. इसमें शिक्षक को विवरण लिखने की प्रेरणा प्राप्त होती है।
2. इससे विद्यार्थी के व्यक्तित्व का समुचित उल्लेख प्राप्त होता है। परिणामस्वरूप उसके व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों के संबंध में भी उसे जानकारी प्राप्त होती है।
3. गुण–निर्धारण रीति की अपेक्षा यह अभिलेख अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह निरन्तर लिखा जाता है।

4. छात्र की भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में की गई प्रतिक्रियाओं को समझने में भी इससे सहायता प्राप्त होती है।
5. इन अभिलेखों से विद्यार्थियों को आत्मज्ञान प्राप्त करने में भी सहायता मिलती है।
6. इन अभिलेखों के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माण एवं पाठ्यक्रम में सुधार किया जा सकता है।
7. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेखों के माध्यम से सेवार्थी एवं उपबोधक के बीच वैयक्तिक संबंध सुदृढ़ होते हैं क्योंकि इससे छात्रों को यह ज्ञात हो जाता है कि उपबोधक उनकी समस्याओं से अवगत है।
8. इन अभिलेखों द्वारा शिक्षक का ध्यान प्रत्येक विद्यार्थी की ओर जाता है।
9. इन अभिलेखों से परामर्शदाता भी लाभान्वित होते हैं। वे छात्र की समस्या से पहले से ही परिचित हो जाते हैं। अतः साक्षात्कार प्रारम्भ करना अत्यन्त सरल हो जाता है।
10. विद्यालयों में नव–नियुक्त शिक्षक भी इससे लाभान्वित होते हैं। इन अभिलेखों के द्वारा वे छात्र को सहजता से समझ सकते हैं।
11. अनेक प्रमाणीकृत परीक्षणों के उपयोग से भी व्यक्तित्व का मापन किया जाता है। अतः आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख, उनके मूल्यांकन में प्रमाण का कार्य करते हैं।

2.3.7 मानकीकृत और अध्यापक निर्मित उपकरण

प्रमापीकृत परीक्षण तथा अध्यापक निर्मित परीक्षण : प्रमापीकरण के आधार पर उपकरण को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। ऐसे परीक्षण जिन्हें मनोवैज्ञानिकों, शिक्षा शास्त्रियों, प्रकाशन गृहों, मनोवैज्ञानिक ब्यूरो या अनुसन्धान संस्थाओं द्वारा अनेक अन्वेषकों की सहायता से बहुत बड़े समूह पर प्रशासित किया जाता है तब इनकी वैधता, विश्वसनीयता एवं मानकों को ज्ञात किया जाता है– ये प्रमापीकृत उपकरण कहलाते हैं।

एक प्रमापीकृत उपकरण वह है, जिसकी विधि, यन्त्र और फलांकन विधि पहले से ही इस प्रकार निश्चित हो कि उसे विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न समय में उसी क्षमता के साथा प्रशासित किया जा सके। क्रोनबेक के शब्दों में "A standardized test is one in which the procedure] apparatus and scoring have been fixed so that precisely the same test can be given at different times and places."

कुछ लोग केवल ऐसे उपकरणों को प्रमापीकृत उपकरण कहते हैं जिनके लिए मानकों की तालिका दी हुई हो। बहुत से ऐसे परीक्षण भी हो सकते हैं जिनकी विधि पहले से निश्चित न हो पर उनके मानक उपलब्ध हों दूसरी ओर प्रमापीकृत विधि के होते हुए भी मानक न दिये हों। यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि केवल मानकों को एकत्रित करना मात्र लाभप्रद नहीं होता, जब तक कि परीक्षण की विधि और फलांकन प्राप्त करने की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन न दिया गया हो। इस सम्बन्ध में एनास्तासी ने लिखा है कि "Standardization implies uniformity of procedure in administering and scoring the test."

अध्यापक निर्मित उपकरण वे हैं जिन्हें अध्यापक स्थानीय प्रयोग के लिए ज्ञानोपार्जन, व्यक्ति रुचि, अभिवृत्तियों आदि को मापने हेतु समय–समय पर बनाते है। ये उपकरण एक कक्षा में, एक स्कूल या कई स्कूलों में एक साथ भी प्रयोग किये जा सकते हैं। इनके बनाने में अनेक अध्यापकों का सामूहिक सहयोग सम्भव है और यदि किन्हीं परिस्थितियों में इनका मुद्रण या प्रकाशन होता है तो ये प्रमापीकृत नहीं हो पाते। इनका उपयोग प्रायः स्कूल के बाहर नहीं हो सकता। अध्यापक निर्मित परीक्षण में, निबन्धात्मक, वस्तुनिष्ठ एवं निदानात्मक परीक्षणों को सम्मिलित किया जा सकता है। इनका प्रयोग स्थानीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है अतः इनका उपयोग सीमित होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. नवजात बालकों की ज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं के अध्ययन के लिए सर्वप्रथम किस निरीक्षण का प्रयोग किया गया था?

   (क) नियंत्रित निरीक्षण (ख) स्वाभाविक निरीक्षण

   (ग) सहभागी निरीक्षण (घ) असहभागी निरीक्षण

6. उद्देश्य के आधार पर साक्षात्कार को कितने भागों में विभक्त किया गया है?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

7. किस मापन द्वारा विचारों तथा अभिव्यक्तियों का क्रमबद्ध रूप से मापन किया जाता है?

   (क) चेकलिस्ट (ख) रेटिंग स्केल

   (ग) निरीक्षण (घ) साक्षात्कार

8. चेकलिस्ट किस वर्ग में आती है?

   (क) साक्षात्कार (ख) अनुसूचि

   (ग) चेकलिस्ट (घ) निरीक्षण

2.4 आकलन के लिए कार्य : प्रोजेक्ट, असाइनमेंट, कार्य पत्रक, परीक्षा के प्रकार : मौखिक प्रतिक्रिया और लिखित

आज का विद्यार्थी न तो ज्ञान का एक निष्क्रिय ग्रहणकर्त्ता ही रह गया है और न ही शिक्षक एकमात्र ज्ञान का साधन रह गया है। वर्तमान समय में शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों के बीच वर्षों से चली आ रही भूमिका आज समयानुकूल परिवर्तन की मांग कर रही है। शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया में आये परिवर्तन से शैक्षिक सम्प्राप्ति के आकलन की प्रक्रिया भी अछूती नहीं है।

2.4.1 आकलन के लिए उपकरण

भारत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) 2005 ने विद्यार्थी के आकलन एवं वर्तमान परीक्षा व्यवस्था में व्यापक बदलाव की आवश्यकता पर बल दिया है। अब शिक्षण-अधिगम एवं तदनुसार आकलन का उद्देश्य एक सृजनात्मक विद्यार्थी जो अपने समाज एवं संस्कृति के मूल्यों के प्रति संवेदनशील हो, तैयार हो गया है। आज पाठ्यपुस्तक केन्द्रित शिक्षा के स्थान पर विद्यार्थियों को समग्र विकास की ओर उन्मुख बनाना, परीक्षाओं को व्यापक एवं अधिक लचीला बनाना आदि प्रमुख लक्ष्य हैं। आकलन प्रक्रिया में विद्यार्थी के सम्पूर्ण आकलन के लिए विभिन्न प्रकार के पारम्परिक एवं नवीन आकलन उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। इन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

टिप्पणी

1. प्रोजेक्ट

मूल्यांकन शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही उपयोगी होता है। बालक, शिक्षण सामग्री और शिक्षक आपसी तालमेल से शिक्षण-अधिगम कार्य को पूरा करते हैं और मूल्यांकन प्रक्रिया में किसी कौशल को प्राप्त करने के लिए तीनों में सामंजस्य बनाना बहुत जरूरी है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सुचारु बनाने के लिए विद्यार्थी की रुचियों, अभिरुचियों, क्षमताओं, आवश्यकताओं तथा बालक के बौद्धिक विकास के स्तर आदि सभी बातों पूरा ध्यान रखना होता है । इन सभी बातों का समावेश करते हुए शिक्षक को बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास करना होता है। अतः शिक्षक शिक्षण को प्रभावी एवं सरल बनाने के लिए नये शिक्षण प्रतिमानों शिक्षण युक्तियों और नयी-नयी शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग करता है ताकि विद्यार्थियों को बीच-बीच में अपेक्षित अधिगम के लिए प्रेरित कर सके।

प्रोजेक्ट का प्रयोग : प्रोजेक्ट आधारित अधिगम छात्र केन्द्रित तकनीक है। प्रोजेक्ट आधारित शिक्षण प्रक्रिया विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक क्रियाओं में लगाने की बहुत ही प्रभावशाली शिक्षण तकनीक है। इसके माध्यम से प्राप्त किया गया अधिगम अन्य तकनीकों से कराये गये अधिगम से अधिक प्रभावी होता है और अधिगम स्थायी प्रकृति का होता है क्योंकि इसका आधार संरचनात्मक विचारधारा है। इस तकनीक के माध्यम से विद्यार्थियों की रचनात्मकता, मौलिकता एवं प्रस्तुतीकरण का आकलन सरलता से हो जाता है। किलपैक्ट्रिक के अनुसार प्रोजेक्ट वह उद्देश्यपूर्ण कार्य है जिसे लगन के साथ सामाजिक वातावरण में किया जा सकता है।

प्रोजेक्ट बनाने का कार्य विद्यार्थी अपनी रुचि व इच्छा के अनुसार करते हैं। इसके द्वारा बालकों में सहयोग से कार्य करने आदत विकसित होती है। यह क्रिया आधारित एवं खोज आधारित अधिगम विधि है। प्रोजेक्ट आधारित अधिगम विद्यार्थियों को केवल अधिगम में सहयोग करने के अवसर ही प्रदान नहीं करता अपितु उनके कौशल को विकसित करता है जैसे समस्याओं का समाधान करने का कौशल। प्रोजेक्ट तकनीक विद्यार्थियों में भविष्य के लिए अनिवार्य कुशलता को विकसित करती है जिससे उनमें समय प्रबन्धन की आदत विकसित होती है।

प्रोजेक्ट आधारित अधिगम में विद्यार्थियों को विश्वसनीय प्रोजेक्ट बनाने के अवसर प्रदान करता है, जो व्यक्तिगत और दैनिक जीवन में प्रयोग के लिए सार्थक होते हैं। इससे विद्यार्थियों को अपनी रुचि एवं क्षमता को प्रयोग करने का पूरा मौका मिलता है। प्रोजेक्ट कार्य में ज्ञान को चार प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है-

टिप्पणी

1. प्रयोगात्मक कार्य जैसे उपयोगी लेख का निर्माण - कुछ विचारों को समाविष्ट करना।
2. सुरुचिपूर्ण अनुभवों के गुण-दोषों की विवेचना करना-अनुभवों का सर्वोत्तम प्रयोग।
3. समस्या समाधान- कुछ समस्याओं का हल निकालना।
4. ज्ञान अथवा कौशल में दक्षता- ज्ञान अथवा तकनीकी कुशलता में डिग्री प्राप्त करना।

प्रोजेक्ट के सोपान : प्रोजेक्ट निर्माण के प्रमुख सोपान निम्न हैं-

1. समस्या का चयन करना तथा उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करना।
2. परियोजना का चुनाव करना और उसके उद्देश्य को स्पष्ट करना।
3. परियोजना निर्माण के लिए व्यवस्थित कार्यक्रम बनाना।
4. योजनानुसार कार्य करना।
5. कार्य का मूल्यांकन करना।
6. सम्पूर्ण कार्य की आलेखन प्रक्रिया पर परामर्श देना।

प्रोजेक्ट के गुण : एक अच्छे प्रोजेक्ट में निम्नलिखित गुण होने चाहिए-

1. प्रोजेक्ट का एक उपयुक्त लक्ष्य होना चाहिए।
2. प्रोजेक्ट दैनिक जीवन में उपयोगी, उपयुक्त एवं सम्बन्धित होना चाहिए।
3. प्रोजेक्ट में विद्यार्थी की व्यवसायिक रूचि होनी चाहिए।
4. प्रोजेक्ट बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए यह इतना होना चाहिए कि समय पर पूरा हो सके।
5. प्रोजेक्ट में विद्यार्थियों को सहयोगी होना चाहिए।

प्रोजेक्ट शिक्षण के लाभ : प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षण अधिगम में निम्न लाभ होते हैं-

1. सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं प्रयोगिक एवं स्थायी अधिगम कराती हैं जो विद्यार्थी के दैनिक जीवन से सम्बन्धित होता है।
2. प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षण द्वारा विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों का प्रयोगिक ज्ञान प्राप्त होता है।
3. प्रोजेक्ट कार्य विद्यार्थियों मे सहयोग की भावना को विकसित करता है।
4. इससे विद्यार्थियों में परस्पर-विचार विमर्श की भावना विकसित होती है।
5. यह विद्यार्थियों में सामाजिक कल्याण के चिन्तन की आदत को विकसित करता है।
6. प्रोजेक्ट कार्य से विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती है।

प्रोजेक्ट शिक्षण की कमियां : प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षण अधिगम में निम्न कमियां होती हैं-

1. प्रोजेक्ट विधि से शिक्षण कार्य में समय अधिक लगता है अतः इससे कम ज्ञान की प्राप्ति होती है।

2. पाठ्यक्रम के सभी विषयों को प्रोजेक्ट में शामिल नहीं किया जा सकता।
3. एक सत्र में अध्ययन के लिए बहुत से प्रसंग होते हैं जिन्हें इस माध्यम से नहीं पढाया जा सकता है।
4. शिक्षक एवं शिक्षार्थी इस माध्यम से गहन अध्ययन नहीं कर सकते हैं।
5. विद्यार्थी अच्छे एवं उपयुक्त कलेवर तक पहुंचने में असमर्थ होते हैं।
6. प्रोजेक्ट के माध्यम से निरन्तर एवं व्यवस्थित शिक्षण देना सम्भव नहीं है जो शिक्षण अधिगम को प्रभावी बना सके।
7. प्रोजेक्ट विधि में बहुत अधिक व्यय होता है।
8. यह विधि कौशल के विकास एवं अभ्यास को नजरअन्दाज करती है।

2. असाइनमेंट

असाइनमेंट एक सतत् मूल्यांकन उपकरण है। असाइनमेंट शिक्षण-अधिगम क्रिया में पूरक का कार्य करते हैं। असाइनमेंट शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षक द्वारा बालकों को गृह कार्य के रूप में दिया जाता है। असाइनमेंट कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी को दिया जाता है। यह कार्य विद्यार्थियों द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक घर पर किया जाता है। विद्यार्थियों को कक्षा में पढ़ाये व समझाये गये कार्य की घर पर पुनरावृत्ति हेतु लिखने के लिए दिया जाता है। इसमें केवल एक या एक से अधिक प्रश्न के रूप में लिखने के लिए देना ही असाइनमेंट नहीं है, अपितु प्रत्येक असाइनमेंट शिक्षक द्वारा सावधानीपूर्वक तैयार किया जाता है। शिक्षक विद्यार्थियों को विभिन्न पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं और वेब पेज से कुछ अंश बताते हैं और विद्यार्थी शिक्षक द्वारा बताये गये निश्चित अंशों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करता है। साधारण शब्दों में असाइनमेंट एक विद्यार्थी अथवा विद्यार्थियों के समूह और शिक्षक मध्य एक कार्य करने का समझौता होता है जिसे विद्यार्थियों द्वारा दिये गये एक निश्चित समय सीमा के अन्दर ही पूरा करना होता है।

असाइनमेंट सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन अथवा संरचनात्मक मूल्यांकन का एक अभिन्न अंग है। असाइनमेंट सैद्धांतिक अथवा प्रायोगिक, मानसिक अथवा शारीरिक, एक विद्यार्थी अथवा विद्यार्थियों के समूह को दिया जा सकता है। असाइनमेंट चार्ट, चित्र, मानचित्र, माडल तैयार करने अथवा किसी आधुनिक/ऐतिहासिक घटना को वर्णन करने के रूप में भी हो सकता है। इस प्रकार के असाइनमेंट विद्यार्थियों की बौद्धिक तथा मानसिक शक्तियों के लिए चुनौती होते हैं। असाइनमेंट देने का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को अपने स्वयं के उत्तरदायित्व पर कार्य करने की क्षमता को विकसित करना होता है। इसको करने का समय नियत होता है। विद्यालयों में दैनिक अथवा मासिक असाइनमेंट की अपेक्षा साप्ताहिक असाइनमेंट ज्यादा अच्छे समझे जाते हैं। सामाजिक विषयों में इकाई की दोहराई करने के लिए असाइनमेंट बहुत उपयोगी होते हैं। अध्यापकों को असाइनमेंट का नियमित रूप से मूल्यांकन करना चाहिए तथा इसके लिए अभिलेख तैयार करने चाहिए तथा उन अभिलेखों को वर्गोन्नति के समय प्रयोग किया जाना चाहिए।

इस प्रकार असाइनमेंट के मूल्यांकन से शिक्षक विद्यार्थी के विभिन्न सबल एवं कमजोर पक्षों को जान पाता है और उसके अनुसार शिक्षक विद्यार्थी को अधिगम सुधार के लिए प्रतिपुष्टि प्रदान करता है जो विद्यार्थी को उसके अधिगम एवं प्रस्तुतीकरण कौशलों में सुधार में सहायक सिद्ध होती है।

टिप्पणी

असाइनमेंट के उद्देश्य : उचित प्रकार से नियोजित करके लिखे गये असाइनमेंट का शैक्षिक मूल्य बहुत अधिक होता है। व्यापक रूप से तैयार किये गये असाइनमेंट के मुख्य उद्देश्य निम्न होते हैं-

- भावी अधिगम के लिए मार्गदर्शन का कार्य करना।
- विद्यार्थियों को प्रभावी अधिगम की सुविधा प्रदान करना।
- असाइनमेंट से विद्यार्थी क्रियाशील रहते हैं।
- अधिगम के मार्ग में आने वाली कठनाइयों को पहचानना।
- कठिनाइयों को दूर करने में सहायक।

असाइनमेंट की विशेषताएं : असाइनमेंट की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. असाइनमेंट के द्वारा विद्यार्थी को यह स्पष्ट हो जाता है कि उनसे किस प्रकार के अधिगम अनुभव की अपेक्षा की जाती है।
2. असाइनमेंट की सहायता से विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि दिए गए कार्य को कैसे किया जाना है ताकि विद्यार्थी उसके अनुसार ही अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन कर सके।
3. असाइनमेंट एक शिक्षक को एक विद्यार्थी के अधिगम, उसके लेखन एवं उसकी शैली की जानकारी प्रदान करने में सहायक होते हैं। इससे शिक्षक उनकी व्यक्तिगत शैक्षिक आवश्यकताओं को यथा सम्भव पूरा करने का प्रयास कर सके।
4. असाइनमेंट मूल्यांकन की प्रक्रिया को सरल बनाते हैं, क्योंकि असाइनमेंट को पूरा करने के लिए विद्यार्थी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होता है।
5. असाइनमेंट विद्यार्थी में प्रभावी अध्ययन आदतों एवं ज्ञान के उपयुक्त उपयोग की आदत में वृद्धि करता है। इसके साथ ही सामूहिक असाइनमेंट बालकों में समूह भावना को विकसित करने में सहायक सिद्ध होते हैं
6. असाइनमेंट सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के क्रम में योगात्मक आकलन का पूरक है जो विद्यार्थी के सम्पूर्ण आकलन में मददगार होता है।

अच्छे असाइनमेंट के गुण : एक अच्छे असाइनमेंट में निम्नलिखित गुण होने चाहिए-

- असाइनमेंट स्पष्ट रूप से वर्णित होना चाहिए।
- यह विद्यार्थियों को आगे की शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करता हो।
- असाइनमेंट हाल ही में पढ़ाये गये अथवा पढ़ाये जा रही पाठ्य वस्तु पर आधारित होना चाहिए।
- असाइनमेंट बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए।
- असाइनमेंट ऐसा होना चाहिए जो बालकों में कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करता हो।
- इसमें विद्यार्थी के पूर्व अनुभव का प्रयोग होता है।
- यह समस्या समाधान करने में सहायक होता है।
- यह सहकारी प्रयासों को प्रोत्साहित करता है।
- यह स्थिति में गहनता का विकास करता है।

टिप्पणी

असाइनमेंट की कमियां : असाइनमेंट द्वारा मूल्यांकन प्रक्रिया में निम्न समस्याएं सामने आती हैं-

1. असाइनमेंट को करने के लिए अतिरिक्त संसाधनों की आवश्यकता होती है।
2. असाइनमेंट शिक्षण के प्रारम्भिक स्तर पर लाभदायक नहीं होते हैं।
3. असाइनमेंट के लिए कक्षा में अधिक समय की आवश्यकता होती है।

3. कार्य पत्रक

कार्य-पत्रक (वर्कशीट) : कार्य-पत्रक उन दायित्वों को कहा जाता है, जिनमें संलग्न होने की अपेक्षा छात्रों से की जाती है और इससे जो प्रत्यक्ष प्रतिफल प्राप्त होता है, उससे आप इस आकलन में समर्थ हो पाते हैं कि आपके छात्र वास्तव में जान पाए हैं अथवा नहीं। शिक्षण के आकलन के लिए वे आमतौर पर किसी बेहद प्रचलित तरीके का सहारा लेते हैं। वे तरीके कम दांव वाले (रूपरेखा मूल्यांकन) या उच्च दांव वाले (सारांशित मूल्यांकन)हो सकते हैं, इसलिए कार्य-पत्रकों की संख्या और उनके प्रकार आपकी पाठ्यक्रम-संकल्पना, शिक्षण प्रतिफल और पाठ्यक्रम पर निर्भर करेंगे।

कार्य-पत्रकों की विशेषताएं : कार्य-पत्रकों की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-

- परीक्षाओं की अपेक्षा गठन में सरल और समय की बचत करने वाला।
- उच्चतर सोच (उपयोग, संश्लेषण और मूल्यांकन) को प्रोत्साहन ।
- परीक्षाओं से अधिक स्थानांतरण और सामान्यीकरण ।

कार्य-पत्रक की सीमाएं- कार्य-पत्रकों की निम्न सीमाएं हैं-

- अतिरिक्त संसाधनों की जरूरत पड़ सकती है (जैसे प्रयोगशाला अथवा अन्य सुविधाएं)।
- कक्षा समय बाधित हो सकता है (जैसे समूह परियोजनाएं, प्रस्तुतीकरण आदि)।
- परीक्षाओं की तुलना में स्तर- निर्धारण में अधिक समय लग सकता है।
- प्रारंभिक स्तर की विषयवस्तु के लिए कम प्रभावी रह सकता है।

कार्य-पत्रकों के प्रकार : विद्यार्थियों की उच्चतर सोच क्षमताओं, लेखन कौशल, प्रस्तुतीकरण कौशल अथवा सहयोगात्मक और पारस्परिक कौशल का विकास अथवा प्रदर्शन करने हेतु विभिन्न प्रकार के कार्य-पत्रकों का उपयोग किया जा सकता है-

- **निबंध :** विशिष्ट विषयवस्तु पर विद्यार्थियों की समझ और विषय सामग्री को अपने शब्दों में विश्लेषित कर पाने की क्षमता का आकलन करने मे निबंध उपयोगी हो सकता है।
- **आलेख या शोध :** विद्यार्थियों की विषय सामग्री की समझ का पता लगाने हेतु। हालंकि यह आलेख के उद्देश्य पर निर्भर करता है, परंतु इससे विद्यार्थियों की नवचाार या मूल्यांकन क्षमताओं का भी पता लगाया जा सकता है।
- **मौखिक प्रस्तुतियां :** इस विधि द्वारा विद्यार्थियों की मौखिक या वाचिक अभिव्यक्ति क्षमता, विषयवस्तु की समझ तथा सामग्री की योजना बनाने एवं उसे व्यवस्थित करने की उसकी क्षमता का आकलन किया जा सकता है।

- **परियोजनाएं :** विद्यार्थियों की सृजनात्मक नवीन क्षमताओं का पता लगाने की यह एक अत्यंत कारगर विधि है। उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी को सबसे पहले एक विषय-सामग्री को समझना है, किसी अन्य संदर्भ में इस समझ का उपयोग करना है, और समझ पर आधारित एक परियोजना का निर्माण करना है।
- **नमूना अध्ययन :** किसी विशेष व्यक्ति अथवा स्वयं पर कक्षा की सामग्री को लागू करने में नमूना अध्ययन का उपयोग किया जा सकता है।
- **प्रयोगशालाएं :** अमूर्त विचारों अथवा सिद्धान्तों को ठोस अनुभव में परिणत करने के लिए प्रयोगशालाएं सबसे उपयुक्त स्थल हो सकती हैं।
- **समूह कार्य-पत्रक :** विद्यार्थियों के बीच पारस्परिक, संचार एवं सहयोगात्मक कौशल का आकलन करने में समूह कार्य-पत्रक उपयुक्त हो सकते हैं। सहयोग के लिए, किसी विद्यार्थी को इतना सक्षम होना चाहिए कि वह समूह के सदस्यों से प्राप्त सामग्री का संश्लेषण कर सके और सामूहिक समाधान या उत्पाद की रचना करने में सहायक हो सके।

4. निष्पादन आधारित गतिविधियां स्व–रिपोर्टिंग और आकलन

निस्पादन आधारित गतिविधियों को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

(क) प्रयोगात्मक कार्य

प्रयोगात्मक कार्यों से तात्पर्य उन गतिविधियों से होता है जिसमें समस्या के समाधान के लिए व्यवस्थित रूप से गतिविधियां की जाती हैं। अन्य शब्दों में प्रयोगात्मक कार्यों से आशय उन कौशलों से होता है जिन्हें विद्यार्थी क्रियाओं के द्वारा सम्पादित करते हैं। प्रयोगात्मक कार्यों के माध्यम से विद्यार्थी की प्रदर्शन क्षमता को आंका जाता है। यह आमतौर पर मनोगत्यात्मक कौशल पर केन्द्रित होता है। इनका उद्देश्य विद्यार्थी में कौशल का विकास करना होता है। प्रयोगात्मक कार्य उत्पाद /परिणाम/ उत्पादन मुखी है। प्रयोगात्मक कार्यों से विद्यार्थी में संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं मनोगत्यात्मक क्षमताओं को विकसित किया जाता है। प्रयोगिक परीक्षण कौशल उन्मुखी है चूंकि कौशल प्रयोगिक परीक्षण का एक प्रमुख अंग है। एक शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक रुचिकर बनाने के लिए विभिन्न कौशलों का उपयोग करता है। जैसा कि प्रारम्भ, पूछताछ, पुनर्बलन, पुनर्कथन तथा समाप्ति। नाट्यकला, कला और शिल्प, संगीत, सिलाई, पाक-कला, काष्ठ-कार्य, धातु-कार्य, योग, क्रीड़ा खेल आदि विषय प्रयोगिक विषय होते हैं। इनको पाठ्यक्रम में शामिल करने और उनका अध्ययन कराने का मुख्य उद्देश्य कुछ विशिष्ट प्रयोगिक कौशलों को प्राप्त करना तथा उनमें अभिवृद्धि करना है।

विद्यार्थियों में प्रायोगिक कौशल का विकास महत्वपूर्ण समझा जाता है। विशुद्ध विज्ञान के विषय जैसे भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान तथा प्रायोगिक विज्ञान जैसे कम्प्यूटर, अभियन्त्रिकी, कृषि तकनीक, ग्रामीण तकनीक, जैव रसायन, जैव प्रौद्योगिकी में विषयों के विभिन्न पहलुओं को स्थापित तथा वर्णित करने के साथ-साथ आवश्यक वांछित कौशलों को विकसित करने की आवश्यकता होती है इन विषयों का अध्ययन व अधिगम करने के लिए सभी विद्यार्थियों को अपने अन्दर कौशलों को अर्जित करना चाहिए। प्रयोगात्मक कार्यों/ प्रयोगिक परीक्षणों का प्रयोग विद्यार्थियों की दक्षता एवं ज्ञान के अनुप्रयोग के मापन करने के लिए किया जाता है। इस परीक्षण से परीक्षार्थियों के क्रियात्मक पक्ष का मापन किया जाता है।

प्रायोगिक परीक्षण का प्रयोजन सैद्धान्तिक अवधारणाओं को अभ्यास आधारित कार्य से जोड़ना होता है। प्रयोगात्मक कार्य सिद्धान्त को बेहतर तरीके से समझने तथा सिद्धान्त को दैनिक जीवन की परिस्थितियों से जोड़ने में सहायता प्रदान करते हैं। प्रायोगिक परीक्षण में ज्ञान तथा कौशल को समाज की बेहतरी के लिए शामिल किया जाता है। प्रायोगिक परीक्षण के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

- ये परीक्षण अधिक समय लेने वाले होते हैं। इनके लिए अधिक व्यक्तियों के साथ-साथ अधिक संसाधनों की भी आवश्यकता होती है।
- इसमें परीक्षार्थी के लिए स्पष्ट तथा ठोस समझ के साथ-साथ धैर्य होना जरूरी होता है।
- प्रयोगात्मक परीक्षणों के संचालन के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है।
- विद्यार्थियों को बाह्य के साथ -साथ आन्तरिक अभिप्रेरण की आवश्यकता होती है।

प्रायोगिक परीक्षण का अवलोकन तथा आकलन : प्रायोगिक परीक्षण विभिन्न कुशलताओं के अर्जन का अवलोकन तथा आकलन करने को एकमात्र सही साधन है। आकलन से तात्पर्य उस सीमा का मापन है जिसमें विद्यार्थी किसी दी गई परिस्थिति में उन बातों का अवलोकन करते हैं जिनका अवलोकन किया जाना चाहिए तथा उपयुक्त व्याख्या एवं विश्लेषण करते हैं। और इस क्रम वह बाद में उन अवलोकनों के परिणामों का मूल्यांकन कर सकते हैं। विद्यार्थियों को प्रदर्शन के रूप में अथवा स्वयं द्वारा करने के लिए अभ्यासों के रूप में विशिष्ट अवलोकन प्रस्तुत किया जा सकता है तथा इस बात की आवश्यकता है कि जो घटित हुआ है वह उन सब को प्रतिवेदन तैयार करे। अवलोकन काफी सीमा तक विद्यार्थियों को अपने अवलोकनों को दर्ज कराने की क्षमता पर निर्भर होगा। तथा यह अपरिहार्य है कि आकलन प्रायः अवलोकन के लिखित प्रतिवेदनों के लिए अंक प्रदान करने के रूप में हो। आमतौर पर प्रायोगिक परीक्षण में मुक्त प्रश्न होते हैं। प्रायोगिक परीक्षण में लगभग सभी विद्यार्थियों से यह वांछित होता है कि वे प्रायोगिक कार्यों से निष्कर्ष निकालें। इसमें सन्निहित प्रक्रिया की व्याख्या या परिस्थिति का विकास या दोनों किए जाने की आवश्यकता होती है।

प्रयोगत्मक कार्यों की सीमाएं : इन परीक्षणों की अपनी सीमाएं होती हैं, जैसे-

- इनके द्वारा सैद्धान्तिक ज्ञान एवं बालक के भावात्मक पक्ष का सही-सही मापन नहीं किया जा सकता है।
- इनके सम्पादन के लिए समय और शक्ति की भी अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता होती है।

(ख) सेमिनार और रिपोर्ट आकलन

सेमिनार शिक्षण की एक बहुत आधुनिक एवं उन्नत विधि है। शिक्षार्थियों के आकलन हेतु प्रयुक्त यह एक उन्नत सामूहिक गतिविधि है। सेमिनार के द्वारा शिक्षार्थियों के सामाजिक कौशल को बढ़ाया जा सकता है। इसे व्यक्तिगत रूप से समूह में किया जा सकता है। समूह का लक्ष्य सुविधा प्रदाता द्वारा पूर्व-निर्धारित हो सकता है या व्यक्ति या समूह द्वारा सहयोगपूर्वक निर्णय लिया जा सकता है। आकलन उपकरण के रूप में सेमिनार के दौरान तथा सेमिनार के पश्चात् चरण, सेमिनार पूर्व चरण के दौरान शिक्षार्थी प्रकरण पर विचार मंथन कर सकते हैं, एक उत्तम सेमिनार प्रकरण को लिख सकते है तथा प्रस्तुति पर सोच

टिप्पणी

सकते हैं। वास्तविक सेमिनार चरण के दौरान शिक्षार्थी प्रकरण को प्रस्तुत करते हैं तथा सेमिनार के पश्चात् चरण के दौरान वे दर्शकों के समक्ष अपने विचारों पर चिंतन कर सकते हैं अंतत: सेमिनार पश्चात् चरण के दौरान एक सेमिनार रिपोर्ट तैयार की जा सकती हैं। सेमिनार रिपोर्ट को स्व-आकलन या समूह आकलन उपकरण के रूप में प्रयोग करना संभव है। स्व-आकलन करने दौरान शिक्षार्थी दूसरों द्वारा दी गई प्रतिपुष्टि का परीक्षण करता है कि उसका पेपर अगली बार हेतु कैसे सुधारा जा सकता है। सेमिनार का आकलन निम्नलिखित सूचकों के आधार पर किया जा सकता है।

- अवधारणा की समझ
- समीक्षात्मक चिंतन एवं तर्क
- नवीन ज्ञान निर्माण की योग्यता
- आत्म-विश्वास तथा आत्म-अनुशासन
- प्रस्तुतीकरण शैली

सेमिनार प्रस्तुति के पश्चात् रिपोर्ट का आकलन निम्नलिखित सूचकों के आधार पर किया जा सकता है-

- प्रस्तुतीकरण की स्पष्टता
- रिपोर्ट लेखन की शुद्धता
- रिपोर्ट का संगठन
- नवीन विचारों का निर्माण
- समूह कार्य का विश्लेषण

(ग) स्व-रिपोर्टिंग और स्व-आकलन

स्व-आकलन एक संरचनात्मक आकलन की प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी अपने कार्यो की गुणवत्ता एवं अपने अधिगम का आकलन स्वयं करता है तथा यह निर्णय लेते हैं कि अधिगम उद्देश्यों एवं अपेक्षित मानदंडों की प्राप्ति का स्तर क्या है साथ ही वे अपने द्वारा किए गये कार्यों के मजबूत एवं कमजोर पक्षों की पहचान करते हैं ताकि उनमें आगे वांछित परिवर्तन लाया जा सके।

स्व-आकलन वह आकलन है जिसमें विद्यार्थी स्वयं अपने आप अपना निरीक्षण करता है। यह सूचना संग्रहण की वह तकनीक है जिसकी मदद से उत्तरदाता अपने विषय में सूचना प्रदान करता है। जब कक्षा से पहले पढ़ाये गये विषय के अनुप्रयोग पर शिक्षक द्वारा कुछ गृह कार्य दिया जाता है तब विद्यार्थी को स्व-मूल्यांकन का अवसर मिलता है। इससे विद्यार्थी को यह पता चलता है कि विद्यालय में पढ़ाये गये नये सम्प्रत्ययों को कितनी अच्छी प्रकार से समझाया गया है। स्व-मूल्यांकन के लिए प्रश्नावली से मिलती-जुलती परिसूची का प्रयोग किया जाता है।

निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए-यदि आपका उत्तर हां में है तो प्रश्न के सामने हां और यदि न में है तो नहीं लिखकर उत्तर दीजिए। प्रश्नों को ध्यान से पढ़िए-

क्या आप अक्सर अकेलेपन का अनुभव करते हैं? हां/नहीं

क्या आपको मित्र बनाने में कठिनाई होती है? हां/नहीं

टिप्पणी

क्या आपकी भावनाएं जल्दी दुख जाती हैं? हां/नहीं

क्या आपको किसी अपरिचित से बात करने में कठिनाई का अनुभव होता है? हां/नहीं

क्या आपको अपनी योग्यता पर विश्वास रहता है? हां/नहीं

क्या बडों के सामने आपको अपना ध्यान आ जाता है? हां/नहीं

क्या आपको झेंपने में परेशानी होती है? हां/नहीं

क्या आपको अपने पर भरोसा है? हां/नहीं

क्या आप आसानी से हिम्मत हार जाते हैं? हां/नहीं

स्व-मूल्यांकन के परिणामों से विद्यार्थियों के सम्बन्ध में सबल तथा निर्बल पक्षों की जानकारी मिलती है। इससे विद्यार्थियों को प्रतिपुष्टि मिलती है। इससे उन्हें विषय में अपनी प्रगति की पर्याप्त जानकारी मिलती है साथ ही उन्हें अपने अध्ययन की आदतों, रुचियों, घर के वातावरण आदि जिनका प्रभाव उनके निष्पादन पर पड़ता है उनकी उपयुक्तता का ज्ञान होता है।

शिक्षण की अन्तःक्रियात्मक अवस्था में प्रतिपुष्टि व पुनर्बलन महत्वपूर्ण क्रियाएं हैं जो विशेष प्रतिक्रियाओं की सम्भावनाओं को बढ़ा देती हैं। प्रतिपुष्टि से तात्पर्य है कि विद्यार्थियों को उनके निष्पादन के बारे में सूचना प्रदान करना हैं ताकि उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सके। उदाहरण के लिए शिक्षक विद्यार्थी से प्रश्न पूछते है और वे उनका उत्तर देते हैं और उसके बाद शिक्षक तुरन्त यह बता देते हैं कि वह उत्तर सही है अथवा गलत। विद्यार्थी को यह पता लग जाता है कि उसका उत्तर सही है या गलत। यह शिक्षण प्रक्रिया में प्रतिपुष्टि प्रदान करना कहलाता है। प्रतिपुष्टि को दो भागों में बांटा जा सकता है शाब्दिक और अशाब्दिक। जब अध्यापक भाषा का प्रयोग करके यह बताता है कि उसका उत्तर सही है या गलत है तो यह शाब्दिक प्रतिपुष्टि का उदाहरण है और जब वह संकेत, मुखाकृति, भाव-भंगिमा के माध्यम से उत्तर के सही या गलत होने की पुष्टि करता है तो यह अशाब्दिक प्रतिपुष्टि का उदाहरण है।

शिक्षक प्रतिपुष्टि के साथ पुनर्बलन का भी प्रयोग करता है। पुनर्बलन दो प्रकार का होता है- (1)धनात्मक पुनर्बलन - इसमें अपेक्षित प्रतिक्रिया होने की सम्भावना अधिक हो जाती है जैसे प्रंशसा, पुरस्कार, आदि के द्वारा (2)अध्यापक पुनर्बलन- इसमें अवांछनीय प्रतिक्रियाओं के पुनः होने की सम्भावना कम हो जाती है जैसे डांटना, मारना, दण्ड देना आदि।

शिक्षण क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है अतः प्रतिपुष्टि एवं पुनर्बलन की समुचित युक्तियों का प्रयोग उचित प्रकार से करके विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सकता है। शिक्षण की अन्तः क्रियात्मक अवस्था में सम्पन्न होने वाली सभी क्रियाएं आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। इसी कारण ये शिक्षण व्यवहार का क्रमिक रूप उपस्थिति करती है।

स्व-आकलन की विशेषताएं : स्व-आकलन की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-

1. स्व-आकलन व्यक्ति के मूल्यांकन की एक प्राकृतिक विधि है। स्व-आकलन के अन्तर्गत किसी व्यक्ति ने क्या सीखा है अथवा क्या नहीं सीखा है अथवा उसे सीखने में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है आदि आता है। यदि

टिप्पणी

विद्यार्थी पूरी ईमानदारी के साथ बिना किसी पूर्वाग्रह के अपना स्वयं का मूल्यांकन करे तो उससे बेहतर परिणाम कोई अन्य मूल्यांकन नहीं दे सकता है।

2. आकलन व्यक्ति के अधिगम को उन्नत करता है। यदि किसी अध्ययनकर्त्ता को उसके अधिगम का वास्तविक एवं अपेक्षित स्तर ज्ञात हो तो यह व्यक्ति के अधिगम को बढ़ाने में सहायक होता है। इसके द्वारा विद्यार्थी को यह ज्ञात होता है कि कमजोर पक्ष कौन-कौन से हैं और उसे कहां अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है इस प्रकार स्व-आकलन विद्यार्थी को अपने आगे के अधिगम के लिए योजना बनाने में सहायता प्रदान करता है।
3. स्व-अवलोकन विद्यार्थी की स्वयत्तता एवं जिम्मेदारी की समझ को बढ़ावा देता है।
4. स्व-आकलन से विद्यार्थी के आत्म विश्वास में वृद्धि होती है।
5. स्व-आकलन व्यक्तिगत भिन्नताओं का ध्यान रखता है।
6. स्व-आकलन अधिगम का बिल्कुल सटीक आकलन प्रस्तुत करता है।

2.4.2 परीक्षा के प्रकार : मौखिक और लिखित प्रक्रिया, शिक्षक निर्मित परीक्षण, सहपाठी आकलन

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परीक्षा की व्यवस्था के लिए निम्न तकनीकों/प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है- मौखिक परीक्षा, लिखित परीक्षा एवं प्रायोगिक परीक्षा।

मौखिक एवं लिखित परीक्षा

मौखिक परीक्षा : मौखिक परीक्षा द्वारा बालक की अभिव्यक्ति, क्रियाशीलता, भाषा सामान्य ज्ञान आदि की जांच की जाती है। इसके अन्तर्गत वाद-विवाद, प्रतियोगिता तथा नाटक आदि के माध्यम से विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास किया जाता है तथा बालक के सामान्य ज्ञान में वृद्धि होती है। बालकों में एकाग्रता एवं रचनात्मकता का विकास करने के लिए तथा उनमें चिन्तन एवं मनन की आदत डालने के लिए मौखिक परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। मौखिक कार्य दैनिक जीवन में अधिक उपयोगी होते हैं। इससे बालकों के अन्दर स्मरण शक्ति एवं चिन्तन शक्ति का विकास होता है। इस प्रकार शिक्षण कार्यों में एवं व्यावहारिक जीवन में मौखिक कार्य का विशेष महत्व होता है।

मौखिक परीक्षाओं का उद्देश्य : मौखिक परीक्षा के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. बालकों की विचार शक्ति तथा कल्पना शक्ति का विकास होता है।
2. स्मरण शक्ति का विकास होता है।
3. अध्ययन किए गए पाठ का अभ्यास एवं पुनरावृत्ति कराना।
4. मौखिक कार्य से बालकों में गति एवं शुद्धता से कार्य करने की आदत विकसित होती है।
5. बालकों में रचनात्मकता एवं एकाग्रता का विकास होता है।

मौखिक परीक्षाओं का महत्व : मौखिक परीक्षा के लाभों को निम्न तथ्यों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है-

1. मौखिक कार्य की सहायता से बालक विभिन्न कार्यों को याद रखकर शीघ्रता से कार्य कर पाते हैं।

2. प्रत्येक कार्य को लिखित रूप में सम्पन्न करने में समय अधिक लगता है, जबकि मौखिक कार्य करने से समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है।
3. किसी विषय के अध्ययन के समय बालकों को अधिक ध्यानपूर्वक तथ्यों को याद रखना पड़ता इन्हें याद रखने से उनकी स्मरण एवं कल्पना शक्ति का विकास होता है।
4. मौखिक परीक्षा के परिणामस्वरूप बालकों में आत्मविश्वास की भावना का विकास होता है जिससे वे अधिक उत्साह से कार्य को सम्पन्न करते हैं।
5. मौखिक कार्यों में बालकों को मानसिक कार्य अधिक करना पड़ता है बालक चिन्तन मनन अधिक करते हैं। इस प्रकार कार्य करने से उनके विचारों में शुद्धता एवं यथार्थता आ जाती है।

लिखित परीक्षा : मूल्यांकन कार्यों में लिखित कार्य का विशेष योगदान होता है। प्रत्येक विषय के अभ्यास कार्य लिखित रूप में ही होते हैं। लिखित परीक्षाओं में बालक प्रश्नों के उत्तर लिखकर देता है। परीक्षक उनकी जांच करता है। लिखित कार्यों से बालक के अन्दर समस्या का समाधन करने की क्षमता एवं सूझ–बूझ का विकास होता है। लिखित कार्य के आधार पर शिक्षक को कक्षा का वर्गीकरण करने में आसानी हो जाती है जो एक शिक्षक के लिए अति आवश्यक है।

प्रायोगिक परीक्षा : प्रायोगिक परीक्षाओं के माध्यम से विद्यार्थियों से कार्य निष्पत्ति कराया जाता है। प्रयोगात्मक कार्यों का उपयोग विद्यार्थियों में सैद्धान्तिक ज्ञान एवं व्यावहारिक प्रयोग की क्षमता में वृद्धि करते हैं। प्रयोगात्मक परीक्षा के अन्तर्गत प्रयोग के माध्यम से विषय सम्बन्धी विभिन्न कार्यों का परीक्षण किया जाता है। अर्थात् क्रियात्मक कार्यों में दक्षता की माप के लिए प्रयोगात्मक परीक्षाओं का आयोजन कराया जाता है। प्रयोग के समय निरीक्षण के लिए निरीक्षक भी उपस्थित रहता है। इन परीक्षाओं में बालक को कुछ उपकरण एवं सामग्री देकर कुछ निर्देश दिए जाते हैं, जिससे वे स्वयं कार्य करके उसका निरन्तर निरीक्षण तथा परीक्षण करते हैं तथा परिणाम निकालते हैं। प्रयोगात्मक शिक्षण में बालक निरन्तर क्रियाशील रहते हैं। इससे वे चेतन एवं चुस्त रहते हैं तथा उनका शारीरिक, मानसिक व नैतिक विकास होता है। इसके अन्तर्गत विद्यार्थियों का मूल्यांकन उनके कार्य करने की विधि तथा उसके द्वारा किए गए कार्य की गुणवत्ता के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार की परीक्षाएं बहुत ही उपयोगी एवं रोचक होती हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षण

शिक्षक कक्षा शिक्षण में एक महत्वपूर्ण अंग है। वह समय समय पर अपने विद्यार्थियों की विषयगत परीक्षा लेकर अपनी तथा अपने विद्यार्थियों की सफलता के बारे में जांच करता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण वे परीक्षण हैं जिन्हें शिक्षक अपनी आवश्यकतानुसार तात्कालिक रूप से तैयार कर लेता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण सीमित पाठ्यवस्तु के सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तैयार किए जाते हैं। इनका निर्माण शिक्षकों द्वारा अधिकांशतः अपने कक्षाकक्ष के भीतर ही किया जाता है। शिक्षक निर्मित परीक्षण का निर्माण शिक्षक द्वारा बालकों की अधिगम प्रक्रिया के आकलन के लिए तथा उस विषय-वस्तु के अधिगम में यदि कोई कठिनाई है तो उसकी पहचान करने के लिए किया जाता है। शिक्षण तथा अधिगम में शिक्षक निर्मित परीक्षणों का निर्माण तथा उपयोग शिक्षक का एक नियमित कार्य है। इससे उसे अपने विद्यिार्थियों को प्रेरणा प्रदान करने में सहायता मिलती है। साथ ही वे अपने विद्यार्थियों की विषयगत योग्यता के बारे में अपनी निश्चित

टिप्पणी

धारणा बना सकने में सफल होते हैं। इससे शिक्षक स्वयं भी अपनी कक्षा शिक्षण की कमियों एवं क्षमताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सफल होता है। शिक्षक निर्मित परीक्षणों का निर्माण शिक्षक द्वारा पढ़ाये गये विषय के पाठ्यक्रम के उतने भाग पर आधारित होता है जो उसके द्वारा एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत पढ़ाया गया है। शिक्षक निर्मित परीक्षणों का निर्माण करने के लिए वस्तुनिष्ठ प्रकार अथवा निबंधात्मक प्रश्न अथवा दोनों प्रकार के प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में इन परीक्षणों का प्रयोग सर्वाधिक किया जाता है। विद्यार्थियों की साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक परीक्षाओं में इन्हीं परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। ये परीक्षण विभिन्न विषयों के लिए तैयार किए जाते हैं। इन परीक्षणों का निर्माण मानकीकृत परीक्षणों से भिन्न होता है। ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ होते हैं लेकिन प्रमापीकृत नहीं। इन परीक्षणों में इनकी विश्वसनीयता, वैधता एवं वस्तुनिष्ठता के सम्बन्ध में कुछ भी दावे के साथ नहीं कहा जा सकता इसलिए ये परीक्षण सार्वजनिक परीक्षाओं के लिए पूर्णरूपेण प्रयुक्त नहीं किए जा सकते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षणों के उद्देश्य : शिक्षक निर्मित उपलब्धि परीक्षण शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनों की दृष्टि से ही अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। इन परीक्षणों को निर्मित करने के प्रमुख उद्देश्य निम्न होते हैं-

1. बालकों की उपलब्धि के सामान्य स्तर को निर्धारित करना।
2. बालकों की विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं में वास्तविक स्थिति को ज्ञात करना।
3. यह जानने के लिए कि शिक्षक अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कहां तक सफल हुआ है।
4. बालकों को विभिन्न क्षेत्रों में दिए गये प्रशिक्षण के परिणामों का मूल्यांकन करना।
5. पाठ्यक्रम के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बालकों की प्रगति की जानकारी प्राप्त करना।
6. बालकों की अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों को ज्ञात करना और उनका निवारण करने के लिए पाठ्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन करना।
7. सीमित पाठ्यवस्तु के अनवरत मूल्यांकन की दृष्टि से ये परीक्षण अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं।
8. शिक्षक निर्मित परीक्षण शिक्षक को अपने शिक्षण को ओर अधिक प्रभावशाली बनाने के अवसर प्रदान करते हैं।
9. निदानात्मक दृष्टि से इन परीक्षणों द्वारा शिक्षक को यह संकेत प्राप्त होता है कि उसे शिक्षण कार्य में कहां तक सफलता प्राप्त हुई है और कहां तक नहीं। जबकि दूसरी ओर बालक यह अभ्यास करते हैं कि उन्हें कौन-कौन सी विषय-वस्तु ठीक से समझ नहीं आयी।

शिक्षक निर्मित परीक्षणों की विशेषताएं : शिक्षक निर्मित परीक्षणों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं-

1. शिक्षक निर्मित परीक्षणों के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं।
2. ये परीक्षण मानकीकृत नहीं होते हैं।

3. ये परीक्षण सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करते हैं।
4. ये परीक्षण सीमित पाठ्य वस्तु के सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए तैयार किए जाते हैं।
5. ये परीक्षण किसी विषय अध्यापक द्वारा ही तैयार किए जाते हैं।
6. इन परीक्षणों में प्रश्नों के विभिन्न रूपों का समावेश सरलता से किया जा सकता है।
7. ये परीक्षण परीक्षक की मनोवृत्ति के प्रभाव से पूर्ण एवं स्वतन्त्र होते हैं।

शिक्षक निर्मित परीक्षणों की सीमाएं : शिक्षक निर्मित परीक्षणों में विभिन्न विशेषताओं के बावजूद कुछ सीमाएं होती हैं-

1. ये परीक्षण किसी विषय के पूर्ण ज्ञान की परीक्षा नहीं कर पाते हैं।
2. इन परीक्षाओं में परीक्षार्थी को अनुमान से उत्तर देने के पर्याप्त अवसर मिल जाते हैं।
3. इन परीक्षणों का निर्माण करना सरल नहीं होता है।
4. कभी-कभी परीक्षार्थी इन परीक्षणों की प्रकृति से परिचित नहीं होते हैं तो विषय सम्बन्धी योग्यता रखते हुए भी अच्छे अंक प्राप्त नहीं कर पाते।
5. इस प्रकार के परीक्षणों में नकल की सम्भावना अधिक होती है।
6. इन परीक्षणों द्वारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अध्ययन नहीं हो पाता है।
7. ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ होते हुए भी प्रमापीकृत न होने के कारण परीक्षक की मनोवृत्ति से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होते हैं।
8. इन परीक्षणों के माध्यम से बालक की कठिनाइयों को जानना कठिन होता है।

सहपाठी आकलन

सामान्य अर्थ में सहपाठी आकलन का तात्पर्य विद्यार्थियों द्वारा अपने सहपाठियों को उनके कार्य गुणवत्ता के लिए दिया जाने वाला फीडबैक है। फैशिकोव के अनुसार, "सहपाठी आकलन से तात्पर्य विद्यार्थियों द्वारा अपने सहपाठियों को उनके निष्पादन या उनके उत्पाद पर दिए गए ग्रेड एवं प्रतिपुष्टि से है जो उस उत्पाद अथवा कार्य के सर्वोत्तम होने के मानदंड पर आधारित होता है जिसमें विद्यार्थी शामिल होता है।"

सहपाठी आकलन एक शिक्षार्थी द्वारा दूसरे शिक्षार्थी के आकलन को बताता है। यह जोड़ों या समूह में निष्पादित किया जा सकता है। यह अंतरवैयक्तिक कौशल विकसित करता है तथा निष्पक्ष अभिवृत्ति, श्रवण कौशलों में सुधार, समूह भावना, नेतृत्व के गुणों के मन:स्थान तथा समय प्रबन्धन को विकसित करने में शिक्षार्थी की सहायता कर सकता है। शिक्षार्थी अपने सहपाठियों के कार्य के मूल्यांकन द्वारा कार्य की गुणवत्ता को आत्मसात करते हैं। सहपाठी आकलन का मूल सक्रिय अधिगम के सिद्धान्तों में है। सक्रिय अधिगम में शिक्षार्थी चीजों को करने में सम्मिलित होते हैं तथा कार्य के बारे में सोचते हैं।

सहपाठी आकलन की विशेषताएं : यदि उपयुक्त तरीके से प्रयोग किया जाए तो सहपाठी आकलन प्रभावी आकलन उपकरण सिद्ध हो सकता है। सहपाठी आकलन की विशेषताएं निम्नांकित है-

टिप्पणी

1. सहपाठी आकलन सामूहिक अधिगम को बढ़ावा देता है।
2. सहपाठी आकलन अधिगम प्रक्रिया को उन्नत बनाता है।
3. सहपाठी आकलन के दौरान आकलनकर्त्ता रचनात्मक आलोचना के कौशल सीखता है।
4. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों के लेखन कौशल में सुधार लाता है।
5. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों में सक्रियता को बढ़ाता है।
6. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों का विकास करता है।
7. सहपाठी आकलन विद्यार्थी एवं शिक्षक के मध्य शक्ति असंतुलन को कम करता है।
8. सहपाठी आकलन विद्यार्थी के स्व आकलन कौशल को विकसित करता है।
9. अपने सहपाठियों का आकलन विद्यार्थी में आकलन की गहरी समझ बढ़ाता है।
10. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान को उन्नत बनाता है।
11. सहपाठी अधिगम विद्यार्थियों में आजीवन अधिगम को प्रेरित करता है।

सहपाठी आकलन का महत्व

सहपाठी आकलन के महत्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है–

1. सहपाठी आकलन शैक्षिक प्रक्रिया है जो शिक्षार्थियों में स्वायत्तता स्थापित करती है।
2. सहपाठी आकलन एक अधिगम वातावरण में शिक्षार्थी को सशक्त करता है।
3. सहपाठी के आकलन में शिक्षार्थियों के विश्वास को विकसित करना।
4. स्व मूल्यांकन तथा चिंतन हेतु शिक्षार्थी की योग्यता को विकसित करना।
5. सहपाठियों के साथ अन्य लोगों की गलतियों द्वारा निर्धारित मानकों को देखना तथा भविष्य में उनका सुधार करना

अध्यापक आकलन : शिक्षणअधिगम प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य बालक में सृजनात्मकता का विकास करना है। आकलन सीखने की प्रक्रिया का एक अंग है जो अध्यापक को यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि उसका शिक्षण कैसा होना चाहिए? जब शिक्षक कक्षा में बालकों का आकलन करते हैं तो वे स्वयं का भी आकलन कर रहे होते हैं। इस प्रकार किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है। शिक्षक द्वारा यह कार्य किसी साधन या टैस्ट के माध्यम से किया जाता है। यह साधन, रेटिंग स्केल, तालिका निष्पति उपलब्धि टैस्ट, साक्षात्कार, अवलोकन अनुसूची आदि हो सकते हैं। इनके द्वारा अंक प्रदान किए जाते है। आकलन, शिक्षण अवधि के अन्त में यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है इसके लिए परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। बालकों की उपलब्धि के लिए ग्रेड या प्रमाण पत्र प्रदान करने के लिए भी आकलन किया जाता है, जिसके अन्तर्गत न केवल बालक की विषय सम्बन्धी योग्यता की जानकारी होती है अपितु उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का ज्ञान होता है।

अध्यापक आकलन की विशेषताएं एवं लाभ : शिक्षा के क्षेत्र में आकलन, मापन एवं मूल्यांकन की अहम भूमिका होती है। आकलन होने के बाद बालक के सम्बन्ध में कुछ सूचनाएं अध्यापक को प्राप्त होती हैं। इन सूचनाओं के आधार पर वे बालक के शिक्षण

टिप्पणी

अधिगम के सम्बन्ध में निर्णय लेते और उसकी प्रगति रिपोर्ट तैयार करते हैं कि बालक को क्या कठिन लगता है, उसके व्यवहार में क्या परिवर्तन आये हैं और वांछित परिवर्तन के लिए और क्या करना है। शिक्षक बालक की कठिनाइयों, कमियों एवं दुर्बलताओं की जानकारी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार एक रिपोर्ट तैयार करके बालक के अभिभावक के साथ साझा करते हैं।

2.4.3 पोर्टफोलियो आकलन : अर्थ, क्षेत्र और प्रयोग, मूल्यांकन प्रक्रियाओं के लिए रूब्रिक प्रयोग

पोर्टफोलियो शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द Folium से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है कार्यलयी दस्तावेज। सामान्य अर्थो में पोर्टफोलियो का अर्थ है विभिन्न दस्तावेजों को ले जाने वाला/ रखने वाला बैग/सूटकेस/ फाइल।

पोर्टफोलियो का अर्थ

आजकल इनका प्रयोग विद्यार्थियों की संप्राप्तियों का आकलन करने के लिए किया जा रहा है लेकिन इनका प्रयोग बहुत पहले से चित्रकारों, कलाकारों आदि के द्वारा अपने कार्य के प्रदर्शन के लिए किया जाता रहा है।

पालसन एवं मेयर के अनुसार, "पोर्टफोलियो विद्यार्थी के महत्वपूर्ण कार्यों का उद्देश्य पूर्ण संग्रह है जो एक या एक से अधिक क्षेत्रों में विद्यार्थी के प्रयासों , उसकी प्रगति तथा उसकी संप्राप्ति का विवरण प्रदान करता है। इस आकलन सामग्री संकलन में विद्यार्थी की सहभागिता,चयन के मानदंड, योग्यता निर्धारण के मानदंड एवं विद्यार्थी के आत्म चिंतन के साक्ष्य अवश्य समहित होने चाहिए।"

आजकल सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का प्रयोग उन विद्यालयों में किया जाता है जहां पर विद्यार्थियों का शैक्षणिक सत्र के माध्यम से निरन्तर मूल्यांकन विभिन्न मानदंडों के आधार पर किया जाता है। अधिगम के प्रदर्शन, पाठ्यसहगामी गतिविधियों में भाग लेने, विभिन्न विषयों में जैसे पी.पी.टी. बनाना व दर्शाना, सेमिनार, वाद-विवाद प्रतियोगिता कविता पाठ, निबन्ध प्रतियोगिता, पोस्टर प्रतियोगिता, रंगोली, पाकशास्त्र प्रतियोगिता, खेलों में भागीदारी, क्लब में शामिल होना आदि जैसे मानदंडों को निरन्तर मूल्यांकन के अन्तर्गत रखा जाता है। इस प्रकार आकलन व्यापक और निरन्तर होता रहता है।

आमतौर पर बच्चों द्वारा विभिन्न विषयों में प्राप्त किए गए अंकों के रिकार्ड विद्यालय में रखे जाते हैं। केवल अंकों के ही नहीं अपितु उनकी पृष्ठभूमि, शारीरिक रिकॉर्ड, विद्यालय में संचालित विभिन्न कार्यक्रमों में उसकी भागीदारी, अतिरिक्त गतिविधियों में उनकी उपलब्धियों आदि का भी रिकॉर्ड तैयार किया जाता है। वास्तव में यह सब आकलन मूल्यांकन का ही एक अभिन्न अंग है। ग्रेड/अंक बच्चों के प्रदर्शन को दर्शाते हैं और जहां ये सब रिकार्ड किया जाता है उसे पोर्टफोलियो कहा जाता है। सदियों से कागज,कलम और निर्धारित समय विद्यार्थियों की क्षमताओं को मापने के साधन माने जाते रहे हैं लेकिन इस प्रक्रिया में यह नया आयाम है। अन्य शब्दों में पोर्टफोलियो के निर्माण के अन्तर्गत एक विद्यार्थी से सम्बन्धित कई आंकड़ों को व्यवस्थित रूप से दर्ज किया जाता है। पोर्टफोलियो के अन्तर्गत अधिगम के निष्पादन, गतिविधियों, पाठ्यसहभागी गतिविधियों में भागीदारी का विवरण और पूरे सत्र में विद्यार्थी से सम्बन्धित अन्य प्रासंगिक आंकड़ों का रिकॉर्ड रखा जाता है।

टिप्पणी

सरल शब्दों में विद्यार्थियों द्वारा सम्पन्न किये गये कार्यों का व्यवस्थित ढंग से संकलन करना विद्यार्थी का पोर्टफोलियो कहलाता है। यह कोई फाइल, कोई बैग या किसी प्रकार का पैकेट हो सकता है, जिसमें छात्रवार, कक्षावार तथा वर्षवार विद्यार्थियों के उत्कृष्ट कार्यों को सुरक्षित रखा जाता है। यह विद्यार्थी की उपलब्धियों की गुणवत्ता को प्रदर्शित करता है। पोर्टफोलियो की सहायता से विद्यार्थी की वर्तमान उपलब्धि स्तर की जानकारी के साथ-साथ पिछले वर्षों की जानकारी भी प्राप्त हो जाती है और उसके पिछले तथा वर्तमान के स्तर की तुलना करके उसके भविष्य की पहचान की जा सकती है।

पिछले कुछ सालों से पोर्टफोलियो का महत्व बढ़ता जा रहा है, क्योंकि आज ग्रेडों तथा क्रेडिटों के आधार पर विद्यार्थियों का निरन्तर मूल्यांकन किया जाता है। विद्यार्थी की स्कूली शिक्षा के दौरान उसके प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए इस प्रकार के रिकॉर्ड बहुत उपयोगी होते हैं।

पोर्टफोलियो के प्रकार : पोर्टफोलियो को निम्न तीन प्रकारों में विभक्त किया है-

- **प्रमाण पोर्टफोलियो :** प्रमाण पोर्टफोलियो से तात्पर्य उस पोर्टफोलियो से होता है जिसमें विद्यार्थी के सम्प्राप्ति से सम्बन्धित विभिन्न प्रमाण पत्र रखे जाते हैं।
- **अधिगम पोर्टफोलियो :** इस पोर्टफोलियो में विद्यार्थी के अधिगम से सम्बन्धित रिकार्ड रखे जाते हैं।
- **प्रदर्शन पोर्टफोलियो :** इस पोर्टफोलियो में विद्यार्थी के सर्वोत्तम सम्प्राप्तियों एवं कार्यों का विस्तृत रिकार्ड रखे जाते हैं।

पोर्टफोलियो के क्षेत्र : पोर्टफोलियो के क्षेत्र को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. विद्यार्थी के पूर्व ज्ञान की सूचना देता है।
2. विद्यार्थी की सम्प्राप्ति का सतत संचयी अभिलेख प्रस्तुत करता है।
3. विद्यार्थी के सम्प्रेषण कौशल का विकास करता है।
4. विद्यार्थी के स्व-मूल्यांकन में सहायक होता है।
5. विद्यार्थी के सम्प्राप्ति की जानकारी प्राप्त होती है।
6. विद्यार्थी के अधिगम एवं उनके मजबूत पक्षों का साक्ष्य होता है।
7. त्वरित प्रतिपुष्टि एवं विद्यार्थी की चिन्तनशीलता का प्रदर्शन करता है।

पोर्टफोलियो के प्रयोग- पोर्टफोलियो के प्रयोग को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

1. विभिन्न मनोवैज्ञानिक लाभ यथा अपनी सम्प्राप्तियों पर गर्वानुभूति, आत्मविश्वास का विकास करता है।
2. विद्यार्थी के सर्वांगीण आकलन में सहायक होता है।
3. कम लागत एवं गोपनीयता होती है।
4. आसान रखरखाव एवं अपडेट करना सरल होता है।
5. इन्टरनेट के माध्यम से आसानी से सर्च हो जाता है।
6. अधिक व्यापक, विस्तृत एवं तीव्र प्रतिपुष्टि सम्भव है एवं तकनीकी कौशल का प्रदर्शन करता है।

टिप्पणी

पोर्टफोलियो की सीमाएं : पोर्टफोलियो की सीमाएं निम्नलिखित हैं-

- आवश्यक संसाधनों को जुटाना कठिन होता है।
- उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग।
- निर्धारित समय में कार्य पूर्ण करना।
- रिकार्ड रखना।
- अध्यापक की सतत् सहायता की आवश्यकता।
- बहुकक्षीय प्रणाली।

यह कार्य विद्यार्थियों, शिक्षकों तथा अभिभावकों को मिल कर करना चाहिए। इसके निर्माण की जिम्मेदारी केवल विद्यालय की नहीं होती है क्योंकि इसके अन्तर्गत केवल विद्यालय के भीतर के शैक्षणिक कार्य को शामिल नहीं किया जाता अपितु इसमें उन सब बातों-क्रियाओं का भी संकलन किया जाता है जिन्हें विद्यार्थी विद्यालय तथा विद्यालय से बाहर भी बेहतर ढंग से करते हैं।

पोर्टफोलियो की योजना, विकास और आकलन

पोर्टफोलियो योजना समय की एक निश्चित अवधि में विद्यार्थियों द्वारा संपन्न किए गए कार्यों को व्यवस्थित ढंग से संकलित करना होता है। यह बालकों की उपलब्ध्यिों की गुणवत्ता को प्रदर्शित करता है तथा इसकी सहायता से विद्यार्थियों को वर्तमान वर्ष के स्तर की जानकारी प्राप्त हो जाती है। वह गत वर्ष और वर्तमान वर्ष के स्तर की तुलना करके भविष्य की पहचान को समझ सकता है। पोर्टफोलियो की योजना बनाते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए-

1. शक्तियों एवं कमजोरियों की पहचान करना।
2. विकास का अनुगमन करना।
3. एक निश्चित समय में हुई वृद्धि एवं बदलावों की जांच करना।
4. स्व-मूल्यांकन ,लक्ष्य निर्धारण एवं कौशल विकास में सहायता करना।
5. विद्यार्थी के पसंदीदा, सर्वोत्तम, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों को दिखाना।
6. भविष्य के प्रयासों के लिए विद्यार्थी की वर्तमान रुचियों को संप्रेषित करना।
7. विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा किये गये सर्वोत्तम कार्य के नमूने तैयार करना।
8. सत्र, सेमेस्टर के अन्त में विद्यार्थियों की उपलब्धियों को दिखाना।
9. विद्यालय द्वारा निर्धारित मानकों के प्रति प्रगति का दस्तावेज तैयार करना।
10. एक विशेष खण्ड या अधिगम समुदाय में विद्यार्थियों की उपयुक्तता दर्शाना।
11. ग्रेडिंग उद्देश्य से विद्यार्थियों की उपलब्धि का दस्तावेज तैयार करना।

पोर्टफोलियो का विकास : आजकल डिजिटल शिक्षण-अधिगम की संस्कृति का प्रचलन है इसलिए पोर्टफोलियो का स्थान अब ई-पोर्टफालियो ने ले लिया है।

लॉरेन्जो एण्ड इटलसन के अनुसार, "ई-पोर्टफोलियो एक मूल्यवान अधिगम-मूल्यांकन उपकरण है। एक ई-पोर्टफोलियो का डिजाइन, प्रदर्शनों, संसाधनों और उपलब्धियों का संग्रह है, जो किसी व्यक्ति, समूह या संस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस संकलन

टिप्पणी

को एक वेबसाइट पर या सी.डी. और डी.वी.डी. जैसे अन्य इलेक्ट्रोनिक मीडिया पर संग्रहित, पाठ आधारित, ग्राफिक या फिर मल्टीमीडिया तत्वों के रूप में शामिल किया जा सकता है। एक ई-पोर्टफोलियो आंकड़ों का साधारण संग्रह ही नहीं होता है अपितु यह विभिन्न अनुप्रयोगों के साथ बनाए गए कार्य को प्रबंधित और व्यवस्थित करने के लिए एक प्रशासनिक उपकरण के रूप में भी काम कर सकता है। ई-पोर्टफोलियो व्यक्तिगत प्रतिबिंब को प्रोत्साहित करता है और इसमें अक्सर विचारों और प्रतिक्रियाओं का आदान-प्रदान शामिल होता है।"

इस प्रकार ई-पोर्टफोलियो विद्यार्थी द्वारा किए गए डिजिटल कार्यों का रिकार्ड है जिसे डिजिटल पोर्टफोलियो या ऑनलाइन पोर्टफोलियो के नाम से भी जाना जाता है। ई-पोर्टफोलियो एक नई प्रवृत्ति है और शिक्षण-अधिगम में विद्यार्थी के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी उपकरण है।

शिक्षा में ई-पोर्टफोलियो का महत्व : शिक्षा में ई-पोर्टफोलियो आकलन एवं मूल्यांकन के लिए एक उपकरण है। विद्यार्थियों द्वारा की गयी गतिविधियों का रिकॉर्ड ई-पोर्टफोलियो में संग्रहित किया जाता है।

1. विद्यार्थियों की डिजिटल रचनाएं विभिन्न गतिविधियों में स्वयं के निष्पादन को स्तर प्रदान करती हैं। जैसे- एक विद्यार्थी द्वारा सबमिट की गई एक वीडियो क्लिप को बाद में देखा जा सकता है और त्रुटियों को आसानी से पहचाना जा सकता है।
2. वीडियो को दूसरी बार विकसित करते समय ध्यान रखना चाहिए कि उन त्रुटियों की पुनरावृत्ति न हो। इस प्रकार त्रुटियों को बार-बार होने से रोका जा सकता है।
3. यह बच्चों के काम का प्रमाण है। कई बार विद्यालयों में रिकार्ड खो जाते हैं लेकिन ई-पोर्टफोलियो के मामले में इनके खो जाने की सम्भावन काफी कम होती है क्योंकि ये कार्य डिजिटल रूप में किए जाते हैं।

पोर्टफोलियो द्वारा आकलन : कुछ देशों में स्कूली शिक्षा का सतत् आकलन करने के लिए पोर्टफोलियो अनिवार्य होता है। भारत में भी नवाचार पद्धति के अन्तर्गत पोर्टफोलियो को महत्व प्रदान किया गया है। विशेष रूप से तब जब सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की बात कही गई हो। पोर्टफोलियो में विद्यार्थी की विद्यालय, घर तथा समाज में उपलब्धियों का साक्ष्य वर्णित होता है। इसमें ऐसे विभिन्न कौशलों में उसकी पारंगतता के प्रदर्शन के भी साक्ष्य होते हैं, जिनका मापन परीक्षाओं द्वारा सम्भव नहीं होता है। पोर्टफोलियो में पूर्व निर्धारित क्रेडिट प्रदान किए जाते हैं जो अगली कक्षा में जाने के लिए अनिवार्य होते हैं। एक पोर्टफोलियो के निम्न लक्ष्य होते हैं-

1. विद्यार्थी अपनी अधिगम की योजना व्यवस्था और आकलन के लिए सक्रिय और प्रतिबन्धित भूमिका अपनायेगा।
2. विद्यार्थी को अपने उस अधिगम को प्रदर्शित करने के अवसर प्रदान करना जो उसके बौद्धिक विकास और पाठ्यक्रम आधारित अधिगम के पूरक का कार्य करें।
3. विद्यार्थी स्कूली शिक्षा के आगे जीवन में सफल पदापर्ण की योजना बनाएगा।
4. यह पोर्टफोलियो स्कूली स्तर पर शिक्षामन्त्रालय के विशिष्ट मानकों के आधार पर तैयार किया जाता है। विद्यार्थी इस कसौटी और मानक का अपनी योजना एवं प्रस्तुतीकरण के साक्ष्य तथा आत्म-आकलन के लिए निर्देशक के रूप में प्रयोग करते हैं।

टिप्पणी

मूल्यांकन प्रतिक्रियाओं के लिए रूब्रिक प्रयोग

छात्रों के निष्पादन या कार्यों के मूल्यांकन के लिए मानदंड स्थापित करना रूब्रिक कहलाता है। अन्य शब्दों में रूब्रिक्स मूल्य आकलन के लिए मार्ग निर्देशों का एक समुच्चय होता है, जो मूल्य निर्धारित किए जाने वाले अभिलक्षणों या आयामों को स्पष्ट प्रदर्शन कसौटियों तथा रेटिंग मापक के साथ व्यक्त करता है। यह वर्णनात्मक मापनी पर आधारित उपकरण है जो किसी मानदंड के सीखने की सीमा को बनाता है। रूब्रिक्स में दो घटकों-मानदंड तथा निष्पादन स्तरों को रखा जाता है। किसी भी रूब्रिक्स में कम से कम दो मानदंड तथा कम से कम दो निष्पादन स्तर होते हैं। किसी एक कार्य पर निष्पादन के लिए रूब्रिक का प्रारूप इस प्रकार होता है। इसमें निष्पादन के तीन स्तर दिये हैं दूसरे स्तम्भ में प्रत्येक मानदंड के लिए अधिभार दिया गया है।

इस प्रकार रूब्रिक का निर्माण करने के बाद निष्पादन के लिए अंक प्रदान किए जाते हैं। मानदंडों के लिए स्कोरिंग की जाती है जैसे संकल्प के लिए- खराब-2, अच्छा 4, बहुत अच्छा -6 प्रदान किए जाऐंगे।

मानदंड	मानदंड का अधिभार	निष्पादन			
		खराब	औसत	अच्छा	बहुत अच्छा
संकल्पनाएं	x_2				
तथ्य एवं चित्रण	x_3				
संगठन एवं प्रस्तुतीकरण	x_3				
संदर्भ	x_1				
योग					

इस प्रकार विद्यार्थी को प्रत्येक मानदंड के लिए अंक प्रदान करके तुलना एवं मूल्यांकन किया जाता है।

मानदंड	मानदंड का अधिभार	निष्पादन		
		खराब	अच्छा	बहुत अच्छा
संकल्पनाएं	x_2	2	4	6
तथ्य एवं चित्रण	x_3	3	6	9
संगठन एवं प्रस्तुतीकरण	x_3	3	6	9
संदर्भ	x_1	1	2	3
योग		9	18	27

2.4.4 समूह प्रक्रियाओं का आकलन—सहयोगात्मक / सहकारी अधिगम और सामाजिक कौशल

समूह प्रक्रिया के आकलन के अंतर्गत सहयोगी अधिगम एवं सामाजिक कौशल को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

टिप्पणी

सहयोगात्मक / सहकारी अधिगम

सहयोगी अनुदेशन को प्रत्येक विद्यार्थी के अधिगम के लिए स्वीकार किया जाता है। यह प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति का समर्थन करता है। सहयोगी अनुदेशन एवं समावेशन में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। समावेशन विद्यार्थी की आवश्यकताओं से तथा सहयोगी अनुदेशन शिक्षक की आवश्यकताओं से प्रेरित होता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक विद्यार्थी को अपना उचित सहयोग प्रदान करके अधिगम के लिए अनुदेशित करता है।

सहयोगी अधिगम की विशेषताएं : सहायोगी अधिगम की मुख्य विशेताएं निम्नलिखित हैं-

- सहयोगी अधिगम के अन्तर्गत प्रत्येक अधिगमकर्ता का योगदान बराबर होता है तथा निर्णय लेने की शक्ति भी बराबर होती है।
- शैक्षिणिक सामग्रियों में सिद्धहस्त होने के लिए विद्यार्थी समूह में कार्य करते हैं।
- सहयोगी प्रयासों के द्वारा प्रतिभागी समस्त सामग्री एवं संसाधनों को साझा करते हैं।
- समूह उच्च, औसत और निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों को मिलाकर बनते हैं।
- सभी अधिगमकर्त्ताओं का उद्देश्य एक होता है अतः वे अपनी समस्याओं, आवश्यकताओं को संयुक्त रूप से अपनी सहमति से साझा करते हैं।
- प्रतिभागियों के संयुक्त प्रयासों के परिणाम के प्रति संयुक्त जवाबदेही होती है।
- जहां तक संभव हो समूह में विभिन्न जाति, लिंग और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों का समावेश होता है।
- पारितोष वितरण नियम व्यक्तिगत आधारित न हो कर समूह आधारित होता है।

सहयोगी अधिगम की विधियां : सहयोगी अधिगम का प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है। इसमें प्रत्येक उपागम शिक्षक की शिक्षण एवं सहायक दोनों भूमिका में सहायोगी होता है। एक अच्छे सहयोगी उपागम के द्वारा विद्यार्थियों की आवश्यकता को निर्धारित किया जाता है। विषय शिक्षक अनुभव एवं व्यावहारिक विचारों के आधार पर योजना निर्माण करते हैं। इस अधिगम के लिए निम्न शैलियों /विधियों का प्रयोग किया जाता है-

1. सामूहिक शिक्षण
2. स्टेशन (केंद्र) शिक्षण
3. सामानान्तर शिक्षण
4. पुनिर्शिक्षण
5. अधिगम पूरक क्रियाएं
6. एक शिक्षण एवं एक निरीक्षण
7. एक शिक्षण एवं एक परीक्षक।

सहयोगी अधिगम के लाभ : कुछ ऐसे तत्व हैं जो सहयोगी अधिगम में प्रभावी एवं सकारात्मक परीणाम लाने में सहायक होते हैं जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं-

1. सभी छात्र कई व्यक्तियों की विशेषज्ञता का लाभ उठाते हैं।

2. सहयोगात्मक समूह नेतृत्व एवं उत्तरदायित्वों को साझा कर अपने ज्ञान में वृद्धि करता है।
3. शिक्षक एवं शिक्षार्थी एक-दूसरे से सीखते हैं तथा साथ-साथ समस्याओं को हल करते हैं।
4. निश्चित मानकों के अनुसार विद्यार्थियों का व्यक्तिगत मूल्यांकन होता है।
5. कक्षा में समस्त क्रियाएं प्रतिभागी विद्यार्थियों को सुविधा प्रदान करने के लिए तैयार की जाती हैं।
6. शिक्षक कक्षा में विद्यार्थियों को सक्रिय, रचनात्मक एवं सदस्यों के मध्य सहयोग को प्रेरित करता है।
7. उपलब्धि के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करता है।
8. सहयोगात्मक समूह, नेतृत्व एवं उत्तरदायित्वों को साझा कर अपने ज्ञान में वृद्धि करता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि विशिष्ट बालकों को सामान्य परिवेश एवं सामान्य विद्यार्थियों के मध्य शिक्षण अधिगम के लिए सहयोगी अनुदेशन अति महत्वपूर्ण होता है। कुछ विशिष्ट अनुदेशन शैली, उपागम एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर समावेशन के उद्देश्यों को प्रभावी रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

सहभागिता/सहकारी और सामाजिक अधिगम कौशल

सहकारी अधिगम से तात्पर्य प्राय: ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है जिसमें विद्यार्थी को स्वयं ही अपने समूह के अन्तर्गत सहकारी प्रणाली का अनुसरण करते हुए अधिगम करना होता है। विद्यार्थी प्राय: अपनी सूचनाओं एवं अनुभवों का आपस में आदान-प्रदान करते हैं तथा परस्पर सहयोग द्वारा वातावरण में विषय सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशलों को अर्जित करने का प्रयत्न करते हैं। परम्परागत कक्षागत शिक्षण में सम्पूर्ण प्रक्रिया विषय केन्द्रित रहती है तथा अध्यापक की भूमिका मुख्य रूप से होती है जबकि सहकारी अधिगम में प्रतिस्पर्धात्मक अधिगम के स्थान पर सहकारी ढंग से अधिगम उपार्जन का तथ्य विद्यार्थियों के समक्ष रखा जा सकता है। अत: सहकारी अधिगम द्वारा शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों की भूमिका एवं उत्तरदायित्वों में सार्थक एवं उद्देश्यपरक रूप में परिवर्तन लाया जा सकता है।

सहकारी अधिगम को एक ऐसे शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें एक कक्षा के विद्यार्थी अपने आपको छोटे-छोटे विभिन्न समूहों में विभाजित करके प्रतिस्पर्धा रहित अधिगम वातावरण में सहकारी ढंग से परस्पर मिलजुल कर विषय विशेष से सम्बन्धित पाठ्य-सामग्री के अधिगम अर्जन में प्रयासरत रहते हैं।

सामान्य रूप से देखा जाता है कि विद्यार्थी को समूह के कार्य करने में आनन्द का अनुभव होता है बालक को अपने साथियों के साथ खेलना अच्छा लगता है। कक्षा में पढ़ते समय भी विद्यार्थी से बातें करते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि विद्यार्थी का समूह में रहकर सहकारी अधिगम अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से होता है। इसलिए वर्तमान में अनेक सहकारी विधियों का प्रचलन बढ़ा है जिसके माध्यम से विद्यार्थी अधिगम करता है। विद्यालय में अनेक प्रकार के सहकारी अधिगम उपागमों का संचालन करके विद्यार्थियों के अधिगम का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। जैसे विद्यार्थियों को खेल- खेल में गिनती, रंगों के नाम, शरीर के अंगों के नाम सब्जियों व फलों आदि के नाम याद कराये जाते हैं।

टिप्पणी

इस प्रकार की परिस्थितियां विद्यार्थियों के अधिगम को स्थायी रूप प्रदान करने के साथ-साथ रुचिपूर्ण अधिगम प्रदान करती है। इसमें विद्यार्थियों को सभी कार्य सामूहिक रूप से प्रदान किए जाते हैं तथा प्रत्येक विद्यार्थी को सामूहिक रूप से कार्यों का उत्तरदायित्व दिया जाता है।

सहकारी अधिगम एक विशेष छोटा समूह उपागम है, जिसमें प्रजातांत्रिक प्रक्रिया, व्यक्तिगत जिम्मेदारी, समान अवसर और सामूहिक पारितोषिक निहित है। वर्तमान में ज्यादातर सभी कक्षाओं में कई प्रकार के सहकारी अधिगम क्रियाकलापों और मॉडल का उपयोग किया जाता है, जैसे- विद्यार्थी टीम का उपलब्धि विभाजन, जिज्ञासा और सामूहिक अन्वेषण। इस प्रकार कक्षा में समूह-कार्य का संचालन, शिक्षण-अधिगम का एक स्वाभाविक तरीका है। सहकारी अधिगम कक्षा की क्रियाओं के संचालन एवं संगठन का एक उपागम है। सहकारी मॉडल का विकास कम से कम तीन मुख्य अनुदेशात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया गया है। ये निम्नांकित हैं-

- शैक्षणिक उपलब्धि
- विभिन्नता की स्वीकृति (एक-दूसरे के प्रति आदर्श)
- सामाजिक कौशल का विकास

सहकारी अधिगम की विशेषताएं : सहकारी अधिगम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. सहकारी अधिगम प्रणाली का विश्वास है कि सही और वास्तविक अधिगम तभी सम्भव है जब वह समूह के अन्तर्गत सहयोगपूर्ण ढंग से मिलजुल कर अर्जित किया जाए। व्यक्तिगत एवं प्रतिस्पर्धापूर्ण अधिगम अर्जन कभी प्रभावपूर्ण एवं सार्थक सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि इससे सामाजिकता की अपेक्षा स्वार्थपूर्णता और वैयक्तिकता का ही पोषण होता है, जो उचित नहीं है।
2. सहकारी अधिगम प्रणाली में व्यक्तिगत प्रयत्नों की अपेक्षा मिलजुलकर सहकारितापूर्ण ढंग से किए जाने वाले सामूहिक प्रयत्नों को अधिगम अर्जन के लिए प्राथमिकता प्रदान की जाती है।
3. सहकारी अधिगम प्रणाली यह मान कर चलती है कि शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ एक मित्र सहयोगी एवं मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हुए विद्यार्थियों को इस प्रकार की सुविधाएं देने का कार्य करना चाहिए जिससे उन्हें पारस्परिक सहयोग करते हुए सीखने में सहायता प्राप्त होती है।
4. सहकारी अधिगम शिक्षण अधिगम को विषय एवं अध्यापक केन्द्रित बनाने की अपेक्षा छात्र केन्द्रित बनाने पर जोर देता है।
5. यह विद्यार्थियों को स्वयं अपना अधिगम मार्ग का चयन करने के लिए प्रेरित करता है।
6. इसमें विद्यार्थी को स्पर्धारहित, चिन्तामुक्त एवं सहयोगी वातावरण में सीखने एवं सहयोगपूर्ण अधिगम के अवसरों को प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाता है।
7. इस प्रणाली की मान्यता है कि विद्यार्थी पूरी तरह एक-दूसरे के साथ जुड़कर सहयोग करते हुए अधिगम के पथ पर आगे बढ़ सकता है।

8. विद्यार्थियों की सामूहिक उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के लिए दो बातों पर समान रूप से बल दिया जाना चाहिए। समूह के सामने अधिगम अर्जन के लिए क्या उद्देश्य थे तथा इन उद्देश्यों की पूर्ति में विद्यार्थियों द्वारा क्या योगदान रहा है।

टिप्पणी

9. यह प्रणाली विद्यार्थियों को भविष्य में सहयोगी एवं उत्तरदायी सामाजिक जीवन जीने के लिए उचित रूप से तैयार करने के लिए सहकारी ढंग से काम करने का अवसर प्रदान करती है।

10. इसमें विद्यार्थी कक्षा के साथियों के साथ निकटता और आत्मीयता का अनुभव कर विचारों सूचनाओं तथा ज्ञान का अच्छी प्रकार से आदान-प्रदान कर सकते हैं।

सहकारी अधिगम के अंग : सहकारी अधिगम के मुख्य अंग निम्नलिखित हैं-

1. **खेल द्वारा अधिगम :** सामान्य रूप से बालक घर पर विविध प्रकार की मिट्टी की मूर्ति एवं खिलौनों का निर्माण करते हैं जिससे एक ओर उनके कौशलों का विकास होता है दूसरी ओर उनका कला सम्बन्धी अधिगम भी होता है। खेल-खेल में अधिगम से बालक में दूसरों के प्रति प्रेम व सहयोग बढ़ता है जिससे उनमें सामाजिक गुणों का विकास होता है। खेल द्वारा अधिगम में विद्यार्थियों में सीखने की प्रक्रिया तीव्र एवं स्थायी होती है।

2. **समूह द्वारा सीखना :** समूह द्वारा अधिगम की प्रक्रिया को सुगम, सरल एवं रोचक बनाया जा सकता है। इसमें बालकों के समूह बनाकर उन्हें कार्य दिए जाते हैं कुछ प्रतिभाशाली बालकों को समूह का मुख्य बना दिया जाता है। समूह में दिए गये कार्य पाठ्यवस्तु से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार वे कार्य को एक दूसरे के साथ मिलकर करते हैं, आवश्यकता पड़ने पर शिक्षक सहायता करते हैं।

3. **सांस्कृतिक कार्यक्रम :** विद्यालय में सम्पन्न होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी सहकारी रूप से विद्यार्थियों का सहयोग लिया जाता है। बालकों को समय-समय पर इस प्रकार के कार्यक्रमों में (विद्यालय तथा विद्यालय से बाहर) भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इससे छात्र एक ओर स्वयं कार्य करके अधिगम करता है तथा दूसरी ओर साथियों से भी सीखने का प्रयास करता है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अभिभावकों की भी रुचि बनी रहती है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अभिभावकों को भी आमन्त्रित करना चाहिए। बालक अपने माता-पिता के द्वारा कार्य की प्रशंसा सुनकार सीखने के लिए अधिक प्रोत्साहित होते हैं।

4. **शैक्षिक मेलों द्वारा सीखना :** विद्यालय में छात्रों के लिए शैक्षिक मेलों का आयोजन करना चाहिए। इन मेलों के माध्यम से विद्यार्थियों को अधिक से अधिक सीखने मिलता है, जैसे कम्प्यूटर मेलों के आयोजन से कम्प्यूटर के बारे में उनके विभिन्न हिस्सों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है, उससे क्या-क्या काम किस प्रकार होता है, इनका प्रयोगिक ज्ञान प्राप्त होता है।

5. **शैक्षिक प्रदर्शन द्वारा सीखना :** विद्यालय में समय-समय पर शैक्षिक प्रदर्शनी का आयोजन किया जाना चाहिए। इस आयोजन में उन विषयों पर प्रदर्शनी लगाई जानी चाहिए जो बालकों की आयु व मानसिक स्तर के अनुकूल हों। अर्थात् परिवहन के साधन, सजीव व निर्जीव वस्तुएं, कम्प्यूटर आदि। इससे विद्यार्थियों में सामूहिक भावना का विकास होगा। प्रदर्शनी में सम्बन्धित तथ्यों के बारे में विद्यार्थी एक-दूसरे से तथा शिक्षकों से सीखने का प्रयास करेंगे

6. **शैक्षिक भ्रमण द्वारा सीखना :** विद्यार्थियों को शैक्षिक भ्रमण द्वारा सीखने का अवसर अवश्य प्रदान करना चाहिए। सामान्य रूप से शैक्षिक भ्रमणों पर जाना अच्छा लगता है। शहर की प्रसिद्ध प्रयोगशालाओं, व्यावसायिक स्थलों तथा ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण करवाना चाहिए।
7. **सामूहिक प्रतियोगिता द्वारा अधिगम :** बालकों के सामने जब प्रतियोगिता रखी जाती हैं तो बालक पूर्ण मनोयोग से कार्य करता है क्योंकि उनके सामने जीवन का लक्ष्य होता है। इसी क्रम में जब बालकों को समूह में रखकर अधिगम कार्य प्रदान किए जाते हैं तो उनमें सीखने की भावना तीव्र हो जाती है। समूह कमजोर विद्यार्थी को भी सीखने के लिए प्रेरित करेगा और अपने स्तर पर लाने में उसका सहयोग करेगा। इस प्रकार का अधिगम स्थायी एवं तीव्र होता है।

सहकारी अधिगम के गुण : सहकारी अधिगम के निम्नलिखित सामाजिक गुण हैं-

1. इससे सामाजिक नेतृत्त्व कौशल के विकास के समुचित अवसर उपलब्ध होते हैं
2. सामाजिक सहयोग कैसे लिया एवं दिया जाता है इसके जितने अच्छे अभ्यास और आवश्यक प्रशिक्षण सम्बन्धी अवसर इस प्रणाली में प्राप्त होते हैं, उतने अन्य किसी प्रणाली में नहीं।
3. सहकारी अधिगम द्वारा छात्र समायोजन को सीखता है क्योंकि समायोजन के अभाव में छात्र अपने साथियों, समाज एवं विद्यालय से कुछ भी नहीं सीख सकता है। सहकारी अधिगम एक अच्छे समायोजित सामाजिक जीवन जीने के लिए आवश्यक सामाजिक गुणों के विकास में सहायक होता है।
4. विद्यार्थी सहकारी अधिगम प्रणाली का अनुसरण कर अधिगम अर्जित करते समय सभी टीम के सदस्यों के साथ मिलजुलकर पूर्ण सौहार्द्र एवं सहयोग की भावना लेकर अध्ययन करते हैं।
5. यह सहयोग प्रवृत्ति एवं सामाजिक भावना का विकास कर छात्रों को अपने आगामी जीवन में समायोजन करने के लिए भरपूर सहयोग प्रदान करता है।

सहकारी अधिगम के दोष : सहकारी अधिगम के दोष निम्नलिखित हैं-

1. समूह में कार्य करने की अपेक्षा विद्यार्थी आपस में बातें करते हैं। जो कार्य उनको दिया जाता है उस पर कोई ध्यान नहीं देते। सामूहिक कार्यों के परिणाम अच्छे नहीं होते हैं।
2. समूह में सम्पन्न किए जाने वाली गतिविधियों में अनेक समस्याएं उत्पन्न होती है जैसे संसाधन का अभाव।
3. विद्यार्थियों को न तो कोई पूर्व अनुभव होता है और न उन्हें कोई ऐसा प्रशिक्षण दिया गया है जिससे वे स्वयं के प्रयत्नों से मिल-जुलकर अधिगम अनुभव कर सकें।
4. इस प्रणाली के द्वारा कक्षा तथा विद्यालय में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसके परिणामस्वरूप गम्भीर अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न हो सकती है।
5. सहकारी अधिगम के बहाने अध्यापक अपने शिक्षण दायित्वों का निर्वाह सही ढंग से न करके मौज-मस्ती करते हैं इसलिए यह प्रणाली मान्य नहीं है।

6. होशियार एवं प्रतिभाशाली बालकों को ट्यूटर बनाया जाता है जिससे उनका समय और शक्ति बर्बाद होती है तथा अधिगम विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

सहकारी अधिगम को प्रभावशाली बनाने में शिक्षक तथा विद्यालय की भूमिका

टिप्पणी

1. छात्रों को सहकारी रूप में कार्य देने से पूर्व उनकी रूचि के बारे में पता करना जरूरी है जिससे उनको रूचि के अनुसार कार्य मिल सके तथा कार्यो को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें।
2. विद्यार्थियों को समूह में कार्य प्रदान करने से पूर्व उनका सम्बन्ध पाठ्य-वस्तु से अवश्य निर्धारित करना चाहिए ताकि प्रत्येक क्रिया उद्देश्यनिष्ठ हो सके।
3. शिक्षक को समूह में कार्य करने वाले विद्यार्थियों पर दृष्टि रखनी चाहिए जिससे विद्यार्थी आपस में बातें न कर सकें।
4. विद्यार्थियों से सामूहिक कार्य कराने से पूर्व विद्यालय संसाधन पूर्ण कर लेने चाहिए।

अध्ययनों से पता चला है कि सहकारी उपागम शैक्षणिक उपलब्धि, सहयोगात्मक व्यवहार, अंत:सांस्कृतिक समझ व संबध तथा विकलांग विद्यार्थियों के प्रति दृष्टिकोण पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। सहकारी अधिगम के दौरान तथा सहयोगपूर्ण अधिगम गतिविधि के दौरान तथा पश्चात् आकलन या तो व्यक्तिगत या समूह स्तर पर होता है। प्रत्येक भूमिका के दौरान शिक्षक द्वारा शिक्षार्थियों के व्यवहार का आकलन किया जाता है।

2.4.5 सहयोगात्मक और सहकारी अधिगम परिस्थिति में सहपाठी का स्व–मूल्यांकन

सहयोगी अधिगम : सहयोगी अनुदेशन प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति का समर्थन करता है। सहयोगी अनुदेशन समावेशन विद्यार्थी की आवश्यकताओं को तथा सहयोगी अनुदेशन शिक्षक की आवश्यकताओं से प्रेरित होता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक विद्यार्थी को अपना उचित सहयोग प्रदान करके अधिगम के लिए अनुदेशित करता है। सहयोगी अधिगम के अन्तर्गत शैक्षिणिक सामग्रियों में सिद्धहस्त होने के लिए विद्यार्थी समूह में कार्य करते हैं। समूह उच्च, औसत और निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों को मिलाकर बनते हैं। सहयोगी अधिगम के अन्तर्गत प्रत्येक अधिगतमर्त्ता का योगदान बराबर होता है तथा निर्णय लेने की शक्ति बराबर होती है। प्रतिभागी समस्त सामग्री एवं संसाधनों को आपसी सहयोगी प्रयासों के द्वारा साझा करते हैं तथा प्रतिभागियों के संयुक्त प्रयासों के परिणाम के प्रति संयुक्त जवाबदेही होती है। इन सभी अधिगमकर्त्ताओं का उद्देश्य एक होता है अत: वे अपनी समस्याओं, आवश्यकताओं को संयुक्त रूप से अपनी सहमति से साझा करते हैं।

सहयोगी अधिगम के अन्तर्गत प्रत्येक अधिगमकर्त्ता सहयोगात्मक समूह नेतृत्व एवं उत्तरदायित्वों को साझा कर अपने ज्ञान में वृद्धि करता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक एवं शिक्षार्थी एक-दूसरे से सीखते हैं तथा साथ-साथ समस्याओं को हल करते हैं। सहयोगी अधिगम में कक्षा में समस्त क्रियाएँ प्रतिभागी विद्यार्थियों को सुविधा प्रदान करने के लिए तैयार की जाती हैं। शिक्षक कक्षा में विद्यार्थियों को सक्रिय, रचनात्मक एवं सदस्यों के मध्य सहयोग करने के लिए प्रेरित करता है। सहयोगी अधिगम के अन्तर्गत निश्चित मानकों के अनुसार विद्यार्थियों का व्यक्तिगत मूल्यांकन किया जाता है तथा उपलब्धि के प्रत्येक स्तर पर निर्देशन विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करता है।

टिप्पणी

सहकारी अधिगम : एक अच्छा शिक्षण-अधिगम प्रदान करने में भी सहकारी अधिगम प्रणाली का अमूल्य योगदान है। सहकारी अधिगम से तात्पर्य प्राय: ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है जिसमें विद्यार्थी को स्वयं ही अपने समूह के अन्तर्गत सहकारी प्रणाली का अनुसरण करते हुए अधिगम करना होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थी अपनी सूचनाओं एवं अनुभवों का आपस में आदान-प्रदान करते हैं तथा परस्पर सहयोग द्वारा विषय सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशलों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। सहकारी अधिगम के अन्तर्गत शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की एक ऐसी तकनीक अपनायी जाती है जिसमें एक कक्षा के विद्यार्थी अपने आपको छोटे-छोटे विभिन्न समूहों में विभाजित करके प्रतिस्पर्धा रहित अधिगम वातावरण में सहकारी ढंग से परस्पर मिलजुल कर विषय विशेष से सम्बन्धित पाठ्य-सामग्री के अधिगम अर्जित करने का प्रयास करते हैं। सामान्यत: ऐसा देखा गया है कि बालकों को अपने साथियों के साथ खेलना अच्छा लगता है। वे उनके साथ रहने व कार्य करने में भी आनन्द का अनुभव करते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि विद्यार्थी का समूह में रहकर अधिगम अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से होता है। इसलिए वर्तमान में अनेक सहकारी विधियों का प्रचलन बढ़ा है जिनके माध्यम से विद्यार्थी अधिगम करता है। सहकारी अधिगम में प्रत्येक विद्यार्थी को सामूहिक रूप से कार्यों का उत्तरदायित्व दिया जाता है। सहकारी अधिगम द्वारा विद्यार्थियों में उच्चस्तरीय चिंतन, कौशलों, समीक्षात्मक चिंतन तथा मौखिक सम्प्रेषण कौशल का विकास होता है।

सहकारी अधिगम प्रणाली के अनुसार सही और वास्तविक अधिगम तभी सम्भव है जब वह समूह के अन्तर्गत सहयोगपूर्ण ढंग से मिलजुल कर अर्जित किया जाए। सहकारी अधिगम प्रणाली के अनुसार शिक्षक को विद्यार्थियों के साथ एक मित्र सहयोगी एवं मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हुए वे सभी सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए जिनसे उन्हें पारस्परिक सहयोग करते हुए सीखने में सहायता प्राप्त होती है। सहकारी अधिगम शिक्षण अधिगम को छात्र केन्द्रित बनाने पर जोर देता है। इस प्रणाली की मान्यता है कि विद्यार्थी पूरी तरह एक-दूसरे के साथ जुड़कर सहयोग करते हुए अधिगम के पथ पर आगे बढ़ सकता है। यह प्रणाली विद्यार्थियों को भविष्य में सहयोगी एवं उत्तरदायी सामाजिक जीवन जीने के लिए उचित रूप से तैयार करने के लिए सहकारी ढंग से काम करने का अवसर प्रदान करती है। इसमें विद्यार्थी कक्षा के साथियों के साथ निकटता और आत्मीयता का अनुभव कर विचारों, सूचनाओं तथा ज्ञान का अच्छी प्रकार से आदान-प्रदान कर सकते हैं।

सहपाठी आकलन (Peer Assessment) : सहपाठी आकलन एक शिक्षार्थी द्वारा दूसरे शिक्षार्थी के आकलन को बताता है। सामान्य अर्थ में सहपाठी आकलन का तात्पर्य विद्यार्थियों द्वारा अपने सहपाठियों को उनके कार्य गुणवत्ता के लिए दिया जाने वाला फीडबैक है। फैशिकोव के अनुसार, "सहापाठी का आकलन से तात्पर्य विद्यार्थियों द्वारा अपने सहपाठियों को उनके निष्पादन या उनके उत्पाद पर दिए गए ग्रेड एवं प्रतिपुष्टि से है। जो उस उत्पाद अथवा कार्य के सर्वोत्तम होने के मानदंड पर आधारित होता है जिसमें विद्यार्थि शामिल होता है।"

सहयोगी/ सहकारी अधिगम में सभी शिक्षार्थी एक-दूसरे के साथ मिलकर अधिगम करते हैं। जब वे सभी एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते हैं तो एक-दूसरे को अच्छी प्रकार समझते हैं। ऐसी स्थिति में वे एक-दूसरे का आकलन भी अच्छी प्रकार से करते हैं। यह उनके अंतरवैयक्तिक कौशल को विकसित करता है तथा समूह भावना, नेतृत्व के गुणों तथा समय प्रबन्धन को विकसित करने में शिक्षार्थी की सहायता कर सकता है।

शिक्षार्थी अपने सहपाठियों के कार्य के मूल्यांकन द्वारा कार्य की गुणवत्ता को आत्मसात करते हैं। सहपाठी आकलन का मूल सक्रिय अधिगम के सिद्धान्तों में है। सक्रिय अधिगम में शिक्षार्थी चीजों को करने में सम्मिलित होते हैं तथा कार्य के बारे में सोचते हैं।

टिप्पणी

सहपाठी आकलन की विशेषताएँ (Characteristics of Peer Assessment) यदि उपयुक्त तरीके से प्रयोग किया जाए तो सहपाठी आकलन प्रभावी आकलन उपकरण सिद्ध हो सकता है। सहपाठी आकलन की विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

1. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों में सामाजिक गुणों का विकास करता है।
2. सहपाठी अधिगम विद्यार्थियों में आजीवन अधिगम को प्रेरित करता है।
3. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों में सक्रियता को बढ़ाता है।
4. सहपाठी आकलन सामूहिक अधिगम को बढ़ावा देता है।
5. सहपाठी आकलन अधिगम प्रक्रिया को उन्नत बनाता है।
6. सहपाठी आकलन के दौरान आकलनकर्त्ता रचनात्मक आलोचना के कौशल सीखता है।
7. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों के लेखन कौशल में सुधार लाता है।
8. सहपाठी आकलन विद्यार्थियों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान को उन्नत बनाता है।
9. सहपाठी आकलन विद्यार्थी एवं शिक्षक के मध्य शक्ति असंतुलन को कम करता है।
10. सहपाठी आकलन विद्यार्थी के स्व-आकलन कौशल को विकसित करता है।
11. अपने सहपाठियों का आकलन विद्यार्थी में आकलन की गहरी समझ बढ़ाता है।

सहपाठी आकलन के लाभ (Advantages of Assessment of Peer) सहपाठी आकलन के निम्नलिखित लाभ हैं-

1. सहपाठी आकलन शैक्षिक प्रक्रिया है जो शिक्षार्थियों में स्वायत्तता स्थापित करती है।
2. सहपाठी आकलन शिक्षार्थी कार्य की एक विशाल मात्रा के आकलन के लिए तथा विशेष प्रतिपुष्टि प्रदान करने के लिए शिक्षक के लिए एक तीव्र मार्ग प्रशस्त करता है।
3. सहपाठी आकलन एक अधिगम वातावरण में शिक्षार्थी को सशक्त करता है।
4. आकलन के प्रयोजनों के लिए अपने कार्य के प्रति निष्पक्ष रहने की योग्यता प्राप्त करना।
5. सहपाठी आकलन शिक्षार्थियों के विश्वास को विकसित करता है।
6. स्व मूल्यांकन तथा चिंतन हेतु शिक्षार्थी की योग्यता को विकसित करना।
7. सहपाठियों के साथ अन्य लोगों की गलतियों द्वारा निर्धारित मानकों को देखना तथा भविज्य में उनका सुधार करना।

स्व आकलन (Self Assessment) : स्व-आकलन एक संरचनात्मक आकलन की प्रक्रिया है जिसमें विद्यार्थी अपने कार्यों की गुणवत्ता एवं अपने अधिगम का आकलन स्वयं करता है तथा यह निर्णय लेता है कि अधिगम उद्देश्यों एवं अपेक्षित मानदंडों की प्राप्ति का स्तर क्या है। साथ ही अपने द्वारा किए गये कार्यों के मजबूत एवं कमजोर पक्षों की पहचान करता है ताकि उसमें आगे वांछित परिवर्तन लाया जा सके।

टिप्पणी

स्व-आकलन अपने बारे में सूचना संग्रहण की एक तकनीक है जिसमें विद्यार्थी स्वयं अपने आप अपना निरीक्षण करता है। जिसकी सहायता से वह अपने विषय में सूचना प्रदान करता है। जब कक्षा से पहले पढ़ाये गये विषय के अनुप्रयोग पर शिक्षक द्वारा कुछ गृह कार्य दिया जाता है तब विद्यार्थी को स्व-मूल्यांकन का अवसर मिलता है। इससे विद्यार्थी को यह पता चलता है कि विद्यालय में पढ़ाये गये नये सम्प्रत्ययों को कितनी अच्छी प्रकार से समझाया गया है। स्व-मूल्यांकन के लिए प्रश्नावली से मिलती-जुलती परिसूची का प्रयोग किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन के परिणामों से विद्यार्थियों के सम्बन्ध में सबल तथा निर्बल पक्षों की जानकारी मिलती है। इससे विद्यार्थियों को प्रतिपुष्टि मिलती है तथा उन्हें किसी विषय में अपनी प्रगति की पर्याप्त जानकारी मिलती है साथ ही उन्हें अपने अध्ययन की आदतों, रुचियों घर के वातावरण आदि जिनका प्रभाव उनके निष्पादन पर पड़ता है उनकी उपयुक्तता का ज्ञान होता है।

स्व-आकलन की विशेषताएँ (Characteristics of Self-Assessment) : स्व-आकलन की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं-

1. आकलन व्यक्ति के अधिगम को उन्नत करता है। यदि किसी अध्ययनकर्त्ता को उसके अधिगम का वास्तविक एवं अपेक्षित स्तर ज्ञात हो तो यह व्यक्ति के अधिगम को बढ़ाने में सहायक होता है। इसके द्वारा विद्यार्थी को यह ज्ञात होता है कि कमजोर पक्ष कौन-कौन से हैं और उसे कहां अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है। इस प्रकार स्व-आकलन विद्यार्थी को अपने आगे के अधिगम के लिए योजना बनाने में सहायता प्रदान करता है।
2. स्व-आकलन व्यक्ति के मूल्यांकन का एक प्राकृतिक विधि है। स्व-आकलन के अन्तर्गत यह पता चलता है कि किसी व्यक्ति ने क्या सीखा है अथवा क्या नहीं सीखा है। अथवा उसे सीखने में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। यदि विद्यार्थी पूरी ईमानदारी के साथ बिना किसी पूर्वाग्रह के अपना स्वयं का मूल्यांकन करे तो उससे बेहतर परिणाम कोई मूल्यांकन नहीं दे सकता है।
3. स्व-अवलोकन विद्यार्थी की जिम्मेदारी की समझ को बढ़ावा देता है।
4. स्व-आकलन नैदानिक शिक्षण के लिए उपयुक्त है।
5. स्व-आकलन से विद्यार्थी के आत्म विश्वास में वृद्धि होती है।
6. स्व-आकलन व्यक्तिगत भिन्नताओं का ध्यान रखता है।
7. स्व-आकलन अधिगम का बिल्कुल सही आकलन प्रस्तुत करता है।
8. स्व-आकलन की प्रक्रिया में विद्यार्थी को भागीदार बनाकर विद्यार्थी आकलन की व्यापक समझ का विकास होता है।
9. स्व-आकलन आगे के अधिगम के लिए प्रेरक है। स्व-आकलन के समय अपने सबल एवं कमजोर पक्षों की जानकारी विद्यार्थी को आगे बढ़ने में सहायता प्रदान करती है।

सहकारी/सहयोगी अधिगम के द्वारा बालक में सामाजिक नेतृत्व कौशल का विकास होता है। सहकारी अधिगम के द्वारा बालक समायोजन सीखता है। इस प्रणाली से अधिगम अर्जित करते समय बालक टीम के सभी सदस्यों के साथ मिलकर पूर्ण सौहार्द्र एवं सहयोग

टिप्पणी

की भावना से कार्य करना सीखता है, स्व-मूल्यांकन एवं सहपाठी मूल्यांकन के माध्यम से अपनी कमजारियों को जान पाता है। उसे पता चलता है कि सीखने में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, कहां और समायोजन की अवश्यकता है। सहपाठी मूल्यांकन सामूहिक अधिगम को बढ़ावा देता है और अधिगम प्रक्रिया को सुगम, सरल एवं रोचक बनाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. किस तकनीक के माध्यम से विद्यार्थियों की रचनात्मक मौलिकता एवं प्रस्तुतीकरण का आकलन सरलता से हो जाता है?

   (क) कार्य पत्रक (ख) प्रोजेक्ट

   (ग) असाइनमेंट (घ) परीक्षण

10. किन कार्यों के माध्यम से विद्यार्थी की प्रदर्शन क्षमता को आंका जाता है?

    (क) कार्य पत्रक (ख) साक्षात्कार

    (ग) प्रयोगात्मक (घ) निरीक्षण

11. विद्यार्थी द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह जो उसकी प्रगति तथा संप्राप्ति का विवरण प्रदान करता है, कहलाता है–

    (क) पोर्टफोलियो (ख) अभिलेख

    (ग) कार्य पत्रक (घ) अनुदेशन

12. सहयोगी अनुदेशन किससे प्रेरित होता है?

    (क) विद्यार्थी (ख) शिक्षक

    (ग) प्रबंधक (घ) प्रधानाचार्य

2.5 एक अच्छे उपकरण के मानदंड

आकलन शिक्षा का एक अभिन्न अंग है, क्योंकि यह निर्धारित करता है कि शिक्षा के लक्ष्यों को पूरा किया जा रहा है या नहीं।

सामान्यतः किसी वस्तु के भार, लम्बाई आयतन को निश्चित इकाई अंकों में मापने और प्रकट करने की क्रिया को मापन कहते हैं। जैसे कपड़े की लम्बाई को मीटर में, मनुष्य के भार को कि.ग्राम तथा दूध व जल को लीटर में प्रकट करना। वास्तव में मापन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

वस्तुओं क्रियाओं तथा प्राणियों को देखने समझने तथा उन्हें शब्दों में प्रकट करने की क्रिया बहुत प्राचीन है, लेकिन उस समय इन्हें मापने का कोई निश्चित आधार नहीं था। लेकिन आधुनिक युग में अधिकतर सभी गुणों को मापने के आधार निश्चित हो गए हैं, उनके मानदण्ड निश्चित हुए हैं और इन गुणों को मापने के लिए मापन विधियों और मापन यंत्रों लीटर, मीटर, किलोग्राम का भी निर्माण किया गया है। मापन क्रिया मानव

सभ्यता के उद्गम से ही प्रयुक्त की जाती है। मापन किसी वस्तु अथवा क्रिया के भिन्न–भिन्न गुणों को विशेष चिह्नों द्वारा प्रकट करने की प्रक्रिया है जिसके द्वारा वस्तु अथवा क्रिया के यथा गुणों को संक्षिप्त में प्रकट किया जाता है।

टिप्पणी

मापन शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से दैनिक जीवन में बहुतायत से किया जाता रहा है। व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में प्रतिदिन अनेक बार औपचारिक अथवा अनौपचारिक ढंग से माप करता है जैसे फल/सब्जी वाला फल व सब्जी तौलकर देता है, दूध वाला दूध नापकर देता है, डाक्टर थर्मामीटर से तापमान नापता है। मापन वास्तव में किसी व्यक्ति या वस्तु में विद्यमान किसी गुण या विशेषता का वर्णन करने की प्रक्रिया है।

2.5.1 मूल्यांकन के उपकरण के आवश्यक मानदंड

मापन एवं मूल्यांकन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और इसके उपकरण एवं विधियां भी अनेक हैं। अच्छे उपकरणों/प्रविधियों में निम्न विशेषताएं होनी चाहिए–

1. **वस्तुनिष्ठता** (Objectivity) : यह वह मापन उपकरण है जिसके मापन परिणाम मापनकर्त्ता से प्रभावित नहीं होते हैं। मापन कार्य कोई भी व्यक्ति करे परिणाम समान ही होते हैं। उदाहरण के लिये यदि किसी छात्र की उपलब्धि परीक्षण को दो या दो से अधिक परीक्षकों द्वारा अंकन कराया जाए तो उन सबके द्वारा प्राप्त परिणाम समान होंगे ऐसे परीक्षण को ही वस्तुनिष्ठ परीक्षण कहा जाता है। निबन्धात्मक परीक्षण वस्तुनिष्ठ नहीं होते हैं इसमें एक उत्तर पुस्तिका को जितने अधिक परीक्षक देखेंगे अन्तर उतना अधिक होगा।
2. **विश्वसनीयता** (Reliability) : विश्वसनीयता किसी मापन उपकरण का आवश्यक गुण होता है। वह मापन उपकरण जिसके द्वारा गुण (चर) अथवा गुणों (चरों) का मापन सही प्रकार से होता है विश्वसनीय मापन उपकरण कहा जाता है और उसके इस गुण को विश्वसनीयता के नाम से जाना जाता है। उदाहरण स्वरूप यदि हम एक बुद्धि परीक्षण का प्रयोग छात्रों के समूह विशेष पर आज करते हैं और फिर कुछ दिन बाद पुनः करते हैं और उसके परिणाम समान हों तो इस परीक्षण को विश्वसनीय परीक्षण कहा जाएगा।
3. **वैधता** (Validity) : वैधता से तात्पर्य परीक्षा की सार्थकता से होता है। किसी भी मापन उपकरण/विधि में यह विशेषता होनी चाहिए कि वह जिस गुण (चर) के मापन के लिए बनाई गयी है उसका मापन करती हो। ऐसे मूल्यांकन उपकरण/विधि को वैध उपकरण अथवा विधि कहा जाता है इसी विशेषता को वैधता कहा जाता है। उदाहरण के लिये छात्रों की उपलब्धि परीक्षा को लीजिए यदि इस परीक्षण द्वारा छात्रों उस योग्यता का मापन किया जा सकता है जिसके लिए इसे प्रयोग किया जा रहा है तो कहा जाएगा कि परीक्षण में वैधता का गुण है। शैक्षिक मापन परीक्षाओं में वैधता का गुण होना चाहिए क्योंकि अधिकांश मापन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। मानदण्ड परीक्षा की वैधता गुणक की (validity coefficient) गणना करनी चाहिए। परीक्षा के अंकों तथा मानदण्ड परीक्षा के अंकों के सह–संबंध गुणक की गणना करने से वैधता के स्तर की जांच की जा सकती है।

4. **मानक** (Norms) : मानक वे पूर्व निश्चित आधार होते हैं जिनके द्वारा किसी मापन उपकरण द्वारा प्राप्त मापन परिणामों की व्याख्या की जाती है। किसी भी अच्छे मापन उपकरण के लिए मानकों का होना आवश्यक है, इनके अभाव में परिणामों की सही व्याख्या नहीं की जा सकती है।

5. **उपयोगिता** (Usability) : एक अच्छी परीक्षा की एक प्रमुख विशेषता यह भी होती है कि उसका प्रयोग अंकन एवं प्राप्ति प्रदत्तों की व्याख्या करना सरल होता है किसी भी परीक्षा की रचना छात्रों की अधिगम उपलब्धियों (Learning-outcomes) के लिए की जाती है अतः परीक्षा का व्यावहारिक होना नितान्त आवश्यक है।

6. **व्यापकता** (Comprehensiveness) : छात्रों की किसी योग्यता अथवा विशेषता का सही मापन करने के लिए आवश्यक है कि उसके समस्त पहलुओं से संबंधित प्रश्न पूछे जाएं। इसे मापन उपकरण की व्यापकता कहते हैं। किसी भी परीक्षण को विश्वसनीय, वैध एवं विभेदक बनाने के लिए उसमें व्यापकता का गुण होना आवश्यक है।

7. **विभेदकता** (Discrimination) : शिक्षा के क्षेत्र में मापन एवं मूल्यांकन का प्रयोग छात्रों के गुणों एवं योग्यता का पता लगाने के लिए किया जाता है। गुणों एवं योग्यता की दृष्टि से छात्रों में काफी विभिन्नता पायी जाती है। अतः छात्रों के किसी गुण अथवा योग्यता का मापन करने वाले उपकरण (परीक्षण) में यह गुण होना चाहिए कि उसके मापन परिणामों का वितरण काफी विस्तार से हो ताकि उससे छात्रों में भेद किया जा सके। जिन परीक्षणों में यह गुण पाया जाता है उसे विभेदक परीक्षण के नाम से जाना जाता है।

8. **व्यावहारिकता** (Practicability) : किसी उपकरण में वैधता, विश्वसनीयता विभेदक एवं व्यापकता का गुण होने के बावजूद उसे तब तक अच्छा नहीं माना जाता है जब तक उसका प्रशासन सरलता से न किया जा सके। अतः मापन उपकरण ऐसा होना चाहिए जिसका प्रशासन सरलता से किया जा सके, जिसके प्रयोग से समय व धन की बचत हो। मापन व मूल्यांकन के इस गुण को व्यावहारिक कहा जाता है।

   किसी भी शैक्षिक मापन उपकरण को व्यावहारिक बनाने के लिए आवश्यक है कि उसकी रचना छात्रों एवं उपलब्ध साधनों (स्थान, समय, धनराशि आदि) को ध्यान में रखकर की जाए तथा उसकी प्रशासन संबंधी रूपरेखा भी स्पष्ट हो।

2.5.2 वैधता : अवधारणा, प्रकृति और प्रकार

व्यवहारपरक क्षेत्रों में प्रयुक्त किये जाने वाले परीक्षणों के साथ–साथ वैधता का भी शिक्षा के क्षेत्र में किसी भी निर्माण छात्रों के कुछ विशेष गुणों अथवा योग्यताओं (चरों, Variables) के मापन के लिए किया जाता है। यदि कोई परीक्षण छात्रों के उन गुणों अथवा योग्यताओं का मापन करता है जिनके मापन के लिए उसका निर्माण किया गया है तो उस परीक्षण को वैध परीक्षण कहते हैं तथा उसके इस गुण को उसकी वैधता कहा जाता है।

टिप्पणी

वैधता का अर्थ एवं प्रकृति : सामान्यतः वैधता का अर्थ है सही होना, सत्य होना और वास्तविकता के अनुकूल होना। लेकिन परीक्षण Testing या मापन (Measurement) में वैधता का अर्थ है आपेक्षित लक्ष्य के अनुकूल होना। दूसरे शब्दों में जिस चीज, गुण, योग्यता अथवा क्षमता को मापने के लिए किसी परीक्षण का निर्माण किया जाता है और यदि वह वास्तव में उसका मापन करता है तो उसके इसी गुण को वैधता कहते हैं और परीक्षण को वैध कहेंगे। उदाहरण के लिए परीक्षण की रचना बुद्धि का मापन करने के लिए की गयी। यदि वह वास्तव में बुद्धि का ही मापन करता है, किसी अन्य मानसिक गुण योग्यता का नहीं तो वह वैध परीक्षण माना जायेगा।

''वैधता का अर्थ किसी मापन यन्त्र का वह गुण है जिससे वास्तव में वह उसी चीज का मापन करता है, जिसको मापना उसका उद्देश्य है।''

अन्य शब्दों में, ''यदि कोई परीक्षण उन गुणों अथवा योग्यताओं का मापन करता है, जिनके मापन के लिए उसकी रचना की गयी है तो परीक्षण के इस गुण को वैधता कहते हैं।''

वास्तव में वैधता का आधार कोई एक विशेष कसौटी (Criterion) होती है, जिसके सन्दर्भ में वैधता की मात्रा का पता लगता है। लेकिन यह देखा गया है कि कोई भी परीक्षण वैधता की कसौटी पर पूर्ण रूप से खरा नहीं उतरता, न तो उसमें पूर्ण रूप से वैधता की उपस्थिति होती है और न पूर्ण रूप से वैधता की अनुपस्थिति होती है। इसलिए कहा जाता है कि जो परीक्षण उन गुणों अथवा योग्यताओं का मापन जिनके लिये उसका निर्माण किया गया है जितना अधिक करने में सक्षम होता है यह उतना ही अधिक वैध होता है। इस प्रकार किसी परीक्षण की वैधता उसकी वह सीमा है, जिस सीमा तक वह वही मापता है जिसके लिए इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक परीक्षण की वैधता उतने ही अनुपात में होती है जितने अनुपात में वह परीक्षण अपने उस उद्देश्य की पूर्ति करता है जिस उद्देश्य के लिए उसका निर्माण किया गया है।

वैधता के प्रकार

वैधता के प्रकारों के सम्बन्ध में विभिन्न मापन विदों के विभिन्न मत हैं–

- क्रोन बैक (Cronback) ने वैधता को निम्न वर्गों में विभाजित किया है–
  1. पूर्व कथन वैधता (Predictive Validity)
  2. विषय–वस्तु वैधता (Content Validity)
  3. समवर्ती वैधता (Concurrent Validity)
- फ्रीमैन (Freeman) ने वैधता को निम्न चार भागों में विभाजित किया है–
  1. क्रियात्मक वैधता (Operational Validity)
  2. कार्यात्मक वैधता (Functional Validity)
  3. अवयवात्मक वैधता (Factorial Validity)
  4. आनुभाविक वैधता (Empirical Validity)
- हेल्मस्टेडटर (Helmstadtar) ने वैधता को निम्न तीन भागों में विभाजित किया है–
  1. विषय–वस्तु वैधता (Content Validity)

2. आनुभाविक वैधता (Empirical Validity)
3. रचनात्मक वैधता (Construct Validity)

- ननली (Nunnally) ने तीन कार्यों के आधार पर वैधता को निम्न तीन भागों में विभाजित किया है–
  1. भविष्यवाणी वैधता (Predictive Validity)
  2. अन्तर्विषय वैधता (Content Validity)
  3. संरचना वैधता (Construct Validity)
- जॉर्डन (Zorden) ने वैधता को मूल रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया है–
  1. आन्तरिक वैधता (Internal Validity)
  2. बाह्य वैधता (External Validity)
- अमेरिकन मनोवैज्ञानिक संघ ने एक मोनोग्राफ प्रकाशित किया। इस मोनोग्राफ में वैधता को निम्न तीन रूप में वर्गीकृत किया गया–
  1. विषय–वस्तु वैधता (Content Validity)
  2. कसौटी सम्बन्धी वैधता (Criterian Related Validity)
  3. रचनात्मक वैधता (Construct Validity)

लेकिन अध्ययन की सुविधा के लिए वैधता को निम्न रूप से वर्गीकृत किया गया है–

1. अन्तर्विषय वैधता

अन्तर्विषय वैधता का सम्बन्ध विशिष्ट जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने से है। अन्तर्विषय वैधता की दो पहचान हैं (1) जिस जनसंख्या के किसी गुण या योग्यता को मापने के लिए किसी परीक्षण का निर्माण किया गया हो, उस जनसंख्या के सभी पक्षों या गुणों को मापने में यदि वह सक्षम है तो यह कहा जायेगा कि परीक्षण में अन्तर्विषय वैधता उपलब्ध है। कभी–कभी प्रतिदर्श के आधार पर परीक्षण का निर्माण किया जाता है इसके लिये आवश्यक है कि जितना अधिक प्रतिनिधिक होगा उसमें उतनी ही अधिक अन्तर्विषय वैधता उपलब्ध होगी। (2) परीक्षण के अन्तर्विषय या घटक का वैध होना। अन्तर्विषय या घटक से तात्पर्य वे सामग्रियां (जैसे प्रश्न, शब्द कथन आदि) जिनसे परीक्षण संरचित होता है। सामान्यतः इन्हें एकांश, (itemė पद) कहा जाता है।

स्पष्ट है कि अन्तर्विषय वैधता के लिए प्रतिदर्श इस हद तक प्रतिनिधिक हों कि परीक्षण जनसंख्या के सभी पहलुओं पक्षों का मापन करने में सक्षम हो और उसके एकांश मापनी की समस्या से पूर्णतः संगत हों। अन्तर्विषय वैधता को आन्तरिक वैधता (Relevance Validity), वृत्तीय वैधता (Circular Validity), सुसंगति वैधता (Relevance Validity) तथा प्रतिनिधित्वता (Representativeness) आदि नामों से भी पुकारा जाता है।

(अ) आन्तरिक वैधता (Intrinsic Validity) : आन्तरिक वैधता से तात्पर्य है परीक्षण में ऐसे एकांश हों जो नियोजित शीलगुण का मूल्यांकन आन्तरिक रूप से करते हों। उदाहरण के लिए यदि कोई एकांश ऐसा हो जो परीक्षार्थी को किसी शब्द के उच्चारण के लिए बाध्य करे तो यह समझा जायेगा कि उच्चारण–योग्यता के परीक्षण के लिए वह एक ऐसा एकांश है जिसमें आन्तरिक वैधता उपलब्ध है।

टिप्पणी

(ब) प्रतिचयन वैधता (Sampling Validity) : प्रतिचयन वैधता से तात्पर्य वह है जो इस विश्वास पर आधारित है कि जितने भी शीलगुणों को मापना है वे सभी परीक्षण में उपस्थित हैं। इसी आधार पर अन्तर्विषय वैधता को प्रतिनिधिकता वैधता भी कहते हैं।

(स) रूप वैधता (Face Validity) : जब किसी परीक्षण को ऊपरी तौर पर देखकर ही यह लगता है कि परीक्षण जिन गुणों अथवा योग्यताओं का मापन करने के लिए बनाया गया है, उनका मापन कर रहा है तो परीक्षण के इस गुण को रूप वैधता कहते हैं।

(द) पद वैधता (Item Validity) : पद वैधता से तात्पर्य परीक्षण के पदों की वैधता से होता है अर्थात् परीक्षण के सभी पद उन गुणों या योग्यताओं का मापन करते हैं या नहीं जिसके लिए उस परीक्षण का निर्माण किया गया है। उदाहरण के लिये यदि किसी परीक्षण का निर्माण मानसिक योग्यता के मापन के लिए किया गया हो और उसके सभी पद मानसिक योग्यता के सभी आयामों को ही मापें तो परीक्षण में पद वैधता कहलायेगी।

(य) तार्किक वैधता (Logical Validity) : जब किसी परीक्षण में यह देखा जाता है कि क्या परीक्षण को तर्कसंगत ढंग से बनाया गया है और क्या इसे प्रमाणों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है तो परीक्षण के इस गुण को तार्किक वैधता कहते हैं।

(र) विवेकसंगत वैधता (Rational Validity) : जब एक परीक्षण के पदों में पारस्परिक आधार पर एक तर्क संगत एकता तथा प्रकार्यात्मक समानता अथवा एक ही उद्देश्य की पूर्ति होते देखी जाती है तो ऐसे परीक्षण में विवेकसंगत वैधता देखने को मिलती है।

2. समवर्ती वैधता

जब किसी परीक्षण को पूर्व निर्मित मानकीकृत परीक्षण, जो उन्हीं गुणों एवं योग्यताओं को मापता है जिन्हें मापने के लिए इस परीक्षण का निर्माण किया गया है, से तुलना करके वैधता ज्ञात की जाती है तो इसे उस परीक्षण की समवर्ती वैधता कहते हैं। समवर्ती वैधता कसौटी सम्बन्धी वैधता होती है। कसौटी सम्बन्धी वैधता से तात्पर्य परीक्षण के किसी बाह्य कसौटी के साथ सहसम्बन्ध से होता है।

अन्य शब्दों में जब एक परीक्षण के आधार पर प्राप्त प्राप्तांकों तथा अन्य एक निश्चित आधार पर उपलब्ध प्राप्तांकों में निश्चित सह–सम्बन्ध देखने को मिलता है, तब सम्बन्धित परीक्षण में यह विशिष्ट स्थिति समवर्ती वैधता कहलाती है।

समवर्ती वैधता ज्ञात करने के लिये दोनों परीक्षणों के मध्य सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। इस सह–संबंध का मान जितना ज्यादा होता है परीक्षण उतना अधिक वैध होता है।

3. पूर्वकथित वैधता/भविष्यवाणी वैधता

जब एक परीक्षण के प्राप्तांक एक व्यक्ति के किसी एक भावी विशेष गुण अथवा विशिष्ट व्यवहार/योग्यता तथा उपलब्धि के सम्बन्ध में एक प्रकार का भविष्य–कथन पूर्वकथन प्रस्तुत करते हैं तब इस स्थिति को पूर्वकथित वैधता अथवा भविष्यवाणी वैधता कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति यांत्रिक अभिवृत्ति परीक्षण पर उच्च अंक प्राप्त करे तो उसके आधार

पर भविष्यवाणी की जायेगी कि वह यान्त्रिक कार्य में बहुत सफल होगा। ननली (Nunnally) ने कहा है कि कोई परीक्षण उस सीमा तक वैध होता है जिस सीमा तक वह भविष्यवाणी करने में सफल होता है।

टिप्पणी

पूर्वकथित वैधता ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम परीक्षण जिसकी वैधता ज्ञात करनी है एक निदर्श पर प्रशासित कर प्राप्तांक प्राप्त किये जाते हैं फिर इतने समय तक इंतजार किया जाता है जब परीक्षणकर्ता को कसौटी पर प्राप्तांक उपलब्ध हो सके इसके बाद पूर्व में प्राप्त प्राप्तांक एवं एक कसौटी पर प्राप्त प्राप्तांकों के मध्य सह–सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। यह सम्बन्ध ही पूर्वकथन की वैधता को दर्शाता है।

4. रचनात्मक वैधता

यह वैधता का नवीन तथा अति महत्वपूर्ण स्वरूप है। इसकी रचना का श्रेय क्रॉनबैक को जाता है। इसके अन्तर्गत जब एक परीक्षण की रचना का आधार कोई एक ऐसी वैज्ञानिक परिकल्पना अथवा एक ऐसा विशेष वैज्ञानिक सिद्धांत होता है, जिसके आधार पर एक व्यक्ति के भावी निष्पादन को लगभग निश्चित रूप से व्यक्त किया जाना सम्भव होता है तब ऐसे परीक्षण में निर्मित वैधता पायी जाती है। अर्थात् जब परीक्षण मानसिक गुणों के सैद्धान्तिक विवेचनों के आधार पर छात्रों के व्यवहारों की जांच कर वैधता ज्ञात की जाती है तो उसे रचनात्मक वैधता कहते हैं।

5. कारक वैधता

जब एक परीक्षण के विभिन्न पदों की रचना का आधार विभिन्न सैद्धान्तिक कारक होते हैं और उस परीक्षण की वैधता का आधार विभिन्न कारकों के मध्य पारस्परिक तथा किसी एक उभयनिष्ठ (Common) कारक में व्याप्त सह–सम्बन्ध गुणांक होते हैं, तब ऐसे परीक्षण में कारक वैधता दिखायी देती है। कारक वैधता के अन्तर्गत एक विशेष कारक के साथ अन्य विभिन्न कारकों के प्राप्त सह–सम्बन्ध गुणांकों को देखा जाता है। एनेस्टैसी ने कारक वैधता को इस प्रकार परिभाषित किया है–कारक वैधता से आशय है कि उस परीक्षण व उस सर्वमान्य कारक के मध्य ऐसा सह–सम्बन्ध हो, जो कि एक परीक्षण के समूह अथवा व्यवहार की अन्य मापों में निहित है।

6. सक्रियात्मक वैधता

सक्रियात्मक वैधता से एक परीक्षण की उस स्थिति का बोध होता है जिसके अन्तर्गत ऐसे कार्यों को किए जाने पर बल दिया जाता है जो मनोवैज्ञानिक कार्यकलापों के मापन व मूल्यांकन के लिये उपयुक्त पाए जाते हैं। जैसे किसी एक परीक्षार्थी की यान्त्रिक अभिक्षमता (Mechanical aptitude) का आकलन उसके द्वारा किसी एक यान्त्रिक अभिक्षमता परीक्षण द्वारा लगाया जा सकता है।

7. संश्लिष्ट वैधता

संश्लिष्ट वैधता को विकसित करने का श्रेय लॉशे को जाता है। संश्लिष्ट वैधता का उपयोग अति विशिष्ट स्थितियों में किया जाता है। उदाहरण के लिये जब एक परीक्षण की रचना लिपिक योग्यता के उद्देश्य से की जाती है तब उस परीक्षण में ऐसे पदों को रखा जाता है जिनके माध्यम से एक परीक्षार्थी की प्रारम्भिक गणितीय योग्यता, ठीक–ठीक Spelling लिखना, ठीक–ठीक अर्थों समझना, उपयुक्त टंकण की गति का होना व अन्य सामान्य जानकारी की परख की जाती है, लिपिक पद के लिए उच्च स्तर

के पत्र व्यवहार की योग्यता की आवश्यकता होती है। ऐसी विशिष्ट स्थिति में अपेक्षाओं व आवश्यकताओं के अनुसार कार्य विश्लेषण करना होता है। ऐसी परीक्षाओं में संश्लिष्ट वैधता का गुण होता है।

टिप्पणी

8. अन्तः वैधता

जब एक परीक्षण का उपयोग विभिन्न परीक्षकों व शोधकर्ताओं द्वारा भिन्न–भिन्न स्थितियों में किया जाता रहता तब उस परीक्षण में अन्तः वैधता स्थापित होती चली जाती है। अन्तः वैधता की प्रक्रिया के अन्तर्गत सम्बन्धित परीक्षण का वैधीकरण उससे सम्बन्धित पूर्ण समष्टि के स्थान पर नवीन समष्टि को लिया जाता है।

वैधता की प्रमुख कसौटियां

विभिन्न परीक्षणों की वैधता की कसौटियां अलग–अलग होती हैं।

1.बुद्धि परीक्षण

बुद्धि परीक्षण की वैधता निर्धारित करने के लिये प्रायः निम्न कसौटियों का उपयोग किया जाता है–

(अ) सम्बन्धित बालकों के शैक्षिकलब्धि संचयी वृत्त (Cumulative Records)

(ब) शिक्षकों के मूल्यांकन

(स) प्रतिभाशाली, श्रेष्ठ, सामान्य मन्दबुद्धि वाले समूहों से तुलनात्मक अध्ययन

(द) किसी एक अन्य समकक्ष व विख्यात बुद्धि परीक्षण के साथ तुलनात्मक अध्ययन

2. अभिक्षमता परीक्षण

(अ) प्रशिक्षण के पश्चात् उपलब्ध प्राप्तांकों तथा परीक्षण के आधार पर प्राप्त अंकों में सह–सम्बन्ध गुणांक द्वारा

(ब) प्रशिक्षण के अन्तर्गत व प्रशिक्षण के पश्चात् पर्यवेक्षकों के श्रेणीकरण के प्रति तुलनात्मक अध्ययन द्वारा

(स) सम्बन्धित व्यक्तियों के उत्पादन स्तरों के आधार पर मात्रा व गुणवत्ता का मूल्यांकन

(द) अतिविशिष्ट अभिक्षमताओं के लिये सम्बन्धित तकनीकी क्षेत्रों की उपलब्धि

(य) वास्तविक कार्य निष्पादन के आधार पर मूल्यांकन द्वारा

3. आयु विभेदीकरण

प्रसिद्ध बुद्धि परीक्षणों की रचना का आधार आयु होता है जैसे बिने–साईमन बुद्धि परीक्षण ऐसे परीक्षण आयु सम्बन्ध में अधिक वैध होते हैं। यदि एक बुद्धि परीक्षण छः वर्ष की आयु वाले बच्चों के लिये निर्मित व मानकीकृत किया गया है तब इसकी वैधता का निर्धारण छः वर्ष के बालकों के लिये ही वैध माना जायेगा।

4. व्यक्तित्व

सम्बन्धी परीक्षण वैधता की जांच की कसौटियां–व्यक्तित्व सम्बन्धी परीक्षण की वैधता की जांच निम्न प्रकार से होती है–

(अ) मनोरोग निदान

(ब) विपरीत समूह से तुलना

(स) अभिसारी तथा विभेदकारी विधियां

2.5.3 विश्वसनीयता : अवधारणा

शिक्षाशास्त्र तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्याप्त अनेक समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन में व्यक्तित्व संबंधी विशेषकों के मापन की आवश्यकता पड़ती है। इन क्षेत्रों में मापन संबंधी प्राप्तांकों का स्वरूप कठोर, तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अपूर्ण, अविश्वसनीय व त्रुटिपूर्ण रहता है। इन क्षेत्रों में मापन के लिए प्रयुक्त यंत्रों व मापनियों का स्वरूप सार्वभौमिक स्तर पर भौतिक विज्ञानों में प्रयुक्त स्केलों व उपकरणों की भांति यथार्थ एवं परिशुद्ध नहीं होता है। जिस प्रकार भौतिक मापन में दूरी को मिलीमीटर, सेण्टीमीटर, मीटर, किलोमीटर में अतिशुद्ध रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है उसी प्रकार किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रियाओं के विभिन्न गुणों का मापन करने के लिए परीक्षणों का निर्माण किया जाता है। परीक्षणों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में छात्रों की विभिन्न योग्यताओं को मापा जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में अध्ययनों व अनुसंधानों से जो आंकड़े प्राप्त होते हैं वे वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्णतः विश्वसनीय नहीं होते हैं। विभिन्न विषम स्थितियों के सफल समाधान के लिए सांख्यिकीविदों ने कुछ ऐसे कुशल सूत्रों का प्रतिपादन किया है जिनकी सहायता से अपूर्ण व त्रुटिपूर्ण आंकड़ों को विश्वसनीय रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

विश्वसनीयता का अर्थ (Meaining of Reliability)

यदि किसी परीक्षण द्वारा मापीय गुणों का मापन सही ढंग से किया जाता है उसमें किसी प्रकार की मापन त्रुटि नहीं होती तो ऐसे परीक्षण को विश्वसनीय परीक्षण कहते हैं और उसके इस गुण को विश्वसनीयता कहते हैं। विश्वसनीयता शब्द को तीन अर्थों में परिभाषित किया जाता है–

1. **स्थिरता परिभाषा (Stability Definition)** : कुछ मनोवैज्ञानिकों ने विश्वसनीयता को स्थिरता के अर्थ में परिभाषित किया है और कहा कि "विश्वसनीयता का अर्थ है भरोसा, स्थिरता संगति, भविष्यवाणी और परिशुद्धता" एक विश्वसनीय व्यक्ति वह है जिस पर भरोसा किया जा सके, जिसके व्यवहार में स्थिरता हो, संगति हो और जिसके संबंध में भविष्यवाणी की जा सके इसके विपरीत अविश्वसनीय वह है जिस पर भरोसा न किया जा सके और जिसके संबंध में कोई पूर्व कथन संभव न हो। इसी प्रकार जिस परीक्षण में परिणामों की स्थिरता हो संगति हो उसे विश्वसनीय परीक्षण कहेंगे। विश्वसनीयता का अर्थ किसी परीक्षण की संगति है अर्थात् समान परिस्थितियों में यदि उस परीक्षण का व्यवहार बार–बार किया जाए तो प्राप्त परिणामों में समान होने की संभावना कितनी है।
2. **यथार्थता परिभाषा (Precise Definition)** : यथार्थता परिभाषा के अनुसार विश्वसनीयता का अर्थ उपयुक्त होना अथवा योग्य होना पहली परिभाषा स्थिरता पर आधारित दूसरी यथार्थता पर। लेकिन यथार्थता से स्थिरता आवश्यक होती है। दोनों परिभाषाएं संगत हैं।
3. **विचलन परिभाषा (Deviation Definition)** : किसी परीक्षण को उसी हद तक विश्वसनीय माना जाता है जिस हद तक उसके मापन में अशुद्धियां न हों। "विश्वसनीयता को किसी मापन यंत्र में मापन की अशुद्धियों की सापेक्ष अनुपस्थिति

टिप्पणी

के अर्थ में परिभाषित किया जा सकता है।

इस प्रकार विश्वसनीय परीक्षण के लिए आवश्यक है कि उसके परिणाम में स्थिरता हो, यथार्थता हो तथा सापेक्ष अशुद्धि की अनुपस्थिति हो। एक समूह के व्यक्तियों के प्राप्तांकों के दो या दो से अधिक विन्यासों के मध्य सह–संबंध को एक परीक्षण की विश्वसनीयता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

शैक्षिक मापन कभी भी पूर्ण रूप से विश्वसनीय किया जाता है और अप्रत्यक्ष विधियों से लाख प्रयत्न करने पर भी मापन त्रुटियां रहती है। इसी कारण कुछ विद्वान परीक्षण की विश्वसनीयता को विश्वसनीयता गुणांक के रूप में परिभाषित करते हैं।

विश्वसनीयता के प्रकार एवं इसके निर्धारण की विधियां

विश्वसनीयता के निर्धारण की (determination) मुख्य चार विधियां हैं जिनके द्वारा चार प्रकार की विश्वसनीयता का निर्धारण किया जाता है ये विधियां निम्नलिखित हैं–

1. परीक्षण–पुनः परीक्षण विधि (Test Retest Method)
2. अर्द्ध–विच्छेद विधि (Split Half Method)
3. समान प्रारूप विधि (Parallel Form Methos)
4. तर्कसंगत–समतुल्य विधि (Method of Rational Equivalence)

1. परीक्षण पुनः परीक्षण विधि

इस विधि के अन्तर्गत एक ही परीक्षण को थोड़े समय अन्तराल पर एक समूह पर प्रशासित किया जाता है और फिर दोनों बार के परीक्षणों के प्राप्तांकों के बीच अनुकूल विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है। इस सह–संबंध गुणांक से उस परीक्षण की विश्वसनीयता का बोध होता है। सह–संबंध गुणांक जितना अधिक होता है परीक्षण उतना अधिक विश्वसनीय माना जाता है। इस विधि से प्राप्त विश्वसनीयता को पुनःपरीक्षण विश्वसनीयता और स्थिरता गुणांक भी कहते हैं।

विश्वसनीयता ज्ञात करने की यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है क्योंकि यह विश्वसनीयता निर्धारण करने की अपेक्षाकृत सरल व सुविधाजनक विधि है। व्यवहार में इस विधि के प्रयोग के अपने ही कुछ गुण एवं दोष हैं–

गुण/लाभ

1. यह विधि सरल है। इसके द्वारा आसानी से किसी परीक्षण की विश्वसनीयता को निर्धारित करना संभव होता है।
2. इस विधि की प्रक्रिया न केवल सरल है अपितु इस विधि द्वारा विश्वसनीयता के परीक्षण से समय व श्रम की बचत होती है।
3. किसी परीक्षण की दीर्घकालीन स्थिरता की स्थिति में परीक्षण पुनर्परीक्षण विधि सर्वाधिक उपयोगी व सफल है।
4. इस विधि द्वारा ऐसे परीक्षणों की विश्वसनीयता का आकलन अधिक हो पाता है, जिनके एकांशों में परिवर्तन की संभावना नहीं होती है, जैसे बुद्धि परीक्षण की विश्वसनीयता।

5. यह विधि विषय परीक्षणों की विश्वसनीयता की जांच के लिये अधिक अनुकूल तथा उपयोगी है।

दोष/सीमाएं

1. परीक्षण पुनः परीक्षण विधि का एक दोष यह है कि एक ही परीक्षण को कुछ समय के अन्तराल से दो बार प्रशासित किया जाता है अतः विश्वसनीयता पर अभ्यास, स्मृति, व्यक्ति के अन्दर होने वाले परिवर्तनों, क्षमताओं में वृद्धि तथा परीक्षण देने की अभिवृत्ति आदि का प्रभाव पड़ता है।
2. परीक्षण के प्रथम संचालन तथा द्वितीय संचालन में समय अन्तराल अधिक होने पर जिस गुण का मापन करना है वह बदल सकता है क्योंकि उपयुक्त तत्वों का प्रभाव विश्वसनीयता पर अधिक पड़ेगा।
3. यह विधि व्यक्तित्व अविष्कारिका, चिन्ता परीक्षण आदि की विश्वसनीयता को निर्धारित करने के लिये उपयुक्त नहीं है।

स्पष्ट है कि पुनः परीक्षण विधि में कई दोष हैं और सभी परिस्थितियों में इस विधि का प्रयोग उपयुक्त नहीं है कुछ विशेष परिस्थितियों में इस विधि का प्रयोग आज भी आवश्यक रूप से किया जाता है इसके वैज्ञानिक स्तर पर सुधार करने के लिये कुछ उपाय सुझाये गये हैं–

- **परीक्षण पुनः परीक्षण विधि में सुधार के कुछ उपाय** (Some measurement for the Improvement of Test-Retest Method)

1. सर्वप्रथम इस विधि के अन्तर्गत एक परीक्षण व दूसरे परीक्षण के प्रशासन में समय अन्तराल अति निकट भी न हो और अधिक दूर भी न हो।
2. परीक्षण का स्वरूप कठोर वैज्ञानिक व तकनीकी स्तर पर मानकीकृत होना जरूरी है।
3. एक परीक्षण के पदों की संख्या यथासंभव अधिक ही रहनी चाहिए क्योंकि अधिक पदों के प्रति हल ढूढ़नें में एक प्रयोज्य का ध्यान निरन्तर विभाजित व विचलित होता रहता है।
4. दोनों अवसरों पर प्रशासक द्वारा प्रयोज्यों को दिये गये निर्देशों का स्वरूप समान होना चाहिए।
5. प्रयोज्यों की प्राप्त संबंधित अनुक्रियाओं को अंक प्रदान करने का प्रक्रम भी दोनों स्थितियों में अपरिवर्तित रहना चाहिए।

विश्वसनीयता निर्धारण की इस विधि का प्रयोग विशेषतः गति परीक्षणों (Speed Tests) के लिये अधिक उपयोगी रहता है।

2. अर्द्ध विच्छेद विधि

अर्द्ध–विच्छेद विधि द्वारा विश्वसनीयता की जांच करने के लिये परीक्षण को दो भागों में विभाजित कर लिया जाता है। परीक्षण को विभाजित करने की दो विधियां है। प्रथम विधि को विषय–समविधि (Odd even method) कहा जाता है। इसमें परीक्षण के सभी विषम एकांशें को एक आधे भाग (First half) में तथा सम एकांशों को दूसरे आधे भाग (Second half) में रखा जाता है। उदाहरण के लिये यदि परीक्षण में 100 पद हैं तो पहले

टिप्पणी

आधे भाग में 1, 3 5 7 9 11 13.. को तथा दूसरे आधे भाग में 2, 4, 6, 8, 10, 12, 14. .. को रख कर समतुल्य परीक्षण की रचना की जाती है। विभाजन की दूसरी विधि को प्रथम अर्द्ध बनाम द्वितीय अर्द्ध विधि (First half versus second half method) कहते हैं। माना परीक्षण में 100 एकांश है तो 1 से 50 तक एकांश प्रथम अर्द्ध भाग में और 51 से 100 तक दूसरे अर्द्ध भाग में रखे जाएंगे। लेकिन इस विधि की अपेक्षा विषम सम विधि अधिक उपयुक्त एवं लोकप्रिय है।

जब परीक्षण को दो भागों में विभाजित कर लिया जाता है तो नव निर्मित दोनों भाग पारस्परिक रूप से एक–दूसरे के समान अथवा समतुल्य समझे जाते हैं। फिर दोनों परीक्षणों को एक–एक करके परीक्षार्थियों को दिया जाता है। फिर दोनों स्थितियों के प्राप्तांकों को ज्ञात किया जाता है इसके पश्चात् उनके दोनों परीक्षणों के प्राप्तांकों को युग्मित करके दोनों परीक्षणों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कर लिया जाता है। उसी के आधार पर परीक्षण की विश्वसनीयता का निर्धारण होता है। उच्च सह–संबंध गुणांक होने पर उच्च विश्वसनीयता तथा निम्न सह–संबंध गुणांक होने पर निम्न विश्वसनीयता का बोध होता है। दोनों अर्द्ध भागों के आधार पर जो सह–संबंध प्राप्त होता है उस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक प्राप्त करने के लिए स्पीयरमैन ब्राउन के निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$r_{tt} = \frac{2r}{1+r}$$

r_{tt} = पूरी परीक्षण की विश्वसनीयता (Reliability of whole test)

r = आधे परीक्षण की विश्वसनीयता (Reliability of half test)

गुण / लाभ

अर्द्ध–विच्छेद विधि में कुछ ऐसे गुण हैं जिनके कारण यह विधि परीक्षण विश्वसनीयता को निर्धारित करने में पुनः परीक्षण विधि तथा समानान्तर फार्म विधि से श्रेष्ठकर है।

1. यह विधि स्थानान्तरण प्रभाव से मुक्त है। दोनों अर्द्ध भागों का प्रयोग व्यक्तियों के समूह पर एक ही समय पर बारी–बारी से किया जाता है। परीक्षण का प्रयोग एक ही बार किया जाता है अतः स्थानान्तरण प्रभाव होने का प्रश्न ही नहीं उठता है।
2. अर्द्ध–विच्छेद विधि में परीक्षण एक ही बार किया जाता है इसलिए पूर्व–अनुभव के प्रभाव की कोई संभावना नहीं होती है।
3. इस विधि के अन्तर्गत परीक्षण के दोनों अर्द्ध–भागों का व्यवहार एक ही साथ किया जाता है अतः परीक्षार्थी की परिपक्वता में किसी प्रकार के परिवर्तन का वास्तविक प्राप्तांकों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।
4. गैरेट ने कहा है कि व्यक्तित्व–आविष्कारिका, चिंता–मापनी आदि की विश्वसनीयता को निर्धारित करने के लिये यह विधि अधिक उपयुक्त एवं सफल है।
5. किसी परीक्षण को दो बार संचालित करने से जो परिवर्तनशीलता उत्पन्न होती है वह इसमें स्वतः ही नियन्त्रित हो जाती है।

टिप्पणी

3. समान प्रारूप विधि

विश्वसनीयता निर्धारित हेतु इस विधि के अन्तर्गत एक परीक्षण के दो समानान्तर रूप (Parallel form) तैयार किये जाते हैं। परीक्षण संबंधी ऐसे प्रारूपों का स्वरूप एक–दूसरे के पूर्णतः समरूप न होकर सामान्यतः तथा पारस्परिक रूप से समतुल्य ही होता है। दोनों प्रारूपों को घटक (Content) प्रतिक्रिया–प्रक्रियाओं (Response Processes) कठिनता के स्तर, (difficulty level) पदों की सजातीयता तथा सांख्यिकीय विशेषताओं के दृष्टिकोण से समान बनाने का हर संभव प्रयास किया जाता है। पहले एक रूप को समूह पर संचालित किया जाता है। कुछ समय पश्चात दूसरे रूप को उसी समूह पर संचालित किया जाता है और फिर उनके प्राप्तांकों को प्राप्त करके उनके बीच सह–संबंध गुणांक से उस परीक्षण की विश्वसनीयता का बोध होता है।

इस आधार पर बुद्धि परीक्षण के दो प्रारूपों की रचना की गई। ये दोनों प्रारूप एक–दूसरे के इतने अधिक समतुल्य हैं कि बुद्धि परीक्षण के लिए एक प्रारूप के स्थान पर दूसरे प्रारूप को सरलता तथा विश्वसनीयता के साथ प्रशासित किया जा सकता है।

गुण / लाभ

1. इस विधि के उपयोग से परीक्षण–पुनः परीक्षण विधि द्वारा विश्वसनीयता ज्ञात करने के दोषों से पर्याप्त मात्रा में निवारण हो जाता है।
2. इस विधि में परीक्षण का संचालन दो बार नहीं किया जाता है इसलिए वास्तविक प्राप्तांक स्थानान्तर प्रभाव से उतना प्रभावित नहीं होते जितना परीक्षण पुनः परीक्षण विधि में होता है।
3. यह विधि प्रतिक्रिया प्रभाव से आंशिक रूप से मुक्त है।
4. इस विधि में दोनों रूपों के संचालन के बीच लम्बे समय अन्तराल की आवश्यकता नहीं होती है।

दोष / सीमाएं

1. इस विधि द्वारा विश्वसनीयता को निर्धारित करने में समय और श्रम अधिक लगता है।
2. यह विधि इस विश्वास पर आधारित है कि परीक्षण के दोनों प्रारूप बिल्कुल सामान्तर माप के होते हैं लेकिन व्यवहार में यह संभव नहीं है।
3. इस विधि में स्थानान्तर प्रभाव तथा प्रतिक्रिया–प्रभाव को पूरी तरह दूर करना संभव नहीं होता है।

   अतः वास्तविक प्राप्तांक इस प्रभावों से बदल सकते हैं।

4. तर्कसंगत समतुल्य विधि

इस विधि को कूडर रिचर्डसन विधि भी कहा जाता है। इस विधि में विश्वसनीयता निर्धारित करने के कई चरण होते हैं–

1. सर्वप्रथम पूरे समूह के परीक्षण के $SD\,(\delta)$ की गणना की जाती है।
2. दूसरे चरण में उत्तीर्ण होने वाले प्रत्येक पद का अनुपात (P) तथा अनुत्तीर्ण होने

टिप्पणी

वाले प्रत्येक पद का अनुपात (q) ज्ञात किया जाता है।

3. तीसरे चरण में प्रत्येक P तथा q की गणना की जाती है और सभी पदों को जोड़कर $\sum Pq$ ज्ञात हो जाता है। फिर कूडर रिचर्डसन द्वारा दिए गये निम्न सूत्र द्वारा विश्वसनीयता को निर्धारित किया जाता है–

$$r_{tt} = \frac{n}{(n-1)}\left[\frac{\delta_t^2 - \sum Pq}{\delta_t^2}\right]$$

r_{tt} = एक पूर्ण परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक

n = एक परीक्षण के पदों की संख्या

P = निरीक्षण के एक पद के शुद्ध उत्तर देने वाले व्यक्तियों के समूह का अनुपात

q = परीक्षण के एक पद के अशुद्ध उत्तर देने वाले व्यक्तियों के समूह का अनुपात

$(q = 1 – P)$

गुण / लाभ

1. इस विधि के उपयोग से एक परीक्षण के विभिन्न पदों में व्याप्त सजातीयता का प्रभावी रूप से अध्ययन करना अधिक सरल तथा साध्य होता है।
2. यह विधि एक परीक्षण के पदों के आन्तरिक संगति का अधिक कुशलता से सफल निर्धारण करती है।
3. इस विधि द्वारा परीक्षण की विश्वसनीयता के साथ–साथ परीक्षण के प्रत्येक पद की कठिनता के स्तर का भी अध्ययन संभव होता है।

दोष / सीमाएं

1. इस विधि का उपयोग उस उपलब्धि–परीक्षण के लिए उपयुक्त नहीं होता जिसका उद्देश्य उपलब्धि के विभिन्न रूपों का अध्ययन करना होता है।
2. इस विधि द्वारा परीक्षण की विश्वसनीयता के स्थान पर उसकी आन्तरिक संगति का ही पता चलता है।
3. इस विधि का उपयोग उस परीक्षण की विश्वसनीयता के निर्धारण के लिए प्रायः निरर्थक होता है, जिसका उद्देश्य परीक्षण के पदों में सजातीयता का अध्ययन करना नहीं होता है।

विश्वसनीयता के आकलन के रूपों का वर्गीकरण

विश्वसनीयता के आकलन के दो रूप होते हैं–

(अ) सापेक्ष विश्वसनीयता (Relative Reliability)

(ब) विशिष्ट विश्वसनीयता (Absolut Reliability)

(अ) सापेक्ष विश्वसनीयता

सापेक्ष विश्वसनीयता का आधार सह–संबंध गुणांक के सन्दर्भ में किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त विश्वसनीयता को विश्वसनीयता गुणांक कहते हैं। वस्तुतः विश्वसनीयता गुणांक एक शुद्ध संख्या होती है तथा यह संख्या सदैव 1 (one) की संख्या का खण्ड (fraction) होती है। विश्वसनीयता गुणांक से एक प्रकार के अंकिक सूचकांक का बोध होता है। यदि एक परीक्षण के दो मापों में सह–संबंध गुणांक की मात्रा अधिक रहती है तब उसमें संबंधित परीक्षण की विश्वसनीयता भी उतनी अधिक होती है। तथा सह–संबंध गुणांक जितना कम होगा विश्वसनीयता गुणांक भी उतना ही कम होता है।

(ब) विशिष्ट विश्वसनीयता

विशिष्ट विश्वसनीयता का आकलन मापन की मानक त्रुटि के द्वारा लगाया जाता है। इसका आकलन एक परीक्षण के आधार पर उपलब्ध प्राप्तांकों (obtained scores) के समुच्चय (set) में से वास्तविक प्राप्तांकों (true score) के विचलन के द्वारा किया जाता है। मापन की मानक त्रुटि एक परीक्षण के प्राप्तांकों तथा वास्तविक प्राप्तांकों के मध्य अन्तर को स्पष्ट करती है।

2.5.4 विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक

परीक्षण की विश्वसनीयता पर कई कारकों या निर्धारकों का प्रभाव पड़ता है जिन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले कारक

आन्तरिक कारक	बाह्य कारक
1. परीक्षण की लम्बाई	1. विश्वसनीयता के आकलन की विधि
2. एकांशों की समरूपता	2. प्रतिदर्श की विभिन्नता
3. एकांशो की विभेदी शक्ति	3. परीक्षण परिस्थिति
4. एकांशों का कठिनता स्तर	4. अटकलबाजी का प्रभाव
5. अंकन विधि का स्वरूप	5. परीक्षार्थी का चंचल स्वभाव
6. योग्यता प्रसार	

(अ) आन्तरिक कारक

परीक्षण की विश्वसनीयता पर कुछ ऐसे कारकों का प्रभाव पड़ता है जो उसी परीक्षण से संबंधित होते हैं ऐसे कारकों को आन्तरिक कारक कहा जाता है। जो निम्न हैं–

1. **परीक्षण की लम्बाई** : परीक्षण की लम्बाई का विश्वसनीयता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। परीक्षण की लम्बाई से तात्पर्य परीक्षण के एकांशों (पदों) की संख्या से है। परीक्षण की लम्बाई जितनी अधिक होती है उसका विश्वसनीयता गुणांक भी उतना अधिक होता है। इसके विपरीत जब एकांशों की संख्या कम होती है तो परीक्षण की विश्वसनीयता भी कम होती है।

2. **एकांशों की समरूपता** : जब परीक्षण के एकांशों में समरूपता का गुण होता है तो उसकी विश्वसनीयता अधिक होती है। इसके विपरीत यदि एकांशों में विजातीयता होती है अर्थात् एकांश असमरूप (Heterogeneous) होते हैं तो परीक्षण की विश्वसनीयता कम होती है। समरूप एकांशों से तात्पर्य ऐसे एकांशों से होता है जो एक ही क्षमता या शीलगुण को मापते हैं। परीक्षण की विश्वसनीयता पर एकांशों के स्वरूप का निश्चित प्रभाव पड़ता है।

3. **एकांशों की विभेदी शक्ति** : परीक्षण की विभेदन शक्ति का विश्वसनीयता गुणांक से सीधा संबंध होता है जब परीक्षण में विभेदी शक्ति वाले एकांश अधिक होते हैं तो परीक्षण अधिक विश्वसनीय होता है इसके विपरीत विभेदी शक्ति की कम संख्या वाले परीक्षण में विश्वसनीयता भी कम होती है। परीक्षण की विश्वसनीयता का एक मुख्य निर्धारक एकांशों की विभेदन शक्ति होती है।

4. **एकांशों का कठिनता स्तर** : परीक्षण की विश्वसनीयता अथवा परीक्षण प्राप्तांकों की विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले एकांशों की कठिनता का स्तर भी काफी महत्वपूर्ण है जब परीक्षण के एकांश बहुत कठिन अथवा बहुत अधिक सरल होते हैं तो परीक्षण की विश्वसनीयता काफी घट जाती है। ऐसे एकांश परीक्षार्थियों की वैयक्तिक भिन्नताओं को मापने में सक्षम नहीं होते हैं फलतः ऐसे परीक्षणों में निम्न विश्वसनीयता पायी जाती है। इसके विपरीत जब परीक्षण के एकांशों का कठिनतास्तर मध्यम होता है तो परीक्षण की विश्वसनीयता बढ़ जाती है क्योंकि ऐसे एकांशों के प्रति परीक्षार्थियों के उत्तरों में भिन्नता होती है। फलस्वरूप परीक्षण में उच्च विश्वसनीयता पायी जाती है। एकांशों में कठिनता के स्तर को अंग्रेजी के अक्षर P से प्रदर्शित किया जाता है।

5. **अंकन विधि का स्वरूप** : जब अंकन–विधि में वस्तुनिष्ठता अधिक होती है तो परीक्षण विश्वसनीयता भी अधिक होती है और अंकन विधि में आत्मनिष्ठता की मात्रा अधिक होने पर परीक्षण की विश्वसनीयता कम हो जाती है।

6. **योग्यता प्रसार** : जिस समूह के छात्रों की योग्यता का प्रसार जितना अधिक होता है, उस समूह से प्राप्त प्राप्तांकों का विश्वसनीयता गुणांक भी उतना ही अधिक होता है। यदि समूह के छात्रों की योग्यता लगभग समान हो तो उस समूह से प्राप्त प्राप्तांकों में विश्वसनीयता गुणांक भी उतना ही अधिक होता है। यदि समूह के छात्रों की योग्यता लगभग समान हो तो उस समूह से प्राप्त प्राप्तांकों में विश्वसनीयता गुणांक कम होगा।

(ब) बाह्य कारक

बाह्य कारकों से तात्पर्य उन कारकों से होता है जिनका परीक्षण से संबंध नहीं होता है किन्तु उनका प्रभाव निश्चित रूप से विश्वसनीयता पर पड़ता है। विश्वसनीयता को प्रभावित करने वाले बाह्य कारक अग्रलिखित हैं–

1. **विश्वसनीयता के आकलन की विधि** : परीक्षण की विश्वसनीयता पर उस विधि का भी प्रभाव पड़ता है जिसके द्वारा परीक्षण की विश्वसनीयता निर्धारित की गयी है। परीक्षण के स्वरूप के अनुकूल विधि द्वारा विश्वसनीयता का सही आकलन संभव होता है। विधि अनुकूल न होने पर विश्वसनीयता का आकलन सही नहीं हो पाता है।

टिप्पणी

2. **प्रतिदर्श की विभिन्नता** : परीक्षण की विश्वसनीयता पर समूह के स्वरूप का भी प्रभाव पड़ता है। जब प्रतिदर्श या समूह के सदस्यों में एकरूपता का गुण अधिक होता है तो परीक्षण की विश्वसनीयता घट जाती है क्योंकि एक रूपता के कारण परीक्षण के प्राप्तांकों में विभिन्नता घट जाती है जिससे प्रसरण कम हो जाता है फलतः परीक्षण की विश्वसनीयता भी कम हो जाती है।

3. **परीक्षण–परिस्थिति** : परीक्षण की विश्वसनीयता पर भौतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है जिसमें किसी परीक्षण का व्यवहार किया जाता है। जब परीक्षण का वातावरण हर तरह से नियंत्रित रहता है तो परीक्षण प्राप्तांकों (Test Scores) में त्रुटि प्रसरण (error variance) कम होता है जिससे परीक्षण की विश्वसनीयता बढ़ जाती है इसके विपरीत वातावरण में विश्वसनीयता घट जाती है।

4. **अटकलबाजी का प्रभाव** : एकांशों का उत्तर देते समय परीक्षार्थी द्वारा की गयी अटकलबाजी का भी परीक्षण की विश्वसनीयता पर प्रभाव पड़ता है। अटकलबाजी की संभावना बढ़ने से परीक्षण की विश्वसनीयता घट जाती है। अटकलबाजी के कारण एक तो परीक्षार्थी के कुल प्राप्तांक अनावश्यक रूप से बढ़ जाते हैं दूसरे वास्तविक प्रसरण से त्रुटि प्रसरण अधिक हो जाता है, जिससे परीक्षण प्राप्तांक की विश्वसनीयता घट जाती है।

5. **परीक्षार्थी का चंचल स्वभाव** : परीक्षार्थी के चंचल स्वभाव से भी परीक्षण की विश्वसनीयता प्रभावित होती है। जब परीक्षार्थी स्थिर स्वभाव के होते हैं तो विश्वसनीयता भी स्थिर होती है, इसके विपरीत जब परीक्षार्थी का स्वभाव चंचल होता है तो परीक्षण की विश्वसनीयता भी बढ़ जाती है।

परीक्षण की विश्वसनीयता को बढ़ाने के उपाय

परीक्षण की विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए निम्न उपायों अथवा विधियों का प्रयोग किया जा सकता है–

1. **परीक्षण की लम्बाई में वृद्धि** : परीक्षण की विश्वसनीयता तथा परीक्षण की लम्बाई का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परीक्षण में पदों की संख्या जितनी अधिक होगी परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक भी उतना अधिक होगा। इसके दो कारण हैं–(1) परीक्षण की लम्बाई बढ़ने पर प्राप्तांकों में विभिन्नता बढ़ जाती है, जिससे परीक्षण की विश्वसनीयता भी सहज ही बढ़ जाती है। (2) छोटे आकार के परीक्षण की अपेक्षा बड़े आकार के परीक्षण से अधिक संगत सूचनाएं प्राप्त होंगी; जिससे परीक्षण की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परीक्षण की लम्बाई तथा उसकी विश्वसनीयता में घनिष्ठ धनात्मक सह–संबंध होता है। इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए स्पीयर मैन ब्राउन भविष्य–कथन सूत्र का उपयोग किया जाता है–

$$r_{nn} = \frac{nr_{tt}}{1+(n-1)r_{tt}}$$

r_{nn} वह सह संबंध गुणांक जो एक परीक्षण को एक विशेष संख्या (n) से गुणा करने पर प्राप्त होता है।

(n) वह संख्या जिससे उस परीक्षण के पदों को गुणा किया जाता है।

टिप्पणी

r_{tt} वह सह–संबंध गुणांक जो एक परीक्षण के पहले दो प्रशासनों के प्राप्तांकों से प्राप्त हुआ।

उदाहरण : यदि परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक $r_{tt} = 0.70$ है और उसके पदों में चार गुणा वृद्धि की जाती है ($n = 4$) तो विश्वसनीयता गुणांक इस प्रकार होगा–

$$r_{nn} = \frac{nr_{tt}}{1+(n-1)r_{tt}}$$

$$= \frac{4(0.7)}{1+(4-1)0.70} = \frac{2.8}{1+(3)(0.7)} = \frac{2.8}{1+2.1}$$

$$= \frac{2.8}{3.1} = 0.90$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि परीक्षण पदों में चार गुणा वृद्धि करने से विश्वसनीयता गुणांक 0.70 से बढ़कर 0.90 हो जाता है।

2. **समरूप एकांशों की संख्या में वृद्धि** : परीक्षण में ऐसे एकांशों की संख्या को बढ़ा दिया जाए जिसके बीच अन्तर्सह–संबंध अधिक से अधिक हो और वे एक ही क्षमता योग्यता अथवा शीलगुण का मापन करते हो।
3. **एकांशों की विभेदन शक्ति में वृद्धि** : परीक्षण प्राप्तांक की विश्वसनीयता को उन्नत बनाने का एक उपाय है कि परीक्षण को एकांशों की विभेदन शक्ति को बढ़ा दिया जाए।
4. **एकांश का मध्यम कठिनता स्तर** : परीक्षण प्राप्तांक की विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि परीक्षण में ऐसे एकांशों को रखा जाए जिनकी कठिनाई मध्यम हो।
5. **अंकन की वस्तुनिष्ठता** : परीक्षण की विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए अंकन की वस्तुनिष्ठता लाने का प्रयत्न किया जाए क्योंकि वस्तुनिष्ठता के अधिक होने पर परीक्षण की विश्वसनीयता बढ़ जाती है।
6. **सैद्धान्तिक नियमों का अनुपालन** : परीक्षण में विश्वसनीयता गुणांक में वृद्धि करने के लिए दो सैद्धान्तिक नियमों का पालन करना चाहिए–(1) व्यक्तिगत भेदों के प्रसरण का अधिकतम कारण–(2) त्रुटि प्रसरण का न्यूनतमीकरण।

इन सैद्धान्तिक नियमों को ध्यान में रखते हुए विश्वसनीयता गुणांक में वृद्धि के लिए निम्नलिखित उपाय बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं–

1. संबंधित परीक्षण पूर्णरूपेण मानकीकृत (Fully standarized) होना चाहिए अर्थात परीक्षण के पदों के चयन विश्लेषण की पूर्ण रूप से जांच होनी चाहिए।
2. परीक्षण के मानकीकरण से संबंधित समष्टि (Universe) का स्वरूप व्यापक होना चाहिए। जब परीक्षण व्यापक रूप से विशाल समष्टि पर प्रशासित किया जाता है तो उपलब्ध प्राप्तांकों में विभिन्न प्रयोज्यों की विस्तृत विभिन्नता के कारण उसके प्राप्त प्रसरण की मात्रा बढ़ जाती है और त्रुटि प्रसरण की मात्रा घटती है जिससे विश्वसनीयता गुणांक की मात्रा में वृद्धि होती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उपर्युक्त उपायों की सहायता से किसी परीक्षण की विश्वसनीयता को अपेक्षित स्तर तक बढ़ाया जा सकता है।

2.5.5 विश्वसनीयता और वैधता के मध्य संबंध

परीक्षण की वैधता तथा विश्वसनीयता के सम्बन्ध में कई प्रश्न सामने आते हैं, क्या दोनों एक–दूसरे पर आधारित हैं? क्यों दोनों के बीच कोई सीधा सम्बन्ध है? क्या दोनों एक–दूसरे से स्वतन्त्र हैं? परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता से सम्बन्धित उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर निम्न बातों में मिलते हैं–

1. विश्वसनीयता तथा वैधता वैज्ञानिक परीक्षण के दो प्रमुख मानदण्ड हैं। एक उत्तम परीक्षण में इन दोनों गुणों का होना अनिवार्य है। किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण में ये दोनों गुण जिस सीमा तक उपलब्ध होते हैं उसी सीमा तक परीक्षण वैज्ञानिक व उत्तम होता है।
2. जब किसी एकांश के परिणामों में जो संगति व स्थिरता होती है उसे एकांश विश्वसनीयता कहते हैं। जब कोई एकांश उस योग्यता को मापने में सक्षम होता है जिसको मापने के लिये उसका निर्माण किया गया था तो उसकी इस क्षमता को एकांश वैधता कहते हैं। इसी प्रकार परीक्षण के परिणामों में जो स्थिरता व संगति होती है उसे परीक्षण विश्वसनीयता कहते हैं। कोई परीक्षण उस योग्यता को मापने में सक्षम होता है, जिसके लिये उसका निर्माण किया गया है तो परीक्षण की इस क्षमता को परीक्षण वैधता कहा जाता है।
3. परीक्षण में उच्च विश्वसनीयता के लिए एकांशों के मध्य उच्च अन्तर्सह–सम्बन्ध होना आवश्यक है लेकिन यह तब ही सम्भव होगा जबकि परीक्षण के एकांश समान कठिनता स्तर के हों इसके विपरीत परीक्षण में उच्च वैधता के लिए एकांशों के बीच निम्न अन्तर्सह–सम्बन्ध होना चाहिए, यह तभी सम्भव है जब परीक्षण के एकांश विभिन्न कठिनता स्तर के हों।
4. परीक्षण में समरूप एकांश (Homogenous item) के अधिक संख्या में होने पर परीक्षण की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। समरूप एकांशों की स्थिति में परीक्षण की वैधता घट जाती है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जिस समरूप परीक्षण में विश्वसनीयता का अभाव होता है उसमें वैधता का भी अभाव होता है।
5. जब परीक्षण में विषमजातीय एकांश अधिक होते हैं तो परीक्षण की वैधता बढ़ जाती है। ऐसे एकांश किसी एक योग्यता का मापन नहीं करते हैं बल्कि प्रत्येक एकांश किसी स्वतंत्र योग्यता को मापता है। विषम परीक्षण में अधिक वैधता है वह वैधता विश्वसनीयता पर आधारित नहीं होती है। ऐसे परीक्षण में आन्तरिक संगति विश्वसनीयता नगण्य होने पर भी परीक्षण में उच्च वैधता पायी जाती है।
6. जब परीक्षण के एकांशों का कठिनता–स्तर समान होता है तो अन्तर्सह–सम्बन्ध के बढ़ जाने से परीक्षण–विश्वसनीयता बढ़ जाती है किन्तु परीक्षण की वैधता घट जाती है। इसके विपरीत एकांशों के कठिनता स्तर में विभिन्नता होने पर बैधता बढ़ जाती है किन्तु विश्वसनीयता घट जाती है। यदि एकांशों का कठिनता स्तर अधिकतम (P = 1.0) अथवा न्यूनतम (P = O) होता है तो इसका परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
7. परीक्षण में आत्म सह–सम्बन्ध जितना अधिक होता है परीक्षण को उतना ही अधिक विश्वसनीय माना जाता है लेकिन परीक्षण की वैधता के लिये किसी बाह्य कसौटी के साथ सह–सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। जैसे नवनिर्मित बुद्धि

परीक्षण और मानकीकृत बुद्धि परीक्षण में सह–सम्बन्ध गुणांक जितना होता है उसे परीक्षण की वैधता माना जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। उपरोक्त विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि विश्वसनीयता एवं वैधता के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। वैधता तथा विश्वसनीयता को समान रूप से उच्च बनाना सम्भव नहीं है फिर भी विश्वसनीयता एवं वैधता बहुत अंशों में उच्च हो सकती है। इस प्रकार किसी परीक्षण की विश्वसनीयता एवं वैधता गुणांक का आकार उसकी सीमाओं को निर्धारित करता है।

2.5.6 वस्तुनिष्ठता और उपयोगिता

किसी भी परीक्षण का वस्तुनिष्ठ होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि इसका प्रभाव विश्वसनीयता एवं वैधता दोनों पर ही पड़ता है। क्योंकि जो परीक्षण वस्तुनिष्ठ नहीं होता तो वह वैध व विश्वसनीय भी नहीं हो सकता। कोई परीक्षा वस्तुनिष्ठ तब होती है, जब उसके प्रश्नों की व्याख्या या जिनके अर्थ अलग–अलग तरह से नहीं किये जा सकते हो, जिनके उत्तर बिल्कुल सही या बिल्कुल गलत हो।

वस्तुनिष्ठता के दो पक्ष होते हैं–

(i) प्रश्नों की वस्तुनिष्ठता (Objective in Questions)

(i) अंकन की वस्तुनिष्ठता (Objective in Scoring)

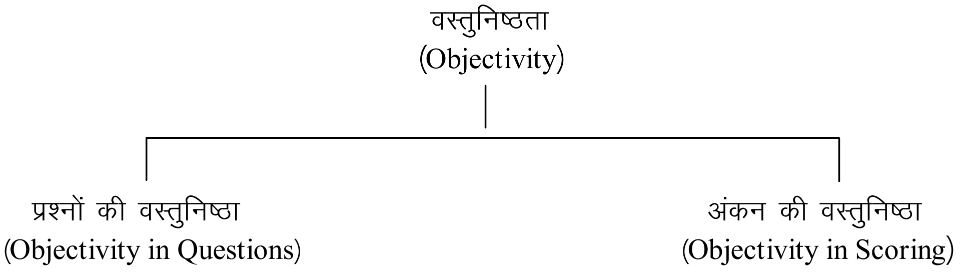

(i) **प्रश्नों की वस्तुनिष्ठता (Objectivity in Questions)** : इसका अर्थ प्रश्नों का यथासम्भव सरल होना चाहिए से होता है। विद्यार्थी प्रश्नों के उत्तरों की व्याख्या सही ढ़ंग से करने में सक्षम होने चाहिए। शायद, हमेशा, कभी–कभी आदि जैसे शब्दों से सम्भवतः बचना चाहिए।

(ii) **अंकन की वस्तुनिष्ठता (Objectivity in Scoring)** : इसका तात्पर्य है कि परीक्षक का व्यक्तिगत निर्णय अंकों को प्रभावित नहीं करना चाहिये। परीक्षक के भावों व मूड (Mood) में अंतर आने से या उसकी अभिरुचियों का अंकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये।

रूजलैंड के अनुसार, ''पूर्णरूपेण विषयगत परितापक यन्त्र सभी समर्थ व्यक्तियों द्वारा एक से ही परिणाम एवं अंक बताये।'' ("A perfectly objective measuring instrument must yield the same measurements or scores in the hands of all components persons.")

उपयोगिता

किसी परीक्षा की उपयोगिता का अर्थ उसकी व्यावहारिकता से है। इसका अर्थ उस हद से है जहां तक परीक्षा का उपयोग शिक्षकों/समीक्षकों द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है। किसी परीक्षा की उपयोगिता कुछ निश्चित पहलुओं पर निर्भर करती है जिन्हें निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है–

(क) **बोधगम्यता** : परीक्षा के प्रश्नों में संदिग्धता नहीं होनी चाहिए और परीक्षा के प्रश्नों से जुड़े तथा अन्य किसी भी प्रकार के निर्देश स्पष्ट होने चाहिए। स्कोरिंग के निर्देश और स्कोर की व्याख्या प्रयोगकर्ता की समझ के अनुसार होनी चाहिए।

(ख) **आयोजन में सुगमता** : यदि आयोजन के निर्देश जटिल होंगे या उनमें अधिक समय और श्रम लगेगा, तो परीक्षार्थी परीक्षा में पिछड़ जाएगा। आयोजन संबंधी निर्देश स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। परीक्षा पत्र समय की उपलब्धता के अनुसार बनाया जाना चाहिए। लंबी परीक्षा जिसमें अधिक समय लगता हो उससे बचना चाहिए।

(ग) **उपलब्धता** : यदि आवश्यकता पड़ने पर परीक्षा उपलब्ध न हो, तो उसकी उपयोगिता नहीं रह जाती है। अधिकांश मानकीकृत टेस्ट उच्च वैधता और विश्वसनीयता रखते हैं, लेकिन उनकी उपलब्धता कम होती है। इसलिए यह अपेक्षित है कि विश्वसनीय होने के लिए, परीक्षा आसानी से उपलब्ध हो।

(घ) **परीक्षा का खर्च** : परीक्षा का खर्च कम होना चाहिए, ताकि स्कूल और शिक्षक उनका आयोजन और उपयोग कर सकें। यदि वह महंगी होगी, तो सारे स्कूल उनका आयोजन नहीं कर सकेंगे। इसलिए अच्छी परीक्षा उचित कीमत की होनी चाहिए।

(ङ) **व्याख्या में सरलता** : कोई भी परीक्षा अच्छी मानी जाती है यदि उसमें प्राप्त अंक की व्याख्या आसानी से की जा सके। इसके लिए, परीक्षा मैनुअल में उम्र मानदंडों, ग्रेड मानदंडों, प्रतिशत मानक और मानक स्कोर मानदंडों का जिक्र होना चाहिए जैसे मानक स्कोर, T–स्कोर, Z–स्कोर आदि। इसलिए परीक्षा की 'व्याख्यात्मकता' का अर्थ इससे है कि कितनी आसानी से परीक्षा के अंकों को निकाला और समझा जा सकता है।

(च) **स्कोरिंग में आसानी** : उपयोगी होने के लिए किसी परीक्षा में स्कोरिंग की सरलता अवश्य होनी चाहिए। स्कोरिंग प्रक्रिया अवश्य सरल होनी चाहिए। स्कोरिंग और स्कोरिंग कुंजी से जुड़े सारे निर्देश उपलब्ध होने चाहिए, जिससे कि स्कोरिंग निष्पक्ष हो सके। परीक्षक के पक्षपात, परीक्षार्थी की लिखावट का परीक्षा की स्कोरिंग पर प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।

2.5.7 पद मूल्यांकन के लिए पैरामीटर : पद विश्लेषण, कठिनाई स्तर और विभेदन शक्ति

पद विश्लेषण : पद/प्रश्नों की जांच करना सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। किसी परीक्षण में जो प्रश्न/एकांश पूछे जाते हैं उन्हें पद कहते हैं। पद विश्लेषण से तात्पर्य किसी परीक्षण के प्रत्येक पद पर प्राप्त प्राप्तांकों का आंकिक विश्लेषण करना, उसकी वैद्यता एवं विश्वसनीयता का विश्लेषण एवं उसके अनुरूप परीक्षण के लिए उस पद की उपयुक्तता

टिप्पणी

को निश्चित करना होता है। पद विश्लेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी परीक्षण के लिए कुछ पदों का चयन किया जाता है और कुछ पदों को निरस्त किया जाता है। तथा कुछ पदों में सुधार किया जाता है। अर्थात् इसके अन्तर्गत यह सुनिश्चित किया जाता है कि परीक्षण में किस-किस पद को स्थान देना है और किस-किस पद को हटाना है। पद विश्लेषण में प्रत्येक पद की सांख्यिकीय गणना की जाती है। इसके लिए निम्न दो आधर होते हैं- पद की कठिनाई स्तर और विभेदन शक्ति।

(क) पदों का कठिनाई स्तर : किस प्रश्न का कठिनाई स्तर इस बात को स्पष्ट करता है कि उस प्रश्न का सही उत्तर देने में कितने विद्यार्थी सफल होते हैं। पद का कठिनाई स्तर प्रश्न/पद के सरल होने या कठिन होने की ओर संकेत करता है। एक परीक्षण में जितने पद होंगे उतने ही स्वतन्त्र रूप से कठिनाई स्तर के होंगे। किसी परीक्षण में पदों के चयन के लिए प्रत्येक पद के सही हल का प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है।

किसी समूह में समस्त विद्यार्थियों द्वारा हल किए जाने वाले पद अत्यन्त सरल होते हैं और इसके विपरीत किसी भी विद्यार्थी द्वारा हल न किए जा सकने वाले पद अत्यन्त कठिन होते हैं। एक अच्छे परीक्षण में दोनों ही प्रकार के पदों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि किसी परीक्षण के किसी पद को विद्यार्थियों के समूह के 50% विद्यार्थियों द्वारा सही हल कर लिया जाता है तो उसे उपयुक्त कठिनाई स्तर का पद माना जायेगा। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि परीक्षण में केवल उन्हीं पदों को शामिल किया जायेगा जिनको 50% विद्यार्थियों ने हल किया है। परीक्षणों में ऐसे पदों को भी शामिल किया जाता है, जिन्हें केवल उच्च उपलब्धि स्तर वाले विद्यार्थी ने हल किया है। सामान्यत: 30% से 70% के मध्य आने वाले पदों का चयन उपयुक्त माना जाता है।

पदों का कठिनाई स्तर ज्ञात करना : सभी परीक्षण विशेषज्ञ इस बात पर एकमत हैं कि किसी पद के कठिनाई स्तर को सही उत्तर देने वाले विद्यार्थियों की संख्या और गलत उत्तर देने वाले विद्यार्थियों की संख्या की तुलना करके ज्ञात किया जाता है। अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग सूत्र का प्रयोग करके किसी भी पद का कठिनाई स्तर ज्ञात किया जाता है।

प्रथम विधि/अनुपात विधि : यह कठिनाई स्तर ज्ञात करने की सबसे सरलतम विधि है। अनुपात विधि में किसी पद का शुद्ध हल ज्ञात करने वाले विद्यार्थियों की संख्या का कुल विद्यार्थियों की संख्या से अनुपात ज्ञात किया जाता है। इसे ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$DL = \frac{R}{N}$$

DL= कठिनाई स्तर

R = शुद्ध हल करने वाले विद्यार्थियों की संख्या

N= कुल विद्यार्थियों की संख्या

माना किसी परीक्षण में एक पद का 120 विद्यार्थियों के समूह में से 105 विद्यार्थियों ने सही उत्तर दिया तो उस पद का कठिनाई स्तर निम्न प्रकार ज्ञात होगा-

$$DL = \frac{105}{120} = .875\, or\ .88$$

टिप्पणी

सुविधा के लिए इसे 100 से गुणा करके प्रतिशत में बदल लेते हैं- $.88 \times 100 = 88\%$

द्वितीय विधि : बहुविकल्पीय पदों में कुछ परीक्षार्थी अनुमान के आधार पर शुद्ध हल लिख देते हैं तो ऐसी परिस्थिति में ऊपर दिए गये सूत्र में संशोधन करके कठिनाई स्तर ज्ञात किया जाता है। संशोधित सूत्र-

$$DL\left(R - \frac{W}{K-1}\right)\frac{1}{N}$$

DL= कठिनाई स्तर

R = शुद्ध हल करने वाले विद्यार्थियों की संख्या

N= कुल विद्यार्थियों की संख्या

W = किसी पद का अशुद्ध उत्तर देने वाले विद्यार्थियों की संख्या

K= पद में दिए गये विकल्पों की संख्या

माना विद्यार्थी हैं = 150 शुद्ध हल दिया = 110

अशुद्ध हल दिया = 40 विकल्पों की संख्या = 4

$$DL\left(110 - \frac{40}{4-1}\right)\frac{1}{150} = \frac{290}{450} = .64$$

$$.64 \times 100 = 64\%$$

तृतीय विधि : उपर्युक्त दोनों विधियों में यह माना जाता है कि प्रत्येक विद्यार्थी ने प्रत्येक पद हल किया है किन्तु कभी-कभी समय की कमी के कारण अथवा किसी अन्य कारण से विद्यार्थी कुछ पदों का हल नहीं कर पाते हैं या छोड़ देते हैं तो ऐसी स्थिति में उपर्युक्त दोनों विधियां सही नहीं होंगी। ऐसे पद जिनका हल विद्यार्थी नहीं दे पाते हैं उन्हें पद-चेष्टा-रहित पद कहा जाता है। माना किसी परीक्षण में 50 पद हैं। विद्यार्थी ने 1-22 तक सभी पद हल कर दिए लेकिन 23 से 27 तक पदों को छोड़कर 28से 45 तक पदों के हल कर दिए और पुनः 46से 50 पद छोड़ दिए। इस प्रकार 46से 50 पद चेष्टा रहित कहलाएंगे 23से 27 नहीं। इस प्रकार के पदों का कठिनाई स्तर ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$DL\left(R - \frac{W}{K-1}\right)\frac{1}{N - NR}$$

DL= कठिनाई स्तर

R = शुद्ध हल करने वाले विद्यार्थियों की संख्या

N= कुल विद्यार्थियों की संख्या

W = किसी पद का अशुद्ध उत्तर देने वाले विद्यार्थियों की संख्या

K= पद में दिए गये विकल्पों की संख्या

NR= चेष्टा रहित विद्यार्थी

माना विद्यार्थी हैं = 150 शुद्ध हल दिया = 100

अशुद्ध हल दिया = 40 विकल्पों की संख्या = 4

चेष्टा रहित विद्यार्थी =10

टिप्पणी

$$DL\left(100-\frac{40}{4-1}\right)\left(\frac{1}{150-10}\right)=\frac{260}{420}=.62$$

$$.62\times 100=62\%$$

चतुर्थ विधि : यदि परीक्षार्थियों की संख्या बहुत अधिक हो तो प्रत्येक पद का कठिनाई स्तर ज्ञात करने के लिए समय और धन की आवश्यकता अधिक होगी।ऐसी परिस्थिति में कैले ने कुल परीक्षार्थियों को उनके प्राप्तांकों के आधार पर उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग पर विभाजित करने का सुझाव दिया । माना समूह में उच्च स्तर वाले परीक्षार्थी 27% हैं, मध्यम वर्ग में 46% तथा निम्न वर्ग में 27% परीक्षार्थी हैं, तो ऐसी स्थिति में कैले द्वारा प्रतिपादित निम्न सूत्र का प्रयोग करके कठिनाई स्तर को ज्ञात किया जाएगा। इसके लिए यह अनिवार्य है कि परीक्षण कम से कम 370 परीक्षार्थियों पर प्रशासित किया जाना चाहिए। जिससे उच्च एवं निम्न वर्ग में से प्रत्येक में $\frac{27}{100}\times 370=99.9$) = 100-100 परीक्षार्थियों को शामिल किया जा सके। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाएगा–

$$DL=\frac{1}{2}\left\{\left(R_H-\frac{W_H}{K-1}\right)\frac{1}{N_H-NR_H}|+\left(R_L-\frac{W_L}{K-1}\right)\frac{1}{N_L-NR_L}\right\}$$

R_H = उच्च वर्ग में सही हल करने वाले परीक्षार्थियों की संख्या

W_H = उच्च वर्ग में गलत हल करने वाले परीक्षार्थियों की संख्या

N_H = उच्च वर्ग में कुल परीक्षार्थियों की संख्या

NR_H =उच्च वर्ग में चेष्टा रहित परीक्षार्थियों की संख्या

R_L = निम्न वर्ग में सही हल करने वाले परीक्षार्थियों की संख्या

W_L = निम्न वर्ग में गलत हल करने वाले परीक्षार्थियों की संख्या

N_L = निम्न वर्ग में कुल परीक्षार्थियों की संख्या

NR_L =निम्न वर्ग में चेष्टा रहित परीक्षार्थियों की संख्या

R_H = 60 R_L = 20

W_H = 30 W_L = 50

NR_H = 10 NR_L = 30

N_H = 100 N_L = 100

$$DL=\frac{1}{2}\left\{\left(60-\frac{30}{4-1}\right)\frac{1}{100-10}|+\left(20-\frac{50}{4-1}\right)\frac{1}{100-30}\right\}$$

टिप्पणी

$$DL = \frac{1}{2}\left\{\left(60 - \frac{30}{3}\right)\frac{1}{90}| + \left(20 - \frac{50}{3}\right)\frac{1}{70}\right\}$$

$$DL = \frac{1}{2}\left\{(60 - 10)\frac{1}{90}| + \left(\frac{10}{3}\right)\frac{1}{70}\right\}$$

$$DL = \frac{1}{2}\left\{\frac{50}{90}| + \left(\frac{10}{210}\right)\right\}$$

$$DL = \frac{1}{2}\left\{\frac{50}{90}| + \left(\frac{1}{21}\right)\right\}$$

$$DL = \frac{1}{2}\left\{\frac{38}{63}|\right\}$$

$$DL = \frac{19}{63}$$

$$DL = 30\%$$

यद्यपि परीक्षण निर्माण में पदों के चयन के लिए कठिनाई स्तर के विषय में कोई मान निर्धरित नहीं किया गया है फिर भी इसके लिए अधिकांश विशेषज्ञ 30% से 70% तक कठिनाई स्तर वाले पदों का चयन उपयुक्त मानते हैं। कुछ विशेषज्ञ इसे 40% से 60% तक सीमित रखने पर सहमति प्रदान करते हैं। यदि किसी पाठ्यवस्तु में विद्यार्थी की दक्षता को ही ज्ञात करना हो तो कम कठिनाई स्तर वाले पदों द्वारा परीक्षण का निर्माण करना चाहिए। यदि विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न श्रेणी प्रदान करनी है तो अपेक्षाकृत अधिक कठिनाई वाले पदों को परीक्षण में शामिल किया जाना चाहिए।

(ख) विभेदन क्षमता : किसी पद की विभेदन क्षमता बताती है कि प्रश्न किस सीमा तक कुल प्राप्तांकों के अनुरूप किसी गुण अथवा योग्यता का मापन करता है। अर्थात् किसी प्रश्न की विभेदन क्षमता बताती है कि किस सीमा तक उच्च उपलब्धि तथा निम्न उपलब्धि विद्यार्थियों में भेद कर सकती है। यदि प्रश्न में विभेदन क्षमता नहीं है तो उसका चयन नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के प्रश्न विश्वसनीयता एवं वैधता के अनुरूप नहीं माने जाते हैं। यदि किसी परीक्षण में पद को उच्च उपलब्धि विद्यार्थी तथा निम्न उपलब्धि विद्यार्थी समान प्रतिशत में हल करते हैं तो ऐसे पद की विभेदन क्षमता 0 होगी ऐसे प्रश्नों को परीक्षा में चयन योग्य नहीं माना जाता है। लेकिन किसी पद को हल करने का प्रतिशत निम्न उपलब्धि वर्ग की अपेक्षा उच्च उपलब्धि वर्ग विद्यार्थियों में पर्याप्त अधिक हो तो ऐसे पदों की विभेदन क्षमता उच्च धनात्मक होती है। पदों की विभेदन क्षमता ज्ञात करने के लिए निम्न विधियों एवं सूत्रों का प्रयोग किया जाता है-

प्रथम विधि : जब परीक्षार्थियों का समूह छोटा है तो किसी पद को सही हल करने वाले परीक्षार्थियों की प्रतिशत संख्या ज्ञात करके निम्न सूत्र की सहायता से विभेदन क्षमता ज्ञात की जाती है-

DP=PQ

टिप्पणी

DP = विभेदन क्षमता

P = सही हल करने वाले परीक्षार्थियों का प्रतिशत

Q = गलत हल करने वाले परीक्षार्थियों का प्रतिशत

विशेषज्ञों का मानना है कि जिस पद की विभेदन क्षमता लगभग 2500 होती है उसे परीक्षण के लिए उपयुक्त माना जाता है।

उदाहरण : 50 विद्यार्थिययों के एक समूह पर एक परीक्षण किया गया। पद संख्या 6 को 30 विद्यार्थियों ने सही हल किया जबकि 20 विद्यार्थियों ने उसका गलत हल दिया। इसकी विभेदन क्षमता इस प्रकार ज्ञात की जाएगी

सही हल करने वाले परीक्षार्थियों का प्रतिशत $= \frac{30}{50} \times 100 = 60\%$

गलत हल करने वाले परीक्षार्थियों का प्रतिशत $= \frac{20}{50} \times 100 = 40\%$

DP = $40 \times 60 = 2400$

द्वितीय विधि : जब परीक्षार्थियों का समूह बड़ा होता है तो परीक्षण कुल प्राप्तांकों के आधार पर उन्हें योग्यता के अनुसार क्रमबद्ध किया जाता है और उसके पश्चात इनको दो समूहों उच्च एवं निम्न में विभाजित कर लिया जाता है। इन दो समूहों के निर्माण के लिए विभिन्न तरीके बताये गये हैं जिन्हें निम्नांकित सारणी में दर्शाया गया है-

वर्ग	परीक्षार्थियों की संख्या			
	I	II	III	IV
उच्च वर्ग	25	27	33	50
निम्न वर्ग	25	27	33	50

गेरेट एवं कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 27% उच्च तथा 27% निम्न वर्ग में विभाजित परीक्षार्थियों द्वारा विभेदन क्षमता अधिक शुद्धता से प्राप्त की जा सकती है। किन्तु शोधकार्य में जहां परीक्षार्थियों की संख्या 100या इससे कम होती है वहां 50%-50% वाले वर्ग से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं इस विधि द्वारा विभेदन क्षमता को निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जाता है- $DP = \frac{R_H - R_L}{N}$

DP = विभेदन क्षमता

R_H = किसी पद का शुद्ध हल देने वाले उच्च वर्ग के परीक्षार्थियों की संख्या

R_L = किसी पद का शुद्ध हल देने वाले निम्न वर्ग के परीक्षार्थियों की संख्या

N =कुल परीक्षार्थियों की संख्या। माना एक परीक्षण को 500 परीक्षार्थियों के समूह पर प्रशासित किया गया (उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग 27% विधि द्वारा) 135-135 परीक्षार्थियों में से पद संख्या 25 को क्रमशः 115 तथा 81 परीक्षार्थियों ने सही हल किया इसकी विभेदन क्षमता इस प्रकार ज्ञात की जायेगी-

$$DP = \frac{R_H - R_L}{N} \quad ¾\, DP = \frac{115-81}{135} = \frac{34}{135} = 0.25$$

इस प्रकार विभेदन क्षमता 25%है

टिप्पणी

तृतीय विधि : जब कुछ पद चेष्टारहित रह जाते हैं अर्थात् हल से छूट जाते हैं तो विभेदन क्षमता ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$DP = \frac{R_H - R_L - 1}{R_T\left(1 - \frac{R_T}{N_T - NR_T}\right)}$$

$$R_T = R_H + R_L$$

$$R_T = N_H + N_L$$

$$NR_T = NR_H + NR_L$$

यहां R_H =उच्च वर्ग की परीक्षार्थियों की संख्या

N_L =निम्न वर्ग की परीक्षार्थियों की संख्या

NR_H =उच्च वर्ग के चेष्टा रहित परीक्षार्थियों की संख्या

NR_L =निम्न वर्ग के चेष्टा रहित परीक्षार्थियों की संख्या

उदाहरण - एक उपलब्धि परीक्षण पर प्राप्तांकों के विश्लेषण पर संख्या 25 पर निम्नवत् है पद की विभेदन क्षमता निम्न प्रकार होगी-

वर्ग	परीक्षार्थियों की संख्या	शुद्ध हल	चेष्टा रहित
उच्च	135	90	10
निम्न	135	60	15

यहां R_H ¾90 $R_L = 60$ $NR_H = 10$ $NR_L = 15$

$N_H = 135$ $N_L = 135$ $N_T = 135 + 135 = 270$

$R_{T = 90+60=150}$ $NR_{T=10+15=25}$

$$DP = \frac{90-60-1}{150\left(1 - \frac{150}{270-25}\right)}$$

$$DP = \frac{29}{150\left(1 - \frac{150}{245}\right)}$$

$$DP = \frac{29}{150\left(\frac{95}{245}\right)}$$

$$DP = \frac{29}{\left(\frac{14250}{245}\right)}$$

टिप्पणी

$$DP = \frac{29 \times 245}{14250} = .4985\, or\, 0.50$$

पद की विभेदन क्षमता 0.50 या 50% होगी। यह सूत्र तब ही प्रयोग किया जा सकता है जब R_H का मान R_L से अधिक होता है। यदि R_H का मान R_L से कम है तो संशोधित सूत्र का प्रयोग किया जाएगा।

R_H का मान R_L से अधिक होता है। यदि R_H का मान R_L

$$DP = \frac{R_H - R_L + 1}{R_T\left(1 - \frac{R_T}{N_T - NR_T}\right)}$$

उदाहरण के लिए परीक्षण पर प्राप्तांक के विश्लेषण पर संख्या 25 पर निम्नवत् है पद विभेदन क्षमता ज्ञात करनी है-

वर्ग	परीक्षार्थियों की संख्या	शुद्ध हल	चेष्टा रहित
उच्च	100	70	10
निम्न	100	75	15

पद विभेदन क्षमता निम्न प्रकार से ज्ञात की जाएगी

$R_H = 70 \quad R_L = 75 \quad NR_H = 10 \quad NR_L = 15$

$N_H = 100 \quad N_L = 100 \quad N_T\; 100 + 100 = 200$

$R_{T = 70+75=145} \qquad NR_{T=10+15=25}$

यहां $R_L > R_H$ तो सूत्र होगा

$$DP = \frac{70 - 75 + 1}{145\left(1 - \frac{145}{200 - 25}\right)}$$

$$DP = \frac{-4}{145\left(1 - \frac{145}{175}\right)}$$

$$DP = \frac{-4}{145\left(\frac{30}{175}\right)}$$

$$DP = \frac{-4}{\left(\frac{4350}{175}\right)}$$

$$DP = \frac{29 \times 175}{4350} = -.1609 \text{ or } -16\%$$

पद की विभेदन क्षमता 16% होगी।

टिप्पणी

शिक्षक निर्मित परीक्षणों का कठिनाई स्तर एवं विभेदन क्षमता ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है-

$$DL = \frac{R_H + R_L}{2N}$$

$$DP = \frac{R_H - R_L}{N}$$

पदों का चयन करने के लिए 0.3 से 0.7 तक की कठिनाई स्तर एवं लगभग 0. 5 की विभेदन क्षमता वाले पदों का चयन करना उत्तम समझा जाता है। परीक्षण में प्रयुक्त प्रत्येक पद के चयन सम्बन्धी निर्णय को निम्नांकित तालिका के अन्तिम स्तम्भ में हां या नहीं लिखकर प्रदर्शित किया जाता है।

पदसंख्या	शुद्ध हल करने वाले परीक्षार्थी		कठिनाई स्तर	विभेदन क्षमता	उपयुक्तता
	R_H	R_L	$\frac{R_{H+} R_L}{N}$	$\frac{R_H - R_L}{N}$	हाँ /नहीं

वर्तमान परीक्षा प्रणाली के अन्तर्गत प्रायः तीन प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं- (1) निबन्धात्मक प्रश्न (2) लघुउत्तरीय प्रश्न (3) वस्तुनिष्ठ प्रश्न। इन प्रश्नों का चयन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है।

(1) निबन्धात्मक प्रश्नों (पदों) का विश्लेषण : निबन्धात्मक पदों का निर्माण बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। इन प्रश्नों के उत्तरों के अंकन के लिए पहले ही मॉडल उत्तर बना लेने चाहिए। प्रत्येक प्रश्न के मॉडल उत्तर में स्मृति, तर्क, व्याख्या आदि के आधार पर अंकों का विभाजन ठीक प्रकार से किया जाना चाहिए और निर्देश में यह स्पष्ट होना चाहिए कि इन प्रश्नों के उत्तरों के अंकन मॉडल उत्तर में दिए गए अंक विभाजन के आधार पर ही हो तभी निबन्धात्मक प्रश्नों में कुछ वस्तुनिष्ठता आ सकती है। इन प्रश्नों (पदों) का चयन करने के लिए निम्न प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए-

1. सबसे पहले परीक्षण को एक बड़े प्रतिनिधि न्यादर्श पर प्रशासित किया जाए।
2. इसके पश्चात प्रत्येक विद्यार्थी के निबन्धात्मक प्रश्नों के प्राप्तांकों की गणना की जाए।
3. तत्पश्चात विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के आधार पर प्रत्येक निबन्धात्मक प्रश्न पर प्राप्त हुए प्राप्तांकों का प्रतिशत ज्ञात किया जाए।
4. जिन प्रश्नों पर 10 प्रतिशत या इससे कम अथवा 90 प्रतिशत या इससे अधिक अंक आते हैं उन्हें छोड़ दिया जाए। बाकी बचे प्रश्नों में से जितने प्रश्नों का चयन करना हैं। (ब्लू प्रिंट के आधार पर) उनका चयन उचित विश्लेषण द्वारा किया जाए। उदाहरण के लिए परीक्षण के लिए 2 निबन्धात्मक प्रश्नों का चयन करना है तो इसके लिए प्रारम्भ में 4 प्रश्नों का निर्माण किया जाना आवश्यक है। इनमें से एक प्रश्न का चयन 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के मध्य प्राप्तांकों वाले प्रश्नों में से

टिप्पणी

किया जा सकता है और दूसरे प्रश्न का चयन 50 प्रतिशत से 80 प्रतिशत के मध्य प्राप्तांकों वाले प्रश्नों में से किया जा सकता है।

(2) लघुउत्तरीय प्रश्नों (पदों) का विश्लेषण : लघुउत्तरीय प्रश्नों के निर्माण एवं अंकन के लिए दिए गए निर्देशों का पालन करके ही प्रश्नों का निर्माण एवं अंकन किया जाना चाहिए। इसके पश्चात वही प्रक्रिया अपनायी जानी चाहिए जो निबन्धात्मक प्रश्नों के चयन के लिए अपनाई गई है। प्रश्नों की संख्या के आधार पर 10 प्रतिशत से 80 प्रतिशत के मध्य प्राप्तांकों वाले प्रश्नों में से वांछित संख्या में प्रश्नों का चयन किया जाना चाहिए।

(3) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों (पदों) का विश्लेषण : इन प्रश्नों के चयन के लिए कठिनाई स्तर एवं विभेदन क्षमता को सांख्यिकीय विधियों से ज्ञात किया जाता है और उसके आधार पर प्रश्नों का चयन किया जाता है। इन प्रश्नों के चयन के लिए निम्नलिखित क्रम से कार्य किया जाता है-

1. सबसे पहले परीक्षण को एक बड़े प्रतिनिधि न्यादर्श पर प्रशासित किया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी की गणना की जाती है।
2. प्रत्येक छात्र के प्राप्तांकों की गणना की जाती है।
3. छात्रों के प्राप्तांकों के आधार पर उत्तर पुस्तिकाओं को अधिक से कम के क्रम में व्यवस्थित किया जाता है।
4. उत्तर पुस्तिकाओं में से दो समूह उच्च समूह में ऊपर के 27% तथा निम्न समूह के लिए नीचे के 27% पुस्तिकाओं को चयन किया जाता है। बीच की 46% उत्तर पुस्तिकाओं को छोड़ दिया जाता है। प्रत्येक समूह की उत्तर पुस्तिकाओं की संख्या को n से प्रदर्शित किया जाता है। यदि परीक्षण 100 छात्रों पर प्रशासित किया जाता है तो प्राप्तांकों के आधार पर क्रम से व्यवस्थित की गई उत्तर पुस्तिकाओं में से ऊपर की 27 एवं नीचे की 27 उत्तर पुस्तिकाओं का चयन किया जाता है अत: n का मान 27 होगा।
5. इसके बाद प्रत्येक प्रश्न के लिए उच्च समूह के छात्रों द्वारा दिये गये सही उत्तरों की संख्या R_H तथा निम्न समूह के छात्रों द्वारा दिये गए सही उत्तरों की संख्या R_L को ज्ञात किया जाता है।
6. R_H तथा R_L के मान के आधार पर निम्नांकित सूत्रों का प्रयोग करके प्रत्येक प्रश्न का कठिनाई स्तर एवं उसकी विभेदन क्षमता प्रतिशत में ज्ञात करते हैं-

   कठिनाई स्तर $DL = \frac{R_H + R_L}{2n} \times 100$

   R_H = उच्च समूह के छात्रों द्वारा दिए गए सही उत्तरों की संख्या

   R_L = निम्न समूह के छात्रों द्वारा दिए गए सही उत्तरों की संख्या

   और विभेदन क्षमता $DP = \frac{R_H - R_L}{2n} \times 100$

   R_H = उच्च समूह के छात्रों द्वारा दिए गए सही उत्तरों की संख्या

   R_L = निम्न समूह के छात्रों द्वारा दिए गए सही उत्तरों की संख्या

7. ऐसे प्रश्न (पद) जिनकी DL तथा DP का मान 30% से 70% के मध्य होता है। उनमें से निश्चित संख्या के प्रश्नों का चयन किया जाता है और शेष को छोड़ दिया जाता है।

1 परीक्षण का मूल्यांकन- पद विश्लेषण के आधार पर चयनित प्रश्नों को परीक्षण के रूप में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इसके पश्चात् परीक्षण के निम्नलिखित पहलुओं का मूल्यांकन किया जाता है-

1. उपलब्धि परीक्षण के लिए कठिनाई स्तर का अत्यन्त महत्व है। प्राय: 50% कठिनाई स्तर वाले पदों को उपयुक्त समझा जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन के प्रथम चरण में कठिनाई स्तर का अध्ययन किया जाता है। ऐसे पदों को परीक्षण में शामिल नहीं किया जाता, जिन्हें उच्च एवं निम्न समूहों के विद्यार्थी हल कर लें अर्थात् जिनकी विभेदन क्षमता 0 हो
2. मापन के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले परीक्षणों की विश्वसनीयता होने के साथ-साथ वैध होना जरूरी होता है।मूल्यांकन के दूसरे चरण में परीक्षण की वैधता की जांच की जाती है। उपलब्धि परीक्षण में साधरणत: पाठ्यवस्तु वैधता पर बल दिया जाता है।
3. तृतीय चरण में विशेषज्ञों एवं विद्यार्थियों द्वारा पदों की विवेचना तथा आलोचना पर ध्यान देकर उनके सुझावों के अनुसार परीक्षण पदों में शब्दों में परिवर्तन किया जाता है।
4. चतुर्थ पद में परीक्षण पर प्राप्त प्राप्तांकों की व्याख्या के लिए मानक ज्ञात किए जाते हैं।
5. परीक्षण का मूल्यांकन किसी बाह्य कसौटी जैसे अन्य मानकीकृत उपलब्धि परीक्षण से सह-सम्बन्ध ज्ञात करके किया जा सकता है। उच्च सह-सम्बन्ध रखने वाले परीक्षण को मान्यता दी जाती है।
6. उपलब्धि परीक्षण का किसी उपयुक्त विधि से विश्वसनीयता गुणांक ज्ञात किया जाता है। साधारणत: 0.80से अधिक विश्वसनीयता गुणांक वाले परीक्षणों को अच्छे परीक्षण के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है।

अपनी प्रगति जांचिए

13. फ्रीमैन ने वैधता को कितने वर्गों में विभाजित किया है?

(क) तीन (ख) चार

(ग) पांच (घ) छह

14. पदों की विभेदन क्षमता को ज्ञात करने के लिए कितनी विधियों का प्रयोग किया जाता है?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (घ)
3. (ग)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)
7. (ख)
8. (ग)
9. (ख)
10. (ग)
11. (क)
12. (ख)
13. (ख)
14. (ख)

2.7 सारांश

अधिगम के आकलन का उद्देश्य मापन, प्रमाणित करना तथा बालक के अधिगम के स्तर की आख्या देना होता है। बालक के सम्बन्ध में उपरोक्त निर्णय लेने से पूर्व आकलन की योजना बनायी जाती है।

आकलन गतिविधियों, चर्चा, प्रश्नोत्तर के दौरान की जा सकती है। इसके लिए यह तय किया जाता है कौनसी गतिविधियां उनके लिए उपयुक्त होंगी तथा किस प्रकार उन्हें सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

अधिगम के आयाम एक व्यापक प्रारूप है जो शोधकर्त्ता और सिद्धान्तवेत्ता अधिगम के सम्बन्ध को जानने के लिए प्रयोग करते हैं ताकि वे अधिगम प्रक्रिया को परिभाषित कर सकें।

चिंतन एक उच्चस्तरीय मानसिक प्रक्रिया है। इसमें स्मृति, कल्पना, समस्या, समाधान आदि प्रक्रियाएं शामिल होती हैं। अतः चिंतन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसे अधिगमन, स्मृति, कल्पना आदि से जुदा नहीं किया जा सकता है।

चिंतन समस्या से शुरू होता है तथा समस्या के समाधान के साथ समाप्त होता है। इस दृष्टि से चिंतन समस्या पर निर्भर करता है। भिन्न–भिन्न व्यक्ति समस्या को भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। कुछ लोग समस्या को बड़ी गंभीरता से लेते हैं तथा कुछ हलकेपन से लेते हैं।

टिप्पणी

आकलन उपकरण का प्रयोग साक्ष्यों को एकत्र करने के लिए किया जाता है।

निरीक्षण द्वारा किसी व्यक्ति के जीवन का ढंग उसका शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक समायोजन तथा परिस्थितियों के प्रति व्यवहार करने का सम्पूर्ण तरीका सूक्ष्म रूप से जाना जा सकता है। निरीक्षण विधि प्रदत्त एकत्रीकरण की एक व्यवस्थित विधि है।

अनुसूची एक अर्थ में विभिन्न मदों अथवा पक्षों की एक विस्तृत, वर्गीकृत, नियोजित एवं श्रेणीबद्ध सूची से है जिस पर सूचनादाताओं की सूचना प्राप्त की जाती है। वास्तव में अनुसूची अनेक प्रश्नों की एक ऐसी सूची है जिसे मूल्यांकनकर्त्ता उत्तरदाता के पास स्वयं ले जाता है और उससे पूछ-पूछ कर सूचनाओं का आलेख करता है।

प्रोजेक्ट बनाने का कार्य विद्यार्थी अपनी रुचि व इच्छा के अनुसार करते हैं। इसके द्वारा बालकों में सहयोग से कार्य करने आदत विकसित होती है। यह क्रिया आधारित एवं खोज आधारित अधिगम विधि है।

सहयोगी अनुदेशन को प्रत्येक विद्यार्थी के अधिगम के लिए स्वीकार किया जाता है। यह प्रत्येक विद्यार्थी की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति का समर्थन करता है। सहयोगी अनुदेशन एवं समावेशन में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

सहकारी अधिगम से तात्पर्य प्रायः ऐसी अधिगम प्रक्रिया से है जिसमें विद्यार्थी को स्वयं ही अपने समूह के अन्तर्गत सहकारी प्रणाली का अनुसरण करते हुए अधिगम करना होता है। विद्यार्थी प्रायः अपनी सूचनाओं एवं अनुभवों का आपस में आदान-प्रदान करते हैं तथा परस्पर सहयोग द्वारा वातावरण में विषय सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशलों को अर्जित करने का प्रयत्न करते हैं।

किसी वस्तु के भार, लम्बाई आयतन को निश्चित इकाई अंकों में मापने और प्रकट करने की क्रिया को मापन कहते हैं। जैसे कपड़े की लम्बाई को मीटर में, मनुष्य के भार को कि.ग्राम तथा दूध व जल को लीटर में प्रकट करना। वास्तव में मापन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है।

2.8 मुख्य शब्दावली

- **मनोवृत्ति** : मनोवृत्ति व्यक्तित्व का वह गुण है जो किसी व्यक्ति की रुचि, मत तथा उद्देश्य से संबंधित होता है।
- **मूल्य** : मूल्य एक ऐसा गुण है जो वांछित लक्ष्यों, आदर्शों और कार्यशैली के आधार पर मानव व्यवहार को चयनात्मक बनाता है।
- **रुचि** : रुचि वह प्रवृत्ति है जो किसी वस्तु, व्यक्ति या प्रक्रिया से आकर्षित होने, उसे पसंद करने या उसमें संतुष्टि पाने की ओर ध्यान केंद्रित करती है।
- **चैक लिस्ट** : चैक लिस्ट बालकों की गतिविधियों, व्यवहारों, लक्षणों, प्रतिक्रियाओं और विशेषताओं के बारे में जानकारी प्रदान करती है।
- **पोर्टफोलियो** : पोर्टफोलियो समय की एक निश्चित अवधि में बालकों द्वारा किए गए कार्यों का संग्रह होता है।
- **स्व–आकलन** : स्व–आकलन के अंतर्गत बालक अपने कार्यों एवं प्रगति का स्वयं आकलन करता है।

टिप्पणी

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. प्रभावी अधिगम आकलन से आप क्या समझते हैं?
2. मनोवृत्ति से क्या तात्पर्य है? इसके आयाम को बताइए।
3. मनोवृत्ति मापन में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है?
4. मूल्य से क्या तात्पर्य है? इसे कौन–कौन से वर्गों में वर्गीकृत किया गया है?
5. आत्म संप्रत्यय से क्या अभिप्राय है? ये कितने प्रकार के होते हैं?
6. अभिसरण चिंतन और अपसरण चिंतन में क्या अंतर है?
7. सहभागी निरीक्षण से क्या अभिप्राय है? इसकी मुख्य विशेषताएं बताइए।
8. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? इसके मुख्य उद्देश्य बताइए।
9. वैधता और विश्वसनीयता के मध्य संबंध को बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. संज्ञानात्मक अधिगम के स्तर और प्रकारों की विवेचना कीजिए।
2. चिंतन कौशल किसे कहते हैं?
3. मूल्य को समझाते हुए इसको प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कीजिए।
4. रुचि से क्या तात्पर्य है? इसको प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कीजिए।
5. शिक्षक निर्मित परीक्षण किसे कहते हैं? इसके उद्देश्य, विशेषताएं और सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
6. पोर्टफोलियो के अर्थ, क्षेत्र और प्रयोग का विश्लेषण कीजिए।
7. वैधता से क्या तात्पर्य है? वैधता के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
8. विश्वसनीयता को समझाते हुए इसको प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Agarwal, Y.P. (1990). Statistical methods : concepts, applications and computations. New Delhi: Sterling Publishers.
Burke,K. (2005), How to assess authentic learning Thousand Oaks, CA: Corwin.
Garrett, H.E.(1973) Statistics in psychology and education Bombay : .
Popham, W.J. (1993). Educational evaluation. Boston :Allyn and Bacon
Popham, W.J. (1993). Modern educational measurement : Englewood Cliffs, NJ. : Prentice Hall.
Popham, W.J. (2010). Classroom assessment : What teachers need to know New York: Prentice Hall.

इकाई 3 नियोजन, रचना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन का प्रतिवेदन

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 उपलब्धि परीक्षण
- 3.2.1 विषय–वस्तु /अन्तर्वस्तु के आधार पर मूल्यांकन : क्या और क्यों
- 3.2.2 अनुदेशनात्मक, अधिगम एवं आकलन के उद्देश्यों में अन्तर
- 3.2.3 उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य
- 3.2.4 उपलब्धि परीक्षण का प्रारूप निर्माण : अनुदेशनात्मक उद्देश्य, प्रारूप, ब्लूप्रिंट
- 3.2.5 परीक्षण निर्माण की रचना चयन
- 3.2.6 परीक्षण पदों को संगृहीत करना : परीक्षण प्रशासन एवं फलांकन प्रक्रिया हेतु दिशा निर्देश
- 3.2.7 उपलब्धि–परीक्षण का प्रशासन
- 3.2.8 मानदंड एवं प्राप्तांकों की व्याख्या

3.3 नैदानिक परीक्षण
- 3.3.1 शैक्षिक नैदानिक परीक्षण का अर्थ एवं महत्व
- 3.3.2 नैदानिक परीक्षण : प्रयोजन एवं उपयोग
- 3.3.3 उपलब्धि परीक्षण और नैदानिक परीक्षण में अंतर
- 3.3.4 शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया
- 3.3.5 विशेष क्षेत्रों में नैदानिक परीक्षण और उपचार

3.4 शिक्षार्थियों की प्रगति का अभिलेखन एवं प्रतिवेदन
- 3.4.1 सूचनाओं का अभिलेखन
- 3.4.2 प्रतिवेदन
- 3.4.3 विद्यार्थियों के निष्पादन के अभिलेखन एवं प्रतिवेदन
- 3.4.4 प्रगति रिपोर्ट
- 3.4.5 अध्यापक द्वारा प्रतिबिंब /परावर्तन
- 3.4.6 प्रतिपुष्टि को बालक एवं अभिभावकों से साझा करना
- 3.4.7 छात्र/अधिगमकर्ता के विकास एवं अधिगम सुधार में पृष्ठपोषण की भूमिका
- 3.4.8 छात्रों की आवश्यकताओं का पता लगाना

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

शिक्षण करने के पश्चात प्राय: सभी शिक्षक यह जानने के इच्छुक होते हैं कि उनके द्वारा पढ़ाई गई सामग्री बालकों की समझ में आयी है या नहीं। अपनी इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए वे शैक्षणिक परीक्षणों का निर्माण करके उनकी सहायता से बालकों को उनकी उपलब्धियों को ज्ञात कराने का प्रयास करते हैं। वे शिक्षण के दौरान बीच-बीच में मौखिक प्रश्न पूछ कर भी उपलब्धि ज्ञात करते रहते हैं। स्कूलों में बालकों के अधिगम की स्थिति को जानने के लिए एक पखवाड़े में, एक माह में, तीन माह में, छः माह में,

अथवा एक वर्ष में एक बार औपचारिक रूप से बालकों की परीक्षा ली जाती है। परीक्षण द्वारा यह ज्ञात करने की कोशिश की जाती है कि बालकों ने कहां तक दक्षता हासिल की है। परीक्षणों का निर्माण करने के पश्चात उनका प्रशासन तथा फलांकन किया जाता है। परीक्षणों का निर्माण एवं उन्हें प्रशासित करने के पश्चात उनका फलांकन करने पर ही शिक्षक का कार्य समाप्त नहीं हो जाता है। दिए गये प्रदत्तों को संकलित किया जाता है तथा विभिन्न रीतियों द्वारा विश्लेषण किया जाता है। प्रदत्तों के विश्लेषण के अन्तर्गत शिक्षक को प्रदत्तों से निष्कर्ष निकालना होता है। यदि निष्कर्ष सही या वांछित नहीं होते हें तो सारी मेहनत खराब हो जाती है। अंक लक्ष्य नहीं है वे तो केवल लक्ष्य प्राप्त करने का साध न हैं। परीक्षण से तात्पर्य उस प्रक्रिया से होता है जिसके द्वारा किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया के गुणों की जांच की जाती है।

इस इकाई में परीक्षण की रचना, उद्देश्य, कार्य के महत्व तथा नैदानिक परीक्षण को विस्तार से समझाया गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- विषय-वस्तु एवं उद्देश्यों के आधार पर क्या एवं क्यों आकलन को समझ पाएंगे;
- अनुदेशनात्मक, अधिगम एवं आकलन के उद्देश्यों में अंतर समझ पाएंगे;
- उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य एवं महत्व की विवेचना कर पाएंगे;
- उपलब्धि परीक्षण की रचना को जान पाएंगे;
- नैदानिक परीक्षण के अर्थ एवं महत्व की विवेचना कर पाएंगे;
- नैदानिक परीक्षण की प्रक्रिया का आकलन कर पाएंगे;
- बच्चों के लिए अभिलेखन एवं प्रतिवेदन की उपलब्धि प्रक्रिया की समीक्षा कर पाएंगे।

3.2 उपलब्धि परीक्षण

परीक्षण मापन के क्षेत्र में वे उपकरण आते हैं जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के व्यवहार का क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षणों का अर्थ मापन के उन उपकरणों अथवा विधियों से लगाया जाता है, जिनके द्वारा विद्यार्थियों की मानसिक एवं शैक्षणिक योग्यता के मापन सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाते हैं। छात्रों द्वारा प्रदत्त उत्तरों तथा समस्याओं के प्रति अनुक्रियाओं के आधार पर उसकी मानसिक क्षमताओं तथा शैक्षिक योग्यतायों का मापन किया जाता है।

शैक्षिक परीक्षणों से तात्पर्य छात्रों की विभिन्न योग्यताओं के मापन के उन उपकरणों तथा विधियों से हैं जिनमें छात्रों से मापीय योग्यता से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं तथा जिनका छात्रों को उत्तर देना होता है और तत्सम्बन्धी समस्याएं उपस्थित की जाती हैं जिनके प्रति छात्रों को अनुक्रिया करनी होती है।

शिक्षा के क्षेत्र में मूलतः दो प्रकार के परीक्षण प्रयोग में लाये जाते हैं-

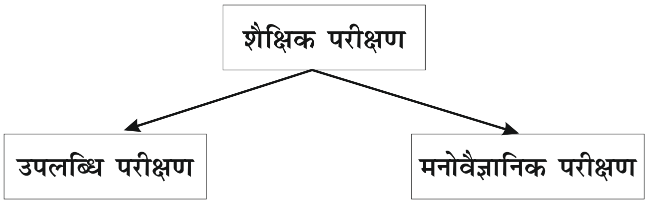

1. उपलब्धि परीक्षण : उपलब्धि परीक्षणों के अन्तर्गत दो परीक्षण आते हैं-

- उपलब्धि परीक्षण
- नैदानिक परीक्षण

2. मनोवैज्ञानिक परीक्षण : मनोवैज्ञानिक परीक्षण व्यवहार के प्रतिदर्श का मापन करने की व्यवस्थित विधि है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में कई परीक्षण होते हैं जो व्यक्ति के शीलगुणों से सम्बन्धित होते हैं ये क्रमशः निम्न होते हैं-

- व्यक्तित्व परीक्षण
- बुद्धि परीक्षण
- अभिवृत्ति परीक्षण
- अभिक्षमता परीक्षण
- रुचि परीक्षण

उपलब्धि परीक्षण

व्यक्ति आने वाली युवा पीढ़ी के समक्ष अपने अनुभव एवं मूल्य इस उद्देश्य से रखता है कि वे सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा कर सकें एवं उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन हो। विद्यालयों में शिक्षण कार्य निरन्तर नियन्त्रित रूप से चलता रहता है। विद्यालय में रहकर बालक जो कुछ सीखता है। उसे उपलब्धि कहते हैं। इस उपलब्धि की जांच के लिए जो परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं उन्हें उपलब्धि परीक्षण कहा जाता है। अध्यापक के द्वारा विद्यार्थियों को जो पढ़ाया गया है उसमें उन्होंने कितना सीखा है यह जांचने के लिए अर्थात् अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों की उन्नति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय-समय पर जो परीक्षाएं ली जाती हैं वे उपलब्धि परीक्षण कहलाती हैं। इन परीक्षाओं का उद्देश्य विद्यार्थियों की सफलता का मापन करना होता है। इनसे यह पता लगाया जाता है कि बालक के व्यवहार में कितना परिवर्तन आया है। वह अपने ज्ञान का नई एवं विभिन्न परिस्थितियों में कितना उपयोग कर सकता है। विद्यार्थियों में किन-किन रुचियों एवं अभिवृत्तियों का विकास हुआ है। इस प्रकार उपलब्धि परीक्षण किसी विद्यार्थी द्वारा अर्जित कौशलों में निपुणता को मापने के लिए बनाये जाते हैं।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य अधिगम द्वारा बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। और व्यवहार में परिवर्तन/ शिक्षा के उद्देश्य की जांच के लिए जिन परीक्षणों/विधियों का प्रयोग किया जाता है वे उपलब्धि परीक्षण कहलाती हैं।

उपलब्धि परीक्षण की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने उपलब्धि परीक्षण को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है-

टिप्पणी

फ्रीमैन के शब्दों में, 'उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो किसी एक विषय या पाठ्यक्रम को विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ एवं कुशलता का मापन करता है।'

इबेल के अनुसार,'उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो विद्यार्थी द्वारा ग्रहण किये गये ज्ञान, कुशलता या क्षमता का मापन करता है।'

लिंडक्विस्ट एवं मन के अनुसार, 'एक सामान्य निष्पत्ति परीक्षण वह है जो एक फलांक द्वारा निष्पत्ति के किसी दिए हुए क्षेत्र में विद्यार्थी के सापेक्षिक ज्ञान का बोध कराए।'

विद्यार्थियों में विद्यालयी विषयों के अध्ययन द्वारा होने वाले ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावात्मक परिवर्तनों को मापने के लिए जो परीक्षण तैयार किए जाते हैं उन्हें उपलब्धि परीक्षण कहते हैं।

3.2.1 विषय–वस्तु /अन्तर्वस्तु के आधार पर मूल्यांकन : क्या और क्यों

आकलन सीखने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है, जो अध्यापक को यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि बालक क्या जानते हैं? क्या उन्होंने पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया है या नहीं। उसका शिक्षण कैसा होना चाहिए? जब शिक्षक कक्षा में बालकों का आकलन करते हैं तो वे स्वयं का भी आकलन कर रहे होते हैं। यदि कक्षा में अधिकतर बालक सीख रहे हैं और सीखने में रुचि ले रहे हैं तो इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक की शिक्षण तकनीकियाँ प्रभावी हैं। यदि बालक नहीं सीख पा रहे हैं तो शिक्षक को निर्णय लेना होता है कि बालकों को सिखाने के तरीकों को और प्रभावी कैसे बनाया जाए। इस प्रकार आकलन गुणात्मक सुध ार प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। आकलन के आधार पर शिक्षक यह जान पाते हैं कि बालक किस हद तक सीख पा रहे हैं और अभी कितना और प्रयत्न करना है ताकि वह अधिगम के लक्ष्य को प्राप्त कर सके। आकलन के द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि वास्तव में बालक ने शिक्षण के अन्त में क्या-क्या सीखा है। यह कार्य शिक्षक दैनिक पाठ के अन्त में, कक्षा शिक्षण के समय, पाठ के अन्त में, माह के अन्त में, तिमाही पर, छः माह पर, वर्ष के अन्त में कर सकता है।

प्रत्येक बालक की प्रगति स्थिति, सीखने की गति एवं समझ एक समान नहीं होती है। अतः शिक्षकों को बालकों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। आकलन का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि बालक ने एक निश्चित अवधि में शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। कक्षा में जो कुछ भी शिक्षण होता है अर्थात जो विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु पढ़ायी जाती है उसका एक उद्देश्य होता है। यदि उद्देश्य स्पष्ट है और उन उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया गया है तो ही शिक्षण सफल माना जाता है। अर्थात जो विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु या जिस उद्देश्य से शिक्षण कार्य किया गया है वह सफल हुआ है या नहीं इसका आकलन पाठन की इकाई की अवधि के अन्त में किया जाता है।

अब हम इसको जानने का प्रयास करते हैं कि आकलन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? आकलन क्यों किया जाता है तथा आकलन के आधार क्या हैं-

टिप्पणी

- बच्चे क्या जानते हैं?
- बच्चों की विशिष्ट आवश्यकताएँ क्या हैं?
- बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम का चयन करना।
- बच्चों के लिए कौन-से कार्यक्रम उपयुक्त है- कौन से नहीं, इस प्रयोजन के लिए योजना बनाने के लिए।
- यह ज्ञात करने के लिए कि निर्धारित कार्यक्रम किस सीमा तक बच्चों के लिए लाभकारी है।
- बालकों के कौशल, योग्यता एवं आवश्यकताओं की पहचान करने के लिए।
- बालकों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को जानने के लिए।
- बालकों के माता-पिता को उनके विकास की स्थिति एवं प्रगति एवं अधिगम के बारे में उसकी उपलब्धियों के विषय में जानकारी देने के लिए।
- शिक्षण सामग्री के चयन के लिए।
- अधिगम विधि को किस प्रकार लागू किया जाए?
- नई कक्षा की व्यवस्था बनाने के लिए
- शैक्षिक उद्देश्यों एवं शिक्षण विधियों की समीक्षा करने के लिए।
- शैक्षिक उपलब्धियों एवं शिक्षार्थी के व्यवहार का आकलन करने तथा पृष्ठपोषण देने के लिए।

आकलन, शिक्षण अवधि में विद्यार्थी एवं शिक्षण निर्धारित उद्देश्यों की दिशा में और विषय-वस्तु की समझ के आधार पर यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है। पाठ्यचर्या शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही पाठ्यचर्या का निर्माण किया जाता है। पाठ्यचर्या विकास का एक मुख्य सोपान विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु का चयन करना होता है। शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण एवं अधि गम अनुभवों के चयन के बाद इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त विषयों एवं अन्तर्वस्तु का चयन करना बहुत जरूरी होता है। विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु का चयन कहाँ से और कैसे किया जाए ताकि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके। पाठ्यचर्या में अन्तर्वस्तु का चयन निम्न दो आधारों पर किया जाता है-

मूल्य (Value) : प्रत्येक मनुष्य के जीवन के अपने कुछ मूल्य होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक समाज के कुछ मूल्य होते हैं । मूल्य जो मनुष्य की इच्छाओं की पुष्टि करे। मनुष्य इन्हीं मूल्यों को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं तथा इन्हीं मूल्यों के अनुसार कार्य एवं व्यवहार करते हैं। यही मूल्य उनके आदर्श एवं प्रेरणा के स्रोत होते हैं। इन मूल्यों का व्यक्ति एवं समाज के लक्ष्यों, शिक्षा के उद्देश्यों एवं पाठ्यचर्या से गहरा सम्बन्ध होता है। इन मूल्यों को प्राप्त करने के लिए तदनुरूप लक्ष्यों एवं शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या में जिस विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु चयन किया जाता है वह इन्हीं मूल्यों से प्राप्त होती है। इस प्रकार समाज एवं व्यक्ति के जीवन के मूल्य एवं लक्ष्य जैसे होंगे तदनुरूप ही शिक्षा की दिशा निर्धारित होगी। मूल्यों में परिवर्तन के साथ जीवन एवं शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों में

परिवर्तन होने से पाठ्यचर्या एवं उसकी विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु में भी परिवर्तन होता है। प्राचीन भारतीय समाज में काम, अर्थ, धर्म एवं मोक्ष को अन्तिम मूल्य माना गया । व्यक्ति के जीवन का मूल्य मोक्ष की प्राप्ति था इसलिए शिक्षा के उद्देश्य को उससे सम्बद्ध कर दिया गया था 'विद्या या विमुक्तये' अर्थात विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करे। इस प्रकार उस समय धर्म मूल्य के महत्व के कारण विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु भी धार्मिक भावना से ओतप्रोत रही। धीरे-धीरे जैसे हम भौतिकवाद की ओर बढ़े अर्थ एवं काम ही जीवन के मूल्य रह गये। इसी कारण जीवन के लक्ष्य भी इन्हीं तक सीमित हो गये जिसने शिक्षा के उद्देश्यों को भी प्रभावित किया। कोठारी आयोग ने शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में आर्थिक विकास को स्थान प्रदान किया इसके अनुरूप ही अन्तर्वस्तु में भी परिवर्तन करके नई अन्तर्वस्तु का चयन किया गया।

आवश्यकताएं (Needs) : आवश्यकताएं मनुष्य को गतिशील बनाती हैं। प्रत्येक मनुष्य एवं समाज की कुछ आवश्यकताएं होती हैं उनकी ये आवश्यकताएं ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण करती हैं। शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त एवं उपयोगी अन्तर्वस्तु का चयन किया जाता है। जैसे समाज की आवश्यकता बेरोजगारी से छुटकारा पाना है तो शिक्षा का उद्देश्य हुआ रोजगार परक शिक्षण। विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु के लिए हमें ऐसी शिक्षण सामग्री का चयन करना होगा जो हमारे उद्देश्य की पूर्ति करती हो अर्थात् रोजगार के अवसरों में वृद्धि करती हो। विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु के चयन के लिए व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के भीतर खोज करनी पड़ती है। फिर उसी के अनुरूप ही आवश्यकताओं के अनुसार अन्तर्वस्तु का चयन किया जाता है। आज से नहीं आदिकाल से ही अन्तर्वस्तु का निर्धारण शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर किया जाता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु का ही नहीं अपितु शिक्षा की दिशा एवं मात्रा का भी निर्धारण करता है।

जब एक शिक्षक कक्षा में शिक्षण कार्य के लिए जाता है तो उसका यही उद्देश्य होता है कि वह जिस विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु का शिक्षण करने जा रहा है उसे छात्र अच्छी प्रकार समझ सकें। इस विषय-वस्तु /अन्तर्वस्तु में ही तो शैक्षिक उद्देश्य निहित होते हैं और इन शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षण कार्य किया जाता है। शैक्षिक गतिविधियों एवं कार्यक्रमों का आकलन करके ही यह ज्ञात किया जा सकता हैं कि शैक्षिक लक्ष्यों को किस सीमा तक प्राप्त किया गया है। इसके लिए जरूरी हो जाता हैं कि शिक्षक समय-समय पर छात्रों की प्रगति का आकलन करता रहे, जिससे शिक्षण की सफलता एवं अधिगम के ज्ञान का पता चलता रहे। शिक्षण द्वारा छात्र के व्यवहार का मात्रात्मक एवं गुणात्मक आकलन किया जाना चाहिए। आकलन के लिए शिक्षक-अवलोकन, साक्षात्कार, परीक्षण जैसी विभिन्न विधियों का प्रयोग कर सकता है। शिक्षक अपने दैनिक शिक्षण कार्य के दौरान आकलन करके छात्रों के अवबोध, ज्ञान, प्रयोग, अनुप्रयोग एवं कौशल आदि की जानकारी प्राप्त करके आवश्यकतानुसार शिक्षण शैली में सुधार करके शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। अपने प्रयासों के दौरान शिक्षक को यह उत्सुकता रहती है कि उसके शिक्षक के प्रभाव से छात्रों के व्यवहार में क्या और कितना परिवर्तन आया है, जिसकी प्राप्ति वह उपलब्धि परीक्षणों के माध्यम से कर सकता है। इस प्रकार शैक्षिक आकलन द्वारा बालक की वास्तविक प्रगति के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिगत कार्यक्रमों के उद्देश्यों को या दक्षता को स्पष्ट करने के लिए कार्यक्रम की पुष्टि करने के लिए अधिगम का आकलन किया जाता है। विषय-वस्तु / अन्तर्वस्तु एवं शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर आकलन करके यह जाना जा सकता है कि शिक्षक द्वारा व्यक्ति/समाज के मूल्यों को कहाँ तक प्राप्त किया जा सका तथा किस सीमा तक समाज एवं मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकी। आकलन की दृष्टि से जरूरी है कि शिक्षक आकलन की सभी विधियों एवं अवधारणाओं से भली प्रकार परिचित हो ताकि वह समयानुसार एवं स्थिति अनुसार कार्य शैली में परिवर्तन करके उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्य कर सके।

3.2.2 अनुदेशनात्मक, अधिगम एवं आकलन के उद्देश्यों में अन्तर

अनुदेशनात्मक उद्देश्य : अनुदेशनात्मक शब्द का अर्थ होता है सूचना प्रदान करने वाला। कक्षा में शिक्षण के दौरान शिक्षक विषय-वस्तु को छात्रों तक पहुंचाने के लिए जिन क्रियाओं का प्रयोग करता है उसे अनुदेशन या निर्देशन कहा जाता है। ज्ञान एवं कौशल की प्राप्ति को और अधिक प्रभावशाली एवं आकर्षक बनाने के लिए शिक्षा के अनुभवों का निर्माण करने के व्यवहार को ही शिक्षा का उद्देश्य कहा जाता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य छात्र के आरम्भिक व्यवहार में लाये जाने वाले परिवर्तनों को बताते हैं। इसलिए इन्हें व्यावहारिक पदों में लिखा जाता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य व्यावहारिक रूप में व्यक्त की गई योग्यता अथवा कौशल है जिसे छात्र सफल शिक्षण द्वारा ग्रहण करता है। यह पढ़ाये जाने वाले पाठ से सम्बन्धित होते हैं तथा पढ़ाये जाने वाले पाठ की विषय-वस्तु के द्वारा छात्र के व्यवहार में लाए गये परिवर्तन को पदों के रूप में लिख लिया जाता है। यह शिक्षण के उपरान्त छात्र की उपलब्धि के सूचक होते हैं।

अनुदेशनात्मक उद्देश्यों में पढ़ाये जाने वाले पाठ की विषय-वस्तु को कार्य विश्लेषण के आधार पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर पाठयोजना तैयार की जाती है। विज्ञान के किसी विशेष पाठ की इकाई या उप इकाई को पढ़ाते समय या निर्देशन देते समय किसी विशिष्ट कक्षा में एक अवधि के अन्दर शिक्षक को अपने समक्ष कुछ विशिष्ट उद्देश्य रखने होते हैं। विज्ञान विषय में उपविषयों में लिखे जा सकने वाले अनुदेशनात्मक उद्देश्यों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

विषय- जीव विज्ञान, उप-विषय-पौधे के भाग, अनुदेशनात्मक उद्देश्य-

- छात्र पौधे के भाग बताता है।
- छात्र जड़ के कार्य बताता है।
- छात्र जड़ एवं तने में अन्तर बताता है।
- छात्र पत्ती के कार्य बताता है।
- छात्र बताता है कि पौधे अपना भोजन कैसे बनाते हैं?

इस प्रकार विज्ञान के शिक्षण में अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को शिक्षक द्वारा कक्षा शिक्षण की प्रक्रिया की समाप्ति पर छात्र से जो करने की आशा की जाती है या छात्र जो करने योग्य हो जाते हैं का वर्णन करने के लिए तैयार कथनों के समूह के रूप में लिखा जाता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य शिक्षण एवं अधिगम के वांछित परिणाम होते हैं। इसी कारण इन्हें शिक्षण उद्देश्यों के नाम से भी जाना जाता है। इन उद्देश्यों का मापन भी सुगमता से किया

जा सकता है। कक्षा में सम्पन्न अनुदेशनात्मक कार्य के बाद छात्र जिस प्रकार के अपेक्षित व्यवहार का प्रदर्शन सकेंगे उस व्यवहार का मापन उचित शब्दावली में व्यक्त करना ही अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का प्रयोजन है।

अनुदेशनात्मक उद्देश्य कक्षा निर्देश से अपेक्षित छात्र के व्यवहार का वर्णन है। अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का सीधा सम्बन्ध बालक के व्यवहार के ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों से होता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस आधार पर किया जाता है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया किसी पाठ्य विषय या अनुभव द्वारा छात्र के व्यवहार में परिवर्तन लाने का एक प्रयास है। बालक के व्यवहार में परिवर्तन के तीन पक्ष होते हैं। इन तीन पक्षों के आधार पर अनुदेशनात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है-

- ज्ञानात्मक उद्देश्य
- भावात्मक उद्देश्य
- क्रियात्मक उद्देश्य

ज्ञानात्मक उद्देश्य : ब्लूम ने ज्ञानात्मक पक्ष के उद्देश्यों को सरल से कठिन तथा शिक्षण अधिगम के निम्न स्तर से ऊँचे स्तर पर ले जाने के दृष्टिकोण से निम्न वर्गों में विभाजित किया है-

1. **ज्ञान :** इसके अन्तर्गत छात्रों को पाठ्यवस्तु के विशिष्ट पदों, परम्पराओं, प्रचलनों, कसौटियों, प्रन्नियमों, सिद्धान्तों एवं सरंचनाओं की पहचान एवं प्रत्यास्मरण कराने का प्रयास किया जाता है तथा कक्षा में समुचित परिस्थितियों को उत्पन्न किया जाता है।
2. **बोध :** ज्ञान के बिना बोध नहीं हो सकता है। इस वर्ग में ज्ञान कराये गये तथ्यों, पदों, प्रचलनों, कसौटियों, प्रन्नियमों, सिद्धान्तों आदि का प्रयोग किया जाता है जिससे छात्र उस प्राप्त ज्ञान को अपने सरल शब्दों में व्यक्त कर सके।
3. **प्रयोग :** सिद्धान्त का सामान्यीकरण करने, उसकी कमजोरियों का निदान करने तथा पाठ्यवस्तु का प्रयोग करने के लिए आवश्यक है कि बालक को उसका ज्ञान हो बोध हो, तभी छात्र उचित ढंग से अपनी योग्यतानुसार व्यक्तिगत परिस्थितियों में ज्ञान का प्रयोग कर सकेंगे।
4. **विश्लेषण :** इसके अन्तर्गत छात्र अधिगम की गई विषय-वस्तु के तत्वों को अलग-अलग करके उनमें सम्बन्ध स्थापित करता है।
5. **संश्लेषण :** पहले चार वर्गो में सीखी गई पाठ्यवस्तु के तथ्यों, नियमों, सिद्धान्तों आदि के तत्वों को एक नवीन प्रकार से व्यवस्थित करके छात्र नया प्रारूप या योजना तैयार करता है।
6. **मूल्यांकन :** छात्र यह निर्णय ले कि उसने जो कुछ भी अधिगम किया है वह मूल्य की दृष्टि से उपयोगी है अथवा नहीं। इससे बालक में निर्णय लेने की योग्यता विकसित होती है।

भावात्मक उद्देश्य : भावात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-

1. **ग्रहण करना या ध्यान देना :** इस वर्ग में शिक्षक पाठ्यवस्तु के प्रति छात्रों का ध्यान इस प्रकार आकर्षित करने तथा अभिप्रेरित करने का प्रयास करता है कि वे मानवीय मूल्यों को ग्रहण करने के लिए जाग्रत हो जाएं।

2. **अनुक्रिया :** शिक्षण के बाद जब छात्र अनुक्रिया करने में समर्थ हो जाते हैं तो यह वर्ग छात्रों के आत्म-विकास, आत्म-अभिव्यक्ति और उससे प्राप्त सन्तुष्टि को विकसित करने में सहायता करता है।

टिप्पणी

3. **आकलन :** इस वर्ग की क्रियाएं उपरोक्त दोनों वर्ग की क्रियाओं पर आधारित हैं।
4. **संगठन :** जब छात्र कई प्रकार से व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता है और उसे कुछ मूल्यों के अंतरविरोधी होने का आभास होता है तो उनके टकराव को रोकने के लिए इनका व्यवस्थापन एवं संगठन करना होता है।
5. **मूल्यों का चरित्रीकरण :** इसके आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान होती है।

क्रियात्मक उद्देश्य : क्रियात्मक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-

1. **सहज क्रियात्मक :** ये क्रियाएं किसी वस्तु के सम्पर्क में आते ही अपने आप होने लगती हैं। मानव के सभी व्यवहार इन सहज क्रियाओं पर आधारित होते हैं। शिक्षक द्वारा इन क्रियाओं को और सहज बनाने का प्रयास किया जाता है।
2. **आधारभूत अंग संचालन :** सहज क्रियाओं के आधार पर ही बालक की स्वाभाविक आधारभूत अंग संचालन सम्बन्धित क्रियाएं विकसित होती हैं, जैसे उछलने, कूदने, सशक्त अंग संचालन की क्षमता को विकसित करने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
3. **शारीरिक योग्यताएँ :** अंग सचालन संबंधी क्रियाओं में परिपक्वता लाने के लिए बालक की शक्ति एवं सामर्थ्य को विकसित करना इस वर्ग का उद्देश्य होता है।
4. **प्रत्यक्षीकरण योग्यताएँ :** इन योग्यताओं को अर्जित करने के लिए शारीरिक योग्यताएं आधार का काम करती हैं। साथ ही बालक अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान में विभेद करने की योग्यता प्राप्त करता है।
5. **कौशलयुक्त अंग संचालन :** पहले चार वर्गों में अर्जित योग्यताओं के आधार पर कौशलयुक्त अंग संचालन सम्बन्धी क्रियाएं विकसित होती हैं। इनके लिए बालकों को पूर्ण प्रशिक्षण लेना होता है, जैसे- तैरना, गाना नृत्य आदि।
6. **सांकेतिक संप्रेषण :** सांकेतिक सम्प्रेषण द्वारा बालक बिना कहे अपने भावों को पूर्ण कौशल के साथ अभिव्यक्त कर सकता है।

अनुदेशनात्मक उद्देश्य से शिक्षा के परिणामों का सीधे अवलोकन किया जा सकता है। अनुदेशनात्मक उद्देश्य को निम्नलिखित सार बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. अनुदेशनात्मक उद्देश्य शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा निर्देशित होते हैं।
2. निर्देशात्मक शिक्षण प्रक्रिया में अनुदेशनात्मक उद्देश्य केन्द्रीय भूमिका का निर्वाहन करते हैं।
3. अनुदेशनात्मक उद्देश्य संकुचित एवं विशिष्ट होते हैं।
4. अनुदेशनात्मक उद्देश्य प्रत्यक्ष होते हैं।
5. ये विषय-वस्तु से एकदम सम्बन्धित होते हैं।

अधिगम के उद्देश्य : शिक्षा की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप छात्र जिस ज्ञान को अर्जित करते हैं, किसी पाठ्य विषय-वस्तु द्वारा जिन्हें छात्र व्यवहार में दिखाते हैं ऐसे

टिप्पणी

वक्तव्यों को अधिगम के उद्देश्य कहा जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों को सीखने के कारण, सीखने के परिणाम तथा सीखने के लक्ष्य भी कहा जा सकता है। सीखने के उद्देश्य ही किसी शिक्षा प्रणाली के लिए आधारशिला होते हैं। शिक्षा की रूपरेखा, नीतियों, कार्यप्रणाली, तथा शिक्षण की शैलियों को तैयार करने वाले अंतर्भूत तत्व भी होते हैं। सीखने के उद्देश्य को प्रदर्शन उद्देश्य भी कहा जाता है। ये अधिगम के दिशासूचक का कार्य करते हैं और यह बताते हैं कि विषय-वस्तु को पढ़ने के पश्चात छात्र को किन-किन बिन्दुओं की समझ आएगी। अधिगम के उद्देश्य निश्चित होते हैं और ये शिक्षाशास्त्रियों द्वारा सुझाये जाते हैं। ब्लूम के अनुसार अधिगम के उद्देश्य तीन प्रकार के होते हैं-

- ज्ञानात्मक उद्देश्य
- भावात्मक उद्देश्य
- क्रियात्मक उद्देश्य

ब्लूम द्वारा अधिगम के उद्देश्यों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया गया है-

	ज्ञानात्मक उद्देश्य	भावात्मक उद्देश्य	क्रियात्मक उद्देश्य
1.	ज्ञान	आग्रह	प्रत्यक्षीकरण
2.	बोध	अनुक्रिया या प्रतिक्रिया	तत्परता
3.	प्रयोग	आकलन/ अनुमूल्यन	निर्देशित अनुक्रिया
4.	विश्लेषण	विचारण	रचना तन्त्र
5.	संश्लेषण	संगठन	जटिल बाहय अनुक्रिया
6.	मूल्यांकन	चरित्रीकरण	

ज्ञानात्मक अधिगम उद्देश्य : ज्ञानात्मक अधिगम उद्देश्यों को छः वर्गों में विभक्त किया गया है-

1. **ज्ञान :** इसके अन्तर्गत बालक सामान्यीकरण, सिद्धान्तों, संरचनाओं, विशिष्ट तथ्यों, परम्पराओं प्रचलित पद्धतियों एवं सार्वभौमिकता आदि का ज्ञान लेता है।
2. **बोध :** इसके अन्तर्गत बालक अनुवाद, अर्थापन एवं बहिर्वेशन को सीखता है।
3. **प्रयोग :** वास्तविक परिस्थितियों में प्रत्ययों तथ्यों एवं सामान्यीकरण का प्रयोग करना सीखता है।
4. **विश्लेषण :** इसके अन्तर्गत बालक तथ्यों का विश्लेषण, सम्बन्धों का विश्लेषण तथा व्यवस्थित सिद्धान्तों का विश्लेषण करना सीखते हैं।
5. **संश्लेषण :** इसके अन्तर्गत तत्वों को नई संरचना में संगठित किया जाता है।
6. **मूल्यांकन :** इसमें उद्देश्य विशेष के लिए संदर्भ सामग्री का मूल्य निर्धारण करते हैं। आन्तरिक एवं बाह्य प्रमाण के सन्दर्भ में निर्णय लिये जाते हैं।

भावात्मक अधिगम उद्देश्य : भावत्मक क्षेत्र के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-

टिप्पणी

1. **ग्रहण करना :** भावात्मक दृष्टि से सबसे पहले मूल्यों की अनुभूति करानी होती है। यह वर्ग अधिगमकर्ता/छात्र की उपलब्ध संवेदनशीलता को बताता है
2. **अनुक्रिया या प्रतिक्रिया :** अनुक्रिया के लिए आकर्षण होना जरूरी है। जब छात्रों में विभिन्न मूल्यों को ग्रहण करने की इच्छा जाग्रत होती है तो वे सम्बन्धित शैक्षिक गतिविधियों में भाग लेना प्रारम्भ कर देते हैं और उनमें अनुक्रिया की इच्छा उत्पन्न होती है।
3. **आकलन :** प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार को सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्य प्रभावित करते हैं। इस वर्ग की क्रियाएं उपरोक्त दोनों वर्ग की क्रियाओं पर आधारित हैं, जिन्हें छात्र अपने प्रयोजन की पूर्ति का साधन बनाता है। इसमें मूल्यों की स्वीकृति, प्राथमिकता एवं मूल्यावस्था का संगठन आता है।
4. **संगठन :** इस वर्ग में मूल्यों का व्यवस्थीकरण, उनमें समन्वयीकरण तथा मूल्यों की प्रमुखता का निर्धारण आवश्यक होता है। जब छात्र कई प्रकार से व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता है और उसे कुछ मूल्यों के अंतरविरोधी होने का आभास होता है तो उनके टकराव को रोकने के लिए इनका व्यवस्थापन एवं संगठन करना होता है।
5. **मूल्यों का चरित्रीकरण :** यह भावात्मक क्षेत्र का उच्चतम स्तर है। इस स्तर पर अधिगमकर्त्ता के व्यक्तिगत एवं सामाजिक मूल्यों के समन्वय से एक नई मूल्यप्रणाली का निर्माण हो चुका होता है। इसके आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान होती है। शिक्षा में बालक को भावात्मक व्यवहार पक्ष के विकास के लिए इन सभी स्तरों से गुजरना होता है।

क्रियात्मक अधिगम उद्देश्य : क्रियात्मक अधिगम उद्देश्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है-

1. **प्रत्यक्षीकरण :** इसमें बालक पूरी स्थिति को समझकर क्रिया करता है।
2. **तत्परता :** इसके अन्तर्गत बालक प्रारम्भिक समायोजन करता है।
3. **निर्देशन अनुक्रिया :** इसमें किसी के निर्देशन में बाह्य रूप से क्रिया उत्पन्न की जाती है।
4. **रचना तन्त्र :** इसके पक्ष के अन्तर्गत बालक स्वयं विश्वासपूर्वक क्रिया उत्पन्न कर लेता है।
5. **जटिल बाह्य अनुक्रिया :** इसमें बालक अपेक्षित गति के साथ क्रिया उत्पन्न करने के योग्य हो जाता है।

आकलन के उद्देश्य : शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य बालक में सृजनात्मकता का विकास करना है। बालक क्या जानते हैं? क्या उन्होंने पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया है या अपने व्यक्तिगत कार्यक्रमों के लक्ष्यों को या दक्षता को स्पष्ट करने के लिए कार्यक्रम की पुष्टि करने के लिए अधिगम का आकलन किया जाता है। आकलन, शिक्षण अवधि के अन्त में यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है।

आकलन सीखने की प्रक्रिया का एक अंग है जो अध्यापक को यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि उसका शिक्षण कैसा होना चाहिए? आकलन के माध्यम से शिक्षक यह जानने का प्रयास करते हैं कि कक्षा में अधिकतर बालक सीख रहे हैं और सीखने में रुचि ले रहे हैं अथवा नहीं। यदि बालक नहीं सीख पा रहे हैं तो शिक्षक विचार करता है कि सिखाने के तरीकों को और प्रभावी कैसे बनाया जाए ताकि वे अधिगम के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

आकलन सूचना संग्रहण तथा उस पर विचार विमर्श की प्रक्रिया है जिसे हम विभिन्न माध्यमों से प्राप्त करके यह जानते हैं कि बालक क्या जानता है, समझता है तथा अपने शैक्षिक अनुभवों के द्वारा प्राप्त ज्ञान को परिणाम के रूप में व्यक्त कर सकता है, जिसके द्वारा छात्र अधिगम में वृद्धि होती है।

आकलन के उद्देश्य (Objectives of Assessment) : आकलन का मुख्य उद्देश्य बालकों को सीखने के लिए प्रेरित करना और बालकों की क्षमता, उम्र और स्तर को ध्यान में रखते हुए उन्हें एक निश्चित स्तर तक पहुँचाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आकलन को सीखने के साधन के रूप में देखा जाता है। शिक्षकों को बालकों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। आकलन का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि बालक ने एक निश्चित अवधि में शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। आकलन का प्रयोग पाठन की इकाई की अवधि के अन्त में किया जाता है। आकलन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सुधार करना।
- छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं के बारे में जानना।
- बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम का चयन करना।
- बच्चों के लिए कौन-से कार्यक्रम उपयुक्त हैं कौन-से नहीं, इस प्रयोजन के लिए योजना बनाने के लिए।
- यह ज्ञात करने के लिए कि निर्धारित कार्यक्रम किस सीमा तक बच्चों के लिए लाभकारी है।
- बालकों के कौशल, योग्यता एवं आवश्यकताओं की पहचान करने के लिए।
- बालकों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को जानने के लिए।
- बालकों की अधिगम सम्बन्धी समस्याओं का पता लगाना।
- बालकों के अधिगम की गुणवत्ता को सुधारना
- बालकों के माता-पिता को उनके विकास की स्थिति एवं उपलब्धि के विषय में जानकारी देने के लिए।
- बालकों, शिक्षकों एवं अभिभावकों को पृष्ठपोषण देना।
- शिक्षण सामग्री के चयन के लिए।
- अधिगम विधि को किस प्रकार लागू किया जाए।
- बालकों के अपेक्षित व्यवहार एवं आचरण में परिवर्तन की जाँच करना।
- माता-पिता को बच्चे की प्रगति एवं अधिगम के बारे में जानकारी प्रदान करने के लिए।

- बालकों के चहुंमुखी विकास को निरन्तर गति प्रदान करना।
- शैक्षिक शोधों के लिए सूचनाओं को एकत्र करना।
- शिक्षा की तत्कालिक समस्याओं को समझना एवं उनके समाधान के लिए उपायों की खोज करना।

3.2.3 उपलब्धि परीक्षण के उद्देश्य

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग कई उद्देश्यों के लिए किया जाता है। विद्यालयों में उपलब्धि परीक्षणों के प्रयोग निम्न कार्यों अथवा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए जाते हैं-

1. विद्यालय में प्रवेश हेतु विद्यार्थी के चयन के लिए।
2. विद्यार्थियों को कक्षोन्नति देने के लिए।
3. विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए।
4. विद्यार्थियों को वर्गीकृत करने के लिए।
5. शिक्षकों द्वारा किए गये शिक्षण कार्य का मूल्यांकन करने के लिए।
6. सार्वजनिक परीक्षणों एवं उनके परिणामों के आधार पर प्रमाण पत्र देने के लिए।
7. शैक्षिक समस्याओं का समाधान करने के लिए।
8. माता-पिता को बालक के अधिगम की जानकारी प्रदान करने के लिए।

इस प्रकार उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग शिक्षण, निर्देशन एवं प्रबन्धन के लिए किया जाता है।

उपलब्धि परीक्षणों की विशेषताएं

उपलब्धि परीक्षणों की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं-

1. इन परीक्षणों का उद्देश्य पूर्व निर्धारित होता है।
2. ये परीक्षण धन, समय एवं शक्ति की दृष्टि से मितव्ययी होते हैं।
3. इन परीक्षणों की विषय सामग्री व्यापक होती है।
4. ये परीक्षण विभिन्न कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग बनाये जाते हैं।
5. इन परीक्षणों की पाठ्यवस्तु विद्यार्थियों के स्तर, योग्यताओं, रुचियों एवं क्षमताओं के अनुकूल होती है।
6. इन परीक्षणों का प्रशासन, अंकन, समयसीमा आदि सब पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है।
7. इन परीक्षणों के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं अत: आंशिक रूप से अंक प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।
8. ये परीक्षण विभेदकारी होते हैं।
9. ये परीक्षण विश्वसनीय एवं वैध होते हैं।
10. ये परीक्षण व्यावहारिक दृष्टि से बहुत उपयोगी होते हैं।

11. इन परीक्षणों के परीक्षाफलों से अध्यापक को ऐसी सामग्री प्राप्त होती है जिसके आधार पर वह समस्त शिक्षण योजना का निर्माण कर सकता है।
12. इन परीक्षणों में प्रश्नों की संख्या बहुत अधिक होती है। अत: अवसर या भाग्य का प्रश्न ही नहीं उठता है।
13. इन परीक्षणों में प्रमापीकृत परीक्षाओं की सभी विशेषताएं विद्यमान होती हैं। जैसे अंकन कुंजी, निर्देश पुस्तिका मानक आदि। ये सब पहले से ही तैयार कर लिए जाते हैं और इन्हें पुस्तिका के रूप में छपवा दिया जाता है।

उपलब्धि परीक्षणों का महत्व : उपलब्धि परीक्षणों का महत्व निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है-

1. उपलब्धि परीक्षण व्यक्ति की अमुक कार्य में निम्नतम योग्यताओं के मापन में सहायक होते हैं।
2. उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तियों के चयन एवं विद्यालय में छात्रों के प्रवेश के लिए किया जाता है।
3. ये परीक्षण वर्ग निर्धारण एवं पदोन्नति में प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं।
4. इन परीक्षणों की सहायता से शिक्षक की कुशलताओं एवं प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।
5. उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण एवं नियुक्ति करने में विस्तृत रूप से किया जाता है।
6. ये परीक्षण बालकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने में सहायक होते हैं।
7. चिकित्सा एवं संदर्शन के क्षेत्र में उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। शैक्षिक उपलब्धियों में विशेष रूप से पिछड़े हुए विद्यार्थियों की पहचान, निदान एवं उपचारात्मक शिक्षण की दृष्टि से परीक्षाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं। विभिन्न चिकित्सा कार्यों में इन परीक्षणों का महत्व बताते हुए एनेस्टेसी ने लिखा है कि "In case of truancy behaviour problem and delinquency ,for example, educational failures and mal-adjustment to the school situations may be contributing factors. Intellectually gifted children are sometimes found to be associated with improper educational placements."
8. इन परीक्षणों द्वारा सीखने में सुविधा प्रदान की जाती है। विद्यार्थी को यह भली भांति ज्ञात है कि उसने कितना पढ़ा है और कितना पढ़ना शेष है। इससे विद्यार्थी को भविष्य में और सीखने के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है।
9. ये परीक्षण विभिन्न शिक्षण विधियों की प्रभावात्मकता का भी मूल्यांकन करते हैं तथा श्रेष्ठ विधि के चयन में अध्यापक की सहायता करते हैं।
10. इन परीक्षणों के आधार पर विभिन्न विद्यालयों के शैक्षिक स्तरों का भी तुलनात्मक अध्ययन करना सम्भव हो जाता है।
11. इन परीक्षणों से विद्यार्थी में धैर्य, विनय एवं श्रम की प्रवृत्ति आदि गुणों का विकास होता है।

12. इन परीक्षणों का प्रयोग पाठ्यवस्तु के संशोधन में भी सहायक होता है।
13. ये परीक्षण विद्यार्थी की सर्वतोन्मुखी मानसिक योग्यता का ज्ञान करते हैं।
14. उपलब्धि परीक्षण अभिभावकों को रिपोर्ट देने तथा विद्यार्थियों को प्रमाण पत्र प्रदान करने में भी सहायता करते हैं।
15. इन परीक्षणों का निर्माण करने तथा सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से शिक्षकों की व्यावसायिक वृत्ति का विकास होता है।

3.2.4 उपलब्धि परीक्षण का प्रारूप निर्माण : अनुदेशनात्मक उद्देश्य, प्रारूप, ब्लूप्रिंट

उपलब्धि परीक्षणों का अर्थ, उद्देश्य जानने के बाद प्रश्न उठता है कि इनका निर्माण कैसे किया जाए। उपलब्धि परीक्षणों का निर्माण करना सरल नहीं होता है। इनके निर्माण की सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान होना चाहिए। उपलब्धि परीक्षण मानकीकृत भी हो सकते हैं और अमानकीकृत भी। इन सभी परीक्षणों के उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। इन परीक्षणों की विषय-वस्तु भी भिन्न-भिन्न होती है। परीक्षणों का निर्माण करते समय विभिन्न चरणों का प्रयोग किया जाता है।

परीक्षण की योजना : जिस प्रकार जीवन में कियी कार्य को करने से पहले पूर्व उसकी एक सुनिश्चित योजना बनानी पड़ती है, ठीक उसी प्रकार परीक्षण निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया से पूर्व एक सुनिश्चित योजना की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम परीक्षा की विषय-वस्तु का क्षेत्र एवं मापीय लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। परीक्षण के लिए समय एवं पूर्णांक निश्चित किया जाता है। परीक्षणों का निर्माण करते समय विद्यार्थियों की आयु और कक्षा स्तर को ध्यान में रखा जाता है। इसके बाद यह निश्चय किया जाता है कि ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावात्मक लक्ष्यों को कितना-कितना महत्व दिया जाना है। और फिर इसके पश्चात यह निश्चित किया जाता है कि किस-किस लक्ष्य के कितने-कितने प्रश्नों का निर्माण किया जायेगा। इसके अन्तर्गत वर्गों की योजना तथा विकल्पों की योजना बनायी जाती है। अन्त में इन सबको एक साथ एक सारणी में प्रदर्शित करते हैं, जिसे परीक्षण की रूपरेखा कहा जाता है।

उदाहरण के लिए कक्षा 8 के विद्यार्थियों के लिए भाषा के उपलब्धि परीक्षण की रचना करनी है तो इसकी योजना इस प्रकार की जाएगी-

1. सर्वप्रथम परीक्षा के लिए पूर्णांक (Maximum Marks) तथा अधिकतम समय (Maximum Time) निश्चित करेंगे, मान लीजिए प्रश्न पत्र के पूर्णांक 50 हैं और अधिकतम समय 3 घण्टे हैं।
2. इसके बाद मापीय लक्ष्य ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावात्मक लक्ष्यों को निश्चित करेंगे। इसमें यह निश्चित किया जाएगा कि किस लक्ष्य को कितना-कितना महत्व दिया जाएगा। मान लीजिए ज्ञानात्मक को 40%, क्रियात्मक को 40% तथा भावात्मक को 20% महत्व दिया जाएगा।
3. तीनों लक्ष्यों के महत्व का प्रतिशत ज्ञात करने के बाद यह निश्चित करेंगे कि विभिन्न वर्गों के किन-किन लक्ष्यों को कितना महत्व देना है। मान लीजिए ज्ञानात्मक वर्ग में भाषा ज्ञान को 20%, विषय-वस्तु ज्ञान को 20%, क्रियात्मक वर्ग में सीखे हुए शब्दों के प्रयोग को 10%, व्याकरण को 10%, विषय प्रतिपादन शैली

को 10%, भाषा शैली की प्रभावशीलता को 10%, भावात्मक वर्ग के लक्ष्यों में रुचियों के विकास को 8% एवं अभिवृत्तियों के विकास को 12% महत्व दिया गया है।

टिप्पणी

4. इसके बाद इन सबको एक सारणी में अंकित करेंगे-

सारणी 1

क्र.सं.	शिक्षण लक्ष्य	अंक	प्रतिशत %
1.	ज्ञानात्मक वर्ग	20	40%
	• भाषा ज्ञान	10	20%
	• विषय-वस्तु का ज्ञान	10	20%
2.	क्रियात्मक वर्ग	20	40%
	• सीखे हुए शब्दों का ज्ञान	5	10%
	• व्याकरण	5	10%
	• विषय प्रतिपादन शैली	5	10%
	• भाषा शैली की प्रभावशीलता	5	10%
3.	भावात्मक वर्ग	10	20%
	• रुचि परीक्षण	4	8%
	• अभिवृत्ति परीक्षण	6	12%

शिक्षण लक्ष्यों को महत्व देने के बाद यह निश्चित किया जाएगा कि इन लक्ष्यों को अपने लिए किस-किस प्रकार से और कितने-कितने प्रश्नों की रचना करनी है और उन्हें कितना कितना महत्व देना है। मान लीजिए उपरोक्त लक्ष्यों का मापन करने के लिए 2 निबन्धात्मक, 6 लघु उत्तरीय और 8 वस्तुनिष्ठ प्रश्न पूछे जाने हैं और उन्हें क्रमशः 48%, 36% तथा 16% महत्व दिया जाना है। अब प्रश्नों की संख्या, अंक विभाजन तथा प्रतिशत महत्व को एक सारणी में अंकित करेंगे-

***सारणी 2** प्रश्नों के आधार पर परीक्षण का अंक विभाजन*

क्र.स.	प्रश्नों के प्रकार	प्रश्नों की संख्या	अंक	प्रतिशत
1.	निबन्धात्मक	2	24	48
2.	लघु उत्तरीय	6	18	36
3.	वस्तुनिष्ठ	8	8	16
	कुल	16	50	100

अन्त में सारणी 1 तथा सारणी 2 को मिलाकर एक विशिष्ट सारणी का निर्माण किया जाता है। इसे परीक्षण की रूपरेखा (ब्लू प्रिंट) कहते हैं। इस रूपरेखा सारणी को देखकर यह तुरन्त बताया जा सकता है कि अमुक विषय-वस्तु पर आधारित विभिन्न शिक्षण लक्ष्यों के लिए प्रत्येक प्रकार के प्रश्नों को कितना-कितना महत्व दिया गया है।

टिप्पणी

सारणी 3 रूपरेखा *(blue print)*

शिक्षण लक्ष्य	निबन्धात्मक प्रश्न	लघु उत्तरीय	वस्तुनिष्ठ	योग	महत्व
ज्ञानात्मक पक्ष	**6**	**6**	**8**	**20**	**40%**
• भाषा ज्ञान	3	3	3	4	
• विषय-वस्तु का ज्ञान	3	3	4		
क्रियात्मक पक्ष	**12**	**8**	**0**	**20**	**40%**
• सीखे हुए शब्दों का ज्ञान	3	2	0		
• व्याकरण	3	2	0		
• विषय प्रतिपादन शैली	3	2	0		
• भाषा शैली की प्रभावशीलता	3	2	0		
भावात्मक पक्ष	**6**	**4**	**0**	**10**	**20%**
• रुचि परीक्षण	3	0			
• अभिवृत्ति परीक्षण	3	2			
कुल	24	18	8		100

दोनों ओर से योग बराबर आने से स्पष्ट है कि प्रश्न एवं अंकों का विभाजन शिक्षण लक्ष्यों को दिए गये महत्व के अनुसार हुआ है। यदि दोनों ओर के अंकों का यह योग बराबर न आए तो समझ लेना चाहिए कि अंक विभाजन सही नहीं हुआ है और फिर उसे चैक करके ठीक किया जा सकता है।

परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की रचना (Constructing the preliminary Draft of the test) : सोपान में परीक्षण योजना के अनुसार प्रश्नों की रचना की जाती है। अर्थात् प्रश्नपत्र में कक्षा स्तर के अनुसार निबन्धात्मक प्रश्न, लघुउत्तरीय प्रश्नों तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न मापीय लक्ष्यों के अनुसार लिखे जाते हैं।

परीक्षण का पुनर्निरीक्षण (Review of Test) : इस सोपान में उपरोक्त तरीके से तैयार किए गये परीक्षण का विशेषज्ञों द्वारा पुनर्निरीक्षण कराया जाता है। और उनके द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर प्रश्नों में यदि कोई त्रुटि हो तो संशोधन किया जाता है।

परीक्षण का टंकण : अन्त में परीक्षण को पूर्ण स्वरूप प्रदान करके उसका टंकण अथवा मुद्रण कराया जाता है।

उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय ध्यान रखने योग्य बातें : विभिन्न प्रश्नों की रचना करते समय निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए-

- प्रत्येक विषय को पढ़ाने के भिन्न-भिन्न उद्देश्य होते हैं। अत: उपलब्धि परीक्षण द्वारा किस उद्देश्य की जाँच करनी है यह स्पष्ट कर लेना चाहिए। अर्थात् परीक्षण के उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए।
- पाठ्यक्रम का विश्लेषण कर लेना चाहिए अर्थात् जिस विषय की उपलब्धि परीक्षा करानी है अथवा परीक्षण का निर्माण करना है उसका पाठ्यक्रम ठीक से समझ लेना चाहिए।
- प्रश्नपत्र पर निर्देश स्पष्ट रूप से दिए जाएँ।
- प्रत्येक प्रश्न तथा प्रश्न के प्रत्येक खण्ड के लिए अंक निर्धारित होने चाहिए।
- प्रश्नों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए।

- वस्तुनिष्ठ प्रश्न अनेक प्रकार के होते हैं, मापीय लक्ष्यों के अनुसार इनका चयन करना चाहिए। ये ऐसे प्रश्न हों जिनके उत्तर देने में विद्यार्थियों को स्मरण, तर्क एवं विवेचन करना पड़े।
- प्रश्नों का कठिनाई क्रम ऐसा हो कि छात्रों का वर्गीकरण उच्च, मध्यम एवं निम्न में सरलता से किया जा सके।
- परीक्षण बनाने के बाद उसका कई बार निरीक्षण करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पूरे प्रकरण और समस्त मापीय उद्देश्यों के मापन के लिए प्रश्नों का निर्माण हुआ है।

निर्देशात्मक प्रक्रिया

निर्देशात्मक प्रक्रिया का उद्देश्य किसी व्यक्ति के एकीकृत विकास को बढ़ावा देना है। इसलिए हमें विषय स्पष्ट होना चाहिए कि हम अपने शिक्षण से किस प्रकार के परिणामों की उम्मीद करते हैं- ज्ञान, समझ, आवेदन या प्रदर्शन कौशल?

एक प्रभावी शिक्षण का पहला चरण डिजाइन किए गए शिक्षण परिणामों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना है। यह एक श्रेष्ठ मूल्यांकन प्रक्रिया को विकसित करने में भी मदद करता है। शिक्षण की प्रक्रिया में निर्देशात्मक उद्देश्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनुदेशन शब्द का साधारण भाषा में अर्थ होता है- सूचना देना अथवा आज्ञा देना। अनुदेशन को अंग्रेजी में Instruction कहते हैं। अनुदेशन शब्द का वास्तविक स्वरूप हमें कक्षा शिक्षण में मिलता है। कक्षा शिक्षण के समय अध्यापक किसी भी विषय को किसी भी छात्र तक पहुँचाने के लिए जो क्रिया करता है, वह अनुदेशन कहलाती है। दूसरे शब्दों में, अनुदेशन शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य पाठयक्रमीय ज्ञान के आदान-प्रदान की क्रिया है।

अनुदेशन की परिभाषा

एस.एम. कोरे (S.M. Corey): ''अनुदेशन एक पूर्वनियोजित शैक्षिक प्रक्रिया है जिसमें शिक्षार्थी के वातावरण को इस प्रकार नियंत्रित किया जाता है कि विशिष्ट परिस्थितियों में वह इच्छित व्यवहार को प्रदर्शित कर सके।''

गेट्स (Gates) : ''अनुदेशन वह प्रक्रिया है, जो शिक्षार्थी को कुछ उद्देश्यों की ओर प्रभावित करती है।''

अनुदेशन प्रक्रिया

अनुदेशन की प्रक्रिया में कम से कम व किसी न किसी प्रकार से एक प्रकार का वार्तालाप चलता है जिसका उद्देश्य होता है-तर्क देना, प्रमाणों की सत्यता निश्चित करना, उपयुक्तता सिद्ध करना, व्याख्या करना, निष्कर्ष निकालना आदि। इसमें समय-सीमा, उपलब्ध साधन और पाठ्यक्रम को ध्यान में रखते हुए उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। उद्देश्यों को प्राय: व्यवहारगत परिवर्तनों के रूप में लिखा जाता है। ये उद्देश्य यदि प्राप्त हो जाते हैं, तब इसका अर्थ यह है कि अनुदेशन के पश्चात शिक्षार्थी इन व्यवहारों को प्रदर्शित कर सकेगा। अनुदेशन व्यवहारगत परिवर्तन पर आधारित होता है। इसमें दो प्रकार के व्यवहार पर बल दिया जाता है-

(अ) न्यूनतम आवश्यक व्यवहार, यह व्यवहार विषय-वस्तु को सीखने के लिए आवश्यक पूर्वज्ञान से सम्बन्धित है।

(ब) अंतिम व्यवहार, जिसे शिक्षार्थी विषय-वस्तु को सीखने के प्रमाणस्वरूप प्रदर्शित करता है।

अनुदेशन देने से पहले जिन छात्रों को अनुदेशित किया जाना है, उनकी मानसिक योग्यता तथा उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर का ज्ञान प्राप्त कर लेना भी आवश्यक है।

निर्देशात्मक उद्देश्यों के मुख्य उद्देश्य

(1) उद्देश्यपूर्ण सीखने के परिणामों को स्पष्ट करते हुए निर्देशात्मक प्रक्रिया के लिए दिशा प्रदान करना।

(2) विद्यालयों, अभिभावकों और शैक्षिक संगठनों को निर्देशात्मक मंशा व्यक्त करना।

(3) मापन किए जाने वाले प्रदर्शन का वर्णन करके सीखने का मूल्यांकन करने के लिए एक आधार प्रदान करना।

अत: निर्देशात्मक उद्देश्य शिक्षण के तरीकों और सामग्रियों को अधिक प्रभावी बनाता है तथा यह जानने में भी सहायता करता है कि विद्यालयों को क्या सीखना चाहिए और कैसे सीखना व्यक्त किया जाना चाहिए।

हम यह जानते हैं कि एक प्रभावी मूल्यांकन एक स्पष्ट विवरण पर निर्भर करता है। इसलिए किसी भी मूल्यांकन उपाय को चुनने या विकसित करने से पूर्व हमें इच्छित सीखने के परिणामों को निर्दिष्ट करना चाहिए जिससे निर्देशात्मक उद्देश्यों को अच्छी तरह से बताया जाए।

अनुदेशन के सोपान

अनुदेशन में प्रयुक्त की जानेवाली किसी भी प्रणाली जैसे- व्याख्यान, प्रदर्शन, सामान्य शिक्षण आदि में निम्नलिखित अनुदेशन के सोपान का अनुसरण किया जाना चाहिए-

1. **उद्देश्यों का निर्धारण :** अनुदेशन के उद्देश्य स्पष्ट व सुनिश्चित होने चाहिए तथा प्रशिक्षणार्थियों द्वारा प्रशंसित होने चाहिए।
2. **तैयारी :** अनुदेशन की प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि अनुदेशन की तैयारी किस प्रकार से की गई है, क्योंकि पूर्व सुनियोजित तैयारी ही अधिगमकर्ता (Learner) को सीखने में सहायता प्रदान करती है।
3. **प्रस्तुतीकरण :** अनुदेशन की भूमिका एक निर्माता, प्रबंधक, अभिनेता, प्रोत्साहक आदि अनेक रूपों में होती है, अत: अनुदेशक को प्रस्तुतीकरण करते समय अत्यंत सावधानी बरतनी पड़ती है।
4. **सम्प्रेषण :** अनुदेशक के द्वारा अभिव्यक्त किए गए विचार छात्रों तक भली-भांति पहुँचने चाहिए।
5. **आत्मिकरण :** संप्रेषित विचारों को छात्रों द्वारा आत्मसात किया जाना चाहिए, ताकि अनुदेशक छात्रों में विश्वास जाग्रत कर, उनके लिए प्रेरणा का स्रोत बन सके।
6. **मूल्यांकन :** मूल्यांकन के द्वारा छात्रों की कमजोरियों को जानकर उनके निवारणार्थ उपाय किए जा सकते हैं।
7. **पृष्ठपोषण :** जो भी पाठ विद्यार्थियों को पढ़ाया जाए, उसमें उनके द्वारा की गई गलतियों व उपलब्धियों का ज्ञान अनुदेशक द्वारा कराया जाना चाहिए।

अत: अनुदेशन के उपरोक्त सोपान और प्रक्रिया से यह स्पष्ट होता है कि अनुदेशन कक्षा शिक्षण में चलने वाली एक प्रक्रिया है जिसे व्यवस्थित रूप से कक्षा में शिक्षक द्वारा प्रयुक्त किया जाता है।

परीक्षण का प्रारम्भिक रूप तैयार करना (Preparing the Preliminary Draft of the Test) : परीक्षणकर्ता जब एक परीक्षण निर्माण की सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित योजना की रूपरेखा तैयार कर लेता है, तो तद्नुकूल योजना के तहत इसे क्रियान्वित करता है। एक परीक्षण पदों या प्रश्नों का एक सेट होता है। प्रश्नों या पदों के आधार पर ही उस प्रत्यय (Concept) का मापन किया जाता है, जिसके लिये परीक्षण तैयार किया गया है। परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की रचना करने के क्रम में परीक्षण निर्माणकर्ता सर्वप्रथम इन्हीं पदों या प्रश्नों के संबंध में निर्णय लेता है, कि परीक्षण में कितने पद होंगे? किस–किस प्रकार के प्रश्न होंगे? इसके उपरान्त वह पदों की रचना करता है। पदों की रचना के उपरान्त परीक्षण प्रशासन के संबंध में निर्देश तैयार करता है और फिर फलांकन की विधि तैयार करता है, जिसके फलस्वरूप परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की लिखित रूपरेखा तैयार हो जाती है। परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की रचना के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं –

परीक्षण के पद (Item of the Test) : परीक्षण रचना के पूर्व परीक्षण की सुव्यवस्थित योजना में यह निर्धारित किया जा चुका है, कि परीक्षण में कितने पद तथा किस प्रकार के भेद होंगे। परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की रचना करते समय परीक्षण के पदों के संबंध में जो पूर्व योजना तैयार की गई थी, उसे कार्य रूप में इस चरण में परिणत करते हैं। इस चरण के अन्तर्गत परीक्षण के पद कितने प्रकार के होते हैं तथा विशिष्टीकरण तालिका क्या होती है की जानकारी की आवश्यकता होती है।

परीक्षण के पद या प्रश्नों के प्रकार : परीक्षण में प्रश्नों या पदों की संख्या बहुत कुछ इस तथ्य पर निर्भर करती है, कि जिस मापित प्रत्यय के लिये परीक्षण की रचना की जा रही है, उस मापित प्रत्यय के कितने क्षेत्र अथवा कितने अवयव हैं। जब मापित क्षेत्र या अवयव अधिक होते हैं, तो परीक्षण में पदों की संख्या भी अधिक होती है और जब मापित क्षेत्र या अवयव कम होते हैं, तो परीक्षण में पदों की संख्या भी कम होती है। परीक्षण में पद के प्रकार भी बहुत कुछ परीक्षण के क्षेत्र या अवयवों की संख्या और उसकी प्रकृति पर निर्भर करते हैं। परीक्षण में पदों के प्रकार निम्न हो सकते हैं–

(क) द्विविकल्पीय (सत्य/असत्य, हां/नहीं) प्रश्न

(ख) बहुविकल्पीय प्रश्न

(ग) मिलानात्मक प्रश्न

(घ) रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न

(ङ) पुनः स्मरणात्मक प्रश्न

(च) लघु उत्तरीय प्रश्न

(छ) निबन्धात्मक प्रश्न

विशिष्टीकरण तालिका या ब्लू प्रिन्ट : जब परीक्षण में प्रश्नों की संख्या एवं प्रकार के सन्दर्भ में निर्धारण हो जाता है, तब विशिष्टीकरण तालिका बनाकर यह निश्चित करते हैं, कि अलग–अलग प्रकार के प्रश्नों की संख्या कितनी और कितने प्रतिशत होगी? इस तालिका के निर्माण से परीक्षण निर्माणकर्ता को जानकारी हो जाती है, कि परीक्षण के विभिन्न अवयवों से संबंधित कितने–कितने प्रश्न और कितने प्रतिशत प्रश्न होंगे। उदाहरणार्थ एक विशिष्टीकरण तालिका दर्शायी गयी है–

विशिष्टीकरण या ब्लू प्रिन्ट तालिका (जीव विज्ञान)

(Specification or Blue Print Table)

क्र. स.	विशिष्ट उद्देश्य		ज्ञान (K)	अवबोध (U)	कौशल (S)	योग (T)
	भार		**40%**	**20%**	**40%**	**100%**
	प्रकार Type	Weightage	प्रत्यास्मरण सत्यासत्य बहुविकल्प	प्रत्यास्मरण सत्यासत्य बहुविकल्प	प्रत्यास्मरण सत्यासत्य बहुविकल्प	
1.	सजीवों का संगठन	50%	2 2 2	1 1 1	2 2 2	15
2.	जल	20%	4 2 2	2 1 1	4 2 2	20
3.	लाभदायक पौधें एवं जन्तु	20%	4 2 2	2 1 1	4 2 2	20
4.	वायु	10%	2 1 1	- - 1	2 1 1	10
5.	भोजन, स्वास्थ्य एवं रोग	15%	2 2 2	1 1 1	2 2 2	15
6.	मुद्रा	20%	4 2 2	2 1 1	4 2 2	20
		100%	**18 11 11**	**9 5 6**	**18 11 11**	**100**

टिप्पणी

3.2.5 परीक्षण निर्माण की रचना चयन (Steps or Items of Test Construction)

मापन के क्षेत्र में, परीक्षणों की रचना कुछ सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर की जाती है। ये परीक्षण मानकीकृत भी हो सकते हैं और अमानकीकृत भी। इन सभी परीक्षणों के उद्देश्य अलग–अलग होते हैं। इन परीक्षणों की विषय–वस्तु भी अलग–अलग या भिन्न होती है। परीक्षण तैयार होने के बाद, परीक्षण का मानकीकरण किया जाता है। जिन परीक्षणों का मानकीकरण (Standardisation) किया जाता है, उनका प्रयोग मापन के क्षेत्र में बहुतायत से किया जाता है। मनोविज्ञान में प्रयुक्त परीक्षण बहुधा मनोवैज्ञानिक परीक्षण तथा शिक्षा में प्रयुक्त परीक्षण, शैक्षिक परीक्षण कहे जाते हैं। मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक परीक्षणों की रचना विभिन्न पदों या चरणों के आधार पर की जाती है।

परीक्षण निर्माण की योजना बनाना (Planning the Test Construction)

परीक्षण निर्माण के पूर्व सर्वप्रथम किसी भी परीक्षण के संबंध में परीक्षण निर्माण की सुनियोजित एवं विस्तृत योजना तैयार की जाती है। जिस प्रकार एक प्रबुद्ध व्यक्ति किसी कार्य को सम्पादित करने से पूर्व कार्य की योजना बनाता है और फिर कार्य सम्पादित करता है, ठीक उसी प्रकार परीक्षण निर्माणकर्ता परीक्षण निर्माण से पूर्व परीक्षण निर्माण की सुनियोजित योजना बनाता है। परीक्षण निर्माण की योजना के अन्तर्गत परीक्षण के उद्देश्य, परीक्षण का स्वरूप, परीक्षण की भाषा, जनसंख्या में प्रतिदर्श (Sample) का चयन, परीक्षण की रचना किन लोगों के लिये हो तथा इसकी विषय–वस्तु क्या हो, का निर्धारण करता है। परीक्षण निर्माण योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य सम्पादित किये जाते हैं–

1. **परीक्षण उद्देश्यों का यथोचित निर्धारण** (Ascertaining the Appropriate Purpose of the Test) : किसी परीक्षण रचना की योजना बनाते समय सर्वप्रथम परीक्षण के उद्देश्य निर्धारित किये जाते हैं। परीक्षण निर्माण के उद्देश्यों का

निर्धारण स्वयं परीक्षण निर्माणकर्ता ही करता है। परीक्षण के निर्धारित उद्देश्य संक्षिप्त, स्पष्ट और वास्तविक होने चाहिये। उदाहरणार्थ यदि कोई परीक्षण निर्माणकर्ता व्यक्तित्व मापन सूची की रचना करना चाहता है, तो परीक्षण योजना के उद्देश्यों के निर्धारण में उसे निश्चित कर लेना चाहिये, कि वह व्यक्तित्व के किन–किन शीलगुणों (Traits) का मापन करना चाहता है। इस परीक्षण की रचना किस आयु समूह के लिये है, यह पूर्व में ही निर्धारित कर लेता है।

2. **विषय–वस्तु का निर्धारण** (Ascertaining the Subject Matter) : परीक्षणकर्ता परीक्षण निर्माण के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए तद्नुकूल विषय–वस्तु को निर्धारित करता है। परीक्षण निर्माणकर्ता यदि समायोजन से संबंधित परीक्षण की रचना करता है और इसका उद्देश्य स्कूल जाने वाले बालकों के समायोजन का मापन करना है, तो सर्वप्रथम वह यह निर्धारित करेगा, कि उसे समायोजन के किन–किन क्षेत्रों का मापन करना है। मापन क्षेत्र के अन्तर्गत गृह समायोजन, विद्यालय समायोजन, स्वास्थ्य समायोजन, संवेगात्मक समायोजन और सामाजिक समायोजन को चुन सकता है, इसके साथ ही आयु वर्ग तथा शैक्षिक स्तर का भी निर्धारण करता है।

3. **परीक्षण के रूप आदि के संबंध में निर्धारण** (Ascertaining the Form etc. of the Test) : परीक्षण के उद्देश्य में तद्नुकूल परीक्षण की विषय–वस्तु निश्चित करने के उपरान्त परीक्षण निर्माणकर्ता यह निर्धारित करता है, कि परीक्षण का स्वरूप क्या होगा? शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test) होगा या अशाब्दिक परीक्षण (Non-Verbal Test)। व्यक्तिगत परीक्षण (Individual Test) होगा या सामूहिक परीक्षण (Group Test) आदि। इसके उपरान्त वह यह निर्धारित करता है, कि परीक्षण का माध्यम क्या होगा? अर्थात् परीक्षण किस भाषा का होगा– अंग्रेजी भाषा, हिन्दी भाषा, पंजाबी भाषा, गुजराती भाषा या बंगाली भाषा आदि। परीक्षण निर्माणकर्ता यह भी निर्धारित करता है, कि परीक्षण मानकीकृत (Standardized) प्रकार का होगा या अमानकीकृत (Unstandardized) प्रकार का होगा। परीक्षण में किस प्रकार के पद तथा कितने प्रकार के पद (Type of Items) सम्मिलित किये जाएंगे। परीक्षण निर्माणकर्ता यह भी निश्चित कर लेता है, कि परीक्षण की रचना में कितना समय और कितनी धनराशि व्यय होगी इन सब बातों के संबंध में वह पहले ही सुनियोजित योजना तैयार कर लेता है।

परीक्षण पदों की रचना (Construction of Test Items)

परीक्षण पदों की रचना करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि प्रश्न पूरे पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करें। प्रश्नों में वे सभी विशेषताएं होनी चाहिये जो एक अच्छे प्रश्न में होती हैं। प्रश्न की सबसे प्रमुख विशेषता उसका वस्तुनिष्ठ एवं विभेदकारी होना है। प्रश्नों की रचना करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

(अ) प्रश्नों के विभिन्न रूपों का समावेश किया जाये।

(ब) प्रश्नपत्र के प्रारंभिक रूप में प्रश्नों की संख्या पर्याप्त रखी जाये क्योंकि बाद में बहुत से प्रश्न कठिनाई स्तर एवं वैधता की दृष्टि से उचित न पाये जाने पर प्रश्न पत्र में से निकाल दिये जाते हैं।

(स) प्रश्नों की भाषा सरल, संक्षिप्त एवं स्पष्ट होनी चाहिये। परीक्षार्थी को व्यर्थ में उलझाने का प्रयास न किया जाये।

(द) ऐसे प्रश्नों को न रखा जाये जिनका उत्तर अनुमान से दिये जाने की संभावना हो।

(य) प्रश्नों का स्वरूप इस प्रकार निश्चित किया जाये ताकि छात्र विशेष व्यक्तिगत तौर पर लाभ न उठा सकें।

(र) परीक्षा के अंतिम प्रारूप परीक्षण पदों की संख्या न तो बहुत अधिक रखी जाये और न ही बहुत कम। परीक्षण पदों की संख्या कम रखने से परीक्षा की विश्वसनीयता प्रभावित होती है और अधिक रखने से छात्र को बोरियत होती है।

(ल) परीक्षा में प्रत्यास्मरण (Recall) तथा पूर्ति (completion) प्रश्नों को विशेष स्थान न दिये जाएं क्योंकि उनके उत्तर छात्र किसी भी प्रकार से दे सकता है।

(व) प्रश्नों में सदैव, कभी नहीं आदि शब्दों का प्रयोग यथा संभव न किया जाये क्योंकि ये (specific determiners) प्रश्न को कम विश्वसनीय बना देते हैं।

(ह) प्रश्नों में किसी प्रकार का संदेह, व्याकरण संबंधी त्रुटि अथवा वाक्यों की अपूर्णता अक्षम्य मानी जाये।

परीक्षण पदों का चयन (Selection of Test items)

परीक्षा का प्रारंभिक प्रारूप (First try out) तैयार हो जाने पर प्रश्नों की छंटनी करने के लिये इस परीक्षा को विद्यार्थियों के एक प्रतिनिध्यात्मक समूह (Representative sample) अथवा एक विशाल समूह पर प्रशासित किया जाता है। इस प्रारूप में यह निश्चित किया जाता है कि कौन–से प्रश्न विभेदकारी हैं कौन–से नहीं, और सम्पूर्ण परीक्षा कहां तक विश्वसनीय, वैध, प्रयोज्य, व्यापक अथवा वस्तुनिष्ठ है। परीक्षा लेने के बाद परीक्षार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन किया जाता है तथा उनमें से उन प्रश्नों को छांट लिया जाता है जिन्हें 75 प्रतिशत या उससे अधिक परीक्षार्थियों ने सही हल किया है तथा जिन्हें 25 प्रतिशत परीक्षार्थी भी सही हल नहीं कर पाये हैं। 75 प्रतिशत वाले प्रश्न अत्यन्त सरल तथा 25 प्रतिशत वाले प्रश्न अत्यन्त कठिन समझे जाते हैं। शेष प्रश्नों को सरल से कठिन के क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है।

3.2.6 परीक्षण पदों को संगृहीत करना : परीक्षण प्रशासन एवं फलांकन प्रक्रिया हेतु दिशा निर्देश

परीक्षण के मुख्य सोपान निम्नलिखित हैं–

1. परीक्षण की योजना बनाना
2. तैयारी
3. परीक्षण का अन्तिम प्रारूप
4. परीक्षण का मूल्यांकन

1. परीक्षण की योजना बनाना (Planning of Test) : जिस प्रकार जीवन में किसी कार्य को करने से पूर्व उसकी एक सुनिश्चित योजना बनानी पड़ती है, उसी प्रकार परीक्षण निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया से पूर्व भी एक निश्चित योजना की आवश्यकता होती है, अर्थात्, परीक्षण निर्माता का सर्वप्रथम कार्य परीक्षण योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करना है।

2. तैयारी (Preparation) : परीक्षण की निश्चित एवं व्यवस्थित योजना बनाने के पश्चात् ही परीक्षण निर्माता परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की तैयारी करने लगता है।

सर्वप्रथम, उद्देश्यों एवं विषय—वस्तु के अनसुार वह विभिन्न पदों (Items) का चयन अन्य स्रोतों से एवं स्वयं निर्माण से करता है। वह पदों को अपने अनुभवों के आधार पर, उपलब्ध मानकों के आधार पर, पूर्व निर्मित परीक्षणों में से छांटकर अथवा अन्य स्रोतों से चयन कर एकत्रित कर लेता है, जो कि परीक्षण की विषय—वस्तु का प्रतिनिधित्व कर सकें। परीक्षण में जितने प्रकार के पदों की आवश्यकता होती है, उन्हें इस प्रारम्भिक रूप से ही निर्मित कर लिया जाता है। परीक्षण के पदों को एकत्रित करने तथा उनके पद रूप को निश्चित करने के पश्चात् परीक्षण निर्माता के लिये यह आवश्यक हो जाता है, कि वह पदों को विषय—वस्तु, उपयुक्तता तथा गुणों की दृष्टि से अवलोकित करें, जिससे कि उसके इस प्रारम्भिक रूप में अधिक सुधार किया जा सके। परीक्षण पदों को दो—तीन विषय विशेषज्ञों (Experts) के पास भेजकर उनके विचार जानने चाहिये व उनके सुझाव के आधार पर संशोधन भी करना चाहिये। परीक्षण के प्रारम्भिक रूप में प्रायः अन्तिम रूप की अपेक्षाकृत दोगुने पद सम्मिलित रहते हैं। इस सोपान के अन्तर्गत परीक्षण निर्माता को निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिए—

(क) विभिन्न स्रोतों से परीक्षण पदों को एकत्रित करना।

(ख) पदों के विभिन्न रूपों को सम्मिलित करना।

(ग) पदों का स्वयं तथा विशेषज्ञों की सहायता से अवलोकन एवं सम्पादन करना।

(घ) परीक्षार्थी एवं परीक्षण निर्माता के लिये अलग—अलग निर्देशन लिख देना।

(ङ) अंकन विधि का निश्चय करना।

3. परीक्षण का अन्तिम प्रारूप (Final Try-out) : परीक्षण की योजना एवं उसके प्रारम्भिक रूप की रचना के बाद यह जानने का प्रयास किया जाता है, कि परीक्षण कितना श्रेष्ठ, वैध एवं विश्वसनीय है। परीक्षण की वास्तविक रचना से पूर्व उसके प्रारम्भिक रूप की जांच कर लेनी चाहिये। इस प्रारम्भिक जांच को Pilot Study भी कहते हैं। इसके निम्न उद्देश्य होते हैं—

(क) इस जांच के द्वारा कमजोर एवं बेकार के पदों को परीक्षण से निकाल दिया जाता है।

(ख) परीक्षण के अन्तिम रूप में पदों की वास्तविक संख्या इंगित करना।

(ग) परीक्षार्थी एवं परीक्षक के उत्तरों में रुचि को विकसित करना।

(घ) विभिन्न पदों के मध्य अन्तर—सह—संबंध (Inter-Item Correlation) ज्ञात करना।

(ङ) समस्त पदों को उप—भागों में व्यवस्थित करना।

(च) अन्तिम रूप की वास्तविक समय—सीमा ज्ञात करना।

(छ) अंकन विधि का निश्चय करना।

प्रस्तुत सोपान के अन्तर्गत परीक्षण की जांच दो भागों में की जाती है। प्रथम जांच पूर्व—प्रारूप (Pre Try-out) कहलाती है तथा दूसरी जांच वास्तविक प्रारूप (Actual Try-out) कहलाती है।

प्रथम जांच (Pre Try-out) : प्रारम्भिक जांच के लिये परीक्षण का प्रशासन प्रायः मूल जनसंख्या (Total Population) के 15 या 20 लोगों पर इस उद्देश्य से किया जाता है, जिससे उसकी मुख्य कमियों को ढूंढ़कर उन्हें दूर किया जा सके।

दूसरी जांच (Actual Try-out) : परीक्षण की वास्तविक जांच के अन्तर्गत पद–विश्लेषण (Item-Analysis) की तकनीकी प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। पद–विश्लेषण एक अत्यंत महत्वपूर्ण सोपान है। इसके बिना कोई भी परीक्षण पूरा नहीं होता। पद–विश्लेषण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से परीक्षण निर्माता यह निश्चय करता है, कि उसे परीक्षण के किन पदों (Items) को सम्मिलित करना है और किन पदों को छोड़ना है।

चूंकि, परीक्षण निर्माता अपने परीक्षण में उन्हीं प्रश्नों को सम्मिलित करना चाहता है, जो उसके उद्देश्य प्राप्ति में सहायक होते हैं, इस दृष्टि से परीक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये परीक्षण निर्माता का उसमें सम्मिलित किये जाने वाले पदों का अलग–अलग अध्ययन करना ही पद–विश्लेषण कहलाता है। इस प्रक्रिया की कसौटी (Criteria) के रूप में हमें प्रश्नों की विभेदकारिता क्षमता (Item Validity Index) तथा प्रश्नों का कठिनाई स्तर (Item Difficulty Index or D.I.) की गणना करनी होती है तथा केवल उन्हीं पदों का चयन किया जाता है, जो इन दोनों कसौटियों पर सही उतरते हैं।

परीक्षण से संबंधित विभिन्न व्यावहारिक पक्षों; जैसे– परीक्षण की सम्भावित समयावधि, मुद्रण, व्यय एवं प्रशासन के संबंध में भी विचार करके निर्णय लेना चाहिये।

4. परीक्षण का मूल्यांकन (Evaluation) : परीक्षण का मूल्यांकन निम्न दो बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है–

(क) परीक्षा कितनी वैध, विश्वसनीय, विभेदकारी या वस्तुनिष्ठ है, अर्थात् परीक्षण में आदर्श मापन यंत्र की विशेषताएं किस सीमा तक उपस्थित हैं।

(ख) परीक्षा देने वालों के उत्तरों का स्वरूप कैसा है अर्थात् विद्यालयों में विषय का शिक्षण किस प्रकार चल रहा है। उत्तम प्रकार के परीक्षण की यह सूचना विश्वस्त रूप से दे सकते हैं। अतः परीक्षण का मूल्यांकन उत्तम मापन की भावी कसौटियों को ध्यान में रखकर ही किया जाता है।

परीक्षणों का प्रशासन एवं फलांकन हेतु दिशा निर्देश

परीक्षणों का प्रशासन एवं फलांकन : जैसा कि ऊपर बताया गया है कि शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रकार के उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है- शिक्षक निर्मित परीक्षण तथा मानकीकृत परीक्षण। शैक्षिक अधिगम का मूल्यांकन/आकलन करने के लिए उपर्युक्त विधि से निर्मित परीक्षणों को प्रशासित किया जाता है। यद्यपि प्रशासनिक समस्याएं किसी भी परीक्षण के संचालन में उठती हैं लेकिन यदि संचालन काफी बड़ा हो अर्थात् परीक्षण का प्रशासन किस बड़े समूह पर हो तो इसका महत्व और भी अधिक इोता है। किसी भी कुशल परीक्षण प्रशासन के दो मुख्य उद्देश्य होते हैं- (1) सफल प्रशासन (2) फलांकन गणना।

परीक्षण प्रशासन : कुछ परीक्षणों का प्रशासन बहुत सरल होता है जबकि कुछ परीक्षणों का प्रशासन इतना कठिन होता है कि उनके संचालन/प्रशासन के लिए विशेष तथा लम्बे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। सामान्यतः सामूहिक परीक्षणों के प्रशासन में

टिप्पणी

व्यक्तिगत परीक्षणों की अपेक्षा कम दक्षता की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत परीक्षणों में केवल निर्देश ही नहीं पढ़ने होते अपितु अनेक अन्य कार्य करने होते हैं- सौहार्द स्थापित करना, परीक्षण सामग्री की सुरक्षा, बैठने की व्यवस्था, प्रश्न पत्रों का वितरण, नकल की प्रवृत्ति को रोकना आदि।

बैठने की व्यवस्था : बैठने की व्यवस्था परीक्षण सम्पादन का महत्वपूर्ण कार्य है। बैठने की व्यवस्था से तात्पर्य परीक्षार्थियों के परीक्षा भवन में सुनियोजित एवं क्रमबद्ध ढंग से बैठने की व्यवस्था से होता है। बैठने की एक ऐसी व्यवस्था जिसमें परीक्षार्थी सामान्य स्थिति में रहें और परीक्षण का सम्पादन उचित ढंग से हो सके। बैठक व्यवस्था किसी परीक्षण सम्पादन की अनिवार्य शर्त है। इसके लिए सम्बन्धित संस्था को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि परीक्षण सम्पादन करते समय बाधक तत्व हावी न हों। यदि कुछ बाधक तत्व हैं, तो उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। संस्था में प्रकाश, हवा, पानी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। परीक्षण प्रशासन में बैठने की व्यवस्था, छात्र संख्या एवं परीक्षण के प्रकार के आधार पर होनी चाहिए ताकि परीक्षण प्रशासन का उद्देश्य शत-प्रतिशत प्राप्त किया जा सके।

बैठक व्यवस्था के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व : परीक्षार्थियों की उचित बैठक व्यवस्था के अनेक उद्देश्य होते हैं अथवा कई कारणों से उचित बैठक व्यवस्था की आवश्यकता होती है-

1. बैठक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य शरारती तत्वों पर कठोरता से अंकुश लगाना होता है।
2. परीक्षार्थियों के बैठने की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि वे एक-दूसरे की सहायता न कर सकें। अर्थात् परीक्षार्थियों के बीच उचित दूरी होनी चाहिए।
3. बैठने की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि परीक्षार्थी अपने आपको सामान्य अनुभव करें।
4. जिस कक्ष में परीक्षण कार्य हो वह शान्त एवं बाह्य कोलाहल से मुक्त हो।
5. जहाँ परीक्षण की व्यवस्था हो वहाँ वायु एवं प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि परीक्षार्थी को किसी प्रकार की असुविधा का सामना न करना पड़े।
6. बैठक व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि परीक्षार्थी को परीक्षापत्र वितरण में तथा उत्तरपुस्तिकाओं के वितरण में और एकत्रीकरण में निरीक्षणकर्त्ता को कोई परेशानी न हो तथा कार्य सरलता से सम्पादित हो जाए।
7. बैठक व्यवस्था में परीक्षण कक्ष का चयन परीक्षार्थियों की संख्या के अनुकूल होना चाहिए।
8. बैठक व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि परीक्षण कक्ष में परीक्षार्थी फुसफुसाहट करके कक्ष के शान्त वातावरण को दूषित न कर सकें।
9. परीक्षक को निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
10. बैठक व्यवस्था के अन्तर्गत परीक्षार्थी को आवश्यक सामग्री (बी कॉपी, ग्राफ, धागा तालिका आदि) डेस्क पर ही उपलब्ध करायी जानी चाहिए ताकि उसका अमूल्य समय नष्ट न हो।

बैठक व्यवस्था की विधि एवं तकनीक : परीक्षार्थियों की बैठक व्यवस्था परीक्षण को ध्यान में रखकर की जाती है। परीक्षण को प्रशासन के दष्टिकोण से दो वर्गो में विभाजित किया जाता है- सामूहिक परीक्षण एवं व्यक्तिगत परीक्षण। व्यक्तिगत परीक्षण के सम्पादन के लिए केवल यह ध्यान रखा जाता है कि परीक्षण के आस-पास शोरगुल न हो, परीक्षण भवन में पर्याप्त प्रकाश एवं वायु की व्यवस्था हो, परीक्षार्थियों के बैठने के लिए उचित फर्नीचर की व्यवस्था हो, लेकिन सामूहिक परीक्षणों में बैठक व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ अन्य तथ्यों का भी ध्यान रखना पडता है। बैठक व्यवस्था की तकनीक निम्न पहलुओं के आधार पर की जानी चाहिए-

1. परीक्षण कक्ष की सफाई व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इससे परीक्षार्थियों को मानसिक शान्ति एवं प्रफुल्लता का एहसास होता है।
2. परीक्षण कक्ष में परीक्षार्थियों की सीटें एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर होनी चाहिए ताकि वे एक-दूसरे का लाभ न उठा सकें साथ ही एक-दूसरे के कार्य में व्यवधान न डाल सकें।
3. कक्ष में परीक्षार्थियों के बैठने एवं लिखने के लिए उनकी आयु के अनुसार उचित फर्नीचर की व्यवस्था करनी चाहिए। आयु अनुसार फर्नीचर व्यवस्था न होने पर परीक्षार्थी को लिखने में असुविधा होती है।
4. परीक्षा कक्ष ऐसा होना चाहिए जिसमें परीक्षार्थियों को उचित प्रकाश एवं वायु प्राप्त हो। पर्याप्त प्रकाश के अभाव में परीक्षार्थी जल्दी थक जाता है और परीक्षा देने में परेशानी महसूस करता है।
5. परीक्षण कक्ष के आस-पास का वातावरण शोरगुल से मुक्त होना चाहिए क्योंकि शोरगुल से परीक्षार्थी का ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता है।
6. परीक्षण कक्ष में निरीक्षकों के बैठने की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। उनके बैठने की व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए जहाँ से वे सम्पूर्ण कक्ष पर अपनी पैनी नजर रख सकें तथा सभी परीक्षार्थियों पर ठीक प्रकार से नियन्त्रण रख सकें।
7. परीक्षार्थियों के बैठने की व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिए कि वे परीक्षण सम्बन्धी निर्देश स्पष्ट रूप से सुन सकें। अर्थात् कक्ष बहुत बड़े आकार का नहीं होना चाहिए।

सौहार्द स्थापन : सामान्य रूप से सौहार्द का मतलब एक-दूसरे के प्रति हृदय से साथ या एक-दूसरे से आत्मीयता का व्यवहार करना होता है। किसी परीक्षण के सम्पादन के अन्तर्गत इसका अर्थ परीक्षणकर्त्ता एवं परीक्षणार्थी के बीच मित्र भाव स्थापित करना होता है। यह मित्र भाव परीक्षणकर्त्ता तथा परीक्षार्थी के बीच दूरी को कम करता है और परीक्षार्थी में परीक्षाकर्त्ता के प्रति विश्वास पैदा करता है। ऐसी स्थिति में परीक्षार्थी स्वतन्त्र रूप से सही अनुक्रिया करता है।

सौहार्द स्थापित करने के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व : परीक्षा हॉल में नियन्त्रण के लिए तीव्र एवं कठोर स्वर में दिये गये निर्देश, परीक्षार्थियों के पास खड़ा होना, उसे समय का बोध कराते रहना, आलोचना में प्रंशासा या निन्दा के सूचक शब्दों का प्रयोग करना परीक्षार्थी पर बुरा प्रभाव डालता है। अत: परीक्षण की विश्वसनीयता के लिए परीक्षार्थियों को सामान्य मन: स्थिति से सुचारू रूप से कार्य करने के अवसर प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि परीक्षा से पूर्व सौहार्द स्थापित किया जाए। परीक्षार्थियों के साथ

सौहार्द स्थापित करने का मूल उद्देश्य परीक्षार्थियों को सामान्य मानसिक स्थिति में लाना होता है। सौहार्दपूर्ण वातावरण में ही परीक्षार्थी अपने भावों को व्यक्त कर सकता है।

1. अधिकांश परीक्षार्थी परीक्षा के नाम से ही भय खाते हैं। भय की स्थिति में वे प्रश्नपत्र को सही प्रकार से नहीं समझ पाते हैं और न ही प्रश्नों के उत्तर ठीक ढंग से दे पाते हैं। अत: उन्हें भयमुक्त करने के लिए उनके साथ सौहार्द स्थापित करना अवश्यक होता है।
2. कुछ परीक्षार्थी स्वभाव से शर्मीले होते हैं उनमें झिझक होती है और उस स्थिति में परीक्षण से घबराते हैं। उनकी इस झिझक को सौहार्द स्थापित करके दूर किया जा सकता है।
3. कुछ परीक्षार्थी अपने व्यक्तिगत कारणों से तनावग्रस्त रहते हैं। तनाव की स्थिति में वे सही अनुक्रिया नहीं कर पाते हैं। सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करके उनके इस तनाव को दूर किया जा सकता है।
4. कुछ परीक्षार्थी संवेगिक रूप से अस्थिर होते हैं। अर्थात् वे हड़बडाहट में रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे न तो परीक्षण के निर्देशों को सही प्रकार से सुन पाते हैं और न ही वे निर्देशों व परीक्षण पदों को समझ पाते हैं। उन्हें सामान्य स्थिति में लाने के लिए सौहार्द स्थापन आवश्यक हो जाता है।
5. कुछ परीक्षार्थी परीक्षा की तैयारी ठीक प्रकार से कर लेने के पश्चात भी आत्मविश्वास नहीं रख पाते हैं। सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार करके उनके आत्मविश्वास को बनाये रखा जा सकता है।
6. कुछ परीक्षार्थी परीक्षा के समय एकाग्रचित नहीं हो पाते हैं। उन्हें एकाग्रचित करने के लिए सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाना आवश्यक होता है।
7. कुछ परीक्षार्थी परीक्षणों के प्रति उदासीन व्यवहार रखते हैं। उनकी उदासीनता को दूर करने के लिए उनके साथ सौहार्द स्थापित करना आवश्यक होता है।
8. अधिकांश परीक्षार्थी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के पदों के प्रति सामाजिक एवं सांस्कृतिक दबाव में बनावटी अनुक्रिया करते हैं, जिससे परीक्षण में प्राप्त प्राप्तांक अर्थहीन होते हैं। अत: प्राप्तांकों को अर्थयुक्त बनाने के लिए परीक्षार्थियों में विश्वास पैदा करने के लिए उनके साथ सौहार्द स्थापित करना आवश्यक होता है।
9. सौहार्द एक-दूसरे के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण तथा सकारात्मक सोच को विकसित करता है जिससे सम्बन्ध मजबूत होते हैं।
10. सौहार्द स्थापन मानवीय सम्बन्धों की आधारशिला है। सौहार्द स्थापन का कार्य सम्पादन में सहजता एवं स्वाभाविकता लाता है।

सौहार्द स्थापन की विधि एवं तकनीक : व्यक्तिगत परीक्षणों में परीक्षार्थियों के साथ सौहार्द सरलता से स्थापित किया जा सकता है। किन्तु सामूहिक परीक्षणों में भिन्न-भिन्न प्रकृति के परीक्षार्थियों के साथ स्थापित करना थोड़ा कठिन होता है। इसके लिए परीक्षणकर्त्ता को निम्न उपाय करने चाहिए-

1. सबसे उत्तम उपाय है कि उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाए, उनकी परेशानियों को समझा जाए और उन्हें दूर किया जाए। परीक्षणकर्त्ता की सहानुभूति एवं प्रेम भरी मुस्कान सौहार्द स्थापित करने में बहुत सहायक होती है।

2. व्यक्तिगत परीक्षणों के सम्पादन में परीक्षार्थियों से सामान्य बातचीत की जाए, उनकी कुशलक्षेम पूछी जाए, उसके परिवार एवं मित्रों के बारे में बात की जाए, उसकी रुचि के विषयों पर बातचीत की जाए इस प्रकार उनसे निकट सम्बन्ध स्थापित किया जाए इसके बाद उनसे परीक्षण के उद्देश्य स्पष्ट किए जाएं।
3. कुछ परीक्षार्थी परीक्षा भवन में प्रवेश करते ही घबराने लगते हैं। इसके लिए आवश्यक यह है कि परीक्षण कक्ष का वातावरण शान्त हो। परीक्षणकर्त्ता एवं निरीक्षकों का व्यवहार परीक्षार्थियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो और परीक्षार्थियों को परीक्षण का महत्व स्पष्ट किया जाए।
4. किसी भी परीक्षण के सम्पादन से पहले परीक्षार्थियों को भय एवं तनाव से मुक्त करने के लिए उनके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाए। इसके साथ-साथ तत्सम्बन्धी कुछ हास्य विनोद किया जाए, परन्तु ध्यान रहे कि हास्य विनोद स्तरीय होना चाहिए।
5. कभी-कभी कुछ परीक्षार्थी ऐसी क्रियाएँ करते हैं जिन्हें अच्छा नहीं माना जाता है। ऐसी स्थिति में परीक्षणकर्त्ता एवं निरीक्षणकर्त्ता को शान्ति एवं धैर्य से काम लेना चाहिए। प्रेम, सहानुभूति और सहयोग सौहार्द स्थापित करने के मूलमन्त्र हैं। परीक्षार्थी की किसी भी अनुक्रिया पर असन्तोष प्रकट नहीं करना चाहिए, बेकार के उत्तरों पर भी परीक्षणकर्त्ता को चेहरे की मुस्कान से ही सहमति,स्वीकृति एवं अस्वीकृति प्रकट करनी चाहिए।
6. कुछ परीक्षार्थी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को गम्भीरता से नहीं लेते हैं उन्हें इन परीक्षणों के महत्व के बारे में बताया जाना चाहिए, उन्हें उनके पदों के उत्तर देने की विधि समझायी जानी चाहिए। परीक्षार्थियों को आदि से अन्त तक सक्रिय रखने के लिए उनके साथ मित्रवत् व्यवहार किया जाए तथा उत्साहवर्द्धक शब्दों का प्रयोग किया जाए।
7. अधिकतर परीक्षार्थी मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में पूछे गये प्रश्नों के सही उत्तर नहीं देते। वे समाज एवं संस्कृति के सम्मत उत्तर देते हैं अत: उन्हें विश्वास दिलाया जाए कि उनके द्वारा दिए गए उत्तर गोपनीय रखे जाएंगे, उनके सही उत्तरों के आधार पर उनका मार्गदर्शन किया जाएगा। उन्हें सफलता प्राप्त करने के मार्ग बताये जाएंगे। ऐसा सब कहने -सुनने से सौहार्द स्थापित होता है। दूसरी तरफ सौहार्द स्थापित होने से परीक्षार्थियों का परीक्षाकर्त्ता पर विश्वास उत्पन्न हो जाता है और वे प्रश्नों के अपेक्षित उत्तर देते हैं।
8. अन्ततः परीक्षण सम्पादन कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न कराने के लिए उनके प्रति अभार प्रकट करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

परीक्षण एवं परीक्षण सामग्री की सुरक्षा : परीक्षण से तात्पर्य उपलब्धि परीक्षणों (प्रश्नपत्रों)से है और परीक्षण सामग्री से तात्पर्य मुख्य रूप से परीक्षा-पुस्तिकाओं से होता है, जिनका प्रयोग घरेलू परीक्षा तथा सार्वजनिक परीक्षाओं में होता है। इनकी सुरक्षा से तात्पर्य इनको चोरी से बचाना होता है।

परीक्षण एवं परीक्षण सामग्री की सुरक्षा की आवश्यकता : परीक्षण एवं परीक्षण सामग्री की सुरक्षा की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है-

1. यदि कोई व्यक्ति प्रश्नपत्रों की चोरी में सफल हो जाता है तो वह पैसे कमाने के चक्कर में उन्हें अनेक हाथों में बेच सकता है और इस प्रकार प्रश्नपत्र आउट हो जाता है। जिनके हाथों में प्रश्नपत्र लग जाता है वे अच्छे अंक प्राप्त करते हैं अतः इसे रोकना आवश्यक है।
2. यदि प्रश्नपत्र, प्रश्नपत्र के सम्पादन से पहले ही आउट हो जाता है तो केवल प्रश्न पत्र का ही दोबारा निर्माण करना होता है लेकिन प्रश्नपत्र के सम्पादन के बाद चोरी होता है तो प्रश्नपत्र का तो दोबारा निर्माण करना पड़ता है, साथ ही परीक्षा भी दोबारा करानी पड़ती है। इस व्यवस्था में वे परीक्षार्थी बेवजह परेशान होते हैं जिन्हें आउट हुआ प्रश्नपत्र प्राप्त नहीं होता है और उनकी संख्या बहुत अधिक होती है।
3. यदि परीक्षा-पुस्तिकाएँ चोरी हो जाएं तो उनका दुरुपयोग परीक्षा में हो सकता है, और होता ही है। प्रश्नपत्र का उत्तर कोई अन्य व्यक्ति लिखते हैं, और उत्तर-पुस्तिकाएँ एकत्र करते समय उत्तर-पुस्तिका में अदला-बदली हो जाती है। इसको रोकने के लिए परीक्षा-पुस्तिकाओं की सुरक्षा भी आवश्यक होती है।
4. यदि उपरोक्त कार्य में कुछ परीक्षार्थी सफल हो जाते हैं तो उनके परीक्षा परिणामों में भारी अन्तर हो जाता है। 2016 की बिहार माध्यमिक बोर्ड परीक्षा इस बात का जीवित उदाहरण है। यह चोरी और हेरा-फेरी परीक्षा केन्द्र अधिकारी द्वारा की गई थी।

परीक्षण एवं परीक्षण सामग्री की सुरक्षा की विधि एवं तकनीक : परीक्षण एवं परीक्षण सामग्री की सुरक्षा के लिए निम्न तकनीकों का प्रयोग किया जाना चाहिए-

1. प्रायः सभी स्कूलों में घरेलू परीक्षा के साथ सार्वजनिक परीक्षाएँ सम्पादित होती हैं इसलिए प्रत्येक स्कूल में एक स्ट्रोंग रूम होना चाहिए। और यदि स्ट्रोंग रूम प्रधानाचार्य कार्यालय के बराबर में हो तो और भी अच्छा होता है।
2. इस स्ट्रोंग रूम की दीवारें मजबूत होनी चाहिए, खिड़कियों और रोशनदानों में लोहे की पत्तियों की जालियाँ लगी होनी चाहिए, इसके दरवाजे मजबूत होने चाहिए, और उनमें मजबूत ताले लगे होने चाहिए।
3. स्ट्रोंग रूम के अन्दर परीक्षणों (प्रश्नपत्रों) को रखने के लिए लोहे की चादरों की मजबूत अलमारियाँ होनी चाहिए, जिनके ताले मजबूत किस्म के होने चाहिए।
4. परीक्षा-पुस्तिकाओं को अलमारियों में रखना सम्भव नहीं, उनके बंडलों को स्ट्रोंग रूम में एक साइड पर ही रखना चाहिए।
5. और सबसे बड़ा उपाय यह है कि स्ट्रोंग रूम का प्रभारी या तो स्वयं प्रधानाचार्य हो या वह किसी ईमानदार एवं कर्तव्यनिष्ठ वरिष्ठ शिक्षक को इसका प्रभारी बनाये।

प्रश्नपत्रों का वितरण : प्रश्नपत्रों के वितरण का अर्थ परीक्षण की प्रकृति पर निर्भर करता है। कक्षा शिक्षण के सन्दर्भ में इसका अर्थ कक्षा के सभी विद्यार्थियों को प्रश्नों के उत्तर देने का अवसर प्रदान करने से होता है। उपलब्धि परीक्षणों के निर्माण के आधार पर इसका अर्थ सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु पर प्रश्न पूछने से लिया जाता है और परीक्षणों के सम्पादन के सन्दर्भ में इसका अर्थ परीक्षार्थियों को समान स्तर के मानकीकृत परीक्षणों के वितरण से होता है।

प्रश्नपत्रों के वितरण के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व : व्यक्तिगत परीक्षणों के सम्पादन में प्रश्नपत्रों के वितरण की कोई आवश्यकता नहीं होती है परन्तु सामूहिक परीक्षणों के सम्पादन में फुसफुसाहट और नकल को रोकने के लिए इसकी बहुत आवश्यकता होती है। प्रत्येक परीक्षणकर्ता का यह मुख्य उद्देश्य होता है कि परीक्षा सम्पादन की दृष्टि से सभी अभ्यर्थियों में प्रश्नपत्रों का वितरण सुगमता से हो सके ताकि अभ्यर्थियों को किसी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े तथा कक्षनिरीक्षक भी बिना किसी व्यवधान के सुचारु रूप से परीक्षा कार्य को सम्पन्न करा सकें, जिसके फलस्वरूप परीक्षण के सम्पादन का उद्देश्य भी पूरा हो सके। प्रश्नपत्रों के विवरण से संबंधित मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

1. परीक्षण कक्ष में परीक्षार्थियों की फुसफुसाहट की प्रवृत्ति पर रोक लगाना होता है।
2. परीक्षार्थियों की नकल करने की प्रवृत्ति को रोकना होता है।
3. परीक्षार्थियों को अनावश्यक परेशानियों से बचाना है ताकि वे अपना कार्य एकाग्रता से कर सकें।
4. परीक्षा की वैधता को उच्चस्तरीय बनाये रखने के लिए परीक्षार्थियों की योग्यताओं का सही मूल्यांकन करना होता है।
5. परीक्षार्थियों की अनुमान लगाने की प्रवृत्ति को कम करना क्योंकि अधिकांश परीक्षार्थी अनुमान लगाने की कला में अत्यन्त निपुण होते हैं।
6. परीक्षार्थियों को उचित व्यावसायिक निर्देशन देना होता है।
7. परीक्षार्थियों को निर्धारित समय सीमा में ही परीक्षण को हल करने के लिए बाध्य करना होता है।
8. परीक्षार्थियों को पूर्ण मनोयोग से परीक्षण को हल करने के लिए प्रेरित करना होता है।

प्रश्नपत्रों के वितरण की तकनीक : परीक्षण प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य प्रश्नपत्रों का सही ढंग से वितरण तथा परीक्षार्थियों को यथोचित निर्देश देना है। इस तकनीक की मुख्य बातें निम्न हैं-

1. परीक्षार्थियों की बैठक व्यवस्था इस प्रकार से नियोजित की जाए कि प्रत्येक परीक्षार्थी के आस-पास तथा आगे-पीछे के परीक्षार्थियों की उससे दूरी कम से कम 50 से.मी. हो ताकि परीक्षण सम्पादन करना अर्थपूर्ण हो सके।
2. प्रश्नपत्रों का वितरण इस प्रकार किया जाए कि परीक्षण पुस्तिकाएं निश्चित क्रम में परीक्षार्थियों की डेस्क पर रखी जाएं। यदि कोई परीक्षार्थी अनुपस्थित है तब भी कक्ष में सम्पूर्ण परीक्षण पुस्तिकाएं वितरित करने के बाद अनुपस्थित परीक्षार्थी की परीक्षण पुस्तिका उसकी डेस्क से उठायी जानी चाहिए।
3. चित्रित परीक्षण में चित्रों का क्रम उपर-नीचे करके परीक्षण सम्पादन की प्रक्रिया सहज बनायी जा सकती है।
4. परीक्षार्थियों को समान स्तर के भिन्न-भिन्न परीक्षण उपलब्ध कराने चाहिए।
5. यदि किसी परीक्षण में केवल वस्तुनिष्ठ प्रश्न ही हों तो केवल प्रश्नों की संख्या एवं उनके संगत विकल्पों के क्रम को बदलकर प्रश्नों के चार सैट बनाये जा सकते हैं।

और परीक्षण को इस प्रकार से वितरित किया जाए कि निकट परीक्षार्थी को भिन्न-भिन्न परीक्षण सेट प्राप्त हो।

6. निर्देश अत्यन्त सरल एवं स्पष्ट होने चाहिए तथा निर्देशों के स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त उदाहरण भी होने चाहिए।
7. यदि निर्देशों को समझने में परीक्षार्थियों को कठिनाई हो तो उनकी शंका निवारण के लिए व्यक्तिगत रूप से समाधान किया जा सकता है, लेकिन यह ध्यान रहे कि ऐसा कार्य करने में परीक्षार्थी को कोई अतिरिक्त सूचना न दी जाए।
8. निर्देश द्विअर्थी नहीं होने चाहिए ताकि परीक्षार्थी उनकी विवेचना कर अलग-अलग अर्थ न लगाये।
9. सामूहिक परीक्षण में इस बात पर विशेष जोर देना चाहिए कि परीक्षण का निर्देश ऊँची आवाज में दिया जाए ताकि परीक्षण कक्ष में उपस्थित सभी परीक्षार्थी उसे ठीक प्रकार से सुन सकें।

फुसफुसाहट को रोकना : सामान्य रूप से जब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के कान में धीरे से धीमे स्वर में कुछ कहता है तो उनके आपस में बातचीत करने पर जो धीमी सी ध्वनि सुनायी पड़ती है उसे फुसफुसाहट कहते हैं। फुसफुसाहट इस आशय से की जाती है ताकि उनकी आपसी बातचीत को कोई तीसरा व्यक्ति न सुन सके।

परीक्षण सम्पादन के अन्तर्गत इसका अर्थ परीक्षण भवन में परीक्षार्थियों के द्वारा एक-दूसरे से नीचे स्वर में परीक्षण से सम्बन्धित तथ्य पूछने बताने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि से होता है। यदि इसे न रोका जाए तो परीक्षण की वैधता एवं विश्वसनीयता प्रभावित होती है।

फुसफुसाहट को दूर करने के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व (Objectives, Need and Importance of Checking or Whisper) : परीक्षण में फुसफुसाहट दूर करने की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है-

1. परीक्षण कक्ष में धीमे स्वर में बोल कर एक-दूसरे की सहायता करने की क्रिया पर पाबन्दी लगाना।
2. परीक्षण कक्ष के माहौल को शान्तिपूर्ण एवं प्रभावी बनाना होता है।
3. फुसफुसाहट पर पाबन्दी लगाने से परीक्षण सम्पादन में होने वाली बाधाओं को दूर करना होता है।
4. फुसफुसाहट पर पाबन्दी लगाकर ही सही मूल्यांकन कार्य किया जा सकता है और सही मूल्यांकन के द्वारा ही शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन देना सम्भव होता है।
5. फुसफुसाहट की रोकथाम करके ही परीक्षा को प्रभावी ढंग से सम्पन्न कराया जा सकता है।

फुसफुसाहट रोकने की तकनीक : फुसफुसाहट की समस्या व्यक्तिगत परीक्षण में नाममात्र ही पायी जाती है जबकि सामूहिक परीक्षण में यह एक प्रमुख समस्या के रूप में सामने आती है, इस प्रकार के परीक्षण में इस समस्या को दूर करने के लिए निम्न तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए-

1. परीक्षण कक्ष में परीक्षार्थियों के बैठने की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि प्रत्येक परीक्षार्थी के आगे व पीछे वाले तथा आस-पास वाले परीक्षार्थियों की दूरी पर्याप्त होनी चाहिए ताकि फुसफुसाहट की समस्या को दूर किया जा सके।
2. परीक्षण कक्ष में एक समान स्तर के मानकीकृत परीक्षणों के कम से कम चार सेट परीक्षार्थियों में वितरित किए जाएं इस प्रकार फुसफुसाहट को कम किया जा सकता है।
3. कक्ष निरीक्षकों को ड्यूटी के दौरान पर्याप्त सर्तकता बरतने की आवश्यकता होती है। उन्हें परीक्षार्थियों पर पैनी निगाह रखनी चाहिए।
4. फुसफुसाहट नैतिकता के विरुद्ध कार्य है, यह सन्देश परीक्षार्थियों को दिया जाना चाहिए।
5. परीक्षार्थियों को परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व ही कड़ी चेतावनी दे देनी चाहिए कि फुसफुसाहट परीक्षण कक्ष में दण्डनीय अपराध माना जाएगा।
6. फुसफुसाहट रोकने के लिए परीक्षार्थियों को परीक्षा से सम्बन्धित अतिरिक्त सामग्री उनकी सीट पर ही उपलब्ध करा देनी चाहिए अन्यथा इस सामग्री की आड़ में वे फुसफुसाहट करने में संकोच नहीं करेंगे।

परीक्षा में नकल रोकना : सामान्यत: नकल का अर्थ एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का अनुकरण करना होता है। जबकि परीक्षण सम्पादन के अन्तर्गत इसका तात्पर्य- एक परीक्षार्थी द्वारा किसी दूसरे परीक्षार्थी की उत्तर-पुस्तिका अथवा अपने पास उपलब्ध किसी तत्सम्बन्धी लिखित सामग्री की सहायता से परीक्षण के प्रश्नों के उत्तर देने से होता है। इस बीच नकलचियों ने परीक्षा में नकल करने के नये-नये अनेक तरीके भी ईजाद किए हैं। कुछ परीक्षार्थी अपने शरीर के अंगों पर कुछ लिख लाते हैं, कुछ परीक्षार्थी अपने पहनने के वस्त्रों पर कुछ लिख लाते हैं, कुछ स्केल आदि पर कुछ लिख लाते हैं, कुछ परीक्षार्थी नकल के लिए इलैक्ट्रोनिक साधनों का भी प्रयोग करने लगे हैं। परीक्षण भवन में एक-दूसरे से पूछकर लिखना तो आम बात है और यह सब कार्य परीक्षार्थी परीक्षणकर्त्ता एवं कक्ष निरीक्षक की नजरों से बचा कर करते हैं।

नकल रोकने के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व : निम्न कारणों से नकल को रोकना आवश्यक है-

1. परीक्षार्थियों की मापीय योग्यताओं का सही-सही मापन करने के लिए।
2. सही-सही मापन प्राप्तांकों के आधार पर उनका सही मूल्यांकन करना।
3. सही-सही मूल्यांकन के आधार पर उनका सही-सही वर्गीकरण करना।
4. परीक्षार्थियों को उनकी वास्तविक योग्यता के अनुसार शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देश प्रदान करना।
5. किसी क्षेत्र विशेष के लिए उपयुक्त अभ्यर्थियों का चयन करना।

नकल रोकने की तकनीक : नकल को रोकने के लिए अनेक उपाय खोजे गए हैं बस इन्हें ईमानदारी से लागू करने की आवश्यकता है। नकल रोकने के मुख्य उपाय निम्न हैं-

1. परीक्षण कक्ष में परीक्षार्थियों के बैठने की व्यवस्था इस प्रकार की जाए कि किसी भी परीक्षार्थी की दूसरे परीक्षार्थी से दूरी कम से कम 50 सेमी हो। उस स्थिति में

टिप्पणी

वे न तो एक-दूसरे से पूछकर नकल कर सकेंगे और न ही एक-दूसरे की उत्तर-पुस्तिका को देखकर नकल कर सकेंगे।

2. परीक्षण कक्ष में 40 से अधिक परीक्षार्थियों को न बैठाया जाए तथा इन पर दो कक्ष-निरीक्षक नियुक्त किए जाने चाहिए।
3. परीक्षण हेतु कम से कम चार समान मानकीकृत परीक्षण के सेट उपलब्ध कराये जाने चाहिए। इनका वितरण नीचे दिए हुए क्रमानुसार किया जाना चाहिए ताकि परीक्षार्थी एक-दूसरे से बात करके लाभ न उठा सकें।

I	II	III	IV
A	C	A	C
B	D	B	D
C	A	C	A
D	B	D	B
A	C	A	C
B	D	B	D

4. परीक्षार्थियों की सघन तलाशी कई बार ली जानी चाहिए। इस व्यवस्था से परीक्षार्थी हर समय चौकन्ने रहेंगे तथा नकल करने का प्रयास भी नहीं करेंगे।
5. कक्ष निरीक्षक अपने उत्तरदायित्व का निर्वाहन पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से करे।
6. बाह्य उड़नदस्तों के इस कार्य में संस्थान पूर्ण सहयोग करे।
7. इस समस्या के निराकरण के लिए कोई विद्वेष, दुराग्रह या ओछी राजनीति नहीं होनी चाहिए। यह कार्य पूर्ण ईमानदारी एवं निष्ठा तथा सतर्कता से किया जाना चाहिए।
8. इस समस्या की रोकथाम के लिए अब नकल को संज्ञेय अपराध घोषित किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इसका जोरदार समर्थन किया गया था। अर्थात् परीक्षार्थियों की इस प्रवृत्ति पर किसी भी तरीके से अंकुश लगाना अति आवश्यक है। इससे परीक्षा का उद्देश्य पूरा हो सकेगा।

अनुमान से उत्तर देने की प्रवृत्ति को रोकना (Avoiding Tendency of Guessing in Answering) : प्राय: परीक्षार्थियों को प्रश्नों के सही उत्तर ज्ञात नहीं होते हैं। वे उनके उत्तर अनुमान के आधार पर देते हैं। निबन्धात्मक, लघुउत्तरीय प्रश्नों में सुझावात्मक प्रश्नों के और वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में हाँ या नहीं, बहुविकल्प एवं वर्गीकृत प्रश्नों के उत्तर अनुमान से देने की सर्वाधिक गुंजाइश होती है। उदाहरण के लिए सुझावात्मक प्रश्न-अग्रेजों द्वारा चलायी गई शिक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है स्पष्ट कीजिए। व्यक्ति की जन्मजात अभिक्षमता से आप क्या समझते हैं? वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में तो परीक्षार्थी अनुमान अधिक लगाते हैं। वैसे भी सभी प्रश्नों के उत्तर हाँ अथवा सभी को नहीं में देने से 50% सही होने की सम्भावना अधिक होती है। इसी प्रकार 4 विकल्प वाले प्रश्नों में 25% उत्तर सही होने की सम्भावना होती है। जिनके कारण परीक्षण के मूल उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है।

अनुमान से उत्तर देने की प्रवृत्ति को रोकने के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व

1. यदि परीक्षार्थी सुझावात्मक, निबन्धात्मक तथा लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर अनुमान से देते हैं तो उनके प्राप्तांक वास्तविक प्राप्तांक नहीं हो सकते हैं। अत: इस स्थिति

में ऐसे प्रश्नों की समाप्ति आवश्यक है जो सुझावात्मक तथा अनुमान द्वारा दिए जा सकते हैं।

2. परीक्षण में हाँ या नहीं प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देने में 50% की गुंजाइश होती है। अतः इन्हें रोकना आवश्यक है।
3. चार विकल्प वाले प्रश्नों के उत्तर में यदि कोई परीक्षार्थी किसी एक विकल्प पर ही सही का निशान लगा दे तो उसे 25% अंक प्राप्त होने की सम्भावना होती है अतः इसे रोकना अति आवश्यक है।
4. अनुमान से प्रश्नों के उत्तर देने से परीक्षार्थियों के प्राप्तांक अर्थहीन हो जाते हैं अतः इसे रोकना आवश्यक हो जाता है।
5. बिना सही मापन के सही-सही शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देश नहीं दिए जा सकते हैं। अतः इसे रोकना आवश्यक है।

अनुमान से उत्तर देने की प्रवृत्ति को रोकने की तकनीक : परीक्षार्थी किसी प्रकार से परीक्षा में किसी भी प्रश्न का उत्तर अनुमान से न दे सके और यदि दे तो उससे लाभान्वित न हो सके, इसके लिए निम्नलिखित विधियाँ एवं तकनीक अपनाई जानी चाहिए-

1. निबन्धात्मक एवं लघुउत्तरीय प्रश्नों की रचना इस सावधानी के साथ की जानी चाहिए कि बिना सोचे-समझे उनके उत्तर का अनुमान न लगाया जा सके। किसी भी स्थिति में सुझावात्मक प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।
2. परीक्षण में हां/नहीं वाले प्रश्नों में कोई क्रमबद्धता नहीं होनी चाहिए। कभी एक से अधिक प्रश्नों के उत्तर भी हाँ या नहीं में हो सकते हैं। साथ ही यह आवश्यक है कि हां/नहीं उत्तरों में कोई अनुपात न हो तब किसी प्रश्न के उत्तर के 50% सही होने की सम्भावना स्वतः ही समाप्त हो जाती है।
3. बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के सही विकल्पों में कोई क्रम नहीं होना चाहिए। साथ ही विकल्प ऐसे हों कि सही विकल्प का चयन करना सम्भव न हो, उनका चयन ज्ञान एवं तर्क के आधार पर किया जा सके।
4. वर्गीकृत बहुविकल्पीय प्रश्नों की रचना इस प्रकार से की जाए कि वर्ग से बाहर की वस्तु अथवा क्रिया में बड़ी बारीक असमानता हो जिसे परीक्षार्थी ज्ञान एवं तर्क के आधार पर ही समझ सकें। साथ ही इनके सही विकल्पों में कोई क्रम नहीं होना चाहिए।
5. पहचान प्रकार के स्थान पर पूर्ति पद दिये जाने चाहिए ताकि परीक्षार्थी उनका लिखकर उत्तर दें।
6. अशुद्ध उत्तरों के लिए अंक काटे जाने चाहिए तथा बहुविकल्पीय प्रश्नों में विकल्पों की संख्या को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि अनुमान का प्रतिशत कम हो सके।
7. हो सके तो परीक्षण में हाँ-नहीं वाले प्रश्नों का समावेश न किया जाए, इससे 50 प्रतिशत सही होने की सम्भावना स्वतः ही समाप्त हो जाएगी।
8. अनुमान त्रुटि को दूर करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करना चाहिए-

टिप्पणी

$$S = R - \frac{W}{N-1}$$

यहाँ S = फलांक या प्राप्तांक

R = शुद्ध उत्तर

W = अशुद्ध उत्तर N = विकल्पों की संख्या

माना 100 चार विकल्पीय प्रश्न हैं। किसी परीक्षार्थी के 85 उत्तर सही हैं तथा 15 उत्तर गलत हैं तो वास्तविक प्राप्तांक की गणना इस प्रकार की जाएगी-

$$S = R - \frac{W}{N-1} = S = 85 - \frac{15}{4-1}$$

$$S = 85 - \frac{15}{3} = 85 - 5 = 80$$

द्विविकल्पीय (हाँ/नहीं अथवा सत्य/असत्य)प्रश्नों के उत्तरों का सही अंकन करने के लिए सामान्यत: निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$S = R - W$$

S = सही प्राप्तांक R = सही उत्तर W = गलत उत्तर

माना एक परीक्षण में 100 द्विविकल्पीय प्रश्नों के उत्तरों में से 60 उत्तर सही हैं और 40 उत्तर गलत हैं तो उसके वास्तविक प्राप्तांक इस प्रकार होंगे-

$$S = R - W \qquad S = 60 - 40 = 20$$

अनुमान की प्रवृत्ति को रोकने के लिए ऋणात्मक अंकन का भी प्रयोग करना आवश्यक होता है। इसके लिए निम्न सूत्र $\frac{N-1}{N}$ का प्रयोग किया जाना चाहिए।

प्रश्नों की गुणवत्ता और विस्तार में सुधार : प्रश्नों की गुणवत्ता से तात्पर्य प्रश्नों के वैध, विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ होने से है। प्रश्न वैध, विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ होंगे तो परीक्षण भी वैध, विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ होगा और प्रश्नों के विस्तार से तात्पर्य प्रश्न-पत्र में प्रश्नों की संख्या अधिक करने से है। किसी प्रश्नपत्र में प्रश्नों की संख्या जितनी अधिक होगी वह उतना ही अधिक वैध और विश्वसनीय होता है।

प्रश्नों की गुणवत्ता और विस्तार में सुधार की आवश्यकता

1. परीक्षण की गुणवत्ता प्रश्नों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। इसलिए प्रश्नपत्र के प्रश्नों का गुणवत्तापूर्ण होना आवश्यक है।
2. जिस प्रश्नपत्र में प्रश्नों की संख्या जितनी अधिक होती है, वह उतना ही अधिक वैध और विश्वसनीय होता है। इसलिए प्रश्नपत्र में प्रश्नों की संख्या अधिक होना आवश्यक है।
3. जिस प्रश्नपत्र में प्रश्न जितने अधिक गुणवत्तापूर्ण होंगे वह उतना ही अधिक वैध होगा।
4. प्रश्नपत्र वैध और विश्वसनीय होंगे तो उनके द्वारा परीक्षार्थियों का वर्गीकरण सही रूप में किया जा सकेगा।

5. परीक्षण का आकलन जितना अधिक सही होगा, परीक्षार्थियों का मार्गदर्शन भी उतने ही सही रूप में किया जा सकेगा।

प्रश्नों की गुणवत्ता और विस्तार में सुधार की विधि एवं तकनीक

टिप्पणी

1. परीक्षण में तीनों प्रकार के प्रश्न-निबन्धात्मक, लघुउत्तरीय और वस्तुनिष्ठ पूछे जाएँ।
2. प्रश्न गुणवत्तापूर्ण एवं स्पष्ट हों।
3. प्रश्नों की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए।
4. प्रश्नों की संख्या अधिक करने के लिए निबन्धात्मक प्रश्नों की संख्या कम की जाए और लघुउत्तरीय तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की संख्या अधिक की जाए।
5. प्रश्नों का कठिनाई स्तर 40 से 70 के बीच हो।

वस्तुनिष्ठ अंकन (Objective Scoring) : मापन के क्षेत्र में जब किसी परीक्षण के प्रश्नों के उत्तरों का अंकन परीक्षणकर्त्ता अथवा परीक्षक के अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण (पसन्द/नापसन्द, मान्यताओं एवं मानदंड, संवेगिक मन: स्थिति आदि)से प्रभावित नहीं होता है, तब कोई भी परीक्षणकर्ता एवं परीक्षक अंकन करे तो प्राप्तांक समान प्राप्त होते हैं। तो ऐसी अंकन पद्धति को वस्तुनिष्ठ अंकन कहते हैं। परीक्षण की वस्तुनिष्ठता का सम्बन्ध मापन की व्यक्तिगत त्रुटियों से होता है। किसी परीक्षण की वस्तुनिष्ठता इस बात की ओर इशारा करती है कि परीक्षण किस सीमा तक परीक्षक के दृष्टिकोण के प्रभाव से मुक्त है। किसी परीक्षण को वस्तुनिष्ठ तभी कहा जाता है जब उस परीक्षण पर अंकन करते समय परीक्षक की व्यक्तिगत पसन्द/नापसन्द होने का परीक्षार्थी द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों पर बिल्कुल भी प्रभाव नहीं पड़ता है।

वस्तुनिष्ठता के उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व : वस्तुनिष्ठ अंकन का उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व परीक्षार्थियों की योग्यता का सही-सही निर्धारण करना है तथा परीक्षार्थियों के शीलगुणों, योग्यताओं एवं उपलब्धि का सही-सही मापन एवं मूल्यांकन करना है। इसे निम्न बातों से समझा जा सकता है-

1. वस्तुनिष्ठ अंकन का प्रयोग परीक्षा प्रणाली को अधिक पारदर्शी बनाने एवं निरन्तर सुधार लाने के लिए तथा परीक्षार्थियों की कठिनाइयों को समझने एवं दूर करने के लिए किया जाता है।
2. परीक्षार्थियों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देश देने के लिए इसका प्रयोग आवश्यक होता है।
3. शिक्षा के स्तर को ऊँचा करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।
4. शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तियों की क्रियाओं का मूल्यांकन करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।
5. अंकन प्रक्रिया को अध्यापक के किसी प्रकार के पक्षपात, दुराग्रह, संयोगिक मन:स्थिति आदि के दुष्प्रभावों से बचाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।
6. विद्यार्थियों की स्वयं की संतुष्टि के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।
7. परीक्षा प्रणाली को अधिक उन्नत एवं प्रभावशाली बनाने के लिए वस्तुनिष्ठ अंकन का प्रयोग किया जाता है।

8. शिक्षा सम्बन्धी नीतियों एवं रीतियों का मूल्यांकन करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।
9. अध्यापक वर्ग को उनकी जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए और अधिक कर्मठ तथा निष्ठावान बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

वस्तुनिष्ठ अंकन की तकनीक : यह सर्वविदित है कि मापन के क्षेत्र में अनेक प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के अंकन की विधियाँ भी अलग-अलग होती हैं। किसी मापन उपकरण की वस्तुनिष्ठता में वृद्धि करने के लिए निम्न उपाय किए जाने चाहिए-

1. परीक्षण का प्रशासन एवं मूल्यांकन विशेषज्ञों द्वारा किया जाना चाहिए।
2. परीक्षण सम्बन्धी कार्य परीक्षकों द्वारा अत्यन्त धैर्यपूर्वक किया जाना चाहिए।
3. परीक्षण निर्माणकर्त्ता को परीक्षण में अधिक से अधिक संख्या में वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को स्थान देना चाहिए।
4. निबन्धात्मक एवं लघुउत्तरीय प्रश्नों की भाषा सरल स्पष्ट एवं एकार्थी होनी चाहिए। ये प्रश्न नुकीले हों तथा इनके उत्तर सुनिश्चित होने चाहिए।
5. अधिकांश परीक्षण मानकीकृत होने चाहिए।
6. वस्तुनिष्ठ अंकन के लिए अंकन कुंजी पहले से ही तैयार कर लेनी चाहिए।
7. परीक्षण सम्बन्धी निर्देशिका बहुत सावधानीपूर्वक तैयार की जानी चाहिए।
8. परीक्षण की वस्तुनिष्ठता की जाँच सहसंबंध गुणांक द्वारा की जा सकती है जिसे वस्तुनिष्ठता गुणांक भी कहते हैं, जिसे निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात कर सकते हैं-

$$W = \frac{12 \varepsilon D^2}{K^2 N(N-1)}$$

D = दो कोटि के अन्तर के विचलन का संकेत

Σ = योग

K = विभिन्न परीक्षकों द्वारा दिए गए क्रमों के योग व क्रमों के योगों का औसत का अन्तर

N = परीक्षार्थियों की संख्या

गणना में W का मान जितना अधिक होगा, परीक्षण उतना ही अधिक वस्तुनिष्ठ होगा। इस गुणांक का मान 1.00 होने पर परीक्षण को पूर्णत: वस्तुनिष्ठ कहा जाएगा।

फलांकन प्रक्रिया का निर्माण : फलांक गणना (Scoring)किसी मानसिक परीक्षण में फलांक (Score)एक संख्यात्मक परिणाम है लेकिन यह किस प्रकार है यह परीक्षण की सामग्री पर निर्भर करती है। रॉस के अनुसार, किसी परीक्षण में वास्तविक फलांक उस परीक्षण में व्यक्ति के निष्पादन का संख्यात्मक वर्णन है।

वास्तविक फलांक कोई विशिष्ट घटना कितनी बार घटी है, कितने प्रश्नों के सही उत्तर दिये गये हैं, कितनी पुस्तकें पढ़ी गयी किसी समस्या को हल करने के लिए कितनी अशुद्धियाँ हुई, किसी प्रश्नावली के कितने कथन मान्य हुए आदि की प्रत्यक्ष गणना है।

स्कोरिंग प्रक्रिया मैनुअल और इलेक्ट्रॉनिक : शिक्षण क्रियाओं में दो प्रमुख कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। एक शिक्षण दूसरा प्रशिक्षण। आजकल दोनों ही कार्यों के लिए नई तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के कारण परीक्षकों, मूल्यांकनकर्त्ता को मूल्यांकन करने में अधिक समय की आवश्यकता होती है। समय अधिक लगने के कारण परिणाम घोषित करने में भी समय अधिक लग जाता है। इसी वृद्धि के कारण इस क्षेत्र में प्रौद्योगिक की सहायता की आवश्यकता महसूस की गई इसके प्रयोग को प्रोत्साहित भी किया गया है। आजकल दोनों ही कार्यों के लिए नई तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। पहले परीक्षाफल तैयार करने में बहुत अधिक समय लगता था लेकिन आजकल यह कार्य बहुत ही सरलता से सम्पन्न किया जाता है। अब परीक्षा परिषदें एवं विश्वविद्यालय अपने-अपने परीक्षाफल तैयार करने के लिए नवीन तकनीकी का प्रयोग करते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य एक निश्चित समय पर व्यवहार में परिवर्तन करना होता है। और मूल्यांकन के अन्तर्गत व्यवहारों के मूल्य का आकलन किया जाता है। मूल्यांकन में एक निश्चित समय पर व्यवहार के नमूने लेने और उन व्यवहारों के मूल्य का आकलन करना होता है। इस प्रकार मूल्यांकन की अर्न्तनिहित धारणा यह है कि यह मूल्यांकन किए जा रहे व्यक्ति के व्यवहार का प्रतिनिधि नमूना प्रदान करता है। एक व्यक्ति की उपलब्धियों, क्षमताओं, योग्यता, बुद्धिमत्ता, दृष्टिकोण और प्रेरणाओं के बारे में किए गये नमूने के आधार पर व्यक्ति की वर्तमान स्थिति का अनुमान लगाया जाता है।

किसी भी मूल्यांकन को करने से पूर्व मूल्यांकनकर्ता के लिए निम्न तीन प्रश्नों के बारे में जानना बहुत आवश्यक होता है-

- यह मूल्यांकन किस लिए है?
- यह मूल्यांकन किसके लिए है?
- किसके सन्दर्भ में है?

परीक्षणों के मापन के आधार पर अमेरिकी-मनोवैज्ञानिक राबर्ट ने मापन को दो भागों में वर्गीकृत किया है- एक मानदंड सन्दर्भित माप (Criterian Referenced Measurement) दूसरा मानक सन्दर्भित (Norm Referenced Measurement)।

- **मानदंड सन्दर्भित माप (Criterian Referenced Measurement) :** मानदंड सन्दर्भित मूल्यांकन वे मूल्यांकन होते हैं जिसमें मूल्यांकन स्पष्ट मानदंड और लक्ष्य के आधार पर मूल्यांकन करता है। क्या विद्यार्थी के पास पाठ्यक्रम के घटकों के निर्देशों को पहचानने के लिए आवश्यक ज्ञान है। इस प्रकार के मूल्यांकन में पासिंग स्तर के लिए क्या आवश्यक है यह पहले ही स्पष्ट किया गया है जैसे सीखने के उद्देश्य।
- **मानक सन्दर्भित (Norm Referenced Measurement) :** मानक संदर्भित मूल्यांकन उस मूल्यांकन को कहते हैं जिसका प्रयोग निरन्तर विद्यार्थियों के समूह में उपलब्धि अभिवृत्ति एवं योग्यताओं के रैंक क्रम को स्थापित करने के लिए किया जाता है। प्रत्येक ग्रेड में पुस्कृत/सम्मानित विद्यार्थियों के प्रतिशत को नियन्त्रित करके मानकों को आंशिक रूप से स्थापित किया जाता है।

विभिन्न प्रकार के मूल्यांकनों में निम्न तीन प्रकार के कार्य किए जाते हैं-

- **निदान (Diagnostic) :** विद्यार्थियों की शक्तियों एवं कमजोरियों को पहचानना।
- **संरचनात्मक (Formative) :** विद्यार्थियों की क्रिया पर प्रतिक्रिया प्रदान करना अर्थात् छात्रों को प्रतिपुष्टि प्रदान करना।
- **योगात्मक (Summative) :** पाठ्यक्रम/इकाई के अध्ययन के अन्त में मूल्यांकन के उद्देश्यों के लिए निष्पत्ति का आकलन करना।

व्यवहार में परीक्षणों के प्रकार एवं कार्य स्पष्ट नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए मिड कोर्स /इकाई आदि सरंचनात्मक मूल्यांकन अक्सर कई योगात्मक आकलनों में एक घटक रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

इलेक्ट्रोनिक स्कोरिंग प्रक्रिया (Electronic Scoring Procedure) : कम्प्यूटरों का परीक्षण के प्रत्येक स्तर पर मुख्य प्रभाव है, चाहे वह परीक्षण निर्माण हो, प्रशासन, फलांकन या व्याख्या हो। कम्प्यूटर का प्रयोग उनके द्वारा अविश्वसनीय गति से प्रदत्तों का विश्लेषण तो करना है और इसके अतिरिक्त इनका प्रयोग स्वचालित प्रशासन भी है। जहाँ तक उनके सरल और उत्तम प्रशासन के प्रश्न हैं, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रति नये उपागम तथा प्रक्रियाओं की खोज में कम्प्यूटर का महत्वपूर्ण योगदान है।

आकलन उद्देश्यों के लिए तकनीकी का प्रयोग विभिन्न स्तरों पर किया जाता है। आकलन की सूचनाओं के प्रबन्धन/प्रशासन से लेकर पूर्ण स्वचालित मूल्यांकन प्रणाली तक प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है।

मूल्यांकन सूचना के प्रबन्धन/प्रशासन में प्रौद्योगिकी का प्रयोग कई प्रकार से किया जाता है। इससे विभिन्न दर्शकों/प्रयोगकर्ताओ की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। जैसे शिक्षक, शिक्षार्थी, आयोजक और परीक्षक जिनको इनकी आवश्यकता होती है। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति की प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता है तो इससे ने केवल आख्या (रिपोर्ट)की प्रस्तुति की गुणवत्ता में सुधार होता है। अपितु इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम में सुधार, उस के विस्तार एवं उसकी सीमा का निर्धारण उचित ढंग से किया जाता है।

दूसरी तरफ स्वचालित मूल्यांकन प्रणाली के अन्तर्गत प्रौद्योगिकी मूल्यांकन के सभी पहलुओं को सम्पन्न करती है। स्वचालित मूल्यांकन प्रणाली के अन्तर्गत मूल्यांकन की सूचनाओं से लेकर समग्र अंक प्रबन्धन/प्रशासन एवं अंकों के प्रसंस्करण आदि को प्रौद्योगिकी के आधार पर पूरा किया जाता है।

वस्तुतः मूल्यांकन की रणनीति पाठ्यक्रम डिजाइन के दौरान ही की जानी चाहिए। यहाँ हमारे लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि-

- हम, हमारे विद्यार्थी किस प्रकार की चीजों का अधिगम चाहते हैं।
- हमारे द्वारा विद्यार्थी को क्या-क्या अवसर प्रदान किए जाएंगे।
- कौन से मूल्यांकन कार्य निर्धारित किए जाएंगे।
- मूल्यांकन के किन-किन तरीकों का प्रयोग किया जाएगा।

इस प्रकार अधिगम के प्रकार का विश्लेषण करके उन महत्वपूर्ण निर्णयों को लिया जाता है जिनकी हमें मूल्यांकन के लिए आवश्यकता होती है, जैसे अनुदेशनात्मक डिजाइन, मूल्यांकन की रणनीतियाँ। चूंकि मूल्यांकन में आकलन एवं मापन सम्मिलित होता है जिसके कारण निम्न समस्याएँ उत्पन्न होती हैं-

1. एक वैध मूल्यांकन उपकरण का चयन करना
2. यह सुनिश्चित करना कि परीक्षण उस लक्ष्य की माप करता है जिसके मापन के लिए इसका निर्माण किया गया है।
3. अंकिक विश्वसनीयता विशेषकर जब एक से अधिक परीक्षक मूल्यांकन कार्य में सलंग्न हों।
4. वैध सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग और विभिन्न मापों से वैध निष्कर्षों को निकालना।

3.2.7 उपलब्धि–परीक्षण का प्रशासन

उपलब्धि की रचना के बाद शिक्षा के परीक्षण का प्रशासन इस प्रकार करना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी अच्छा प्रदर्शन कर सके। इसलिए शिक्षक को विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना चाहिए। एक अच्छा परीक्षण तभी सफल हो सकता है जब वह अच्छी तरह से संचालित किया जाए। परीक्षण के संचालन के लिए पूर्व योजना बनाना आवश्यक है।

परीक्षण प्रशासन एवं निर्देश (Test Administration and Instruction)

जब परीक्षण के पदों की रचना करके उन्हें व्यवस्थित क्रम में लिख लिया जाता है तब परीक्षण कैसे प्रशासित किया जाएगा, इसके सन्दर्भ में रूपरेखा तैयार की जाती है। परीक्षण प्रशासन के समय किन–किन बातों का ध्यान रखा जाएगा और किन सावधानियों का पालन किया जाएगा इसका स्पष्टीकरण किया जाता है। ऐसा इसलिए आवश्यक होता है कि जब कोई व्यक्ति परीक्षण का प्रशासन करे तो प्रशासन की अवस्था हर बार समान रहे। परीक्षण के निर्देश सरल एवं स्पष्ट होने चाहिए जिससे परीक्षार्थियों को यह सरलता से समझ आ जाए कि उन्हें, परीक्षण के प्रश्नों का उत्तर किस प्रकार से देना है, कैसे देना और कितने समय में देना है। यदि आवश्यकता हो तो निर्देशों के अन्तर्गत एक–दो उदाहरण भी दिए जाने चाहिए जिससे परीक्षार्थी प्रश्नों का उत्तर तद्नुकूल दे सकें।

3.2.8 मानदंड एवं प्राप्तांकों की व्याख्या

थॉर्नडाइक और हेगन के शब्दों में, 'मानदंड को किसी परीक्षा में तैयार किए गए मानकीकृत सैंपल के आधार पर किए गए औसत प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।' फ्रैंक एस फ्रीमैन ने मापन में मानदंड को 'किसी परीक्षा में एक निश्चित आबादी द्वारा प्राप्त अंक के औसत या मानक स्कोर' के रूप में परिभाषित किया है।

मानदंड औसत प्रदर्शन पर आधारित प्रस्तुतियां हैं जो किसी विशेष समूह के छात्रों की परीक्षा से प्राप्त परिणाम होती हैं। यह अलग–अलग प्राप्त अंकों को समूह के अंक में परिवर्तित करने का एक उपकरण होता है। शैक्षिक मापन भौतिक मापन के समान नहीं, बल्कि मानसिक मापन के समान होता है इसलिए शैक्षिक मापन सापेक्ष होता है।

इस मामले में, किसी क्लास या समूह के संबंध में किसी व्यक्ति का मूल्यांकन करना पड़ता है। चलिए इसे एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए प्रकाश दसवीं क्लास का छात्र है। क्लासरूम परीक्षा में, उसने अंग्रेजी में 60 और गणित में 75 अंक प्राप्त किए। यदि एक आम आदमी प्रकाश के नतीजे का विश्लेषण करे, तो वह कहेगा कि प्रकाश अंग्रेजी की अपेक्षा गणित में बेहतर है। प्रकाश ने क्लास में अंग्रेजी में सर्वोच्च

अंक प्राप्त किए जबकि गणित में न्यूनतम। इसलिए आम आदमी द्वारा की गई व्याख्या गलत साबित होगी क्योंकि दोनों अंक कच्चे आंकड़े हैं।

एक वैध और विश्वसनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए, हमें एक मानदंड का प्रयोग करना चाहिए, जिसके माध्यम से हम किसी समूह में किसी व्यक्ति की सही जगह का पता लगाते हैं। इस उद्देश्य से की जाने वाली व्याख्याओं के लिए कच्चे आंकड़ों को प्राप्त आंकड़ों में बदला जाता है। मानदंड हमें बताते हैं कि एक छात्र या क्लास किसी रेफरेंस समूह की तुलना में कहां है। मानदंड औसत प्रदर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं जो किसी विशेष छात्रों के समूहों की परीक्षा के परिणाम पर आधारित होता है। यह एक सांख्यिकी की प्रक्रिया होती है जिससे किसी परीक्षा के स्कोर की व्याख्या में गलती को कम से कम किया जाता है। किसी भी शैक्षिक परीक्षा के मानदंड मानकीकृत समूह या विशेष आबादी से चुने गए सैंपल को दर्शाते हैं।

इसमें, किसी व्यक्तिगत अंक की तुलना मानकीकृत सैंपल के रूप में माने गए रेफरेंस समूह के अंक से की जाती है। मापन और मूल्यांकन के क्षेत्र में मानदंड के महत्व की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है–

(1) मानदंड कच्चे आंकड़ों से प्राप्त अंक की व्याख्या करने का आधार होते हैं।

(2) मानदंड किसी व्यक्ति को किसी समूह में सही स्थान पर रखते हैं।

(3) मानदंड छात्रों के चयन और वर्गीकरण में सहायक होते हैं।

(4) मानदंड छात्रों के मार्गदर्शन और काउंसलिंग में मददगार साबित होते हैं।

(5) मानदंड छात्रों द्वारा निर्देशात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति का वर्णन करते हैं।

(6) मानदंड किसी मापन यंत्र की व्याख्यात्मक चूक को कम से कम करने में मदद देते हैं।

मानदंडों के प्रकार

शैक्षिक और मानसिक मापन के क्षेत्र में, हम चार प्रकार के मानदंडों का प्रयोग करते हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **आयु मानदंड** : आयु मानदंड की अवधारणा 1908 में अल्फ्रेड बीनेट द्वारा विकसित की गई थी। यह मूलतः मानसिक आयु से संबंधित है। इस आयु मानदंड को 'मानसिक आयु मानदंड' या 'समान उम्र मानदंड' भी कहा जाता है। 'आयु मानदंड' की व्याख्या बुद्धि या क्षमता के पैमाने पर किसी विशेष आयु समूह का प्रतिनिधित्व करने वाले सैंपल के औसत प्रदर्शन के रूप में की जा सकती है।

   मान लीजिए कि किसी उपलब्धि परीक्षा में औसतन 80 अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की आयु 15 वर्ष 2 महीने है। इसलिए 80 अंक की परीक्षा में आयु मानदंड 15 वर्ष 2 महीने होगा। मान लीजिए मोहन 12 वर्ष का है और उसने उपलब्धि परीक्षा में 80 अंक प्राप्त किए।

   यहां, तिथि के अनुसार उसकी आयु 12 वर्ष है, जबकि मोहन की मानसिक आयु 15 वर्ष 2 महीने है। इसलिए, जब उम्र का यह मानदंड निश्चित कर दिया जाता है, तब उस विशेष आयु स्तर के छात्रों को मानकीकृत परीक्षा में शामिल किया जाता है और समूह के मानदंड के आधार पर औसत अंक का मूल्यांकन किया जाता है। जो छात्र उस अंक को प्राप्त कर लेते हैं उन्हें उस आयु मानदंड के अंतर्गत माना जाता है।

आयु मानदंड की सीमाएं

आयु मानदंड की सीमाएं इस प्रकार हैं—

- चुने हुए समूह के व्यक्तियों का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने वाला सैंपल मिलना अत्यंत कठिन होता है।
- बहुत ज्यादा और बहुत कम अंक के मामले में, आयु मानदंड से उसकी व्याख्या करना कठिन होता है।
- विभिन्न परीक्षाओं के मामले में मानसिक आयु की इकाई निश्चित नहीं होती, इसमें अंतर भी आ सकता है।
- कुछ मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक परीक्षाओं के मामले में इसका सीमित प्रयोग ही संभव है।
- शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विकास के लंबे दौर में आयु मानदंड में एक मानक और समान इकाई का अभाव होता है।
- आयु के मानदंड और मानसिक आयु को विकसित करना एक कठिन और समय खर्च करने वाला काम होता है।
- किसी विशेष आयु समूह के लोगों की मानसिक आयु एक स्थान से दूसरे स्थान और एक परीक्षा से दूसरी परीक्षा में भिन्न—भिन्न हो सकती है।

2. **ग्रेड मानदंड :** ग्रेड मानदंड आयु मानदंड के ही समान होते हैं। लेकिन, इसमें, मापन क्लास या ग्रेड स्तर पर आधारित होता है, न कि आयु स्तर पर। ग्रेड मानदंड का इस्तेमाल मानकीकृत उपलब्धि परीक्षा के साथ व्यापक तौर पर किया गया है, विशेष रूप से प्राथमिक स्कूल के स्तर पर। किसी कच्चे अंक के संदर्भ में ग्रेड के समान ग्रेड उसे माना जाता है जो किसी विशेष ग्रेड स्तर को बताता है जिसमें वह विशेष छात्र उस कच्चे अंक को प्राप्त करता है। एक ग्रेड मानदंड जो किसी कच्चे अंक के समान होता है वह उन छात्रों का ग्रेड स्तर होता है जिनका औसत कच्चा अंक किसी प्रश्न के बदले प्राप्त कच्चा अंक होता है।

   मान लीजिए कि हमने VIIIवीं ग्रेड के छात्रों के लिए कोई परीक्षा आयोजित की। नतीजे आने के बाद, हम पाते हैं कि उस परीक्षा का औसत अंक 60 है। अब 60 अंक VIIIवें ग्रेड के छात्रों के लिए ग्रेड मानदंड है। ग्रेड मानदंड प्राथमिक स्कूल के दौरान सबसे अधिक उपयोगी तब साबित होता है जब मौलिक कौशल में सधार की जानकारी देनी होती है। वे किसी छात्र द्वारा विभिन्न परीक्षाओं में किए प्रदर्शन की तुलना करने में सबसे कम उपयोगी साबित होते हैं।

ग्रेड मानदंड की सीमाएं

ग्रेड मानदंड की सीमाएं इस प्रकार हैं—

- एक ग्रेड से दूसरे ग्रेड में विकास की दर हमेशा एक समान नहीं रहती है।
- विभिन्न परीक्षाओं में ग्रेड मानदंड में अंकों की तुलना नहीं हो पाती है।
- जब VIIवें ग्रेड के छात्र को IXवें ग्रेड का श्रेय मिलता है, तब इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें IXवें ग्रेड का छात्र होने की क्षमता है।
- भिन्नात्मक ग्रेडों का कोई अर्थ नहीं होता है।

- ग्रेड मानदंड स्कूलों की गुणवत्ता, शिक्षकों की गुणवत्ता और छात्रों की गुणवत्ता से प्रभावित होते हैं।
- ग्रेड मानदंड की व्याख्या अत्यधिक भ्रम पैदा करने वाली होती है, यह किसी विषय के संदर्भ में केवल प्रदर्शन का स्तर बताती है न कि छात्रों का शैक्षिक स्तर।

3. **प्रतिशतता मानदंड :** प्रतिशतता मानदंड हमें मानदंड समूह में किसी व्यक्ति की स्थिति को बताता है। 'प्रतिशतता मानदंड' मापन के स्केल पर एक बिंदु है जिसे उस बिंदु से नीचे आने वाले लोगों के प्रतिशत के आधार पर तय किया जाता है। यह किसी छात्र का प्रदर्शन अन्य छात्रों के प्रदर्शन की तुलना में बताता है जो स्पष्ट रूप से निश्चित समूह में होते हैं जो कम अंक प्राप्त करता है। यह एक ग्रेड या आयु समूह हो सकता है, या कोई भी समूह जो सार्थक तुलना प्रस्तुत करता है। यदि 60 अंक का प्रतिशतता मानदंड 65 है, तो हमारा मतलब है कि मानदंड वाले समूह के 65 प्रतिशत छात्र 60 के अंक से नीचे हैं।

   प्रतिशतता को आम तौर पर प्रयोग किए जाने वाला 'परसेंटेज स्कोर' समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। प्रतिशत अंक कच्चे अंक होते हैं, जबकि प्रतिशतता परिवर्तित अंक होते हैं। यह किसी परीक्षा में व्यक्ति के स्कोर की व्याख्या का आधार प्रदान करता है जिसके अनुसार किसी विशेष मानकीकृत सैंपल में उसकी स्थिति तय की जाती है। यह एक ऐसे सैंपल पर आधारित होना चाहिए जिसे आयु समूह, लिंग समूह, ग्रेड स्तर, सामाजिक–आर्थिक स्तर आदि के अनुसार मिलाजुला बनाया गया है। यह सभी प्रकार की परीक्षाओं पर लागू होता है– बुद्धि, प्रवृत्ति, रुझान और उपलब्धि।

प्रतिशतता मानदंड की सीमाएं

- प्रतिशतता इकाइयां स्केल के सभी हिस्सों में समान नहीं होती हैं। स्केल के मध्य में 5 के आसपास का प्रतिशतता अंतर (उदाहरण के लिए, 45 से 50) परीक्षा के प्रदर्शन के अंत (यानी, 85 से 90) की तुलना में काफी छोटा होता है, क्योंकि अधिकांश छात्रों को मध्य के आसपास अंक मिलते हैं, जबकि कुछ ही छात्रों को बहुत अधिक या बहुत कम अंक प्राप्त होते हैं।
- प्रतिशतता मानदंड को परसेंटेड स्कोर समझ लिया जाता है जिससे व्याख्या प्रभावित होती है।
- प्रतिशतता मानदंड केवल किसी मानकीकृत सैंपल में एक परीक्षार्थी की सापेक्ष स्थिति को बताता है। यह अंकों के बीच के वास्तविक अंतर की मात्रा के विषय में कुछ नहीं बताता है।
- एक समूह के प्रतिशतता रैंक की तुलना दूसरे समूह के प्रतिशतता रैंक से नहीं की जा सकती है।
- कच्चे अंकों के प्रतिशतता स्कोर में परिवर्तन से अंत की तुलना में मध्य में अधिक अंतर आ जाता है।

कच्चे अंकों के प्रतिशतता रैंक को जोड़ने के लिए हम निम्नलिखित फॉर्मूला अपना सकते हैं–

$$P_P = L + \frac{Pn - fb}{fa} \times i$$

जहां P_p = किसी कच्चे अंक का प्रतिशतता बिंदु है।

L = कच्चे अंक का निम्न स्तर विशेष वर्ग अंतराल के बीच आता है।

Pn = बारंबारता का प्रतिशत।

fb = वर्ग अंतराल के नीचे की बारंबारता।

fa = वर्ग अंतराल की वास्तविक बारंबारता।

i = क्लास अंतराल का आकार।

4. **मानक स्कोर मानदंड** : किसी समूह में व्यक्ति की तुलनात्मक स्थिति पर संकेत देने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तरीके का इस्तेमाल यह दिखाते हुए किया जाता है कि उसके द्वारा प्राप्त अंक औसत से कितना ऊपर या नीचे है। यह मानक स्कोर का तरीका है और मानक स्कोर किसी व्यक्ति के प्रदर्शन को इस लिहाज से दिखाता है कि मीन से वह कितनी इकाई इधर या उधर है। परीक्षा में जिन विभिन्न प्रकार के मानक स्कोरों का प्रयोग किया जाता है, वे इस प्रकार हैं–

(क) **Z–स्कोर**– Z–स्कोर प्रत्यक्ष रूप से परीक्षा के प्रदर्शन को दिखाता है क्योंकि मानक अंतर की संख्या कच्चे अंक की एक इकाई होती है जो मीन के ऊपर या नीचे होती है। Z–स्कोर नॉर्मल प्रोबैबिलिटी कर्व (सामान्य प्रायिकता कर्व) की इकाई होते हैं, उदाहरणार्थ X का मान +30 से –30 होता है।

Z–स्कोर जोड़ने का फॉर्मूला है– $Z = \dfrac{X - \mu}{\sigma}$

जहां

X = अंक

μ = स्कोर का अंकगणितीय मीन

σ = कच्चे अंक का मानक अंतर

एक Z–हमेशा ऋणात्मक होता है जब कच्चा स्कोर मीन से कम होता है।

(ख) **T–स्कोर**– T–स्कोर भी मानक स्कोर होते हैं लेकिन उनका मीन वैल्यू 50 होता है और मानक अंतर 10.T–को 10 से गुणा कर और प्राप्त अंक में 50 जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए,

T–स्कोर $= 50 + (10Z)$

परीक्षा के नतीजे बताने के लिए Z–स्कोर के स्थान पर T–स्कोर को तरजीह दिए जाने का एक कारण यह है कि T–स्कोर में केवल धनात्मक पूर्णांक ही प्राप्त होते हैं।

(ग) **स्टेनाइन्स** : स्टेनाइन मानदंड का विकास सामान्यीकृत मानक स्टोर की तकनीक से हुआ है। इसे द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिकी एयरफोर्स द्वारा विकसित किया गया था। स्टेनाइन 1–9 तक एक अंक वाले स्कोर होते हैं। स्कोर की इस प्रणाली का यह नाम इस कारण पड़ा क्योंकि कच्चे अंकों का वितरण नौ बराबर हिस्सों में किया जाता है। स्टेनाइन 5 वितरण

के बीच में होता है और मीन के दोनों ही तरफ से मानक अंतर के एक–चौथाई को शामिल करता है। यहां, मीन स्कोर 5 है और मानक अंतर 1.96 या 2 है। कच्चे स्कोर को जब स्टेनाइन स्कोर में परिवर्तित किया जाता है, तब स्कोर का वितरण एक सामान्य कर्व का आकार ले लेता है।

स्टेनाइन प्रणाली में, एक–9 बिंदु वाला स्केल प्राप्त किया जाता है, जिसमें 9 उच्च होता है, 1 निम्न और 5 औसत। स्टेनाइन सामान्यीकृत मानक स्कोर होते हैं जो किसी छात्र के प्रदर्शन को विभिन्न परीक्षाओं में तुलना को संभव बनाते हैं।

स्टेनाइन का वितरण सामान्य कर्व पर होता है। नॉर्मल प्रोबैबिलिटी कर्व के क्षेत्र को नौ मानकों में विभाजित किया गया है जिसमें एक निश्चित प्रतिशत होता है। पहले स्टेनाइन में 4 प्रतिशत शामिल होता है, दूसरे स्टेनाइन में 7 प्रतिशत, तीसरे स्टेनाइन में 12 प्रतिशत, चौथे स्टेनाइन में 17 प्रतिशत, पांचवें स्टेनाइन में 20 प्रतिशत। छठे स्टेनाइन में 17 प्रतिशत, सातवें स्टेनाइन में 12 प्रतिशत, आठवें स्टेनाइन में 7 प्रतिशत और नौवें स्टेनाइन में कुल मामलों का 4 प्रतिशत शामिल होता है।

स्टेनाइन	व्याख्या	प्रतिशत	स्टेनाइन की स्थिति
1, 9	सबसे नीचे–शीर्ष	4	(1st) (9th)
2, 8	Above bottom and below top	7	(2nd) (8th)
3, 7	Near to second or eighth	12	(3rd) (7th)
4, 6	Above or below mean	17	(4th) (6th)
5	Middle or mean	20	(5th)

मानदंडों की पर्याप्तता का निर्धारण

- परीक्षा के मानदंड रेफरेंस समूह के अनुसार होने चाहिए।
- परीक्षा के मानदंडों की अन्य मानदंडों से तुलना संभव होनी चाहिए।
- प्रत्येक परीक्षा के मानदंड की एक स्पष्ट व्याख्या अनिवार्य है।
- परीक्षा मानदंड को समय–समय पर बदला जाना चाहिए।
- परीक्षा मानदंड पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए।

मानक स्कोर मानदंड की सीमाएं

मानक स्कोर मानदंड की सीमाएं इस प्रकार हैं–

- मानक स्कोर की व्याख्या तब समस्यापूर्ण हो जाती है, जब वितरण सामान्य नहीं होता।
- मानक स्कोर की समस्या से निबटने के लिए पूरा ज्ञान होना चाहिए।
- शैक्षिक और मानसिक मापन में माइनस वैल्यू अत्यधिक उलझन पैदा कर देती है।
- कभी–कभी कच्चे अंकों का वितरण सामान्य रूप से नहीं होता। वे सकारात्मक रूप से विषम होते हैं या नकारात्मक रूप से। यह रैखिक परिवर्तन सामान्य वितरण की धारणा पर आधारित है।

प्राप्तांकों से तात्पर्य किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के किसी गुण के संख्यात्मक परिमाप से होता है। किसी व्यक्ति के भौतिक गुणों को निश्चित मानक इकाइयों में मापा जा सकता है, जैसे व्यक्ति का भार किग्रा. में लम्बाई से.मी में, इसी कारण इन इकाइयों में प्राप्त प्राप्तांकों की तुलना आसानी से की जा सकती है। उदाहरण के लिए मोहन का भार 50 किग्रा. और सोहन का भार 25 किग्रा हो तो यह कहा जा सकता है कि मोहन का भार सोहन के भार से दोगुना है अथवा सोहन का भार मोहन के भार से आधा है। इसके विपरीत अभौतिक गुणों (योग्यता, बुद्धि, अभिक्षमता व्यक्तित्व) को मापने के लिए कोई निश्चित मानक इकाई नहीं होती है। इन मापों की कोई मानक इकाई न होने के कारण इनकी व्याख्या नहीं का जा सकती है और न ही तुलना की जा सकती है। शैक्षिक मापों से प्राप्त इकाई हीन परिमापों की उनके आधार पर व्याख्या नहीं की जा सकती है। इसलिए इन्हें सांख्यिकी में मूल प्राप्तांक (Raw Scores) कहते हैं तथा इन मूल प्राप्तांकों को कई नवीन प्राप्तांकों में बदला जाता है। तत्पश्चात् इन बदले हुए प्राप्तांकों की सहायता से मूल प्राप्तांकों की व्याख्या की जाती है। इन परिवर्तित प्राप्तांकों को रूपान्तरित प्राप्तांक (Derived score) कहा जाता है।

रूपान्तरित प्राप्तांकों के प्रकार

इन रूपान्तरित प्राप्तांकों कई प्रकार के होते हैं, विशेष रूप से तीन प्रकार के प्राप्तांकों का प्रयोग होता है–प्रतिशत प्राप्तांक (Percentile scores) शतांश क्रमांक (Percentile Rank) तथा मानक प्राप्तांक (Standard Score)। यहां हम मानक प्राप्तांकों की चर्चा करेंगे।

मानक प्राप्तांक

मापन से प्राप्त प्राप्तांकों को अर्थयुक्त बनाने के लिए मानक प्राप्तांकों में परिवर्तित किया जाता है। मानक प्राप्तांक वे प्राप्तांक होते हैं जिनका एक निश्चित सन्दर्भ बिंदु अर्थात् निश्चित मानदण्ड (Norms) होता है और यह मानदण्ड पैमाने का मध्यमान (Mean, M) होता है। इसके साथ–साथ इनका एक निश्चित मानक विचलन (Standard Deviation, δ) होता है। इस प्रकार मानक विचलन (δ) तथा मध्यमान M को लेकर कई प्रकार के मानक प्राप्तांक प्राप्त किए जाते हैं इनके उपयोग द्वारा विभिन्न व्यक्तियों की तुलना सरलता से की जा सकती है। इनमें Z प्राप्तांक (Z score), टी प्राप्तांक (T–score) सी प्राप्तांक (C–Score) तथा स्टेनाइन प्राप्तांक (Stanine score) मुख्य है। यहां हम केवल T–Score तथा C–Score का अध्ययन करेंगे।

C–प्राप्तांक

C–प्राप्तांक का अर्थ (Meaning of C-Score) : C–प्राप्तांकों का प्रतिपादन प्रो. गिलफर्ड ने किया था। C प्राप्तांक मूल प्राप्तांकों का वह रूपान्तरण है जिसमें परिवर्तित प्राप्तांकों का मध्यमान Mean (M) 5 तथा मानक विचलन Standard Deviation (δ) 2 होते हैं। C प्राप्तांकों को प्राप्त करने के लिए समस्त मूल प्राप्तांकों का प्रसार 11 (Eleven) के बराबर होता है। अर्थात् समस्त मूल प्राप्तांकों को 11 समान इकाई समूहों में विभाजित किया जाता है। इन इकाई समूहों को 0 से 10 बिन्दु पैमाने पर प्रदर्शित किया जाता है। ये समूह क्रमिक होते हैं। दूसरे समूह के प्राप्तांक पहले समूह से अधिक होते हैं तथा दूसरे समूह की तुलना में तीसरे समूह में प्राप्तांक अधिक होते हैं।

C–प्राप्तांकों की गणना (Calculation of C-Scores)

किसी मूल प्राप्तांक को C प्राप्तांक में रूपान्तरित करने की दो विधियां हैं–

1. Z प्राप्तांक द्वारा C प्राप्तांक की गणना
2. शतांक क्रमांक (PR) द्वारा C प्राप्तांक की गणना

किसी मूल प्राप्तांक को Z प्राप्तांक के द्वारा C प्राप्तांक के बदलने में लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता हैं–

$C = 5 + 2\,Z$ यहां $Z = \dfrac{\bar{X} - M}{\delta}$

$\bar{X}$ = मूल प्राप्तांक

M = मध्यमान

δ = मानक विचलन

यदि Z का मान 4 है तो

$C = 5 + 2Z$

$C = 5 + 2(4)$

$C = 5 + 8 = 13$

उदाहरण : किसी छात्र के अंग्रेजी भाषा के प्राप्तांक 80 हैं, समग्र का मध्यमान 60 तथा मान विचलन 8 है तो C प्राप्तांक ज्ञात कीजिए। छात्र के हिन्दी भाषा में प्राप्तांक 70 हैं तथा Z प्राप्तांक 3 है तो C प्राप्तांक ज्ञात कीजिए।

अंग्रेजी भाषा के मूल प्राप्तांकों का C प्राप्तांक	हिन्दी भाषा के मूल प्राप्तांकों का C प्राप्तांक
$C = 5 + 2\,Z$	$C = 5 + 2Z$
$Z = \dfrac{X - M}{\delta}$	$C = 5 + 2(3)$
$Z = \dfrac{80 - 60}{8}$	$C = 5 + 6$
$Z = \dfrac{20}{8} = 2.5$	$C = 11$
$C = 5 + 2\,(Z)$	
$5 + 2(2.5)$	
$5 + 5 = 10$	

किसी मूल प्राप्तांक को शतांश क्रमांक द्वारा C प्राप्तांक में बदलने के लिए सर्वप्रथम मूल प्राप्तांक (Raw Score) को शतांक क्रमांक (Percentile Rank) में बदला जाता है और फिर अग्र तालिका की सहायता से C प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है।

11 बिन्दुओं में विभाजित C प्राप्तांक पैमाना

C प्राप्तांक C -Scores	Z प्राप्तांक की सीमाएं Z- Score Limits	शतांक क्रमांकों का अन्तराल Range of PRS	मूल प्राप्तांकों का प्रतिशत C % Raw Scores	प्रतिशत पूर्णांक % in Whole Number
10	+ 2.25 से अधिक	98.78 से अधिक	1.22	1
9	+ 1.75 से + 2.25 तक	95.99 से 98.78 तक	2.79	3
8	+ 1.25 से + 1.75 तक	89.44 से 95.99 तक	6.55	7
7	+ 0.75 से + 1.75 तक	77.34 से 89.44 तक	12.10	12
6	+ 0.25 से + 0.75 तक	59.87 से 77.34 तक	17.47	17
5	+ 0.25 से ++ 0.25 तक	40.13 से 59.87 तक	19.74	20
4	– 0.75 से + 0.25 तक	22.66 से 40.13 तक	17.47	17
3	– 1.25 से – 0.75 तक	10.56 से 22.66 तक	12.10	12
2	– 1.75 से – 1.25 तक	4.01 से 10.56 तक	6.55	7
1	– 2.25 से – 1725 तक	1.22 से 4.01 तक	2.79	3
0	– 2.25 से कम तक	–21.22 से कम		

C = **प्राप्तांकों की उपयोगिता** (Utility of C-Score)

शिक्षा के क्षेत्र में कुछ परिस्थितियों में Z प्राप्तांक तथा T प्राप्तांकों के स्थान पर C प्राप्तांकों का प्रयोग करना अधिक उपयोगी होता है, किन्तु ऐसी स्थितियां बहुत कम होती हैं।

C प्राप्तांकों की सबसे बड़ी कमी शून्य प्राप्तांक देना है। C प्राप्तांकों के केवल एक ही के ऊपर या नीचे हो जाने से चयनित व्यक्तियों के प्रतिशत में काफी अधिक अन्तर आ जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. परीक्षण का निर्माण करते समय विद्यार्थियों के किस स्तर को ध्यान में रखा जाता है।

   (क) आयु (ख) कक्षा

   (ग) बुद्धि (घ) उपरोक्त सभी

2. "अनुदेशन वह प्रक्रिया है, जो शिक्षार्थी को कुछ उद्देश्यों की ओर प्रभावित करती है।" उपरोक्त कथन किस विद्वान का है?

   (क) एस.एम. कोरे (ख) गेट्स

   (ग) क्रोनबैक (घ) फ्रोमैन

3. आयु मानदंड की अवधारणा कब विकसित की गई?

   (क) सन् 1908 में (ख) सन् 1909

   (ग) सन् 1910 में (घ) सन् 1911 में

टिप्पणी

3.3 नैदानिक परीक्षण

कक्षा की संपूर्ण गतिविधियों का उद्देश्य शिक्षण–अधिगम के द्वारा विद्यार्थियों के विचार, ज्ञान, कौशल, व्यवहार जैसे पक्षों को परिपक्व करना होता है। ज्ञान, कौशल और अभिवृत्ति के विकास द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। परंतु शिक्षण की प्रक्रिया के अंतर्गत इन उद्देश्यों की प्राप्ति सदा सुनिश्चित नहीं की जा सकती है। शिक्षण–अधिगम के सभी कारकों, जैसे– शिक्षक, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम और शिक्षण प्रक्रिया इत्यादि में कुछ दोष हो सकते हैं जिसके कारण सामान्य शिक्षण में उपयुक्त लक्ष्य की प्राप्ति न हो सके। यह स्थिति असमान्य नहीं है परंतु शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिए हानिकारक हो सकती है। इसलिए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों की व्यक्तिगत या सामूहिक समस्याओं को जानना अर्थात निदान करना और विशेष प्रयत्नों द्वारा उनका निवारण करना अर्थात उपचारात्मक शिक्षण करना, शिक्षण प्रक्रिया के अनिवार्य घटक हैं।

कक्षा में सभी विद्यार्थी एक स्तर के नहीं होते हैं और शिक्षक का शिक्षण कौशल भी सभी विद्यार्थियों को एक समान रूप से प्रभावित नहीं करता। इसका तात्पर्य यह है कि सभी विद्यार्थी शिक्षक द्वारा संपन्न शिक्षण प्रक्रिया के सभी बिंदुओं को एक मान स्तर तक नहीं समझ सकते। इसी कारण निदानात्मक और उपचारात्मक शिक्षण को शिक्षण प्रक्रिया का अनिवार्य घटक माना गया है।

निदान का तात्पर्य है– समस्याओं का ज्ञान। शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत विद्यार्थियों में मौजूद समस्याओं का ज्ञान, कथन आदि का पता लगाना निदानात्मक परीक्षण कहलाता है। निदानात्मक, जांच की प्रक्रिया के अंतर्गत सर्वप्रथम शिक्षण–अधिगम के मूल्यांकन द्वारा विद्यार्थियों की उपलब्धियों की समीक्षा की जाती है। यदि किसी शिक्षण बिंदु के मूल्यांकन में कक्षा के कुछ या अधिकांश विद्यार्थी अपेक्षित अधिगम स्तर प्रदर्शित नहीं करते तब उस शिक्षण बिंदु को विद्यार्थियों के लिए समस्यात्मक माना जाता है। समस्या के कारणों को जानने के लिए लिखित एवं मौखिक परीक्षण किया जाता है जिसे निदान कहा जाता है। निदान अर्थात कारण जानने के उपरांत समस्या के उपचार की नीति निर्धारित की जाती है। यह बिल्कुल इस प्रकार की प्रक्रिया है जैसी कि चिकित्सक द्वारा रोगी की बीमारी के कारणों को ढूंढ़ने के पश्चात उसका उपचार करना।

नैदानिक जांच शैक्षणिक परीक्षा का एक प्रकार है। इनके दो उद्देश्य होते हैं– 1. लक्षण के उद्देश्य, और 2. नैदानिक उद्देश्य। किसी छात्र के लक्षण की जांच उस विषय के संदर्भ में की जाती है जो उसे पढ़ाया गया है। निदान से अर्थ है छात्रों की खराब उपलब्धि के लिए उनकी कमजोरियों का पता लगाना। लक्षण और नैदानिक कार्य एक दूसरे के पूरक हैं, और दोनों ही शिक्षा के मूल्यांकन और मापन के लिए महत्वपूर्ण हैं।

किसी नैदानिक परीक्षा को किसी विशेष कमजोरी या किसी विषय को समझने में विफलता का पता लगाने के लिए किया जाता है जैसे पढ़ने में या अंकगणित में कमजोरी। नैदानिक परीक्षा में, प्रमुख अभिरुचि व्यक्तिगत प्रश्नों पर प्रदर्शन को लेकर होती है या उसी प्रकार के प्रश्नों पर छोटे समूह के प्रदर्शन पर। नैदानिक परीक्षा, सही उत्तर के लिए नहीं बल्कि गलत उत्तर के लिए की जाती है जबकि गलत उत्तर उसकी विफलता के कारण बन जाते हैं।

3.3.1 शैक्षिक नैदानिक परीक्षण का अर्थ एवं महत्व

नैदानिक परीक्षा वह होती है जो हमें छात्र की विशेष ताकत और कमजोरी का पता लगाने में मदद करती है। इन परीक्षाओं को 'विश्लेषणात्मक परीक्षा' भी कहते हैं। सही उत्तर छात्र की ताकत को बताता है और गलत उत्तर उसकी कमजोरी की ओर संकेत करता है। उपलब्धि परीक्षा में दिए गए प्रश्नों के सही उत्तर से कुल अंक का पता चलता है। गलत उत्तर पर शून्य दिया जाता है। इन उपलब्धि परीक्षाओं से किसी व्यक्ति के खराब अंकों का कारण पता नहीं चलता है।

परीक्षा के लिए 'नैदानिक' शब्द का प्रयोग खतरे और संदिग्धता से भरा होता है। शिक्षाविद मानते हैं कि कुछ परीक्षा नैदानिक होती है, जबकि अन्य उपलब्धि परीक्षा होती है, जिनमें कोई नैदानिक विशेषता नहीं होती। एक नैदानिक परीक्षा से शक्ति और कमजोरी का पता लगाया जाता है। इसलिए, कोई भी परीक्षा जिसमें कुल अंक एक से अधिक होता है, वह, एक लिहाज से नैदानिक होती है। यदि दो हिस्से में स्कोर हैं, उदाहरण के लिए, एक अंकगणित की जांच के लिए और दूसरा अंकगणितीय रीजनिंग के लिए, तो नैदानिक परीक्षा से यह कहा जा सकता है कि छात्र ने समस्याओं के तार्किक हल की अपेक्षा योग में अच्छा प्रदर्शन किया है। इसका अर्थ हुआ कि नैदानिक परीक्षा मात्रात्मक नहीं, गुणात्मक होती है। किसी नैदानिक परीक्षा में किसी व्यक्ति का एक विषय में कुल स्कोर पता नहीं चलता जिसका उसने अध्ययन किया है और उसने जिसकी परीक्षा दी है।

शैक्षिक नैदानिक परीक्षण का महत्व

शैक्षिक नैदानिक परीक्षण से छात्रों की शिक्षण में हो रही कमजोरियों का पता लगता है। इससे अध्यापक को यह पता लग जाता है कि छात्र कक्षा में शैक्षिक प्रगति क्यों नहीं कर पाया है।

परीक्षाओं से शिक्षण में सुधार नहीं किया जा सकता क्योंकि उनमें कोई अंतर्निहित शक्ति नहीं होती है। उनके द्वारा महज मौजूद स्थिति ज्ञात होती है। सुधार के लिए शिक्षण शिक्षक द्वारा सतत और सृजनात्मक प्रयास का फल होता है जिसमें वे परीक्षा से ज्ञात कमजोरियों को दूर करने के उपाय अपनाते हैं। जितनी आसानी, जितनी स्पष्टता और जितने प्रत्यक्ष रूप से इन जरूरतों का पता चलता है वह इन परीक्षाओं के वास्तविक शैक्षणिक मूल्य को मापते हैं।

केवल कुछ ही परीक्षाओं को इस प्रकार तैयार किया जाता है कि उनके परिणाम सुधार की प्रक्रिया के लिए प्रभावी हो सकें। हालांकि, इसे शिक्षक यदि इन परिणामों का उपयोग अपने शिक्षण में सुधार के लिए नहीं करते तो इसे उनकी विफलता माना जाएगा। जिस प्रकार किसी जहाज के नाविक को उसके उपकरण की गणना से अपनी दिशा तय करनी पड़ती है उसी प्रकार परीक्षा से मिले आंकड़े सुधार कार्यक्रम का आधार प्रदान करते हैं।

शैक्षिक नैदानिक परीक्षण के महत्व को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं—

1. शैक्षिक नैदानिक परीक्षण के द्वारा छात्रों की सीखने संबंधी कठिनाइयों का पता लगाया जा सकता है।

2. कठिनाइयों एवं कारणों को समझ कर इनको दूर करने के लिए शिक्षण की समुचित प्रक्रिया अपनाई जाती है।
3. शिक्षण प्रक्रिया द्वारा छात्रों को अपनी शक्ति एवं योग्यता के अनुसार शैक्षिक प्रगति करने का अवसर प्राप्त होता है।
4. शैक्षिक नैदानिक परीक्षण से पिछड़े या मंद बालकों की हीन भावना दूर होती है।
5. शैक्षिक नैदानिक परीक्षण द्वारा छात्रों में आगे बढ़ने की प्रेरणा बढ़ती है इससे उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास होता है।
6. शैक्षिक नैदानिक परीक्षण द्वारा छात्रों की व्यक्तिगत परेशानियां दूर होती हैं तथा वे असमायोजन की स्थिति से बच जाते हैं।

उपयोग

विद्यालय में छात्रों को आगे बढ़ाने उन्हें उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण करने के लिए उनका परीक्षण किया जाता है किंतु छात्रों को सफलता क्यों नहीं मिली? वे अपनी कक्षा में उत्तीर्ण क्यों नहीं हुए तथा अगली कक्षा में क्यों नहीं जा पाए। इसके कारणों को जानने के लिए नैदानिक परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में नैदानिक परीक्षण का उपयोग विशिष्ट–वस्तु अधिगम इकाई में प्राप्त गुणों के आधार पर बालक के शैक्षिक विकास में सुधार हेतु समुचित परामर्श देना है।

सुधार कार्य के आधार के तौर पर नैदानिक कार्य

कक्षा और एक एक छात्र की कठिनाई का सटीक आकलन, साथ ही सुधार को लागू करना शिक्षकों के लिए केवल महत्वपूर्ण नहीं बल्कि अनिवार्य भी होता है। सुधारवादी शिक्षण उस सटीकता और जानकारी पर निर्भर करता है जिससे छात्र के विशेष कौशल को बढ़ाया जाता है। सामान्य सर्वे के प्रकार, या परीक्षा जो बिना विश्लेषण वाले स्कोर बताते हैं, उनसे पर्याप्त जानकारी नहीं मिल पाती है।

निवारक के रूप में निदान कार्य

शिक्षा में लागू किए जाने पर निदान का अर्थ है किसी पद्धति में गलती किए जाने, फेल हो जाने पर निर्देशन की तकनीक। इसमें शक नहीं कि निदान का एक मौलिक उद्देश्य कमजोरी का पता लगाना और उनके कारणों को तय करना है, लेकिन इस पद्धति में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे कि इसे कमजोरी का पता लगाने में कारणों के अनुमान के लिए इस्तेमाल न किया जाए। नैदानिक प्रक्रियाओं की जानकारी हो जाने के बाद सभी प्रकार के निवारक कार्य किए जा सकते हैं। एक ही प्रकार की गलती बार–बार न हो इसका पता लगाना ही इसका उद्देश्य है।

इस प्रकार, सटीक और विस्तृत शैक्षणिक निदान से शिक्षा में किसी निवारक कार्यक्रम को विकसित किए जाने का आधार तैयार हो जाता है।

3.3.2 नैदानिक परीक्षण : प्रयोजन एवं उपयोग

शैक्षिक नैदानिक के प्रयोजन को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. शैक्षिक नैदानिक परीक्षण द्वारा छात्रों की विषयगत कमजोरी के कारणों का पता लगाना ।

2. छात्रों के सर्वांगीण विकास में सहायता प्रदान करना।
3. विषय–वस्तु को कम समय में समझना।
4. किसी विशिष्ट विषयों में पिछड़े हुए छात्रों की पहचान करना तथा उसके सुधार हेतु निदान करना।
5. विषय संबंधी निदान हेतु विषय को छात्रों की रुचि एवं क्षमता के अनुसार बनाना।
6. अध्यापक को स्वयं के अध्यापन का मूल्यांकन करने में सहायता प्रदान करना।
7. अध्ययन तथा अध्यापन प्रक्रिया में सुधार लाना।
8. भाषा तथा अन्य विषयों में प्राप्त कमियों के आधार पर आकलन प्रक्रिया को प्रभावोत्पादक बनाना।

स्कूली शिक्षा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि छात्रों के मौलिक कौशल की पहचान किस हद तक की जाती है और उनका प्रयोग शिक्षण में कितना होता है। उदाहरण के लिए, किसी बच्चे को जोड़ सिखाने के लिए न केवल स्वतः प्रतिक्रिया करना सिखाना तथा मौलिक बातों को बताना जरूरी है बल्कि इसमें उच्च स्तर के कौशल की भी आवश्यकता पड़ती है, जैसे एकाग्रता की अवधि पर नियंत्रण, और एक कॉलम से दूसरे कॉलम तक जाना। यदि शिक्षक यह समझ लेता है तो उसका कार्य सरल हो जाता है। इसी प्रकार, यह दिखाया जा सकता है कि मौन रहकर पढ़ते हुए समझ लेने की क्षमता एकमात्र क्षमता नहीं है। यह अनेक तत्वों का मेल है, जैसे शब्दार्थों का ज्ञान, वाक्य से शब्द के अर्थ को निकालना, इकाई और वाक्य को व्यवस्थित करने की क्षमता तथा वाक्य की इकाइयों को तार्किक रूप से संगठित पूर्ण रूप देने की क्षमता, तथा अपेक्षित सामग्री को तुरंत ढूंढ़ लेने की काबलियत। इस ज्ञान को रखने वाले शिक्षक के पास शिक्षण का वास्तविक आधार होता है।

एक अन्य मौलिक विषय भाषा का है जिसमें अनेक सूक्ष्म कौशल आपस में गुंथे होते हैं। यहां भी उपलब्धि प्राप्त करने की पूरी प्रक्रिया को समझना आवश्यक है।

अच्छे आकलन के साथ–साथ अच्छा शिक्षण भी होना चाहिए। किसी भी स्कूल के विषय में प्रभावशाली नैदानिक सामग्री को तभी तैयार किया जा सकता है जब उस विषय में सफलता की पहचान कर ली गई है। मनोवैज्ञानिक रूप से, इसका कारण यह है कि कुल मिलाकर बच्चा अपने अभ्यास और पढ़ाई जा रही सामग्री को समझ लेता है। इसी प्रकार, सुधार के कार्य तभी संभव हैं जब उस बिंदु को न पहचान लिया जाए। जहां छात्रों की महारत हार नहीं मान जाती। इस प्रकार, विश्लेषण में भेदने की क्षमता होनी चाहिए और आकलन संक्षिप्त होना चाहिए।

सामान्य कार्यों के व्यापक बयान की अपेक्षा आकलन निश्चित होना चाहिए। यह काफी नहीं है कि यह बता दिया जाए कि कोई छात्र मौन रहकर नहीं पढ़ सकता है। इस बाधक तत्व की सही प्रकृति को उजागर किया जाना चाहिए जिससे कि सुधार के कार्यक्रम चलाए जाएं। प्राप्त नैदानिक सूचना जितनी स्पष्ट होगी, सुधार के उपाय भी उतने ही प्रभावी होंगे। इसी के एक उदाहरण की चर्चा करते हैं, जिसके अनुसार यदि कोई बच्चा योग नहीं कर पाता, तो जब तक यह पता न लगे कि

उसका कौशल कहां मात खा जाता है, तब तक शिक्षण और उसमें सुधार के सारे उपाय विफल साबित होंगे।

3.3.3 उपलब्धि परीक्षण और नैदानिक परीक्षण में अंतर

दो प्रकार की शैक्षणिक परीक्षा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है–

1. एक उपलब्धि परीक्षा छात्र के सीखने की सीमा बताती है। उपलब्धि का आकलन एक व्यक्ति के आधार पर किया जाता है जिसमें सीखने में विशेष कमजोरी का पता लगाने का प्रयास किया जाता है, लेकिन यह एक अकेला स्कोर नहीं देती है।
2. उपलब्धि परीक्षा मात्रात्मक होती है, जबकि एक नैदानिक परीक्षा गुणात्मक होती है।
3. प्रश्नों को कठिनाई के क्रम में सजाया जाता है। सबसे आसान प्रश्न को परीक्षा के शुरू में और सबसे कठिन को अंत में रखा जाता है। लेकिन नैदानिक परीक्षा में, प्रश्नों को सीखने के क्रम में लगाया जाता है जो शिक्षण की सकारात्मक बातों के हस्तांतरण को बताते हैं।
4. उपलब्धि परीक्षा में, प्रश्नों का विश्लेषण किसी प्रश्न पर छात्रों द्वारा सही उत्तर के आधार पर किया जाता है, जिसमें प्रश्नों को चुनने के लिए 'उपकरण पद्धति' का प्रयोग किया जाता है। किसी नैदानिक परीक्षा के प्रश्नों का आकलन छात्रों द्वारा किसी प्रश्न का गलत उत्तर दिए जाने के आधार पर किया जाता है। नैदानिक परीक्षा के लिए स्टेनली विधि के प्रश्न विश्लेषण का प्रयोग किया जाता है।
5. दोनों ही परीक्षाओं में विषय का कंटेंट एक समान रहता है। दोनों ही परीक्षाओं में वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्न दिए जाते हैं। उपलब्धि परीक्षा में, सही उत्तर के लिए एक अंक और गलत उत्तर के लिए शून्य मिलता है। नैदानिक परीक्षा में, गलत जवाब से सही उत्तर के लिए अंक नहीं दिए जाते, बल्कि गलत जवाब की पहचान गलत उत्तर का कारण पता लगाने के लिए की जाती है।
6. उपलब्धि परीक्षा के स्कोर के लिए स्कोरिंग और व्याख्या सरल है। विषय के जानकारों की आवश्यकता नहीं पड़ती, लेकिन नैदानिक परीक्षा की स्कोरिंग और व्याख्या कठिन है।
7. लेख जैसे और वस्तुनिष्ठ प्रकार उपलब्धि परीक्षा की जांच के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं, लेकिन नैदानिक परीक्षा के लिए केवल वस्तुनिष्ठ प्रकार का प्रयोग होता है। नैदानिक उद्देश्य से लेख– जैसे प्रश्नों का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।
8. किसी परीक्षा के लिए विश्वसनीयता और मूल्यांकन अनिवार्य विशेषता होती है। लेकिन नैदानिक उपजांच या एकल शिक्षण इकाई पर्याप्त रूप से विश्वसनीय है। एक नैदानिक परीक्षा व्याख्या के लिहाज से व्यक्तिगत परीक्षा होती है, लेकिन इसके अतिरिक्त यह एक सामूहिक परीक्षा भी है।

9. किसी उपलब्धि परीक्षा को तैयार करते समय, कंटेंट की सैंपलिंग को ध्यान में रखा जाता है, किसी भी शिक्षण बिंदु को हटाया या अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।
10. नैदानिक परीक्षा शिक्षकों के लिए सुधार संबंधी शिक्षण की योजना और संगठन का प्रभावी साधन है। नैदानिक परीक्षा के आधार पर ट्यूटोरियल समूह बनाए जाते हैं। शिक्षक खराब प्रदर्शन करने वाले छात्रों की मदद कर सकते हैं और उनके प्रदर्शन के राह की रुकावटों को दूर कर उनके प्रदर्शन को बेहतर बना सकते हैं। नैदानिक परीक्षा का उद्देश्य सुधार संबंधी अध्यापन और निर्देशन है। उपलब्धि परीक्षा का प्रयोग चयन, प्रमोशन, ग्रेडेशन, वर्गीकरण और रिसर्च कार्य के लिए भी किया जाता है।

3.3.4 शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया

शैक्षणिक निदान प्रक्रिया के पांच सोपान हैं– (1) विषय वस्तु, (2) समस्या का विश्लेषण, (3) प्रश्नपत्र का निर्माण, (4) प्रस्तुति, (5) जांच। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. विषय–वस्तु

विद्यार्थियों के परीक्षण के उपरांत शिक्षक को विषय विशेष में विद्यार्थी या विद्यार्थी समूह द्वारा की गई त्रुटियों की जानकारी प्राप्त हो जाती है। इसके आधार पर शिक्षक, विद्यार्थियों की व्याकरण और भाषा की अशुद्धियों को चिह्नित कर लेता है। यदि कोई विद्यार्थी या विद्यार्थी समूह किसी पक्ष विशेष में सामान्य से अधिक अशुद्धियां कर लेता है तो उस शिक्षण बिंदु को निदान के विषय के रूप में चिह्नित कर लिया जाता है। यदि शिक्षक चाहे तो चिह्नित समस्या को सुनिश्चित करने के लिए मौखिक परीक्षा भी कर सकता है।

2. समस्या का विश्लेषण

कोई भी समस्या अपने आप में स्वतंत्र नहीं होती, उसके अनेक पहलू होते हैं। समस्या के विश्लेषण के अंतर्गत शिक्षक विचार करता है कि प्रस्तुत समस्या के कितने पहलू हैं। उदाहरण के तौर पर एक शिक्षक के सम्मुख वर्तनी संबंधी अशुद्धियों की समस्या है। इसमें सर्वप्रथम शिक्षक अशुद्धि के सही प्रकार का सीमांकन करता है। फिर वह वर्तनीगत अशुद्धियों के सामान्य कारणों जैसे– विद्यार्थियों का ठीक से न सुन पाना, मात्राओं और अक्षरों का सही ज्ञान न होना, ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं को न पहचानना इत्यादि में से संभावित कारण की पहचान करता है। इस प्रकार शिक्षक समस्या के विश्लेषण के अंतर्गत निर्णय करता है कि वर्तमान समस्या का स्वरूप क्या है और इसके पीछे कौन से कारण हैं।

3. प्रश्नपत्र का निर्माण

शिक्षक द्वारा समस्या को जानने व समस्या के कारणों को पहचानने के कार्य को सुनिश्चित करने के लिए उसका परीक्षण अनिवार्य है। यह परीक्षण शिक्षक के अनुमानों को जानने के लिए किया जाता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षक एक प्रश्नपत्र का निर्माण करता है जिसमें समस्या के विभिन्न पहलुओं से संबंधित शब्द, वाक्य और अनुच्छेदों को प्रस्तुत किया जाता है। यह इस विधि से किया जाता है कि विद्यार्थियों की कमियों की प्रकृति का सही आकलन हो सके।

4. प्रस्तुति

प्रश्न पत्र तैयार होने के उपरांत इसे उन विद्यार्थियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिन्हें वर्तनीगत समस्याएं थीं। विद्यार्थियों से अपेक्षा रखी जाती है कि वे समय–सीमा के भीतर इस प्रश्नपत्र को हल करने का प्रयास करें। इस प्रश्नपत्र के माध्यम से विद्यार्थियों के अधिगम में विद्यमान कमियों और असफलताओं का आकलन किया जाता है।

5. जांच

विद्यार्थियों द्वारा प्रश्नपत्र हल करने के उपरांत उनकी जांच की जाती है। इससे यह पता चल जाता है कि कौन–सा विद्यार्थी किस प्रकार की वर्तनीगत अशुद्धियां करता है और उनका कारण क्या है। यही नैदानिक परीक्षण का उद्देश्य है।

3.3.5 विशेष क्षेत्रों में नैदानिक परीक्षण और उपचार

विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रकार के विषय स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं। प्रत्येक स्कूली विषय में अपने प्रकार की परीक्षा की आवश्यकता पड़ती है। निम्न विशेष समस्याओं का जिक्र किया गया है–

(क) वाचन, लेखन, उच्चारण

शैक्षणिक उपचार कार्यक्रम के दो प्रकार हैं–

यदि समस्या के क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए उपचारात्मक प्रकारों पर विचार करें तो उसके दो प्रकार हैं–

1. सामूहिक
2. वैयक्तिक

सामूहिक समस्याएं, वे समस्याएं होती हैं जिनका संबंध कक्षा के सभी विद्यार्थियों से होता है।

वैयक्तिक समस्याएं वे समस्याएं होती हैं जो अलग–अलग विद्यार्थियों से संबंधित होती हैं।

इन समस्याओं का शैक्षिक उपचार दो प्रकार से किया जा सकता है–

1. समस्या के कारणों को दूर करना।
2. उन कारणों को उत्पन्न न होने देना जो समस्याओं को पुनः जन्म दे सकते हैं।

वाचन की समस्या

1. **समस्या** : अशुद्ध वाचन की समस्या एक वैयक्तिक समस्या है।
2. **समस्या का स्पष्टीकरण** : विद्यार्थी 'प्र' को 'पर' 'स' को 'श' पढ़ता है, वह अटक–अटक कर पढ़ता है।
3. **समस्या के सम्भावित कारण** : वाचन में अशुद्धि के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।
   1. स्कूल का प्रभाव।
   2. क्षेत्रीय प्रभाव।

3. शारीरिक दोष–हकलाना, तुतलाना आदि।
4. दृष्टि दोष–कम दिखाई देना, कुछ का कुछ दिखाई देना।
5. निर्देशन का अभाव।

टिप्पणी

4. समस्या के वास्तविक कारण : जब विद्यार्थी का मौखिक परीक्षण किया गया तो उसने वही अशुद्धियाँ कीं, जिनको वह सामान्य रूप से कक्षा में करता है। जब उसके अभिलेख मांगाकर देखा गया तो पता चला कि वह किसी दूसरे प्रदेश के स्कूल में पढ़ा है वहां के क्षेत्रीय लोग इस प्रकार ही शब्दों का उच्चारण करते हैं। वहां उच्चारण पर इतना अधिक ध्यान नहीं दिया गया जितना कि इस स्कूल में दिया जा रहा है।

5. उपचारात्मक कार्यक्रम

(1) कक्षा में उन शब्दों का अंतर स्पष्ट किया गया जो 'स' और 'स' तथा 'प्र' और 'पर' के बीच भेद प्रदर्शित करते हैं–

स्तर–सतर	प्रसन्न–परसन्न
स्त्री–सतरी	प्रमाण–परमाण
स्टेशन–सटेशन	प्रमुख–परमुख
स्कूल–सकूल	प्रभावी–परभावी
स्नान–सनान	प्रमुख–परमुख

(2) रुक–रुक कर पढ़ने की समस्या का कक्षा में अभ्यास कराया जाएगा।

(3) उच्चारण से संबंधित पुस्तकें जो सरल भाषा में हैं, विद्यार्थी को उन्हें पढ़ने का अवसर दिया जाएगा।

उचित नैदानिक शिक्षण के पश्चात उपचारात्मक शिक्षण होता है क्योंकि सबसे पहले विद्यार्थियों की त्रुटियों, दोषों, कठिनाइयों का निदान किया जाता है। उसके पश्चात निवारण के लिए उपचार किया जाता है किन्तु वस्तुतः आधाररूप में निदान और उपचार एक साथ ही किया जाता है, ऐसा स्किनर महोदय ने प्रतिपादित किया है।

(ख) भाषा

भाषा स्कूली विषयों के लिए एक महत्वपूर्ण कौशल है। कम ध्वनि में या बिना शोर पढ़ने की परीक्षा में शामिल उप–परीक्षाएं इस प्रकार हैं–

- गद्य को पढ़ने और समझने की भूमिका।
- कविता को समझना और व्याख्या करना।
- विभिन्न क्षेत्रों में शब्द भंडार।
- वाक्यों के अर्थ।
- पैराग्राफ को समझना।

इन परीक्षाओं में, छात्र निम्नलिखित प्रकार की गलतियां कर जाते हैं– भाषा का गलत उच्चारण, स्पेलिंग की गलती, दोहराने की गलती, शब्द को सही स्थान न देना, दो शब्दों को मिलाना, प्रतिकूल पाठन आदि। शिक्षक को इन गलतियों के मूल कारणों का पता लगाना पड़ता है, उसके बाद ही सुधार संभव है।

3. अंकगणित

अंकगणित में कम पास नैदानिक परीक्षा इन विषयों में ली जाती है– योग, घटा, गुणन और विभाजन। छात्र निम्नलिखित गलतियां करते हैं–

- जोड़ने में हासिल की गलती।
- जोड़ने में उधार लेते समय की गलती।
- अगले से एक लेना और उसे कम करने में गलती।
- गलत स्थान पर दशमलव लगाना।
- गुणा में पहाड़ा याद न रखना
- गुणन में दशमलव को गलत स्थान पर लगाना।
- भाग करते समय पहाड़ा याद न रखना।
- गलत नंबर लिख देना।

योग में गलती के उदाहरण

$$(1)\ \begin{array}{r} 43 \\ +\,56 \\ \hline 99 \end{array} \qquad (2)\ \begin{array}{r} 54 \\ +\,74 \\ \hline 128 \end{array} \qquad (3)\ \begin{array}{r} 67 \\ +\,35 \\ \hline 912(X) \\ 35 \end{array} \quad \text{या} \quad \begin{array}{r} 67 \\ +\,35 \\ \hline 102(\checkmark) \end{array}$$

घटाव में उधार लेने में गलती

$$(1)\ \begin{array}{r} 78 \\ -\,46 \\ \hline 32 \end{array} \qquad (2)\ \begin{array}{r} 96 \\ -\,75 \\ \hline 21 \end{array} \qquad (3)\ \begin{array}{r} 52 \\ -\,38 \\ \hline 26(X) \end{array} \quad \text{या} \quad \begin{array}{r} 52 \\ -\,38 \\ \hline 14(\checkmark) \end{array}$$

शिक्षक को गलत उत्तर के कारणों का पता लगाना होता है, फिर वह इन गलतियों के सुधार में मदद कर सकता है।

उपचारात्मक शिक्षण

उपचारात्मक शिक्षण से तात्पर्य है समस्या के कारणों का पता लगने पर किए गए उपाय। शिक्षण अधिगम में विद्यार्थियों की अधिगम प्रक्रिया के अंतर्गत मौजूद समस्याओं का ज्ञान तथा उन समस्याओं के कारण पता लगाने पर उन समस्याओं को दूर करने के उपाय उपचारात्मक शिक्षण कहलाते हैं। जब अध्यापक परीक्षण करके किसी विद्यार्थी या विद्यार्थी समूह की समस्याओं का पता लगता है और ये समस्याएं बाधा उत्पन्न करने वाली होती हैं जिसका अर्थ है कि इनका निराकरण किए बिना भाषा शिक्षण की प्रक्रिया जारी रखने पर अपेक्षित लाभ न मिल पाना। इसलिए इन समस्याओं का निराकरण किया जाता है। इन समस्याओं के निराकरण के लिए तुरंत कोई उपचार न करके उस उपचार की सुनिश्चित प्रक्रिया द्वारा प्रभावी समाधान की खोज की जाती है। इस समाधान का विद्यार्थियों के छोटे समूह पर परीक्षण किया जाता है। यदि परिणाम सकारात्मक होते हैं तब पूरे समूह पर इसे लागू किया जा सकता है। यह प्रक्रिया शिक्षण के दौरान संचालित की जा सकती है इसीलिए इसे उपचारात्मक शिक्षण कहा जाता है।

उपचारात्मक शिक्षण की प्रक्रिया

उपचारात्मक शिक्षण की अनेक विधियां हैं। इन विधियों को मुख्यतः दो विभागों में बांटा जा सकता है– (1) सामूहिक उपचार विधि, (2) व्यक्तिगत उपचार विधि। जब कक्षा के

अधिकांश विद्यार्थियों में भाषागत व्यवहार में दोषों को देखा जाता है तब वहां सामूहिक उपचार विधि का प्रयोग किया जाता है। एक–दो विद्यार्थियों के भाषा संबंधित दोषों के उन्मूलन के लिए व्यक्तिगत उपचार विधि का प्रयोग किया जाता है।

1. सामूहिक उपचार विधि

उपचारात्मक शिक्षण की इस विधि के अंतर्गत विद्यालय के नियमित समय से पहले या बाद में अलग से विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जा सकता है। इस प्रकार की कक्षाओं में एक श्रेणी के सभी विद्यार्थियों को शामिल किया जा सकता है। इन कक्षाओं के अंतर्गत एक प्रकार के भाषायी दोषों से ग्रस्त विद्यार्थियों को छोटे समूहों में बांटा जा सकता है। इससे निर्देशन और अभ्यास में सुविधा होती है। सरल से कठिन के क्रम का अनुपालन, पर्याप्त प्रश्नोत्तर, अभ्यास की सुविधा व व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे कर इस प्रकार के उपचारात्मक शिक्षण को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

2. व्यक्तिगत उपचार विधि

इस प्रकार के उपचार के अंतर्गत कक्षा के वे गिने–चुने विद्यार्थी जिनकी भाषायी कौशलों में समस्या आती है, वे आते हैं। इसके अंतर्गत वर्तनी संबंधित अशुद्धियां, मात्राओं की पहचान न होना, वर्णों की आकृति सही नहीं बना पाना, अनुचित लेखन अभ्यास जैसी समस्याएं आती हैं।

व्यक्तिगत भिन्नता और अन्य विद्यार्थियों की सक्रिय सहायता प्राप्त करना, इस विधि के महत्वपूर्ण सूत्र हैं। इसके लिए पुस्तक पाठ, श्रुतलेख, अभ्यास पुस्तिकाओं की जांच, सामूहिक वाचन जैसे कारकों का उपयोग किया जा सकता है। इस विधि में विद्यार्थी से बातचीत करके समस्या का कारण जानना और फिर उपचारात्मक शिक्षण करना विशेष रूप से उपयोगी है।

उपचारात्मक शिक्षण हेतु सुझाव

उपचारात्मक शिक्षण हेतु निम्न सुझाव दिए जाते हैं–

शिक्षण विधियों में सुधार

शिक्षक को अपने कार्य का स्वयं मूल्यांकन करते रहना चाहिए व शिक्षण विधियों को विद्यार्थियों के अनुकूल, रोचक बनाना चाहिए। जिससे विद्यार्थियों का ध्यान पाठ की ओर आकर्षित हो सके। अध्यापन में सुधार हेतु नई शिक्षण विधियों के प्रयोग की आकांक्षा प्रत्येक उत्साही शिक्षक में होनी चाहिए।

छोटे समूह में शिक्षण

उपचारात्मक शिक्षण के लिए विद्यार्थियों के छोटे–छोटे समूह बना लेने चाहिए जिससे विद्यार्थियों की सहायता व्यक्तिगत रूप से हो सके। बड़ी कक्षाओं या अधिक छात्रों की कक्षाओं में प्रत्येक बालक की कठिनाइयों का समाधान नहीं हो सकता।

स्मरण शक्ति दोष के निवारणार्थ अभ्यास कराना

जिन विद्यार्थियों की स्मरण शक्ति कम होती है अर्थात जिन्हें देर से याद होता है (इसके बहुत से कारण हो सकते हैं।) उन विद्यार्थियों को अभ्यासमालाओं का आश्रय लेकर निरंतर अभ्यास कराना चाहिए।

सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार

शिक्षक को विद्यार्थियों की त्रुटियों पर क्रोधित नहीं होना चाहिए बल्कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए त्रुटियों के कारणों की खोज कर, सहानुभूतिपूर्वक विद्यार्थी के प्रति व्यवहार करना चाहिए। जिससे शिक्षक विद्यार्थी के लिए श्रद्धा एवं आदर्श का पात्र बन सके।

परिवार से घनिष्ठ संबंध रखना

कभी–कभी विद्यार्थियों की त्रुटियों को दूर करने के लिए व्यक्ति अध्ययन विधि का आश्रय लेना चाहिए। इसके अंतर्गत परिवारिक स्थिति एवं वातावरण का पता लगाया जा सकता है। विद्यार्थी के विकास को बढ़ावा देने के लिए अभिभावकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

प्रोत्साहित करने वाला व्यवहार

पिछड़े हुए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना परमावश्यक है। कभी–कभी विद्यार्थी अध्यापकों से इतना डरने लगता है कि जो कुछ आता है वह भी डर से नहीं बता पाता। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह प्रखर बुद्धि, सामान्य बुद्धि व मंद बुद्धि बालकों के प्रति समदृष्टि रखे और प्रत्येक विद्यार्थी को प्रोत्साहित करने का प्रयास करे।

हिंदी भाषा ज्ञान में विद्यार्थियों के पिछड़ने के बहुत से कारण हो सकते हैं जिनका संबंध मुख्य रूप से चार कौशलों से है– जैसे सुनना व समझना, बोलना, पढ़ना व लिखना। ये दोष इस प्रकार के हैं जैसे शब्दों की पहचान न कर पाना, दृष्टि, परिधि की संकुचितता, नेत्र गोलक का ठीक प्रकार से कार्य न कर पाना, अटक–अटक कर पढ़ने का दुरभ्यास, दृष्टि दोष, हकलाना, वर्तनीगत अशुद्धियां, उच्चारण दोष, शब्द कोष की अपर्याप्तता, मिलती–जुलती वर्तनी वाले शब्दों को न पहचान पाना, वाक्यों को वाक्यांशों में विभक्त न कर पाना, याद न रख पाना इत्यादि। शिक्षण अनुकूल और आदर्श परिस्थितियों के अभाव में भाषा–शिक्षा संबंधित विकार उत्पन्न हो जाया करते हैं और उन्हें उपचारात्मक शिक्षण द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

4. कक्षा की संपूर्ण गतिविधियों का उद्देश्य शिक्षण–अधिगम के द्वारा विद्यार्थियों के किन पक्षों को परिपक्व करना होता है?

   (क) ज्ञान (ख) कौशल

   (ग) अभिवृत्ति (घ) उपरोक्त सभी

5. शैक्षिक निदान प्रक्रिया के कितने सोपान होते हैं?

   (क) दो (ख) तीन

   (ग) चार (घ) पांच

3.4 शिक्षार्थियों की प्रगति का अभिलेखन एवं प्रतिवेदन

पूरे देश के सभी विद्यालयों में रिपोर्ट कार्ड अभिलेखन की सर्वाधिक प्रयोग होने वाली विधि है। अधिकांश अभिलेखनों की सूचना अंकों या ग्रेडस के रूप में होती है जो विद्यार्थी टेस्ट या परीक्षा में प्राप्त करते हैं। इस प्रकार अधिकांश विद्यालयों में अध्यापक सूचनाओं का मुख्य स्रोत होता है। और अध्यापक ही बालकों के अधिगम का आकलन करता है। क्योंकि आकलन अधिगम प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्रभावी शिक्षण अधिगम केवल वहीं हो सकता है जहां प्रतिक्रिया हो। जो सीखा गया है उसकी तुलना सीखी गई जानकारी से की जानी चाहिए। एक सफल मूल्यांकन प्रक्रिया शिक्षकों को उनकी सीखने-सिखाने की शैलियों का विश्लेषण करने में सक्षम बनाती है। शिक्षक विद्यार्थियों से सम्बन्धित इन अभिलेखनों का प्रयोग विद्यार्थी की उपलब्धि बढ़ाने के लिए अपने शिक्षण की विधि को संशोधित करने के लिए करते हैं। इसे बालक स्वयं भी कर सकते हैं और बालक अपने स्वयं के अधिगम और प्रगति के आकलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अध्यापक बच्चों द्वारा स्वयं के आकलन में सहायक हो सकते हैं। बच्चों के स्वयं के अतिरिक्त अन्य अनेक व्यक्ति आकलन करके बच्चों के सम्बन्ध में सूचना प्रदान कर सकते हैं। अत: निरन्तरता के आधार पर उन्हें आकलन प्रक्रिया में सम्मिलित किया जा सकता है ताकि बालकों के विकास के सभी पक्षों का पूर्ण चित्रण चित्रित किया जा सके। ये लोग अभिभावक, बालकों के मित्र, सहपाठी और उसके भाई-बहन, अन्य अध्यापक, किसी सामाजिक समुदाय के सदस्य हो सकते हैं।

3.4.1 सूचनाओं का अभिलेखन

शिक्षण मूल्यांकन एक बालक के ज्ञान और कौशल के स्तर का निर्धारण करता है। शिक्षकों द्वारा कुशलतापूर्वक मूल्यांकन के लिए अभिलेख (रिकॉर्ड) तैयार किए जाते हैं। अभिलेख एक ऐसा पत्र होता है जिसमें छात्र का स्थायी एवं व्यक्तिगत रिकॉर्ड होता है। इस प्रपत्र में छात्र के विद्यालय में प्रवेश से लेकर विद्यालय छोड़ने तक का उसके शैक्षिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, चारित्रिक आदि का क्रमबद्ध नियमित समयान्तर पर शिक्षक/प्रशिक्षक द्वारा विभिन्न परीक्षणों के प्रमाणों एवं निरीक्षणों के आधार पर रिकॉर्ड (अभिलेखन)रखा जाता है, जो संचयी अभिलेख कहलाता है। यह अभिलेख बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण एवं विस्तृत चित्रण प्रस्तुत करता है।

मूल्यांकन में इन अभिलेखों को कई प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। ये अभिलेख शिक्षकों को निर्देशात्मक निर्णय लेने में मदद करते हैं। इसके साथ-साथ अभिलेख बालक की प्रगति को भी दर्शाते हैं। इन अभिलेखों के माध्यम से बालक के सम्बन्ध में रिपोर्ट दी जाती है। अधिकांश अभिलेखों में सूचना अंकों या ग्रेड्स के रूप में होती है जो विद्यार्थी परीक्षाओं या टेस्ट में प्राप्त करते हैं। सूचना का अभिलेखन हो जाने के बाद उपलब्ध सूचनाओं एवं साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इन अभिलेखों का विश्लेषण करके आवश्यक कदम उठाये जाते हैं। इससे शैक्षिक सामग्री तथा शिक्षण विधि परिवर्तित करने अथवा उनमें सुधार करने में सहायता मिलती है।एक अच्छी एवं उपयुक्त मूल्यांकन प्रक्रिया की आधारशिला कुशल संगठित प्रबंधन है। यह कुशल संगठन मूल्यांकन में अभिलेखों के उपयोग को अधिक लाभकारी बनाता है। अत: अभिलेखों का रखरखाव अच्छी प्रकार व्यवस्थित ढंग से होना चाहिए। शिक्षकों को अपनी

टिप्पणी

पाठयोजना पर नजर रखनी चाहिए, जो भविष्य की कक्षा योजना को सरल और बेहतर बनाने में उपयोगी सिद्ध होगी।

अभिलेखों के उद्देश्य एवं कार्य : अभिलेख निम्नलिखित कार्यों को सम्पन्न करते हैं-

1. अभिलेखों से छात्र के सम्बन्ध में वे सब महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जिन्हें परीक्षाओं द्वारा ज्ञात नहीं किया जा सकता है।
2. ये अभिलेख छात्रों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन देने में सहायक होते हैं।
3. ये शिक्षकों को अपने कार्य करने से पूर्व छात्रों की समस्याओं, उनकी योग्यताओं, कमियों, गुणों एवं उपलब्धियों के बारे में सूचनाएं प्रदान करते हैं। इससे शिक्षक को उनकी आवश्यकता के अनुसार समायोजन में सहायता मिलती है।
4. अभिलेख छात्रों की शैक्षिक, व्यक्तित्व तथा व्यावसायिक समस्याओं को समझने में सहायता प्रदान करते हैं।
5. अभिलेखनों के माध्यम से अध्यापक एवं अभिभावक बालक के संवेगात्मक तथा सामाजिक समायोजन के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।

आकलन अभिलेखों का उपयोग (Uses of Assessment Records) : आकलन अभिलेखों का उपयोग निम्न प्रकार से किया जाता है-

1. एक शिक्षा प्रणाली के सूचनाचक्र में तथा मूल्यांकन में अभिलेख बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। ये अभिलेख प्रतिपुष्टि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। आकलन अभिलेख (रिकॉर्ड) जवाबदेही के महत्वपूर्ण स्रोत हैं क्योंकि ये सबूत प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त ये अभिलेख यह भी स्पष्ट करने में सक्षम होते हैं कि किस गलती के लिए कौन कितना जिम्मेदार है।
2. ये अभिलेख मूल्यांकन प्रक्रिया में शिक्षक की निर्णय लेने में मदद करते हैं। इसके अतिरिक्त ये अभिलेख अनुशासन, पदोन्नति, विकास, सीखने की प्रक्रिया, प्रदर्शन आदि से सम्बन्धित सूचनाएं प्रदान करते हैं।
3. अभिलेख छात्र के लिए उपयुक्त और अधिक महत्वपूर्ण शैक्षिक योजनाओं का निर्माण करने में सहायता प्रदान करते हैं।
4. आकलन में अभिलेख निश्चित रूप से महत्वपूर्ण सूचना बैंक का कार्य करते हैं। इस सूचना बैंक से शिक्षक, छात्र अभिभावक और प्रशासक जो चाहे बालक के संबंध में सूचनाएं प्राप्त कर सकते हैं।
5. परामर्शदाताओं के लिए मूल्यांकन अभिलेख सर्वोपरि होते हैं क्योंकि अभिलेख छात्रों की समग्र तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। ये अभिलेख काउंसलर को बालक की प्रगति पर नजर रखने में मदद करते हैं।
6. अभिलेख छात्रों के व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन में अध्यापक की मदद करते हैं।
7. अभिलेखों द्वारा अध्यापक छात्र की योग्यताओं, कुशलताओं, बौद्धिक क्षमताओं, रुचियों तथा रुझानों के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं।
8. अभिलेख अपसमायोजन को दूर करने में शिक्षक एवं परामर्शदाता की सहायता करते हैं।

अभिलेखों की विषय-वस्तु (Content) : अभिलेखों में निम्नलिखित तथ्यों अथवा विषय-वस्तु का समावेश किया जाना चाहिए-

1. **छात्र से सम्बन्धित व्यक्तिगत जानकारी :** अभिलेखों में छात्र की व्यक्तिगत जानकारी जैसे- नाम, जन्मतिथि, माता-पिता का नाम, जन्म स्थान, प्रवेश तिथि, लिंग, जाति, मातृभाषा आदि को दर्ज किया जाता है।
2. **पारिवारिक पृष्ठभूमि :** पारिवारिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत छात्र के माता एवं पिता के नाम, परिवार की आर्थिक सामाजिक स्थिति, भाई-बहनों की संख्या, उनकी शिक्षा, घरेलू भाषा, माता-पिता के सम्बन्ध, पिता की आय, धर्म, पिता के व्यवसाय को शामिल किया जाता है। क्योंकि ये सभी तथ्य बालक के विकास को प्रभावित करते हैं।
3. **स्वास्थ्य सम्बन्धी ब्योरा :** सामान्यत: स्वास्थ्य सम्बन्धी ब्योरे के अन्तर्गत बालक का वजन, ऊँचाई, भार, शारीरिक दोष, रोग का वर्णन, वंशानुक्रमिक रोग, शरीर के प्रत्येक अंग का ब्योरा शामिल किया जाना होता है।
4. **परीक्षा परिणाम :** प्रत्येक विषय में हर महीने कितने-कितने अंक प्राप्त किए, प्रगति व अवनति का पूरा ब्योरा। छात्र की प्रारम्भ से लेकर अब तक की शैक्षिक प्रगति का अंकन अभिलेख में होना चाहिए।
5. **स्कूल में उपस्थिति :** बालक की उपस्थिति सम्बन्धी प्रत्येक जानकारी का उल्लेख रिकॉर्ड किया जाना चाहिए कि बालक विद्यालय में कितने दिन उपस्थित रहा। यदि वह लम्बे समय तक अनुपस्थित रहा तो लम्बी अनुपस्थिति का कारण क्या था, इसका भी अभिलेखन किया जाना चाहिए।
6. **योग्यताओं का मापन :** छात्र से सम्बन्धित सभी प्रकार की योग्यताओं को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-
   (i) सामान्य योग्यता (General Ability) : सामान्य योग्यता का अर्थ छात्र की मानसिक क्षमता से है। सभी प्रकार के कार्य को करने में इस योग्यता का प्रयोग किया जाता है।
   (ii) विशिष्ट योग्यता (Specific Ability) : विशिष्ट योग्यता से तात्पर्य छात्र की किसी–किसी विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित योग्यता से है।
7. **व्यक्तित्व से सम्बन्धित विशेषताओं का मापन :** छात्र की व्यक्तित्व से संबंधित विशेषताओं, जैसे- आत्म-विश्वास, संवेगात्मक स्थिरता, नेतृत्व, ईमानदारी, सामाजिक कुशलता, निर्णय लेने की क्षमता, उत्तरदायित्व का ज्ञान, स्वत: प्रेरणा आदि गुणों का मापन करने के लिए पाँच बिन्दु पैमाने का प्रयोग करना चाहिए। इन विशेषताओं के मापन का कार्य उन अध्यापकों को देना चाहिए जो छात्र के अधिक सम्पर्क में रहते हैं।
8. **विद्यालय से सम्बन्धित कार्य :** इसके अर्न्तगत छात्र का कक्षा में स्थान, पाठय्-विषयों में प्राप्त अंक, हस्तकौशल के कार्य, पढ़ने की योग्यता, सीखने का ढंग तथा विफलताओं का विवरण लिखा जाता है।
9. **छात्र का विद्यालय के प्रति दृष्टिकोण :** छात्र विद्यालय की खेल प्रतियोगिताओं तथा विद्यालय के उत्सवों में भाग लेता है या नहीं। छात्र में सहयोग तथा मिल-जुलकर काम करने की भावना है या नहीं आदि का विवरण देना होता है।

10. **छात्र के अपने मत :** प्रतिवर्ष छात्रों के द्वारा ही उनके मत प्राप्त किये जाएँ। अपने बारे में, अपनी पढ़ाई के बारे में, कम या अधिक अंक प्राप्त करने के विषय में, अध्यापकों के व्यवहार या शिक्षण के विषय में छात्र को अपने मत लिखने होते हैं। इसके अन्तर्गत छात्र का स्व-प्रतिवेदन शामिल किया जाता है।
11. **शैक्षणिक एवं व्यावसायिक योजना :** छात्र के व्यावसायिक विवरण और उसके मत के आधार पर आगामी वर्ष की योजना बनाई जाए और उसके मूल्यांकन का निर्धारण किया जाए।
12. **पाठयान्तर क्रियाओं का विवरण :** छात्र खेल-कूद, साहित्यिक, सांस्कृतिक, किस-किस क्रिया में भाग लेता है? वहाँ उसकी योग्यता और व्यक्तित्व का प्रदर्शन किस प्रकार हुआ? इन पाठ्यान्तर क्रियाओं के आधार पर छात्र की शैक्षिक तथा व्यावसायिक योजनाएँ बनाई जाएं।
13. **प्रधानाध्यापक का मत :** अभिलेख पत्र के अन्त में प्रधानाध्यापक छात्र की पूरे वर्ष की प्रगति के आधार पर अपना मत प्रकट करते हैं। यदि आवश्यक हो तो प्रधानाध्यापक अध्यापक की सहायता ले सकते हैं।

3.4.2 प्रतिवेदन (Reporting)

जब बालक से सम्बन्धित सूचनाएँ अध्यापक को प्राप्त होती हैं ऐसे में एक बार जब सूचनाओं का अभिलेखन हो जाता है तो उसका विश्लेषण कर लिया जाता है। तब सभी विद्यालयों में आकलन की सूचना बालक के अधिगम और प्रगति के सम्बन्ध में बालक और अभिभावकों को रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से पहुँचा दी जाती है। अभिलेखनों की उपयुक्त व्याख्या के बाद ही अध्यापक बालक के भावी अधिगम के लिये सार्थक रूप में निर्देशित कर पायेगा तथा बता पायेगा कि विद्यार्थी किस प्रकार से प्रगति कर पाएगा। तथा वह कब और कैसे उच्च स्तर के अधिक जटिल अधिगम के कौशल को ग्रहण कर पायेगा। इसके द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि बालक को क्या कठिन लगता है और उस कठिनाई को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। यह आकलन तभी सहायक सिद्ध होगा जब सभी अभिलेखों का आकलन आवधिक आधार पर किया जाए अर्थात् प्रत्येक माह अथवा 3 माह पर हो। आकलन के दौरान अभिलेख की तुलना पूर्व के रिकार्ड से की जाए। बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का आकलन किया जाए। इस तथ्य का आकलन किया जाए कि क्या बालक में सुधार हुआ है। यदि कोई कमजोरी अभी भी विद्यमान है तो अध्यापन-अधिगम परिस्थिति में क्या कार्यवाही की जानी चाहिए। रिपोर्ट तैयार करने के बाद अध्यापक को इसे अभिभावक एवं बालक के साथ साझा करना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि रिपोर्ट सावधानीपूर्वक संरचनात्मक और सकारात्मक रूप में प्रस्तुत की जाए। अध्यापक की प्रतिक्रिया प्रगति मानचित्र तैयार करने में सहायता प्रदान करती है अर्थात् बालक की प्रगति की संचयी रिपोर्ट बालक के सम्बन्ध में एक स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करती है।

अधिकांश मामलों में विद्यालय की नीतियाँ शिक्षक को परीक्षण के अंकों का प्रतिवेदन देने के लिए निर्देशित करती हैं। विद्यालयों में ग्रेडिंग तथा प्रतिवेदन व्यवस्था विभिन्न कार्यों के सम्पादन के अनुसार ही तैयार की जाती है। ग्रेडिंग तथा प्रतिवेदन की व्यवस्था बालक के अधिगम एवं विकास में सुधार पर केन्द्रित होनी चाहिए। यह तभी

सम्भव है जब प्रतिवेदन-(1) अनुदेशनात्मक उद्देश्यों को स्पष्ट करे, (2) अधिगम के संदर्भ में छात्र की शक्तियों एवं दुर्बलताओं को बताए, (3) छात्रों के अभिप्रेरण में योगदान करे, (4) छात्र के व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के सम्बन्ध में सूचनाएँ उपलब्ध कराये। उपर्युक्त सभी कार्यो के लिए एक शब्द वाले ग्रेड के स्थान पर व्यापक प्रतिवेदन की आवश्यकता होती है। प्रतिवेदन व्यवस्था का प्राथमिक कार्य माता-पिता को बालक की प्रगति के बारे में सूचित करना होता है। प्रतिवेदनों के माध्यम से ही माता-पिता को विद्यालय के उद्देश्यों तथा कार्यक्रम विशेष में बालक के अधिगम परिणामों की जानकारी प्राप्त होती है।

अभिलेखों की उपयुक्त व्याख्या के लिए संकेतकों की पहचान की आवश्यकता होगी। जिससे प्रतिवेदन की प्रक्रिया में आसानी हो सकती है। प्रतिवेदन किसी भी रूप में हो सकता है। लेकिन वह सत्य, न्यायसंगत हो तथा इसमें पर्याप्त विस्तृत एवं सन्दर्भात्मक सूचनाएं प्रदान की जानी चाहिए। बालक के विभिन्न विषयों में निष्पादन की सूचना समय-समय पर ली गई परीक्षाओं के आधार पर प्रस्तुत की जाती है।

3.4.3 विद्यार्थियों के निष्पादन के अभिलेखन एवं प्रतिवेदन

जिस प्रकार विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं सह-शैक्षिक क्षमताओं का आकलन जरूरी होता है उसी प्रकार उनकी क्षमताओं का अभिलेखन तथा उससे सम्बन्धित व्यक्तियों जैसे माता-पिता, अभिभावक, भाई-बहन, सम्बन्धित अधिकारी आदि को उसका प्रतिवेदन करना भी बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। आकलन का उद्देश्य सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं तथा शिक्षण सामग्री में सुधार करना है तथा उन लक्ष्यों पर पुनर्विचार करना होता है, जो विद्यालय में विभिन्न चरणों के लिए तय किये जाते हैं। यह पुनर्विचार इस आधार पर किया जाता है कि बालकों में क्षमता का विकास किस हद तक हुआ है। आकलन करके परिणामों का अभिलेखन एवं प्रतिवेदन तैयार किया जाता है, जिसमें बालक की परिमाणात्मक एवं गुणात्मक क्षमताएँ दोनों ही शामिल होती हैं, फिर इस प्रतिवेदन को बालक के माता-पिता तक पहुँचाना अनिवार्य होता है। आकलन बालक को अपने अधिगम को बेहतर बनाने तथा उसका निर्माण करने में सहायता प्रदान करता है। प्रतिवेदन के साथ बालक को उसकी क्षमताओं के विभिन्न पहलुओं पर प्रतिपुष्टि प्रदान की जानी चाहिए ताकि वह उसके अनुरूप उन्हें बेहतर कर सके। और यह तभी सम्भव है जब बालक को प्रदर्शन के दौरान प्रतिपुष्टि प्रदान की जाए तथा उसके प्रतिवेदन में इसे परिमाणात्मक तथा गुणात्मक रूप में दर्ज किया जाए। विद्यालय के लिए यह जरूरी है कि वह बालकों से सम्बन्धित अभिलेखनों तथा प्रतिवेदनों को सम्भाल कर रखे।

शैक्षिक तथा सह-शैक्षिक क्षेत्रों में बालकों के प्रदर्शन को परिमाणात्मक एवं गुणात्मक रूप में दर्ज किया जा सकता है। इन दोनों क्षेत्रों में एक कक्षा विशेष में बालक की प्रगति का सम्पूर्ण चित्र प्राप्त करने के लिए शिक्षक को अधिगम के प्रत्येक क्षेत्र में बालक की समर्थता/मजबूती तथा कमजोरियों की अवधारणा को समझना चाहिए। वर्णनात्मक संकेतों की प्रकृति गुणात्मक होती है जो बालकों द्वारा प्रदर्शित कार्यक्षमता एवं उसके कौशलों को स्पष्ट रूप से बताती है। अधिकांशत: निचली कक्षाओं में बालकों के माता-पिता को गुणात्मक संकेतों के बारे में बताया जाता है तथा इन्हें उनके प्रगति प्रतिवेदनों में शामिल किया जाता है। जैसे गणितीय पदों को हल करना, भाषा कौशल को अर्जित करना, सामाजिक एवं पर्यावरणीय प्रक्रियाओं की समझ को विभिन्न उदाहरणों द्वारा प्रकट करना

आदि। लेकिन कभी-कभी गुणात्मक संकेतों को प्रगति प्रतिवेदनों में शामिल करना सम्भव नहीं होता है। ऊँची कक्षाओं में आकलित संकेतकों के आधार पर सह-शैक्षिक क्षमताओं की ग्रेडिंग करके प्रगति प्रतिवेदनों में दर्शाया जाता है। तथा बालकों की प्रगति के विस्तृत विवरण को बालकों तथा उनके माता-पिता के साथ औपचारिक तथा अनौपचारिक मीटिंगों में साझा किया जाता है।

सी०बी०एस०ई० द्वारा उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं के लिए सुझाए गये प्रगति प्रतिवेदन का प्रारूप (Format) : सी.बी.एस.ई. द्वारा उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं के लिए सुझाए गये प्रगति प्रतिवेदन के प्रारूप को निम्न तालिका के माध्यम से दर्शाया जा सकता है-

तालिका

प्रगति प्रतिवेदन का प्रारूपः कक्षा VI-VIII

अकादमिक सत्रः..............

प्रगति प्रतिवेदन कक्षा VI-VIII के लिए

क्रमांक : -------------------

विद्यार्थी का नाम : -------------------

माता/पिता/ अभिभावक का नाम : -------------------

जन्मतिथि : -------------------

वर्ग /खंड : -------------------

शैक्षिक क्षेत्र	अकादमिक सत्र –1 (100)						अकादमिक सत्रा –2 (100)					
विषय का नाम	आवर्ती परीक्षण (10)	अभ्यास पुस्तिका (5)	विषय संवर्धन (5)	अर्ध–वार्षिक परीक्षा (80)	प्राप्तांक (100)	ग्रेड	आवर्ती परीक्षण (10)	अभ्यास पुस्तिका (5)	विषय संवर्धन (5)	वार्षिक परीक्षा (80)	प्राप्तांक (100)	ग्रेड
भाषा 1												
भाषा 2												
भाषा 3												
गणित												
विज्ञान												
स.विज्ञान												
कोई अन्य विषय												

सह–शैक्षिक क्षेत्र तीन बिन्दु (I) ग्रेडिंग स्केल पर	ग्रेड	सह–शैक्षिक क्षेत्र तीन बिन्दु (I) ग्रेडिंग स्केल पर	ग्रेड
कार्य शिक्षा		कार्य शिक्षा	
कला शिक्षा		कला शिक्षा	
स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा		स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	

अनुशासन सत्र–1 तीन बिन्दु (I) ग्रेडिंग स्केल पर	ग्रेड	अनुशासन सत्र–2 तीन बिन्दु (I) ग्रेडिंग स्केल पर	ग्रेड
अनुशासन		अनुशासन	

वर्ग शिक्षक की टिप्पणी

कक्षा में प्रोन्नत:

तिथि शिक्षक के हस्ताक्षर प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर

शैक्षिक क्षेत्रों के लिए ग्रेडिंग-शैक्षिक क्षेत्रों के लिए ग्रेडिंग में 8 बिन्दु स्केल के आधार पर ग्रेड निम्न प्रकार से दिए जाते हैं-

अंक श्रेणी	ग्रेड्स
91.100	ए 1
81.90	ए 2
71.80	बी 1
61.70	बी 2
51.60	सी 1
41.50	सी 2
33.40	डी
32 तथा उससे कम	ई (सुधार की आवश्यकता है)

उपरोक्त तालिका दर्शाती है कि समरूप आकलन की प्रणाली के अनुसार कक्षा छः से कक्षा आठ के छात्र को एक कक्षा में सत्र-1 तथा सत्र-2 के लिए दो बार आकलित किया जाता है फिर अंत में दोनों को मिलाकर छात्र की योग्यता/प्रगति का आकलन किया जाता है। शैक्षिक क्षेत्र में आकलन 8 बिन्दु स्केल के आधार पर किया जाता है तथा सह-शैक्षिक क्षेत्र आकलन की ग्रेडिंग 3 बिन्दु स्केल को आधार पर की जाती है। सम्बन्धित वर्ग शिक्षक छात्र विशेष के प्रदर्शन तथा क्षमताओं (कमजोरियों एवं दृढ़ता)पर व्याख्यात्मक टिप्पणी देता है। इस प्रकार छात्रों के परिणामों के प्रतिवेदन में परिमाणात्मक (अंक) तथा गुणात्मक (ग्रेड्स) दोनों संकेतकों का प्रयोग किया जाता है। लेकिन सह-शैक्षिक क्षेत्रों के परिणाम के प्रतिवेदन के लिए केवल गुणात्मक संकेतकों का प्रयोग किया जाता है।

तालिका

प्रगति प्रतिवेदन का प्रारूपः कक्षा IX

अकादमिक सत्रः...............

प्रगति प्रतिवेदन कक्षा ....के लिए

क्रमांक : ______________________

विद्यार्थी का नाम : ______________________

माता/पिता/ अभिभावक का नाम : ______________________

जन्मतिथि : ______________________

वर्ग /खंड : ______________________

शैक्षिक क्षेत्र	अकादमिक सत्र (100)					
	आवर्ती परीक्षण (10)	अभ्यास पुस्तिका (5)	विषय संवर्धन (5)	वार्षिक परीक्षा (80)	प्राप्तांक (100)	ग्रेड
भाषा 1						
भाषा 2						
भाषा 3						
विषय –1						
विषय –2						
विषय –3						
अतिरिक्त विषय अथवा एन.एस. क्यू. एफ.						

टिप्पणी

- एन.एस. क्यू. एफ.
- नेशनल स्किल्स क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क

सह–शैक्षिक क्षेत्र पाँच बिन्दु (।) ग्रेडिंग स्केल पर	ग्रेड
कार्य शिक्षा	
कला शिक्षा	
स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा	
अनुशासन पाँच बिन्दु (।) ग्रेडिंग स्केल पर	
अनुशासन	

वर्ग शिक्षक की टिप्पणीः

परिणामः

शिक्षक के हस्ताक्षर

प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर

तिथि............................

शैक्षिक क्षेत्रों के लिए ग्रेडिंग स्केल : शैक्षिक क्षेत्रों के लिए ग्रेडिंग स्केल के अन्तर्गत 8 बिन्दु होते हैं । इन बिन्दुओं पर इस प्रकार से ग्रेड दिए जाते हैं-

अंक श्रेणी	ग्रेड्स
91.100	ए 1
81.90	ए 2
71.80	बी 1
61.70	बी 2
51.60	सी 1
41.50	सी 2
33.40	डी
32 तथा उससे कम	ई (अनुत्तीण)

उपरोक्त तालिका कक्षा 9 के प्रगति प्रतिवेदन के प्रारूप को स्पष्ट करती है। शैक्षिक क्षेत्र में प्रतिवेदन अंकन तथा ग्रेडिंग दोनों पद्धतियों से किया जाता है। सह-शैक्षिक क्षेत्र का प्रतिवेदन केवल ग्रेडिंग पद्धति द्वारा किया जाता है। यद्यपि गतिविधि के आधार पर गुणात्मक संकेतकों के लिए कोई स्थान नहीं दिया जाता है। लेकिन एक छात्र के आकलन के सम्बन्ध में यह विवरण शिक्षक की टिप्पणी के स्थान पर दिया जाता है।

3.4.4 प्रगति रिपोर्ट (Progress Report)

एक शिक्षक छात्रों को उनके लक्ष्य निर्धारित करने के लिए निर्देशित करता है समय-समय पर उनकी प्रगति का पर्यावेक्षण करता है। वह छात्रों को चुनौतीपूर्ण अवसर प्रदान करता है ताकि वे सामर्थ्य के साथ अधिगम कर सकें तथा सक्षम आत्म आकलनकर्ता बन सकें। जब बालक अधिगम करता है तो बालक ने क्या सीखा इसका आकलन किया जाता है आकलन के बाद सूचनाओं का अभिलेखन किया जाता है। ये सूचनाएं बालक के अधिगम की प्रगति के सम्बन्ध में बालक के माता-पिता और अभिभावकों को रिपोर्ट कार्ड के माध्यम से दी जाती हैं। ये रिपोर्ट कार्ड समय-समय पर लिये गये टेस्टों एवं परीक्षणों के आधार पर तैयार किए जाते हैं। एक शिक्षक के लिए आवश्यक है कि जब किसी एक

छात्र अथवा कक्षा के सभी छात्रों के लिए निष्पादन की व्याख्या की जा रही हो अर्थात् प्रगति रिपोर्ट तैयार की जा रही हो तो वह परिवारों एवं समुदायों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की भिन्नता को अवश्य ध्यान रखे। क्योंकि छात्रों के अनुभवों में बहुत भिन्नता होती है। घरेलू संसाधनों की सम्पन्नता, भाषायी पृष्ठभूमि, शिक्षा की चाह की प्रबलता आदि छात्र के निष्पादन में प्रतिबिंबित होते हैं। विद्यालय की पाठ्यचर्या के विभिन्न पक्षों की प्रमुखता की विभिन्नता के कारण छात्रों के निष्पादन में विभिन्नता हो सकती है। शिक्षकों का उत्तरदायित्व बनता है कि वे छात्रों के अधिगम की सही-सही सूचनाएं प्रदान करें जो उन्होंने विभिन्न प्रकार के सन्दर्भों और साक्ष्यों से प्राप्त की हैं।

3.4.5 अध्यापक द्वारा प्रतिबिंब /परावर्तन (Reflection by Teacher)

प्रतिबिंब/ परावर्तन स्वयं के अनुभवों एवं कार्यों, अन्त:क्रियाओं की खोज और जांच करने की प्रक्रिया है। इसके माध्यम से और आगे बढ़ने के तरीके को देखने या जानने में मदद मिलती है। अध्यापक के परावर्तन का प्रयोग शिक्षण अभ्यास और छात्र के सीखने में सकारात्मक सुधार के लिए किया जाता है। अध्यापक का परावर्तन प्रगति मानचित्र तैयार करने में सहायता प्रदान करता है। यदि शिक्षक प्रतिबिंब (परावर्तन)का प्रयोग करते हैं तो वे छात्रों को अपने स्वयं के सीखने पर चिंतन, विश्लेषण, मूल्यांकन एवं सुधार करने के लिए अधिक प्रभावी ढंग से प्रोत्साहित कर सकते हैं। स्वतन्त्र शिक्षार्थी बनने के लिए उन्हें विकसित करने के लिए यह एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षक इस बात का भी ध्यान रखे कि समस्याओं और कठिनाइयों को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है और इसमें भी आश्वस्त हो कि समस्याएं दुबारा न हों। इस तथ्य का आकलन किया जाना चाहिए कि बालक में सुधार हुआ है। यदि अधिगम में कोई कमजोरी है तो इस बात का निर्णय ले कि क्या कार्यवाही की जाए कि अध्यापन-अधिगम-परिस्थिति में सुधार हो तथा प्रतिपुष्टि दे कि बालक क्या कर रहा है? अथवा क्या करने का प्रयत्न कर रहा है? बालक कैसे सीखता है? उसे सीखने में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है? और उसके द्वारा अधिगम प्रगति के लिए क्या-क्या परिवर्तन किये जाएं कि बालक उच्च स्तर के अधिक जटिल अधिगम के कौशल को प्राप्त कर सके।

कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो शिक्षक के परावर्तन में सहायक हो सकते हैं तथा बालक के अधिगम में वृद्धि कर सकते हैं-

- क्या मेरे छात्र अधिगम तथा विभिन्न क्रियाओं में अभीष्ट रूप से सन्निहित हैं? यदि नहीं तो वे किस स्तर पर हैं?
- क्या कुछ छात्र प्रथम स्तर तक पहुँचने में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं? तो मैं व्यक्तिगत रूप से उन्हें उत्साहित तथा अभिप्रेरित करने के लिए क्या कर सकता हूं?
- मैं अध्यापन अधिगम विधि में क्या सुधार करूँ कि छात्र एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुँच सकें?
- क्या मैं छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं को समझने योग्य हूँ यदि हाँ तो उन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए क्या कर रहा हूँ?
- मैं छात्रों को आत्म आकलन के लिए किस प्रकार प्रेरित कर सकता हूँ?
- उत्तम अध्यापन-अधिगम पद्धति को सम्बन्धित करने के लिए मैं क्या प्रयास कर सकता हूँ?

- मैं अपनी अध्यापन-अधिगम पद्धति में सुधार लाने के लिए किसकी सहायता ले सकता हूँ?

यह सब शिक्षक के अपने शिक्षण को प्रतिबिम्बित करेगा तथा कक्षा के व्यवस्थापन एवं शिक्षण सामग्री, शिक्षण नीतियों एवं शिक्षण प्रविधियों में सुधार लाने में शिक्षक की मदद करेगा। एक शिक्षक इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार करके भविष्य में उत्तम अध्यापन-अधिगम पद्धति की रणनीति बना सकता है।

3.4.6 बालक की प्रगति का मानचित्र (Mapping the Progress of child)

अध्यापक का परावर्तन प्रगति मानचित्र तैयार करने में सहायता प्रदान करता है। बालक की प्रगति का मानचित्र एक दिये हुए समय में बालक की प्रगति की संचयी रिपोर्ट का एक स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत करता है। संचयी रिपोर्ट परीक्षा, प्रश्नावली, अवलोकन, साक्षात्कार आदि विधियों के द्वारा प्राप्त सूचनाओं का सारांश रूप में एक अभिलेख पत्र है। इसे अधिगमकर्त्ता की प्रोफाइल कहा जा सकता है। अधिगमकर्ता की प्रोफाइल उसके अधिगम सम्बन्धी तथ्यों की रूपरेखा होती है, जिसमें अधिगमकर्ता की अध्ययन रुचियों, क्षमता, सीखने के उद्देश्य, सीखने की विधि, सीखने के कौशल, सीखने की गति, सीखने की परिस्थितियों और सीखने सम्बन्धी समस्याओं का लेखा-जोखा होता है। अधिगमकर्ता प्रोफाइल अधिगमकर्ता की उपलब्धियों की सूचक होती है। यह उनकी अधिगम उपलब्धियों एवं परिणामों की व्याख्या भी करती है। एक विद्यार्थी प्रोफाइल विद्यार्थी का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करती है।

इसके लिए एक शिक्षक अपनी कक्षा में अधिगम के रूप में आकलन का प्रयोग करता है। प्रगति की एक स्पष्ट संचयी रिपोर्ट तैयार करने के लिए जरूरी है कि यह आकलन आवधिक आधार पर किया जाए अर्थात् यह आकलन तिमाही अथवा छमाही समयान्तर पर किया जाए। इसके अन्तर्गत बालक की रुचियों की समीक्षा की जाए और उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का आकलन किया जाए। शिक्षक द्वारा जो अभिलेख अथवा रिकॉर्ड तैयार किए गये हैं उनकी तुलना पूर्व रिकॉर्ड से की जानी चाहिए। शिक्षक द्वारा तैयार की गई इस रिपोर्ट में एक समय अवधि में बालक की प्रगति का पूर्ण लेखा जोखा होता है।

3.4.6 प्रतिपुष्टि को बालक एवं अभिभावकों से साझा करना (Sharing the Feedback with Child and Parents)

रिपोर्ट तैयार करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि अध्यापक द्वारा इसे अभिभावक और बालक से साझा करना चाहिए। यह एक महत्वपूर्ण पक्ष है इसे बहुत ही सावधानीपूर्वक संरचनात्मक और सकारात्मक रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। यही प्रतिपुष्टि अध्यापन-अधिगम-प्रक्रिया को समृद्ध बनायेगी तथा बालक को अधिगम तथा निष्पादन में सहायता प्रदान करेगी।

बालक से साझा : जब बालक किसी कार्य या क्रिया में संलग्न होता है तब अधिकांश अध्यापक नित्यप्रति के आधार पर अनौपचारिक प्रतिपुष्टि प्रदान करते हैं। इस प्रकार बालक, अध्यापक, दूसरे बच्चों या समूह को देखकर स्वयं को सुधारता है। समस्या तब उठती है जब बालक को रिपोर्ट इस प्रकार दी जाती है कि वह नहीं कर सकता, या यह रिपोर्ट उसकी असफलताओं और कमियों की ओर संकेत करती है। इससे बालक हतोत्साहित होता है।

टिप्पणी

अत: अध्यापक को निम्नांकित करने की आवश्यकता है-

- बालक से चर्चा करें कि उसने अच्छा किया है पर उतना अच्छा नहीं है उसे सुधार की आवश्यकता है।
- अध्यापक और बालक को मिलकर यह जानना चाहिए कि बालक को किस प्रकार की सहायता चाहिए।
- बालक को उसका पोर्टफोलियो देखने के लिए प्रेरित करना चाहिए और वर्तमान कार्य तथा पहले के कार्य में तुलना करनी चाहिए।
- बालक जब कार्य पर हो या कार्य कर चुका हो तब उस पर सकारात्मक और रचनात्मक टिप्पणी करनी चाहिए।

प्रतिपुष्टि के द्वारा प्रेरित करने से अधिक महत्वपूर्ण यह है कि बालक स्वयं से प्रतिस्पर्धा करे अन्य बालकों से नहीं। इस संदर्भ में यह होना चाहिए कि बालक अनुभव करे कि मैं कल कहाँ था या एक सप्ताह पूर्व कहाँ था और आज कहाँ हूँ। बालकों के मध्य प्रतिस्पर्धा अधिक सहायक नहीं होती क्योंकि अधिकांशत: बालकों में यह भावना विकसित हो जाती है कि मैं अच्छा नहीं हूँ। उनमें हीनता की भावना घर कर जाती है। इस प्रकार प्रतिपुष्टि के द्वारा अध्यापन-अधिगम प्रगति में परिवर्तन किये जा सकते हैं।

अभिभावकों से साझा करना (Sharing with Parent) : शिक्षक द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट बालक तथा उसके माता-पिता या अभिभावक के साथा साझा की जानी चाहिए। क्योंकि अभिभावक अपने बच्चों के बारे में यह जानने के लिए सबसे ज्यादा उत्सुक होते हैं कि बच्चा स्कूल में क्या कर रहा है? कैसा कर रहा है? उसने क्या सीखा है? उनका बच्चा कैसा निष्पादन कर रहा है। उनकी प्रगति कैसी है? और शिक्षक भी अभिभावकों तक यह सन्देश भेजने का प्रयास करते हैं कि उनका बच्चा अच्छा कर रहा, खराब कर रहा है, या अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है। इस प्रकार शिक्षक बालकों के सम्बन्ध में अभिभावकों को स्पष्ट सूचना प्रदान करते हैं। यइ रिपोर्ट बड़ी सावधानीपूर्वक सकारात्मक रूप से तैयारी की जानी चाहिए। इस कार्य के लिए सरल तथा आसानी से समझ आने वाली भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। शिक्षक बच्चों के सम्बन्ध में इस प्रकार से सूचना साझा करते हैं-

- बच्चा क्या कर सकता है। वह क्या करने का प्रयास कर रहा है तथा वह क्या कठिनाई अनुभव करता है।
- बालक कैसे सीखता है तथा वह कहाँ-कहाँ पर कठिनाई का अनुभव करता है।
- बच्चे को क्या करना पसन्द है और उसे क्या करना पसंद नहीं है।
- बालक अपनी क्रिया एवं निष्पादन समय से पूरा कर लेता है।
- बालक के कार्यों के लिए शिक्षक द्वारा गुणात्मक कथन एवं मात्रात्मक प्रतिपुष्टि प्रदान की जाती है।
- बालक के कार्य को अभिभावक के साथ साझा किया जाना चाहिए ताकि सफलता एवं सुधार के क्षेत्र में विभिन्न सुझाव दिए जा सकें।
- सहयोग, उत्तरदायित्व, संवेदनशीलता, दूसरों के प्रति रुचियों आदि के बारे में बालक एवं अभिभावक दोनों से चर्चा की जानी चाहिए।

टिप्पणी

- अभिभावकों को बता दिया जाए कि वे किस प्रकार से सहायता कर सकते हैं। घर पर उन्होंने बालक के सम्बन्ध में क्या अवलोकन किया।

जब बालक के अधिगम के सम्बन्ध में सभी सूचनाएं एकत्र कर ली गईं और प्रतिपुष्टि प्राप्त हो गई तो यह सब अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया को समृद्ध बनाने तथा बालक के अच्छे अधिगम में सहायक होंगे।

3.4.7 छात्र/अधिगमकर्ता के विकास एवं अधिगम सुधार में पृष्ठपोषण की भूमिका (Role of Feedback in Improving Learning and Learner Development)

शिक्षण की अन्त:क्रियात्मक अवस्था में प्रतिपुष्टि व पुनर्बलन महत्वपूर्ण क्रियाएं होती हैं। शिक्षण की अन्त: क्रियात्मक अवस्था में सम्पन्न होने वाली सभी क्रियाएं आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। शिक्षण क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। शिक्षक शिक्षण का कार्य करता है और अपनी क्रिया की प्रभावशाीलता की जाँच करने के लिए विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया को प्राप्त करने का प्रयास करता है ताकि वह अपने शिक्षण कार्य को आगे बढ़ा सके। तथा इन प्रतिक्रियाओं को अपनी भविष्य की क्रियाओं के लिए मार्गदर्शन के रूप में प्रयोग कर सके। छात्र प्रदर्शन या व्यवहार के सम्बन्ध में ये प्रतिक्रियाएं मौखिक, लिखित या हावभाव के रूप में हो सकती हैं। शिक्षक को प्रतिपुष्टि के द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसकी शिक्षण क्रिया विद्यार्थियों को प्रभावित करने में सफल हुई, तब वह आगे उसी प्रकार से कार्य करता है। पृष्ठपोषण ऐसा होना चाहिए कि इससे छात्र के सीखने में वृद्धि होनी चाहिए और मूल्यांकन प्रदर्शन में सुधार होना चाहिए।

शिक्षक पृष्ठपोषण एवं पुनर्बलन की समुचित युक्तियों का प्रयोग उचित प्रकार से करके विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित परिवर्तन ला सकता है। यद्यपि पृष्ठपोषण तथा पुनर्बलन का एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है। परन्तु दोनों में अन्तर है। पुनर्बलन अनुक्रिया की सम्भावना को बढ़ाता है, जबकि पृष्ठपोषण से व्यवहार में परिवर्तन होता है। पृष्ठपोषण का प्रत्यय मशीन के सिद्धान्त पर आधारित है। मोटर से चलने वाली नाव पानी को पीछे की ओर काटने से आगे बढ़ती है। जैसे रेल के इंजन में भाप को पीछे निकालने से इंजन आगे की ओर बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार शिक्षा में अनुदेशन सामग्री में आवश्यक सूचनाओं को क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करने से सही सूचना आगे की ओर अग्रसर होती है। प्रतिपुष्टि को दो भागों में बांटा जा सकता है शाब्दिक और अशाब्दिक। जब अध्यापक भाषा का प्रयोग करके यह बताता है कि उसका उत्तर सही है या गलत है तो शाब्दिक प्रतिपुष्टि का उदाहरण है। और जब वह संकेत, मुखाकृति, भाव-भंगिमा के माध्यम से उत्तर के सही या गलत होने की पुष्टि करता है तो यह अशाब्दिक प्रतिपुष्टि का उदाहरण है। शिक्षक प्रतिपुष्टि के साथ पुनर्बलन का भी प्रयोग करता है। पुनर्बलन दो प्रकार का होता है- (1) धनात्मक पुनर्बलन - इसमें अपेक्षित प्रतिक्रिया होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। जैसे- प्रंशसा, पुरस्कार, आदि के द्वारा (2) अध्यापक पुनर्बलन - इसमें अवांछनीय प्रतिक्रियाओं के पुन: होने की सम्भावना कम हो जाती है। जैसे- डांटना, मारना, दण्ड देना आदि। पृष्ठपोषण अध्ययन किए जा रहे विषय को समझने में मदद करता है तथा सीखने में सुधार करने के लिए स्पष्ट मार्गदर्शन देता है। पृष्ठपोषण से बालक के व्यवहार में सुधार एवं विकास होता है। यह छात्रों तथा शिक्षकों को क्रिया- प्रतिक्रिया को आगे की ओर बढ़ाने मे मदद करता है।

3.4.8 छात्रों की आवश्यकताओं का पता लगाना (Ascertaining the Students Needs)

कक्षा अथवा कार्यशाला में शिक्षक का सबसे पहला कार्य छात्रों की आवश्यकताओं का पता लगाना होता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक ये जानना चाहता है कि छात्र के पढ़ने के कारण क्या हैं। छात्र की आवश्यकताएं क्या हैं? उसके वर्तमान ज्ञान एवं कौशल का स्तर क्या है? वह क्या परिणाम चाहता है? एक शिक्षार्थी क्या अधिगम-अनुभव चाहता है और उसके पास क्या ज्ञान-कौशल एवं अनुभव है, इसके बीच की खाई ही छात्र की आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करती है। छात्र की आवश्यकताओं की पहचान करना इसलिए जरूरी होता है क्योंकि प्रत्येक छात्र अद्वितीय है और उसके सीखने की स्थिति, उसके सीखने का तरीका, तथा उसका ज्ञान स्तर अलग होता है। इसलिए एक निर्देशक/शिक्षक को निर्देशन से पहले छात्र के ज्ञान स्तर तथा आवश्यकताओं का पता लगाना चाहिए। इसके लिए सबसे अच्छा तरीका छात्र से स्वयं से पूछना होता है। छात्र की आवश्यकताओं की सूचना एकत्र करके शिक्षक विभिन्न शिक्षण प्रविधियों का प्रयोग करके सीखने के वांछित परिणामों को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए शिक्षक पढ़ाते समय ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करेगा जिससे छात्र को अपने उद्देश्य प्राप्ति पर विश्वास बढ़ेगा और शिक्षण अधिगम को गति मिलेगी।

छात्रों की रुचियों की पहचान करना (Identifying Students Interests): विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन तथा ज्ञान संवर्धन के लिए शिक्षक कई प्रकार की शिक्षण शैलियों एवं प्रविधियों का प्रयोग करते हैं। इनका प्रयोग करने से पहले उन्हें सर्वप्रथम विद्यार्थी की रुचियों को पहचानना जरूरी है कि वे क्या सीखना चाहते हैं किस प्रकार से सीखना चाहते हैं। उसके अनुसार ही शिक्षण तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए। आमतौर पर यह मान लिया जाता है कि जब कोई छात्र किसी दिए गए क्षेत्र में उत्कृष्ट प्रदर्शन करता है तो उसकी उसमें विशेष रुचि है। लेकिन कई बार छात्र एक पाठ्क्रम में अच्छा प्रदर्शन इसलिए भी करते हैं क्योंकि उन्हें माता-पिता अथवा शिक्षक द्वारा पुरस्कृत किया जाता है। इससे उस पाठ्यक्रम में छात्र की रुचि भी बढ़ जाती है और वह उसे और अधिक सीखने का प्रयास करता है।

अधिगम सुधार के लिए पृष्ठपोषण (Feeding Forward for improving Learning) : पृष्ठपोषण से तात्पर्य विद्यार्थियों को उनके निष्पादन के बारे में सूचना प्रदान करना है ताकि उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन लाया जा सके। है। पृष्ठपोषण वह जानकारी है जो एक छात्र द्वारा कार्य पूरा करने के बाद प्राप्त की जाती है। इसे कई रूपों में प्रदान किया जा सकता है। जैसे असाइनमेंट, प्रयोगशाला में कार्य , फील्ड रिपोर्ट, ग्रुप में विषय पर चर्चा प्रस्तुति और निबन्ध आदि के माध्यम से। पृष्ठपोषण एक छात्र के आत्मविश्वास, आत्म-जागरूकता और सीखने के उत्साह में सुधार कर सकता है। शिक्षार्थी की प्रोफाइल की सहायता से शिक्षक उसके सीखने में पृष्ठपोषण कर सकते हैं। इसी उद्देश्य से शिक्षार्थी की प्रोफाइल का निर्माण किया जाता है।

प्रोफाइल के प्रथम कॉलम में शिक्षार्थी की व्यक्तिगत विशेषताएँ आयु, रुचियाँ व सामर्थ्य अंकित होती हैं। इन्हीं के आधार पर शिक्षक पढ़ाते समय छात्रों के अनुभवों और उनकी रुचियों के आधार पर उदाहरण प्रस्तुत करता है ताकि उन्हें पाठ्यवस्तु आसानी से समझ आ जाए। प्रोफाइल के दूसरे कॉलम में शिक्षार्थी के परिवार से सम्बन्धित सूचनाएँ होती हैं। इससे शिक्षक को यह पता चल जाता है कि उसके पास कितनी सुविधा है,

टिप्पणी

परिवार में शैक्षिक पर्यावरण किस स्तर का है। आवश्यक सुविधा एवं संसाधन उपलब्ध न होने पर शिक्षक छात्र को विकल्प सुझाएगा ताकि अधिगम आसानी से हो सके।

प्रोफाइल के तीसरे कॉलम में छात्र के पढ़ने के कारण का उल्लेख होता है। इसी के आधार पर शिक्षक पढ़ाते समय ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करेगा ताकि उसे अपने उद्देश्य की प्राप्ति पर विश्वास बढ़े और शिक्षण अधिगम को गति मिले। प्रोफाइल के चौथे कॉलम में छात्र के पूर्व ज्ञान का उल्लेख होता है। और शिक्षक इसी पूर्व ज्ञान के आधार पर नए ज्ञान का विकास करेगा, जिसके फलस्वरूप छात्र शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में रुचि लेगा।

प्रोफाइल के पाचवें कॉलम में छात्र की अध्ययन योग्यता अंकित होती है। अध्ययन विधि, अध्ययन कौशल, समय प्रबन्धन की योग्यता, नोट्स लेने की योग्यता, स्व अध्ययन की योग्यता और स्वमूल्यांकन की योग्यता का उल्लेख होता है। इनकी जानकारी के आधार पर शिक्षक सर्वप्रथम उन्हीं शिक्षण अधिगम विधियों का प्रयोग करेगा जिनका प्रयोग छात्र पूर्व में करता रहा है और फिर साथ में आवश्यक विधियों का धीरे-धीरे प्रयोग करेगा। इसी प्रकार पहले तो वह छात्र के शिक्षण कौशलों के सहारे आगे बढ़ेगा उसके बाद धीरे-धीरे उसे नए अध्ययन कौशल के प्रयोग के अवसर प्रदान करेगा। यदि छात्र का समय प्रबन्धन ठीक नहीं है तो वह उस परिस्थिति के अनुकूल उपयुक्त समय प्रबन्धन करने में छात्र की सहायता करता है। शिक्षक को छात्र की प्रोफाइल से उसके नोट्स लेने की गति के बारे में भी जानकारी मिलती है। यदि गति अपेक्षाकृत धीमी है तो पढ़ाते समय पहले तो धीमी गति से बोलेगा और फिर धीरे-धीरे तेज करेगा। इससे छात्र के नोट्स लेने की गति बढ़ेगी।

छात्र की प्रोफाइल के अगले कॉलम में उसके पास उपलब्ध साधनों की जानकारी होती है इस के आधार पर शिक्षक उसे अध्ययन करने के अवसर प्रदान करेगा और साथ ही विद्यालय में उपलब्ध साधनों से सीखने के अवसर प्रदान करेगा। छात्र की प्रोफाइल के अन्तिम कॉलम में छात्र की अध्ययन सम्बन्धी समस्याओं बारे में लिखा होता है। इन्हीं के आधार पर शिक्षक छात्र को समस्या समाधान के उपाय सुझाएगा। छात्र की अधिगम-प्रोफाइल के आधार पर उसे आगे सीखने के लिए पृष्ठपोषण दिया जा सकता है। लेकिन सही पृष्ठपोषण तभी दिया जा सकता है जब पृष्ठपोषण देने वाला पृष्ठपोषण देने में दक्ष हो, छात्र पृष्ठपोषण ग्रहण करने के लिए उत्सुक हो और अभिभावक इस कार्य में सहयोग प्रदान करें।

अपनी प्रगति जांचिए

6. निम्न में से छात्र की सूचना की विषय–वस्तु से क्या संबंधित है?
   (क) व्यक्तिगत जानकारी
   (ख) पारिवारिक पृष्ठभूमि
   (ग) स्वास्थ्य संबंधी ब्योरा तथा परीक्षा परिणाम
   (घ) उपर्युक्त सभी
7. पृष्ठपोषण का क्या लाभ है?
   (क) विषय को समझने में सहायक (ख) अधिगम में सुधार
   (ग) स्पष्ट मार्गदर्शन (घ) उपर्युक्त सभी

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (घ)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (घ)
6. (घ)
7. (घ)

3.6 सारांश

परीक्षण मापन के क्षेत्र में वे उपकरण आते हैं, जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के व्यवहार का क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षणों का अर्थ मापन के उन उपकरणों अथवा विधियों से लगाया जाता है, जिनके द्वारा विद्यार्थियों की मानसिक एवं शैक्षणिक योग्यता के मापन सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाते हैं, छात्रों द्वारा प्रदत्त उत्तरों तथा समस्याओं के प्रति अनुक्रियाओं के आधार पर उनकी मानसिक क्षमताओं तथा शैक्षिक योग्यताओं का मापन किया जाता है।

शैक्षिक परीक्षणों से तात्पर्य छात्रों की विभिन्न योग्यताओं के मापन के उन मापन उपकरणों तथा विधियों से है, जिनमें छात्रों से मापीय योग्यता से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं तथा जिनका छात्रों को उत्तर देना होता है और तत्सम्बन्धी समस्याएं उपस्थित की जाती हैं जिनके प्रति छात्रों को अनुक्रिया करनी होती है।

शिक्षक आने वाली युवा पीढ़ी के समक्ष अपने अनुभव एवं मूल्य इस उद्देश्य से रखता है कि वे सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा कर सकें एवं उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन हो। विद्यालयों में शिक्षण कार्य निरन्तर नियन्त्रित रूप से चलता रहता है। विद्यालय में रहकर बालक जो कुछ सीखता है, उसे उपलब्धि कहते हैं। इस उपलब्धि की जांच के लिए जो परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं उन्हें उपलब्धि परीक्षण कहा जाता है। अध्यापक के द्वारा विद्यार्थियों को जो पढ़ाया गया है उसमें उन्होंने कितना सीखा है यह जांचने के लिए अर्थात् अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों की उन्नति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय-समय पर जो परीक्षाएं ली जाती हैं वे उपलब्धि परीक्षण कहलाती हैं। इन परीक्षाओं का उद्देश्य विद्यार्थियों की सफलता का मापन करना होता है। इनसे यह पता लगाया जाता है कि बालक के व्यवहार में कितना परिवर्तन आया है। वह अपने ज्ञान को नई एवं विभिन्न परिस्थितियों में कितना उपयोग कर सकता है। विद्यार्थियों में किन-किन रुचियों एवं अभिवृत्तियों का विकास हुआ है। इस प्रकार उपलब्धि परीक्षण किसी विद्यार्थी द्वारा अर्जित कौशलों में निपुणता को मापने के लिए बनाये जाते हैं।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का उद्देश्य अधिगम द्वारा बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। और व्यवहार में परिवर्तन/ शिक्षा के उद्देश्य की जांच के लिए जिन परीक्षणों/विधियों का प्रयोग किया जाता है उन्हें उपलब्धि परीक्षण कहते हैं। आकलन

सीखने की प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। किसी के बारे में निर्णय लेना आकलन कहलाता है। जो अध्यापक का यह समझने में सहायता प्रदान करता है कि बालक क्या जानते हैं? क्या उन्होंने पाठ्यक्रम को पूरा कर लिया है या नहीं। उसका शिक्षण कैसा होना चाहिए? जब शिक्षण कक्षा में बालकों का आकलन करते हैं तो वे स्वयं का भी आकलन कर रहे होते हैं। यदि कक्षा में अधिकतर बालक सीख रहे हैं और सीखने में रुचि ले रहे हैं, तो इसका अर्थ हुआ कि शिक्षक की शिक्षण तकनीकियाँ/विधियाँ प्रभावी हैं। यदि बालक नहीं सीख पा रहे हैं तो शिक्षक को निर्णय लेना होता है कि बालकों को सिखाने के तरीकों को और प्रभावी कैसे बनाया जाए। इस प्रकार आकलन गुणात्मक सुधार प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। आकलन के आधार पर शिक्षक यह जान पाते हैं कि बालक किस हद तक सीख पा रहे हैं और अभी कितना और प्रयत्न करना है ताकि वे अधिगम के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। आकलन के द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि वास्तव में बालक ने शिक्षण के अन्त में क्या-क्या सीखा है। यह कार्य शिक्षक दैनिक पाठ के अन्त में, कक्षा शिक्षण के समय, पाठ के अन्त में, माह के अन्त में, तिमाही पर, छः माह पर, वर्ष के अन्त में कर सकता है।

आकलन, शिक्षण अवधि में विद्यार्थी एवं शिक्षण निर्धारित उद्देश्यों की दिशा में और विषय-वस्तु की समझ के आधार पर यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया गया है। पाठ्यचर्या शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है। शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही पाठ्यचर्या का निर्माण किया जाता है। पाठ्यचर्या विकास का एक मुख्य सोपान विषय-वस्तु का चयन करना होता है। शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण एवं अधिगम अनुभवों के चयन के बाद इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त विषयों एवं विषय-वस्तु का चयन करना बहुत जरूरी होता है। विषय-वस्तु का चयन कहाँ से और कैसे किया जाए ताकि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।

व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिगत कार्यक्रमों के उद्देश्यों को या दक्षता को स्पष्ट करने के लिए कार्यक्रम की पुष्टि करने के लिए अधिगम का आकलन किया जाता है। विषय-वस्तु एवं शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर आकलन करके यह जाना जा सकता है कि शिक्षण द्वारा व्यक्ति/समाज के मूल्यों को कहाँ तक प्राप्त किया जा सका तथा किस सीमा तक समाज एवं मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकी। आकलन की दृष्टि से जरूरी है कि शिक्षक आकलन की सभी विधियों एवं अवधारणाओं से भली प्रकार परिचित हो ताकि वह समयानुसार एवं स्थिति अनुसार कार्य शैली में परिवर्तन करके उद्देश्यों की प्राप्ति की दिशा में कार्य कर सके।

आकलन का मुख्य उद्देश्य बालकों को सीखने के लिए प्रेरित करना और बालकों की क्षमता उम्र और स्तर को ध्यान में रखते हुए उसे एक निश्चित स्तर तक पहुँचाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आकलन को सीखने के साधन के रूप में देखा जाता है। शिक्षकों को बालकों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर सीखने के अवसर प्रदान करने चाहिए। आकलन का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि बालक ने एक निश्चित अवधि में शैक्षिक लक्ष्य को किस सीमा तक प्राप्त कर लिया है। आकलन का प्रयोग पाठन की इकाई की अवधि के अन्त में किया जाता है।

जिस प्रकार जीवन में किसी कार्य को करने से पहले उसकी एक सुनिश्चित योजना बनानी पड़ती है, ठीक उसी प्रकार परीक्षण निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया से पूर्व एक

सुनिश्चित योजना की आवश्यकता होती है। सर्वप्रथम परीक्षा की विषय-वस्तु का क्षेत्र एवं मापीय लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं। परीक्षण के लिए समय एवं पूर्णांक निश्चित किया जाता है। परीक्षणों का निर्माण करते समय विद्यार्थियों की आयु और कक्षा स्तर को ध्यान में रखा जाता है। इसके बाद यह निश्चय किया जाता है कि ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावात्मक लक्ष्यों को कितना-कितना महत्व दिया जाना है। और फिर इसके पश्चात यह निश्चित किया जाता है कि किस-किस लक्ष्य के कितने-कितने प्रश्नों का निर्माण किया जायेगा। इसके अन्तर्गत वर्गो की योजना तथा विकल्पों की योजना बनायी जाती है। अन्त में इन सबको एक साथ एक सारणी में प्रदर्शित करते हैं। जिसे परीक्षण की रूपरेखा कहा जाता है।

निर्देशात्मक प्रक्रिया का उद्देश्य किसी व्यक्ति के एकीकृत विकास को बढ़ावा देना है। इसलिए हमें विषय स्पष्ट होना चाहिए कि हम अपने शिक्षण से किस प्रकार के परिणामों की उम्मीद करते हैं- ज्ञान, समझ, आवेदन या प्रदर्शन कौशल?

एक प्रभावी शिक्षण का पहला चरण डिजाइन किए गए शिक्षण परिणामों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना है। यह एक श्रेष्ठ मूल्यांकन प्रक्रिया को विकसित करने में भी मदद करता है। सीखने की प्रक्रिया में निर्देशात्मक उद्देश्य एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनुदेशन शब्द का साधारण भाषा में अर्थ होता है- सूचना देना अथवा आज्ञा देना। अनुदेशन को अंग्रेजी में Instruction कहते हैं। अनुदेशन शब्द का वास्तविक स्वरूप हमें कक्षा शिक्षण में मिलता है। कक्षा शिक्षण के समय अध्यापक किसी भी विषय को किसी भी छात्र तक पहुँचाने के लिए जो क्रिया करता है, वह अनुदेशन कहलाती है। दूसरे शब्दों में, अनुदेशन शिक्षक तथा शिक्षार्थी के मध्य पाठ्यक्रमीय ज्ञान के आदान-प्रदान की क्रिया है।

परीक्षण की निश्चित एवं व्यवस्थित योजना बनाने के पश्चात् ही परीक्षण निर्माता परीक्षण के प्रारम्भिक रूप की तैयारी करने लगता है। सर्वप्रथम, उद्देश्यों एवं विषय–वस्तु के अनसुार वह विभिन्न पदों (Items) का चयन अन्य स्रोतों से एवं स्वयं निर्माण से करता है।

परीक्षार्थियों की बैठक व्यवस्था परीक्षण को ध्यान में रखकर की जाती है। परीक्षण को प्रशासन के दृष्टिकोण से दो वर्गो में विभाजित किया जाता है- सामूहिक परीक्षण एवं व्यक्तिगत परीक्षण।

किसी परीक्षण के सम्पादन के अन्तर्गत इसका अर्थ परीक्षणकर्त्ता एवं परीक्षणार्थी के बीच मित्र भाव स्थापित करना होता है। यह मित्र भाव परीक्षणकर्त्ता तथा परीक्षार्थी के बीच दूरी को कम करता है और परीक्षार्थी में परीक्षाकर्त्ता के प्रति विश्वास पैदा करता है।

मानदंड औसत प्रदर्शन पर आधारित प्रस्तुतियां हैं जो किसी विशेष समूह के छात्रों की परीक्षा से प्राप्त परिणाम होती हैं। यह अलग–अलग प्राप्त अंकों को समूह के अंक में परिवर्तित करने का एक उपकरण होता है। शैक्षिक मापन भौतिक मापन के समान नहीं, बल्कि मानसिक मापन के समान होता है इसलिए शैक्षिक मापन सापेक्ष होता है।

उपचारात्मक शिक्षण की इस विधि के अंतर्गत विद्यालय के नियमित समय से पहले या बाद में अलग से विशेष कक्षाओं का आयोजन किया जा सकता है। इस प्रकार

की कक्षाओं में एक श्रेणी के सभी विद्यार्थियों को शामिल किया जा सकता है। इन कक्षाओं के अंतर्गत एक प्रकार के भाषायी दोषों से ग्रस्त विद्यार्थियों को छोटे समूहों में बांटा जा सकता है।

टिप्पणी

शिक्षण क्रियाओं का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में परिवर्तन लाना होता है। शिक्षक शिक्षण का कार्य करता है और अपनी क्रिया की प्रभावशालीलता की जाँच करने के लिए विद्यार्थियों की प्रतिक्रिया को प्राप्त करने का प्रयास करता है ताकि वह अपने शिक्षण कार्य को आगे बढ़ा सके।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **शिक्षण** : परीक्षण मापन के क्षेत्र में वे उपकरण जो किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह के व्यवहार का क्रमबद्ध तथा व्यवस्थित ज्ञान प्रदान करते हैं।
- **उपलब्धि परीक्षण** : उपलब्धि परीक्षण विद्यार्थियों द्वारा ग्रहण किये गए ज्ञान, कुशलता या क्षमता का मापन करता है।
- **निदानात्मक परीक्षण** : शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत विद्यार्थियों में मौजूद समस्याओं का ज्ञान कथन आदि का पता लगाना निदानात्मक परीक्षण कहलाता है।
- **उपचारात्मक परीक्षण** : समस्या के कारणों का पता लगने पर किए गए प्रयास।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. उपलब्धि परीक्षण से आप क्या समझते हैं?
2. उपलब्धि परीक्षण का निर्माण करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
3. निदानात्मक परीक्षण से आप क्या समझते हैं?
4. नैदानिक परीक्षण के प्रयोजन एवं उपयोग को स्पष्ट कीजिए।
5. अभिलेखों की विषय–वस्तु के अंतर्गत किन विषयों का समावेश किया जाता है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. उपलब्धि परीक्षण को समझाते हुए इसके उद्देश्य एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. उपलब्धि परीक्षण के निर्माण के चरणों को स्पष्ट कीजिए।
3. बैठने की व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? इसकी आवश्यकता और महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. उपलब्धि परीक्षण व नैदानिक परीक्षण में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. उपचारात्मक शिक्षण की प्रक्रिया का उल्लेख कीजिए।
6. अभिलेख से आप क्या समझते हैं? इसके महत्व एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

टिप्पणी

Agarwal, Y.P. (1990). Statistical methods : concepts, applications and computations. New Delhi: Sterling Publishers.

Burke,K. (2005), How to assess authentic learning Thousand Oaks, CA: Corwin.

Garrett, H.E.(1973) Statistics in psychology and education Bombay : .

Popham, W.J. (1993). Educational evaluation. Boston :Allyn and Bacon

Popham, W.J. (1993). Modern educational measurement : Englewood Cliffs, NJ. : Prentice Hall.

Popham, W.J. (2010). Classroom assessment : What teachers need to know New York: Prentice Hall.

इकाई 4 समंक का सांख्यिकीय विश्लेषण

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 आंकड़ों का प्रदर्शन
4.2.1 आंकड़े : अर्थ और प्रकृति, मापन का स्तर, प्रतिशत की गणना
4.2.2 मापन का स्तर
4.2.3 प्रतिशत की गणना
4.2.4 आंकड़ों का समूहीकरण और प्रस्तुतीकरण
4.2.5 आंकड़ों का रेखाचित्रीय या ग्राफिक प्रस्तुतीकरण
4.3 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप
4.3.1 मध्यमान की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना, मध्यमान का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.3.2 माध्यिका की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से माध्यिका की गणना, माध्यिका का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.3.3 बहुलक : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से बहुलक की गणना, बहुलक का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.4 विचलनशीलता की माप
4.4.1 विचलनशीलता का अर्थ
4.4.2 परास की अवधारणा
4.4.3 चतुर्थक विचलन की अवधारणा : गणना, व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं
4.4.4 मानक विचलन
4.5 सामान्य प्रायिकता वक्र और सह–संबंध
4.5.1 सामान्य प्रायिकता वक्र : अवधारणा, विशेषताएं, महत्व अनुप्रयोग
4.5.2 प्रसामान्य में विचलन : स्क्यूनेस, क्यूरटोसिस
4.5.3 सह–संबंध : अवधारणा, प्रकार, सह–संबंध गणना विधि
4.5.4 मानक प्राप्तांक : Z प्राप्तांक, T स्कोर प्राप्तांक शतांशीय मान
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

मानव मस्तिष्क जटिल समंकों को पूर्णतया समझने और उनकी तुलना करने में सर्वथा समर्थ नहीं है इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि विधि तथ्यों जिनकी तुलना की जानी है उन्हें सारांश रूप में एक ही अंक द्वारा व्यक्त किया जा सके। वास्तव में ऐसे मूल्य या अंक को केंद्रीय प्रवृत्ति की माप या सांख्यिकीय माप द्वारा जटिल और अव्यवस्थित समंकों की मुख्य विशेषताओं का एक सरल, स्पष्ट एवं संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत किया जाता है। इससे उन समंकों को समझना व याद रखना बहुत सुगम हो जाता है। उदाहरण के लिए 130 करोड़ भारतवासियों की अलग–अलग आयु को याद रखना असंभव है लेकिन औसत आयु सुगमता से याद रखी जा सकती है।

केंद्रीय प्रवृत्ति की माप एक ऐसा प्रतिरूप मूल्य है जिसका प्रयोग श्रेणी के सभी मूल्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया जाता है। केंद्रीय प्रवृत्ति का मान वह मान है जो समस्त आंकड़ों का श्रेष्ठतम प्रतिनिधित्व करता है। विभिन्न विवरणात्मक सांख्यिकियां होती हैं, जिन्हें आंकड़ों की केंद्रीय प्रवृत्ति के मापन के रूप में चुना जा सकता है। इसके अंतर्गत अंकगणितीय माध्य, माध्यिका व बहुलक सम्मिलित हैं। माध्य एकल मान है, जिसका अभिप्राय मानों की सूची को प्रतीकबद्ध करने से है। यदि सूची में सभी संख्याएं समान हों तो इस अंक का प्रयोग किया जाता है। यदि संख्याएं समान न हों तो विशिष्ट प्रकार के समुच्चय से मानों को जोड़कर औसत की गणना की जाती है एवं एकल संख्या की संगणना समुच्चय के माध्य के रूप में कर ली जाती है।

अपकिरण की माप अवलोकनों द्वारा प्रदर्शित बिखराव की सीमा का विवरण देती है तथा उसे सामान्यतः किसी केंद्रित मूल्य से विचलनों के माध्य के रूप में मापा जाता हैं। एक समंक समूह की विचरणशीलता की सीमा का निर्धारण, चर के व्यक्तिगत मूल्यों की तुलना सभी मूल्य के माध्य से करके और फिर व्यक्तिगत अंतरों का माध्य निकाल कर किया जाता है।

सहसंबंध एक विवरणात्मक सांख्यिकीय माप है जो दो चरों के मध्य पाए जाने वाले संबंध की मात्रा का विवरण देता है। जब दो तथ्यों में एक साथ एक ही दिशा में अथवा विपरीत दिशाओं में परिवर्तन हो तथा एक तथ्य में परिवर्तन दूसरे तथ्य में परिवर्तन के कारण हो तो यह कहा जाता है कि उन दोनों में सहसंबंध है।

इस इकाई में, अनुपात, प्रतिशत, केंद्रीय प्रवृत्ति की माप, परिक्षेपण की माप तथा सहसंबंध और उसकी माप को विस्तार से समझाया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

- आंकड़ों के प्रदर्शन को जान पाएंगे;
- आंकड़ों के अर्थ, प्रकृति, मापन का स्तर, प्रतिशत की गणना का विश्लेषण कर पाएंगे;
- आंकड़ों के समूहीकरण और प्रस्तुतीकरण की विवेचना कर पाएंगे;
- केंद्रीय प्रवृत्ति की माप का आकलन कर पाएंगे;
- विचलनशीलता की विभिन्न मापों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- सह–संबंध की अवधारणा, प्रकार, सह–संबंध गुणांक से परिचित हो पाएंगे;
- मानक प्राप्तांक के विभिन्न प्रकारों का विश्लेषण कर पाएंगे।

4.2 आंकड़ों का प्रदर्शन

समंक (आंकड़ों) का तात्पर्य तथ्यों के उन समूहों से होता है जिन्हें संख्याओं में व्यक्त किया जा सके या जिन्हें शुद्धता के एक उचित स्तर द्वारा अनुमानित किया जा सके। किसी पूर्व निश्चित उद्देश्य के लिए जिन्हें एकत्रित किया जाता है और जिन्हें एक–दूसरे

से संबंधित रूप में प्रस्तुत किया जाता है वे समंक कहलाते हैं। सांख्यिकीय में समंक का संकलन महत्वपूर्ण किये जाने वाले समंकों के स्वरूप व आकार पर निर्भर करता है।

किसी भी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत ऐसे अनेक उद्देश्य होते हैं जिनके अंतर्गत समंक या आंकड़े प्राप्त करना, उन्हें एकात्रित करना, वर्गीकृत करने के उपरांत विश्लेषण करना और उन्हीं विश्लेषित समंकों को प्रकाशित करना आवश्यक होता है ताकि सभी को वे समंक आसानी से प्राप्त हो सकें। इस तरह की प्रक्रिया प्रायः समस्त अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है क्योंकि संपूर्ण अर्थव्यवस्था को ऐसे समंकों की सदैव आवश्यकता पड़ती रहती है।

समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाने एवं नियंत्रण करने के लिए समंकों का प्रयोग करना आवश्यक है। आधुनिक युग में समस्त मानवीय प्राकृतिक तथ्यों को समंकों के रूप में ही मापा एवं अध्ययन किया जा सकता है। संख्यात्मक तथ्य से भरे विश्व में प्रत्येक व्यक्ति संख्यात्मक तथ्य के आधार पर ही ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करता है। वर्तमान संचार एवं कंप्यूटर क्रांति के समय में ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में सांख्यिकी समंकों का ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक एवं परम उपयोगी हो गया है। समय–सामय पर अनेक विशिष्ट उद्देश्यों के लिए सरकारी समितियों, प्राइवेट संस्थाओं आदि को ऐसे ही अनेक समंकों की आवश्यकता होती है जिन्हें संकलित करने की प्रक्रिया को बड़ी सावधानी पूर्वक पूर्ण करना होता है ताकि एक निश्चित समय में निश्चित उद्देश्य के लिए विभिन्न क्षेत्रों को एक विश्वसनीय समंक प्राप्त हो सके।

सर्वेक्षण संबंधी प्रारंभिक जानकारी पर निर्णय लेने के पश्चात समंक–संकलन का कार्य आरंभ किया जाता है। समंक–संकलन से तात्पर्य सर्वेक्षण के लिए इकाइयों से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने की विधियों से है। समंक संकलन की विधि दो बातों पर निर्भर रहती है पहला सर्वेक्षण की प्रकृति तथा उसके उद्देश्य व क्षेत्र पर तथा दूसरा धन एवं समय के उपलब्ध परिणाम पर। समंक दो प्रकार के होते हैं प्राथमिक समंक और द्वितीयक समंक। प्राथमिक समंक का संकलन सर्वेक्षणकर्त्ता स्वयं करता है तथा द्वितीयक समंकों का संकलन अन्य व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा निजी उपयोग के लिए किया जाता है, अन्य व्यक्ति भी उन समंकों का उपयोग कर सकते हैं। प्राथमिक समंक एक बार संकलित होकर प्रकाशित हो जाने पर द्वितीयक समंक बन जाते हैं। प्राथमिक समंकों का संकलन एक विशेष सर्वेक्षण के लिए किया जाता है अतः वे विशेष उद्देश्य पूर्ति के लिए उपयुक्त होते हैं।

4.2.1 आंकड़े : अर्थ और प्रकृति, मापन का स्तर, प्रतिशत की गणना

आंकड़ों के विस्तृत स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

आंकड़ों का अर्थ

आंकड़ा शब्द से हमारा तात्पर्य प्रत्युत्तरों के अभिलेखन से है। आंकड़े या तथ्य वस्तुतः सामाजिक यथार्थ के किसी वर्ग के संबंध में तथ्यों के नवीन अभिलेख तैयार करते

समय या उससे पूर्व में प्राप्त अभिलेखों के आधार पर सूचनाएं अर्जित करने के लिए एकत्रित की गई सामग्री को आंकड़े कहते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि सामाजिक शोध में क्षेत्रीय या प्रलेखीय आधार पर हम जो भी सामग्री संचय करते हैं, वह आंकड़ा कहलाती है।

इस प्रकार आंकड़ा मान या माप के रूप में तथ्यों का एक संग्रह है। यह संख्या, शब्द, माप, टिप्पणियों या चीजों का विवरण हो सकता है। इसके अलावा आंकड़ा तथ्य, चित्र और विचार का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सकता है।

आंकड़ों की प्रकृति

आंकड़े यद्यपि अपनी प्रारंभिक या मौलिक अवस्था में मिले–जुले रूप में होते हैं। अतः ये कारण प्रभाव जानने एवं निष्कर्षों को प्रमाणित करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। वास्तव में आंकड़ों की सहायता से अनुसंधान को एक विशिष्ट स्वरूप प्राप्त हो सकता है।

गुणात्मक वर्गीकरण

गुणात्मक वर्गीकरण (Qualitative Classification) में समंक, गुणों अथवा विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत किए जाते हैं, जैसे–लिंग, आयु, व्यवसाय, साक्षरता, धर्म आदि। ध्यान देने योग्य बात यह है कि गुणात्मक समंकों की प्रत्यक्ष रूप से माप नहीं हो सकती। केवल यह पता लगाया जा सकता है कि प्रस्तुत अध्ययन में अमुक गुण विद्यमान है या नहीं। उदाहरण के लिए, दृष्टिहीनता का अध्ययन करते समय यह ज्ञात कर सकते हैं कि एक निश्चित संख्या में कितने व्यक्ति दृष्टिहीन हैं। लेकिन हम उनकी दृष्टिहीनता की सीमा का पता नहीं लगा सकते। इस प्रकार, हम केवल एक गुण या विशेषता का अध्ययन कर रहे हैं तो दो वर्ग या श्रेणियां बनेंगी– एक, जिसमें वह गुण या विशेषता विद्यमान है तथा दूसरी, जिसमें वह गुण या विशेषता विद्यमान नहीं है। उदाहरणार्थ, जनसंख्या को लिंगानुसार निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

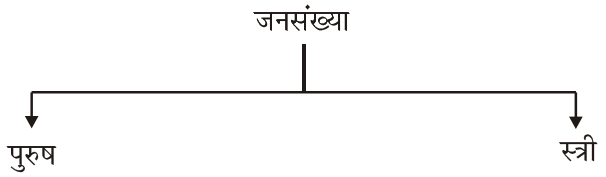

इसी प्रकार, जनसंख्या का वर्गीकरण, साक्षरता, धर्म आदि के आधार पर किया जा सकता है। जिस वर्गीकरण में केवल दो वर्ग या श्रेणियों होती हैं, उसे साधारण अथवा द्वंद्व भाजन वर्गीकरण कहते हैं। यदि समंकों को दो श्रेणियों के स्थान पर कई वर्गों या श्रेणियों में विभाजित करते हैं तो वह बहुगुणीय वर्गीकरण कहलाता है। उदाहरण के लिए, जनसंख्या को पहले लिंगानुसार पुरुषों एवं स्त्रियों में विभाजित कर लें, फिर प्रत्येक वर्ग को साक्षरता के आधार पर शिक्षित अथवा अशिक्षित में बांट लें। तत्पश्चात अन्य गुणों के आधार पर उन्हें उपवर्गों में विभाजित कर दें। इस प्रकार, यह क्रम किसी अन्य गुण अथवा विशेषता के आधार पर आगे बढ़ाया जा सकता है। बहुगुण वर्गीकरण का एक नमूना नीचे दिया गया है–

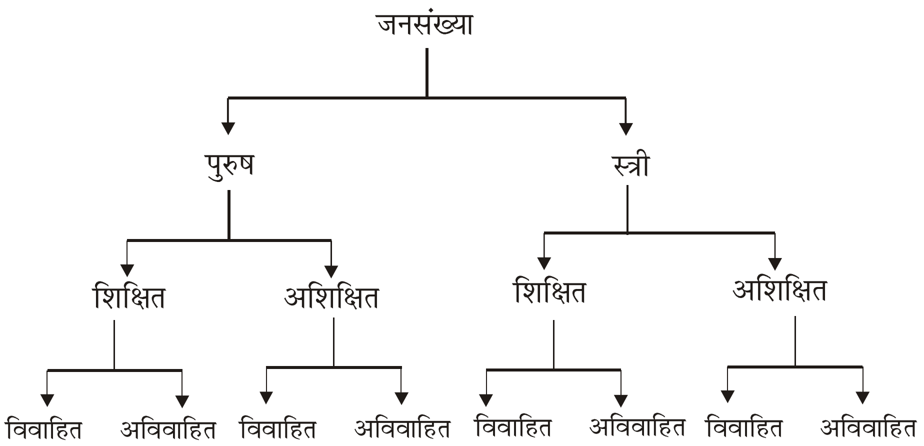

मात्रात्मक वर्गीकरण

मात्रात्मक या संख्यात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification) सामान्यतः वर्गांतरों के अनुसार किया जाता है। सबसे छोटी और सबसे बड़ी संख्या को ध्यान में रखते हुए सभी समंकों को सुविधानुसार अलग–अलग वर्गों में बांट दिया जाता है। उदाहरणार्थ, एक कक्षा में विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों को निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

अंक	विद्यार्थियों की संख्या
0–20	8
20–40	12
40–60	25
60–80	15
80–100	10
	योग–70

ऐसे वर्गीकरण में दो तत्व होते हैं–

1. चर
2. वर्ग आवृत्ति

1. **चर** : चर शब्द का अभिप्राय उन तथ्यों से है, जिनकी अंकात्मक माप या प्रत्यक्ष माप संभव होती है और जो मात्रा अथवा आकार में घटते–बढ़ते रहते हैं। एक चर खंडित या विच्छिन्न अथवा अखंडित या अविच्छिन्न हो सकता है। अखंडित चर को एक निश्चित सीमा में गणितीय शुद्धता के साथ मापा जा सकता है। जब एक व्यक्ति की ऊंचाई 4 फुट से बढ़कर 5 फुट होती है तो वह 4 फुट से 5 फुट तक की प्रत्येक ऊंचाई से गुजरेगा। लेकिन खंडित चर में ऐसा नहीं होता। एक खंडित चर कुछ निश्चित सीमाओं से होकर गुजर सकता है, उदाहरणार्थ– एक घर में कमरों की संख्या पूर्णांक में ही हो सकती है, जैसे– 1, 2 या 3 आदि, डेढ़ या ढाई संख्या नहीं हो सकती। इसी प्रकार, यदि एक घर में दो बच्चे हैं और अन्य बच्चा जन्म लेता है तो कुल संख्या 3 होगी न कि $2\frac{1}{4}$, $2\frac{3}{4}$, आदि। व्यावहारिक दृष्टि से अधिकांश चर खंडित होते हैं।

टिप्पणी

अखंडित एवं खंडित आवृत्ति वितरणों के दो उदाहरण नीचे दिए गए हैं–

खंडित आवृत्ति वितरण		अखंडित आवृत्ति वितरण	
बच्चों की संख्या	परिवारों की संख्या	वजन (पौण्ड में)	व्यक्तियों की संख्या
0	10	100–110	10
1	40	110–120	15
2	80	120–130	40
3	100	130–140	45
4	250	140–150	20
5	150	150–160	4
6	50		2
योग	680	योग	136

2. **वर्ग आवृत्ति** : वर्ग बना लेने के पश्चात यह जानना आवश्यक है कि इस समूह में से कितने मद, किस वर्ग विशेष में आते हैं। इन मदों या अवलोकनों की संख्या, उस वर्ग की आवृत्ति कहलाती है। ऊपर दिए गए उदाहरण में 10 व्यक्ति ऐसे हैं, जिनका वजन 100–110 पौंड के बीच है। इस संख्या 10 को 100–110 वर्ग की आवृत्ति कहते हैं। इस प्रकार पांच–पांच मदों के खंड बन जाते हैं। ऐसा करने से गणना में बहुत सहायता मिलती है। अंत में हम इन रेखाओं की संख्या गिनकर मद को सामने आवृत्ति वाले स्तंभ में लिख देते हैं।

खंडित या वर्ग आवृत्ति वितरण

वितरण की रचना : इस प्रकार के वितरण बनाना बहुत सरल है। इसमें हम केवल मदों की पुनरावृत्ति की संख्या गिनते हैं। इस संख्या को उस श्रेणी की आवृत्ति कहते हैं। गिनने के लिए मिलान रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक वर्ग में आने वाले एक मद या इकाई के लिए एक खड़ी रेखा (|) उस वर्ग के सामने लगा दी जाती है। इस प्रकार पांच–पांच के समूह वर्ग बन जाते हैं, जिन्हें हम आवृत्ति कहते हैं।

उदाहरण : एक कक्षा के 25 विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अंक इस प्रकार हैं–

10 20 20 30 40 25 25 30 40 20
25 25 50

15 25 30 40 50 40 50 30 25 25
15 40

एक अविच्छिन्न आवृत्ति वितरण की रचना करो–

हल :

अंक	मिलान रेखाएं	आवृत्ति
10	|	1
15	||	2
20	|||	3
25	~~||||~~ ||	7
30	||||	4
40	~~||||~~	5
50	|||	3
		योग–25

टिप्पणी

अखंडित या अविच्छिन्न आवृत्ति वितरण

अखंडित आवृत्ति वितरण, समंकों को प्रस्तुत करने की सबसे अधिक प्रचलित रीति है। इस प्रकार के वर्गीकरण में निम्न विशेष शब्दों का प्रयोग होता है–

1. **वर्ग सीमाएं** : एक वर्ग (Class) में दो सीमाएं होती हैं। उनमें से एक को निम्न सीमा (Lower Limit) तथा दूसरी को उच्च सीमा (Upper Limit) कहते हैं। उदाहरण के लिए, 20–40 वर्ग में 20 निम्न सीमा तथा 40 उच्च सीमा है।
2. **वर्ग–विस्तार** : किसी वर्ग की उच्च तथा निम्न सीमा के अंतर को वर्ग–विस्तार या वर्गांतर कहते हैं। उदाहरणार्थ, 20–40 का वर्ग विस्तार 20 है। (40–29) सूत्र के रूप में–

   वर्ग–विस्तार = उच्च सीमा (Upper Limt) – निम्न सीमा (Lower Limit)
3. **मध्य–मूल्य या मध्य–बिंदु** : किसी वर्ग की सीमाओं के मध्य के स्थान को मध्य–मूल्य या मध्य–बिंदु कहते हैं। इसे ज्ञात करने के लिए वर्ग की निम्न सीमा व उच्च सीमा को जोड़कर दो (2) से भाग देते हैं। सूत्र के रूप में–

   $$\text{मध्य बिंदु} = \frac{\text{निम्न सीमा} + \text{उच्च सीमा}}{2}$$

   यदि एक वर्ग 10–20 है तो इसका मध्य बिंदु 15 होगा, अर्थात

   $$\text{मध्य बिंदु} = \frac{10+20}{2} = 15$$
4. **वर्ग आवृत्ति** : किसी वर्ग–विशेष से संबंधित मदों की संख्या को वर्ग–आवृत्ति कहते हैं। वर्गीकरण करने की दो रीतियां है– (क) अपवर्जी रीति तथा (ख) समावेशी रीति।

टिप्पणी

(क) **अपवर्जी रीति :** जब वर्गों की रचना इस प्रकार हो कि एक वर्ग की उच्च सीमा, दूसरे वर्ग की निम्न सीमा हो तो इसको अपवर्जी रीति कहते हैं। निम्न समंक इस रीति द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं–

आय (रु. में)	व्यक्तियों की संख्या
5,800-5,800	50
5,800-5,900	100
5,900-6,000	200
6,000-6,100	150
6,100-6,200	40
6,200-6,300	10
	योग– 550

(ख) **समावेशी रीति :** इस रीति के अनुसार, किसी भी वर्ग की उच्च सीमा उसी वर्ग में सम्मिलित होती है तथा एक वर्ग की ऊपरी सीमा और उससे अगले वर्ग की निचली सीमा में अंतर होता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह रीति स्पष्ट हो जाएगी–

आय (रु. में)	व्यक्तियों की संख्या
5,700-5,799	50
5,800-5,899	100
5,900-5,999	200
6,000-6,099	150
6,100-6,199	40
6,200-6,299	10
	योग– 550

4.2.2 मापन का स्तर

मापन का साधारण अर्थ है मापना या नापना। यह किसी वस्तु या गुण के आकलन का वह माध्यम है, जो उसे परिणाम रूप में व्यक्त करता है। यूं तो मापन जैसे निरपेक्ष शब्द की व्याख्या करना एक कठिन कार्य है, फिर भी सुविधा की दृष्टि से यह अभिप्राय लगाया जाता है कि यह आंकड़ों का अंकों के रूप में तथा किसी भी वस्तु का शुद्ध एवं वस्तुनिष्ठ तरीके से वर्णन करता है।

मापन से हमारा अभिप्राय किसी भी अवलोकन को परिमाणात्मक रूप से व्यक्त करने से है। दूसरे शब्दों में, किसी भौतिक पदार्थ के गुण अथवा विशेषताओं के परिणाम को अंकात्मक रूप देने की क्रिया को मापन क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में किसी वस्तु के गुणों को उचित इकाई में प्रकट किया जाता है। किसी व्यक्ति में क्या गुण हैं? इसकी जानकारी मापन देता है, उदाहरणार्थ–सुनंदा अंग्रेजी कितने प्रभावशाली एवं सुंदर ढंग

से बोलती है अथवा अभिनव का भूगोल का ज्ञान इतना कम क्यों है? अथवा, शिप्रा की बुद्धि–लब्धि (Intelligence Quotient–IQ) क्या है? आदि मानसिक योग्यताओं की जानकारी मापन के क्षेत्र के अंतर्गत आती है। लेकिन, मानसिक गुणों का मापन प्रत्यक्ष रूप से करना अत्यंत कठिन कार्य है। मापन का क्षेत्र इस दृष्टि से अत्यंत सीमित है। मापन में अंक प्रदान किए जाते हैं। परीक्षक, विद्यार्थियों की उत्तर पुस्तिकाओं को देखकर उनकी योग्यता का मापन करते हैं तथा अपना निर्णय अंकों के रूप में देते हैं। परंतु, इस मापन के आधार पर निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती। आशु, कक्षा में अनेक विषय पढ़ता है। गणित में वह सबसे अधिक अंक प्राप्त करता है परंतु इससे हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि वह कक्षा का सबसे अच्छा छात्र है। इस प्रकार, कुछ विशेष शैक्षिक परिस्थितियों में मापन का प्रत्यय स्पष्ट नहीं हो पाता। उदाहरणार्थ, उमा के गृह विज्ञान में 65 प्रतिशत अंक हैं, वहीं दूसरी ओर यह भी संकेत मिल रहा है कि उसकी उपलब्धि अत्यंत संतोषजनक है, जो कि मापन के अतिरिक्त मूल्याकंन की श्रेणी में भी आती है। अतः कहीं–कहीं मापन एवं मूल्यांकन में अंतर स्पष्ट करना मुश्किल हो जाता है।

प्रत्येक मापन क्रिया दो पदों में की जाती है। सर्वप्रथम, मापनकर्ता यह निश्चय करता है कि उसे किस गुण अथवा योग्यता का मापन करना है। दूसरा, वह उपयुक्त मापन उपकरण का चयन करता है। भौतिक मापन में हमारा आधार बिंदु, शून्य होता है तथा इसका मान प्रत्येक स्थान एवं समय पर होता है, जबकि मानसिक या शैक्षिक मापन इतना वस्तुनिष्ठ, सुनिश्चित एवं सही नहीं होता। इसका आधार पूर्व–निर्धारित मानक होते हैं, जो आत्मनिष्ठ होने के साथ–साथ विशिष्टता से भी परे होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी कमरे की लंबाई एक फीते की सहायता से आसानी से नापी जा सकती है लेकिन किसी कक्षा का निष्पादन उतनी आसानी से नहीं मापा जा सकता। परंतु मापनकर्ता का संबंध मापन क्रिया की सुविधा से उतना नहीं है, जितना कि उसकी शुद्धि से है। आधुनिक युग का प्रत्येक वैज्ञानिक, मापन क्रिया में अधिक से अधिक शुद्धि लाने का प्रयास करता है, चाहे उसका संबंध किसी भी विज्ञान से हो।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मापन के अंतर्गत विभिन्न निरीक्षणों, वस्तुओं एवं घटनाओं का अंकात्मक रूप में वर्णन किया जाता है तथा इसके अंक प्रदान करने के लिए मापन के विभिन्न स्तरों के अनुकूल विशिष्ट प्रकार के नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है।

मापन की विशेषताएं

शैक्षिक मापन की विशेषताएं निम्न हैं–

1. मापन में कोई निरपेक्ष शून्य बिंदु नहीं होता। यह किसी कल्पित मानक के सापेक्ष होता है।
2. मापन की इकाइयां निश्चित नहीं होतीं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इनका मान समान नहीं होता।

टिप्पणी

3. शिक्षा में मापन अनंतता की स्थिति बनाए रखता है। हम कभी भी इस बात का दावा नहीं कर सकते कि हमने छात्र की संपूर्ण उपलब्धि का मापन कर लिया है अथवा, उसकी बुद्धि का सही अंदाजा लगा लिया है।
4. मापन अप्रत्यक्ष है अर्थात सीधा मापन न होकर किसी उपयुक्त माध्यम के आधार पर होता है। हम उपलब्धि का मापन व्यक्ति के किसी अन्य प्रकार के कार्य अथवा व्यवहार को देखकर करते हैं, ठीक वैसे ही, जैसे बिजली की पहचान पंखे के चलने से होती है।
5. मापन किसी वस्तु का अत्यंत शुद्धता के साथ आंशिक वर्णन करता है।
6. मापन के द्वारा हम अधिक आसानी से परिणामों को दूसरों तक संचालित कर सकते हैं, क्योंकि इसमें आत्मनिष्ठता का कोई स्थान नहीं होता।
7. मापन, व्यक्ति के मूल्यांकन में सहायक होता है।
8. मापन का प्रयोग आत्मनिष्ठ मूल्यांकन की अपेक्षा अधिक मितव्ययी है।

मापन के स्तर : शैक्षिक मापन का आधार, आंकड़े होते हैं। मापन चाहे किसी भी प्रकार का हो– भौतिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा मनोवैज्ञानिक, हमें संबंधित आंकड़े उपलब्ध कराने ही पड़ते हैं। सुविधा की दृष्टि से उपलब्ध आंकड़ों को हम चार स्तरों के अंतर्गत रखते हैं। ये चारों स्तर एक निश्चित क्रम में रखे जाते हैं। जो स्तर जितना निम्न होता है, उसका मापन तो उतना ही सरल होता है लेकिन उसके द्वारा किए गए मापन में हमारे निष्कर्षों की शुद्धता उतनी ही संदेहास्पद होगी। इसके विपरीत स्तर जितना उच्च होता है, उसका मापन उतना ही अधिक जटिल होता है लेकिन उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष अधिक परिशुद्ध होंगे। इस प्रकार, मापन की परिशुद्धता उसके स्तर पर निर्भर करती है। बहुधा, मापन प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्तियों, वस्तुओं, घटनाओं, निरीक्षणों अथवा विशेषताओं को अंकात्मक रूप प्रदान किया जाता है। फलतः प्रत्येक मापन का एक ही उद्देश्य होता है तथा उसके नियम, सिद्धांत, विशेषताएं, सीमाएं एवं सांख्यिकीय विधियां, दूसरे स्तर से पूर्णतया भिन्न होते हैं।

मापन के मुख्य रूप से निम्न चार स्तर होते हैं–

1. शाब्दिक स्तर (Nominal Scale)
2. क्रमिक स्तर (Ordinal Scale) ,
3. अंतराल स्तर (Interval Scale)
4. अनुपात स्तर (Ratio Scale)

शाब्दिक अथवा नामित स्तर

यह मापन का सबसे निम्न स्तर होता है। कुछ लोग इसे वर्गीकरण स्तर (Classification Level) के नाम से भी पुकारते हैं। इस मापन में मापित वस्तुओं अथवा घटनाओं को उनके किन्हीं निश्चित गुणों के आधार पर अलग–अलग समूहों में रख दिया जाता है तथा उस समूह की पहचान के लिए उसे कोई अमुक नाम (Name), संख्या (Number) या चिह्न (Code) दे दिया जाता है। इस समूह की यह विशेषता होती है कि उस

समूह में सम्मिलित सभी तत्व (Elements) अथवा व्यक्ति आपस में तो समान होंगे, लेकिन किसी दूसरे समूह की तुलना में बिल्कुल भिन्न होंगे। समूह की इस विशेषता को हम आंतरिक समजातीयता (Internal Homogeneity) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर, पाकिस्तान और भारत की हॉकी टीम की पहचान के लिए उन्हें अलग–अलग रंग की ड्रेस प्रदान की जाएगी तथा उन पर P तथा I संकेत लिख दिया जाएगा। इसी प्रकार, स्त्रियों तथा पुरुषों, गोरे एवं कालों, शहरी एवं देहाती लोगों में अंतर स्पष्ट करने के लिए उन्हें अलग–अलग वर्गों में रखा जाएगा। इसी प्रकार, डाक वितरण के लिए पिन कोड देना, किसी बड़े महानगर को जोन्स में विभक्त करना, जैसे–नई दिल्ली–110001, 110009, 65,81 आदि, रेलवे डिविजन को संकेत चिह्न प्रदान करना, बैंकों को संकेत चिह्न देना जैसे, बैंक ऑफ इंडिया–3, द न्यू बैंक ऑफ इंडिया–7, कैनरा बैंक–4, सिंडिकेट बैंक–5 आदि, विभिन्न प्रकार के फलों को कोड देना, क्रिकेट खिलाड़ियों को नंबर प्रदान करना आदि। विभिन्न प्रकार के वर्गीकरणों में मापन के इस स्तर का प्रयोग किया जाता है। शोध की दृष्टि से यह स्तर महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि इसमें गणना या गिनती करने के अलावा किसी प्रकार की सांख्यिकीय प्रविधि का प्रयोग नहीं किया जाता है।

क्रमिक स्तर

पैमाने के क्रम में क्रमिक स्तर नीचे से ऊपर की ओर द्वितीय क्रमांक पर आता है। इस पैमाने में वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं, विशेषताओं अथवा प्रतिक्रियाओं को किसी गुण के आधार पर एक क्रम (Hierarchical Order) में आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम में व्यवस्थित कर लिया जाता है। इसके पश्चात उसे श्रेणी (Rank) प्रदान की जाती है। अंकों के आधार पर विद्यार्थियों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय क्रमांक प्रदान करना, योग्यता एवं अनुभव के आधार पर नौकरी में प्राथमिकता प्रदान करना, खिलाड़ियों के श्रेष्ठ प्रदर्शन के आधार पर उन्हें ट्रॉफी प्रदान करना, सुंदरता के आधार पर मिस इंडिया या मिस एशिया का चयन करना, सर्वश्रेष्ठ उद्योगपति का चयन करना, कॉलेज में प्रोक्टोरियल बोर्ड के गठन के लिए प्राध्यापकों का चयन करके उनकी प्रशासनिक सफलता को क्रम प्रदान करना, रुचि एवं स्वाद के आधार पर फलों की रुचि को क्रम देना आदि कुछ इस पैमाने के उदाहरण हैं। इस मापन में क्रम प्रदान करने के लिए हम प्रायः निम्न दो विधियों का प्रयोग करते हैं–1. पंक्ति क्रम विधि तथा 2. युग्म तुलना विधि। प्रथम विधि अत्यंत सरल है। इसमें मात्र वस्तुओं को उनके कोटि क्रम के अनुसार क्रमबद्ध कर लिया जाता है, जैसे–भारतीय क्रिकेट टीम के कुछ खिलाड़ियों का क्रम उनके श्रेष्ठ प्रदर्शन के आधार पर इस प्रकार से किया जाता है– गावस्कर, कपिल देव, रवि शास्त्री, मोहिन्दर अमरनाथ, वेंगसरकर, श्रीकांत, अजहरुद्दीन, शिवारामकृष्णन, गोपाल शर्मा व मनिंदर सिंह। दूसरी विधि में समूह के समस्त सदस्यों की तुलना जोड़ों में की जाती है। समूह में जोड़ों की संख्या निर्धारित करने के लिए अग्रलिखित सूत्र प्रयोग में लाया जाता है–

$$nc_2 = n \times \frac{n-1}{2}$$

जहां, nc_2 = कुल जोड़ों की संख्या

तथा n = समूह में कुल सदस्यों की संख्या

टिप्पणी

यद्यपि, इस पैमाने का प्रयोग, शाब्दिक पैमाने की तुलना में बहुत अधिक वैध एवं विश्वसनीय नहीं माना जाता। इस पैमाने में सांख्यिकीय प्रविधियों, जैसे—मध्यांक, शतांशीय मान सह—संबंध, गुणक (r) के प्रयोग की संभावना रहते हुए भी यह पैमाना दो व्यक्तियों के मध्य अंतर तो बताता है लेकिन इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि उन व्यक्तियों के मध्य वास्तविक अंतर कितना है। यही इस पैमाने की प्रमुख सीमा है।

अंतराल स्तर

यह मापन का तृतीय स्तर है। इसमें उपरोक्त दोनों स्तरों की कमियों को दूर करने का प्रयास किया गया है। इस पैमाने के अंतर्गत हम किन्हीं दो वर्गों, व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के मध्य अंतर को अंकों के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। प्रत्येक अंतर की दूरी समान होती है। यद्यपि इस पैमाने में कोई परिशुद्ध बिंदु नहीं होता, जिसके आधार पर यह ज्ञात किया जा सके कि कोई भी अंक इस आधार पर शून्य से कितनी दूर है। फिर भी सम दूरी पर व्यवस्थित अंकों को ही हम इस पैमाने की स्थिर इकाई मानते हैं। वास्तविक शून्य बिंदु का न होना ही इस पैमाने का प्रमुख दोष है, जिसके कारण इस पैमाने के द्वारा किया गया मापन सापेक्ष होता है न कि निरपेक्ष। अर्थात यदि कोई छात्र किसी उपलब्धि परीक्षण में शून्य अंक प्राप्त करता है तो इससे हमें यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकालना चाहिए कि उस छात्र को उस विषय का ज्ञान बिल्कुल नहीं है। थर्मामीटर, घंटा, मिनट, सप्ताह, महीना, वर्ष आदि इस पैमाने के उदाहरण हैं। थर्मामीटर से मनुष्य का तापक्रम देखने पर 98.4 सामान्य माना जाता है लेकिन यदि किन्हीं कारणों से एक व्यक्ति का तापक्रम देखने पर 97 आता है, तो जहां एक ओर यह दर्शाता है कि उस अमुक व्यक्ति को बुखार नहीं है, वहीं हमें यह अंदाजा नहीं लगाना चाहिए कि उस व्यक्ति के शरीर में गर्मी है ही नहीं। थर्मामीटर इस पैमाने का सबसे उपयुक्त उदाहरण है। इस पैमाने के अंतर्गत अनेक प्रकार की सांख्यिकीय गणनाओं, जैसे—माध्य, शतांशीय मान तथा मानक विचलन आदि के प्रयोग की संभावना रहती है।

अनुपात स्तर

यह मापन का सर्वोच्च स्तर है। इस मापन में उपरोक्त सभी पैमानों की विशेषताएं विद्यमान हैं। वास्तविक शून्य बिंदु का विद्यमान होना, इस स्तर की प्रमुख विशेषता है। यह शून्य बिंदु कोई कल्पित बिंदु नहीं होता बल्कि, इसका अर्थ किसी शील—गुण अथवा विशेषता की शून्य मात्रा से होता है। भौतिक मापन में हमेशा निरपेक्ष शून्य बिंदु पाया जाता है, जैसे—मीटर, किलोमीटर, ग्राम, लीटर, मिलीमीटर आदि। लंबाई, भार या दूरी मापने के लिए हम शून्य बिंदु से ही प्रारंभ करते हैं। अनुपात पैमाने में वास्तविक शून्य बिंदु को ही पैमाने का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। इसी कारण, हम दो स्थानों के बीच दूरी का अनुपात पता लगा लेते हैं तथा निश्चित तौर से कह सकते हैं कि अमुक स्थान की तुलना में दूसरा स्थान कितना अधिक दूर है। इसी प्रकार, यदि किसी गुण के

आधार पर आशा, शांति तथा विभा को 10,20 तथा 40 अंक प्रदान किए जाते हैं तो इस पैमाने के अनुसार हम कहेंगे कि जो गुण आशा में जिस मात्रा में विद्यमान है, शांति में उससे दोगुनी मात्रा में है तथा विभा में चार गुना अधिक मात्रा में है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पैमाने की प्रत्येक इकाई की दी गयी संख्या, मापित शील–गुण की विभिन्न मात्राओं के मध्य अनुपात को स्पष्ट करती है। इस पैमाने में गणित की सभी मूलभूत प्रक्रियाओं के प्रयोग की प्रबल संभावना रहती है।

मापन की सीमाएं

मापन की कुछ सीमाएं भी हैं, जो निम्न हैं–

1. मापन की सबसे बड़ी सीमा यह है कि जिस वस्तु का मापन हमें करना होता है, उसी के स्वरूप का निर्णय हम ठीक प्रकार से नहीं कर पाते। यही कारण है कि शैक्षिक मापन का स्तर, भौतिक मापन की अपेक्षा निम्न स्तर का माना जाता है।
2. मापन का क्षेत्र अत्यंत संकुचित एवं सीमित होता है।
3. मापन दो ऐसे शील–गुणों के मध्य विभेद स्पष्ट नहीं कर पाता, जो लगभग एक जैसे होते हैं, जैसे–शैक्षणिक अभिरुचि तथा सामान्य बुद्धि, चरित्र एवं व्यक्तित्व, निष्पादन एवं अभियोग्यता आदि। परिणामस्वरूप, शैक्षणिक मापन निम्न स्तर का रहता है।
4. मापन का रूप व्यवस्थित होता है, अतएव इसकी प्रक्रिया भी जटिल होती है।
5. मापन के अंतर्गत हम जिन शील–गुणों का मापन करते हैं, वे अमूर्त एवं सूक्ष्म होते हैं। यही नहीं, उनका आशय भी विभिन्न वर्गों के लिए भिन्न होता है, उदाहरणार्थ–व्यक्तित्व शब्द का अर्थ शिक्षक, मनोचिकित्सक, मार्ग–निर्देशक, लोक सेवा आयोग के सदस्य अपने–अपने दृष्टिकोणों से अलग–अलग लगाते हैं। फलतः मापन उतना ठीक नहीं होता जितना कि भौतिक मापन होता है।
6. मापन के द्वारा हमें किसी व्यक्ति या प्रक्रिया के बारे में मात्र सूचनाएं मिलती हैं, यह कोई निर्णय प्रदान नहीं करता।
7. मापन के अंतर्गत मापी जाने वाली विशेषताओं का अभौतिक, अस्थिर तथा परिवर्तनशील होना, मापन की प्रमुख सीमा है। अधिकांश शील–गुण व्यक्ति के व्यवहार से संबंधित होते हैं। उदाहरणार्थ, व्यक्तित्व क्या है? यह वह तरीका है, जिसमें व्यक्ति अपने आचरण का प्रदर्शन करता है। बुद्धि क्या है? हम उस व्यक्ति को बुद्धिमान कहते हैं, जिसका व्यवहार जटिल एवं नवीन परिस्थितियों में भी संतोषजनक पाया जाता है। इस प्रकार शैक्षिक मापन में मापी जाने वाली सभी विशेषताएं व्यवहारात्मक ही होती हैं। व्यक्ति का आचरण चूंकि प्रतिक्षण बदलता रहता है इसलिए व्यवहारात्मक विशेषताएं स्थिर न होने के कारण कठिनाई से ही मापी जाती हैं।

टिप्पणी

8. शैक्षिक विशेषताओं की विमाएं ज्ञात न होने से मापन उतना शुद्ध नहीं हो पाता, जितना कि भौतिक मापन होता है। बुद्धि अथवा व्यक्तित्व की विमाएं क्या हैं? निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इन्हीं सब कारणों से शैक्षिक मापन उतना शुद्ध नहीं होता है। फिर भी, इन सीमाओं के होते हुए मापन–क्रिया का व्यावहारिक जीवन में महत्वपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जा रहा है तथा आज का युग मापन के युग से जाना जाता है।

4.2.3 प्रतिशत की गणना

गणित में किसी अनुपात को व्यक्त करने का एक तरीका प्रतिशत है। प्रतिशत का अर्थ है प्रति सौ या प्रति सैकड़ा। दूसरे शब्दों में प्रतिशत उन अनुपातों या समानुपातों को कहते हैं जिनका आधार 100 होता है। 100 को आधार मानकर किसी तथ्य को प्रकट करने के लिए प्राप्त संख्या प्रतिशत कहलाती है। प्रतिशत को संकेत के रूप में % व्यक्त कर सकते हैं। भिन्न का अंश प्रतिशत की दर कहलाता है।

उदाहरण के लिए $\frac{3}{4}$ तथा $\frac{2}{3}$ को प्रतिशत में बदलिए।

हल : $\frac{3}{4} = \frac{3}{4} \times 100\%$

$= 75\%$

$\frac{2}{3} = \frac{2}{3} \times 100\%$

$= 66\frac{2}{3}\%$

उदाहरण : 5 : 10 को प्रतिशत में बदलिए

$\frac{5}{10} = \left(\frac{5}{10} \times 100\right)\%$

$= 50\%$

उदाहरण : 0.75 को प्रतिशत में बदलिए

हल : $0.75 = \frac{75}{100}$

$= \frac{75}{100} \times 100 = 75\%$

उदाहरण : 250 रु. का 30% ज्ञात कीजिए

हल : 250 रु. का $30\% = 250 \times 30\%$

$$= 250 \times \frac{30}{100} = 75\%$$

उदाहरण : राम ने दसवीं की परीक्षा में 80% अंक हासिल किए। यदि परीक्षा का पूर्णांक 500 था तो राम को कितने अंक प्राप्त हुए।

हल : राम को प्राप्त अंक = 500 का 80%

$$= 500 \times \frac{80}{100} = 400$$

4.2.4 आंकड़ों का समूहीकरण और प्रस्तुतीकरण

समंकों या आंकड़ों को एकत्रित अथवा संगृहीत करना समंक संकलन या समूहीकरण कहलाता है। शोधकर्ता को अपना शोध पूरा करने के लिए तथ्यों का संकलन वैज्ञानिक पद्धति से करना होता है क्योंकि शोधकर्ता द्वारा संकलित किए गए समंक जितने अधिक शुद्ध एवं विश्वसनीय होंगे, शोध उतना ही अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी निष्कर्ष देता है। इस दृष्टिकोण से प्रत्येक शोधकर्ता न केवल अनेक प्रविधियों और उपकरणों की सहायता से विभिन्न प्रकार के तथ्यों को एकत्रित करता है बल्कि उन स्रोतों और प्रविधियों को भी जानने का प्रयत्न करता है जिनके द्वारा उपयोगी तथ्यों को एकत्रित किया जा सके। गुडे एवं हाट के मतानुसार सामग्री संकलन की प्रविधियों के अंतर्गत उन विशिष्ट प्रविधियों या तरीकों को सम्मलित किया जा सकता है जिनके द्वारा शोधकर्ता अपने तथ्यों को तार्किक एवं सांख्यिकीय विश्लेषण से पूर्व एकत्रित एवं व्यवस्थित करता है। सांख्यिकी संकलन में कई प्रविधियां प्रचलित हैं तथा प्रत्येक प्रविधि का तथ्यों के एकत्रीकरण का एक स्वीकृत एवं मान्य तरीका है।

समंक के संकलन का स्रोत जितना विश्वसनीय और सरल होगा संकलित सामग्री भी उतनी ही अधिक प्रमाणिक बन जाती है। वास्तव में तथ्यों अथवा समंक के संकलन में बहुत से स्रोतों का उपयोग किया जाता है। पी.वी. यंग ने इन स्रोतों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है-

1. **प्रलेखीय या दस्तावेजीय स्रोत :** प्रलेखीय स्रोतों के अंतर्गत प्रकाशित और अप्रकाशित प्रतिवेदन, प्रलेख, पांडुलिपि, सांख्यिकी, डायरियां, पत्र आदि को शामिल किया जाता है।
2. **क्षेत्रीय स्रोत :** क्षेत्रीय स्रोत के तहत उन जीवित व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है जिन्हें लंबी अवधि के दौरान सामाजिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तनों के विषय में पर्याप्त ज्ञान होता है एवं जिनका सामाजिक परिस्थितियों से घनिष्ठ संपर्क रह चुका होता है। ये व्यक्ति, वर्तमान परिस्थितियों के साथ-साथ अवलोकन, योग्य एवं महत्वपूर्ण घटनाओं का समुचित वर्णन करने की भी क्षमता रखते हैं।

जार्ज लुंडबर्ग ने समंक को प्राप्त करने के दो मुख्य स्रोतों का वर्णन किया है-

(क) **ऐतिहासिक स्रोत :** ऐतिहासिक स्रोत के अंतर्गत कागजात, प्रलेख, शिलालेख, खुदाई से प्राप्त वस्तुएं, भूतत्वीय स्रोत आदि को शामिल किया जाता है।

(ख) **क्षेत्रीय स्रोत :** क्षेत्रीय स्रोतों के अंतर्गत जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विशिष्ट सूचनाएं, क्रियाशील व्यवहारों का प्रत्यक्ष निरीक्षण आदि को शामिल किया जाता है। इसमें शोधकर्ता द्वारा स्वयं किए गए अवलोकन को भी सम्मिलित किया जाता है।

प्रो. बोगले के मतानुसार समंक के संकलन के दो प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं-

(क) **प्राथमिक स्रोत :** इसके अंतर्गत समस्या से जुड़े व्यक्ति व प्रत्यक्ष निरीक्षण आते हैं।

(ख) **द्वितीयक स्रोत :** इसके अंतर्गत सरकारी व गैर-सरकारी (मानक) संस्थाओं या अप्रकाशित प्रलेखों इत्यादि को शामिल किया जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्त लेखकों और विद्वानों ने अप्रत्यक्ष रूप से समंक के संकलन के स्रोतों में प्राथमिक और द्वितीयक स्रोत की विशेषताओं का ही उल्लेख किया है।

समंक संकलन के स्रोत के उक्त प्रकारों व उपप्रकारों को निम्न चार्ट से आसानी से समझा जा सकता है-

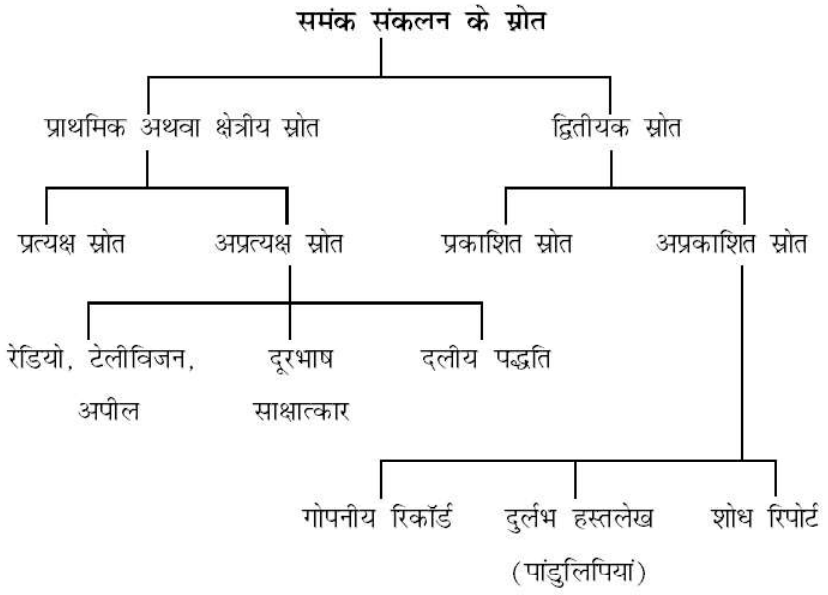

प्राथमिक स्रोत

ये वे स्रोत हैं जिनसे शोधकर्ता स्वयं पहली बार तथ्यों या विभिन्न सूचनाओं को एकत्रित करता है। पीटर मान ने प्राथमिक स्रोत के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं, जो प्राथमिक स्तर पर हमें विभिन्न प्रकार की आधार सामग्री प्रदान करते हैं।" दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि ये तथ्यों को संकलित करने वाले लोगों द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री का मौलिक स्वरूप होते हैं।

पी.वी. यंग का कथन है कि प्राथमिक स्रोत वे स्रोत हैं जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों या समंक के संकलन में सहायक होते हैं। इन्होंने समंक के प्राथमिक स्रोतों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया है-1. प्रत्यक्ष स्रोत तथा 2. अप्रत्यक्ष स्रोत।

1. **प्रत्यक्ष स्रोत :** समंक के संकलन के प्रत्यक्ष स्रोत ऐसे स्रोत होते हैं जिनमें शोधकर्ता या तो मूर्त घटनाओं को स्वयं अपने सम्मुख घटित होते हुए देखता है अथवा स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर अवलोकन के द्वारा विषय से संबंधित जानकारी को अवलोकित एवं एकत्रित करता है।
2. **अप्रत्यक्ष स्रोत :** अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत शोधकर्ता अध्ययन क्षेत्र में जाए बिना अथवा सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष संपर्क के बिना ही तथ्यों का संकलन करता है। अप्रत्यक्ष स्रोतों में मुख्य रूप से प्रश्नावलियां, फोन पैनल पद्धति, साक्षात्कार, रेडियो अपील आदि शामिल होते हैं।

मेलड्रिड पार्टिन ने अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत तीन साधनों का उल्लेख किया है-

(क) रेडियो या टेलीविजन अपील

(ख) दूरभाष साक्षात्कार

(ग) दलीय पद्धति या प्रतिनिधि पद्धति

(क) **रेडियो या टेलीविजन अपील :** रेडियो या टेलीविजन के माध्यम से की गई अपील को सूचना और प्रसारण का एक अच्छा साधान माना गया है। इनके द्वारा नियमित रूप से अथवा किन्हीं विशेष अवसरों पर विभिन्न कार्यक्रमों का प्रसारण करके श्रोताओं से यह अपील की जाती है कि वे उससे संबंधित अपने विचारों अथवा प्रतिक्रियाओं को अमुक पते पर भेज दें। उदाहरण के लिए, वॉयस ऑफ अमेरिका, ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कॉरपोरेशन (B.B.C), रेडियो सीलोन तथा विविध भारती आदि अनेक ऐसी प्रसारण सेवाएं संगठन हैं जिनके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था श्रोताओं को एक विशेष जानकारी देकर तथ्यों को संकलित कर सकती है। हालांकि यह स्रोत पूर्ण विश्वसनीय नहीं होता है क्योंकि श्रोता द्वारा भेजी गई अपनी राय या टिप्पणी में अनेक अनुपयोगी बातें भी होती हैं। फिर भी इससे बहुत कम समय और कम व्यय में ही विषय से संबंधित तथ्य प्राप्त हो जाते हैं।

(ख) **दूरभाष साक्षात्कार :** दूरभाष साक्षात्कार का यह नवीन अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत वर्तमान समय में बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ है। इसमें शोधकर्ता केवल, दूरभाष (टेलीफोन) के माध्यम से सूचनादाताओं से संपर्क स्थापित करता है। इस स्रोत के द्वारा भी तुलनात्मक रूप से कम समय में बहुत अधिक व्यक्तियों से सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। इससे प्राप्त सूचनाओं की प्रमाणिकता अकसर संदेहपूर्ण होती है क्योंकि ये सूचनाएं लिखित रूप में नहीं होतीं तथा सूचनादाता की मन:स्थिति का ज्ञान शोधकर्ता को नहीं होता है। फिर भी यह स्रोत शोधकर्ता द्वारा क्षेत्रीय भ्रमण तथा व्यक्तिगत स्तर पर विभिन्न व्यक्तियों से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने की अपेक्षा अधिक सरल माना जाता है।

(ग) **दलीय या प्रतिनिधि पद्धति :** व्यावहारिक रूप से अधिकांश अविकसित समाजों में रेडियो, टेलीविजन तथा टेलीफोन की सुविधा इतनी कम होती है कि इनकी सहायता से कोई विशेष अध्ययन कर सकना बहुत कठिन होता है। इसके अलावा यदि अध्ययन का क्षेत्र बहुत बड़ा हो तो दलीय या प्रतिनिधि पद्धति के

टिप्पणी

द्वारा समंक या तथ्यों का संकलन आसानी से किया जा सकता है। इसके अंतर्गत एक बड़े समूह में से कुछ विशेष व्यक्तियों अथवा सूचना देने वाले सूचनादाताओं के दल स्थापित किए जाते हैं जो शोधकर्ता को उस वर्ग की जनता के रुख, वैचारिक स्तर तथा रुचियों, भावनाओं की सूचना प्रदान करते हैं। इसके लिए ऐसे व्यक्तियों या दलों का चयन किया जाता है जो या तो अपने समूह का प्रतिनिधित्व करते हैं अथवा उन्हें अपने समूह के लोगों की मनोवृत्तियों और रुचियों का काफी ज्ञान होता है। परिवर्तनशील दशाओं से संबंधित तथ्यों का संकलन करने के लिए यह स्रोत बहुत प्रामाणिक और महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

द्वितीयक स्रोत

प्राथमिक स्रोत के ठीक विपरीत द्वितीयक स्रोत होते हैं। किसी भी सांख्यिकी शोध में द्वितीयक स्रोतों का उतना ही महत्व होता है, जितना कि समंकों अथवा तथ्यों के संकलन में प्राथमिक स्रोतों का। इसे स्पष्ट करते हुए जी.ए. लुंडबर्ग ने लिखा है कि सामान्यत: शोधकर्ता प्राथमिक स्रोतों पर ही अपनी शोध सामग्री के लिए निर्भर नहीं रहते बल्कि द्वितीयक स्रोत भी उसे मूल्यवान, महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य समंक प्रदान करने तथा उसके शोध के अधूरे कार्य को पूरा करने में सहायक होते हैं। द्वितीयक स्रोत सामान्यत: उन्हें कहा जाता है, जो प्रकाशित या अप्रकाशित या पहले से प्रस्तुत की गई लिखित सामग्री का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं जिसके द्वारा शोधकर्ता को अपने विषय से संबंधित कई महत्वपूर्ण सूचनाएं, समंक या तथ्य इत्यादि प्राप्त हो जाते हैं। इन समंकों को प्राप्त करने में समय और श्रम की भी बचत होती है। इनके प्रमुख स्रोत निम्न हैं-

1. **प्रकाशित स्रोत :** किसी व्यक्ति, संस्था, राष्ट्र या अंतर्राष्ट्रीय संगठन द्वारा प्रकाशित किए गए संकलित समंकों को द्वितीयक प्रकाशित स्रोत कहते हैं। इनके द्वारा केवल उन्हीं प्रलेखों को प्रकाशित किया जाता है जो आम जनता द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। ये सार्वजनिक स्थानों, जैसे - सार्वजनिक वाचनालयों, विद्यालयों व महाविद्यालयों के पुस्तकालयों में उपलब्ध हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा प्रकाशित विभिन्न जिलों के गजेटियर्स तथा सांख्यिकीय बुलेटिन आदि भी सूचनाएं प्राप्त करने के प्रमुख द्वितीयक स्रोत हैं। ये सभी प्रकाशित सार्वजनिक प्रलेख सामाजिक शोध के लिए न केवल मार्ग निर्देशन का कार्य करते हैं बल्कि इनसे प्राप्त तथ्य के आधार पर प्राथमिक तथ्य का विश्लेषण करना भी संभव हो जाता है।
2. **अप्रकाशित स्रोत :** इनके अंतर्गत ऐसे सभी समंक या तथ्य सूचनाएं आते हैं जो सार्वजनिक होते हुए भी किसी विवशता, आर्थिक कठिनाइयों अथवा वैयक्तिक कारणों से प्रकाशित नहीं हो पाते। ऐसे तथ्यों को प्राप्त करना एवं उनका उपयोग करना तुलनात्मक रूप से कुछ कठिन होता है लेकिन सामाजिक शोध में इनकी उपयोगिता बहुत अधिक होती है। अप्रकाशित प्रलेखों के स्रोत (समंक संग्रह करने में) निम्न प्रकार से हैं-

(क) **गोपनीय रिकॉर्ड :** ये रिकॉर्ड सार्वजनिक होते हुए भी प्रकाशित नहीं किए जाते। जनहित, सुरक्षा व्यवस्था व राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए इनको प्रकाशित नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, न्यायालयों के

रिकॉर्ड, सैनिक दफ्तरों के रिकॉर्ड, बोर्ड तथा विश्वविद्यालयों के परीक्षा संबंधी रिकॉर्ड, विभिन्न कंपनियों व बैंकों के रिकॉर्ड जो गोपनीय होते हैं, उन्हें प्रकाशित नहीं किया जाता है। इनसे संबंधित सूचना तभी प्राप्त की जा सकती है जब उक्त संस्था के अधिकारी को यह विश्वास हो जाता है कि प्राप्त सूचना का उद्देश्य मात्र शोध कार्य के लिए है।

(ख) **दुर्लभ हस्तलेख या पांडुलिपियां :** ये अप्रकाशित पांडुलिपियां अनेक विद्वानों, विचारकों, स्थानीय समाज सुधारकों, लेखकों, नेताओं व प्रतिभाशाली साहित्यकारों द्वारा लिखी गई होती हैं, परंतु किन्हीं विशेष कारणों से इनका प्रकाशन नहीं हो पाता। स्थानीय घटनाओं, सांस्कृतिक विशेषताओं तथा किसी विशेष घटना से संबंधित अनेक पांडुलिपियां कुछ व्यक्तियों के पास भी सुरक्षित होती हैं। कई हस्तलेख विभिन्न संग्रहालयों में पाए जाते हैं जिनका प्रयोग शोध के संबंध में सूचना प्राप्त करने में किया जाता है।

(ग) **शोध रिपोर्ट :** सांख्यिकी शोध के द्वितीयक स्रोत में शोध विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट अथवा शोध प्रबंध भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इसमें शोधकर्ता किसी विषय से संबंधित पक्षों को अत्यधिक गहन अध्ययन करके महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में लाता है लेकिन इनमें से अधिकांश शोध रिपोर्ट से भी शोधकर्ता को अपने विषय संबंधित शोध में महत्वपूर्ण जानकारी या तथ्य प्राप्त हो सकते हैं। उपरोक्त से स्पष्ट शोध में द्वितीयक सामग्री का उपयोग केवल एक पूरक तथ्य के रूप में किया जाना चाहिए आधारभूत तथ्यों के रूप में नहीं।

समंक संकलन के द्वितीयक स्रोत चाहे व्यक्तिगत हों अथवा सार्वजनिक, प्रकाशित हों अथवा अप्रकाशित, सामाजिक शोध में इनका प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस संदर्भ में डॉ. बाउले का कथन है कि "प्रकाशित समंक अथवा तथ्यों को उनके अर्थ और सीमाओं को समझे बिना ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना एक जोखिम भरा कार्य है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि ऐसी सूचनाओं या तथ्यों पर आधारित तर्कों की सावधानी पूर्वक समालोचना कर ली जाए।"

• आंकड़ों या समंकों का प्रस्तुतीकरण

सांख्यिकीय अनुसंधान द्वारा संकलित समंक और तथ्य मौलिक रूप में इतने जटिल एवं अव्यवस्थित होते हैं कि उन्हें सरलता से समझना और उनकी विशेषताओं को ज्ञात करके उचित व सर्कसंगत निष्कर्ष निकालना असंभव होता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि इन समंकों को इस प्रकार सरल रूप में प्रस्तुत किया जाए कि शोधकर्ता उनका विश्लेषण करके आसानी से निष्कर्ष निकाल सके। इस प्रकार एक शोधकर्ता तथ्यों को प्रक्रियाकरण के द्वारा व्यवस्थित क्रम में रखकर उनका विवेचन करता है। इस कार्य के लिए समंकों को अनेक प्रकार के वर्गों में सारणियों द्वारा क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसको वर्गीकरण तथा सारणीयन कहते हैं।

प्रो. ए. आर. इलर्जिक के अनुसार, "शोधकर्ता का प्रथम कार्य विवरणों को इस प्रकार सरल व संक्षिप्त करना होता है कि समंकों की कुल विशेषताएं स्पष्ट रूप से ज्ञात हो सकें तथा साथ ही संकलित सामग्री का निर्वचन भी सुविधाजनक हो जाए। यह प्रक्रिया समंक का वर्गीकरण तथा सारणीकरण कहलाती है।"

टिप्पणी

शोधकर्ता द्वारा संकलित समंकों को सरल, सुबोध, व्यवस्थित और संक्षिप्त रूप प्रदान करने हेतु उनका प्रस्तुतीकरण, वर्गीकरण, सारणीयन, टेबुलेशन और चित्रमय तथा बिंदुरेखीय प्रदर्शन किया जाता है। इस संबंध में जे.आर. हिक्स का कथन महत्वपूर्ण है, "वर्गीकृत एवं क्रमबद्ध तथ्य अपने आप बोलते हैं, अव्यवस्थित रूप में वे मृत समान होते हैं।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि समंकों का प्रक्रियाकरण एवं विश्लेषण एक मूलभूत आवश्यकता है जिसके बिना शोधकार्य संपूर्ण नहीं माना जा सकता है।

समंकों का सारणीयन

समंक का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण सांख्यिकीय रीतियों का एक महत्वपूर्ण अंग है और इस रीति से सांख्यकीय सारणियों की संरचना की जाती है। सारणीयन की सहायता से ही प्राप्त समंक को सरल, संक्षिप्त एवं बोधगम्य बनाया जाता है। अतः समंक का सारणीयन आवश्यक होता है। सारणीयन की अनिवार्यता के संबंध में क्राक्सटन एवं काउडेन का विचार है, "या तो अपने प्रयोग के लिए या अन्य व्यक्तियों के प्रयोग के लिए समंक किसी उपर्युक्त रूप में ही प्रस्तुत किए जाने चाहिए।" अत्यंत सरल तथा साधारण शब्दों में सारणीयन का अर्थ प्राप्त समंक को विविध स्तंभों एवं पंक्तियों में व्यवस्थित करके उन्हें क्रमिक रूप में प्रस्तुत करना है। अर्थात सारणीयन का अभिप्राय तालिका या सारणी बनाने से है। इस प्रकार सारणीयन एक ऐसी क्रिया है जिसके अंतर्गत वर्गीकृत तथ्यों को सरल, संक्षिप्त, क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित करने के लिए उन्हें विभिन्न सारणियों में प्रस्तुत किया जाता है।

सारणीयन की परिभाषाएं

अनेक विद्वानों ने सारणीयन को अपने-अपने शब्दों में निम्न प्रकार से परिभाषित किया है। डॉ. ए.एल. बाउले के अनुसार, "सारणीयन वह सांख्यिकीय प्रक्रिया है जो उपलब्ध संकलित समंक से आखिरी तर्क संगत निष्कर्ष निकालने के लिए की जाती है।"

एल.आर. कॉनर के अनुसार, "सारणीयन किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से संख्यात्मक तथ्यों को क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की विधि है।"

श्री एम.एम. ब्लेयर के अनुसार, "सबसे विस्तृत अर्थ में समंक के खानों और पंक्तियों में क्रमबद्ध व्यवस्था को सारणीयन कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सारणीयन एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे वर्गीकृत समंक को इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है कि उसकी विशेषताएं तथा लक्षण स्पष्ट हो जाएं।

सारणीयन के उद्देश्य

सारणीयन के उद्देश्य अथवा कार्य निम्नलिखित हैं-

1. **सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण:** सारणीयन का प्रमुख उद्देश्य वर्गीकृत समंक को सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करना है।

2. **आंकड़ों का सरल, संक्षिप्त एवं स्पष्ट रूप :** सारणीयन का उद्देश्य संकलित समंक की विशेषताओं को बहुत सरल और संक्षिप्त रूप में स्पष्ट करना है।
3. **तथ्यों को तुलनीय बनाना :** सारणीयन की सहायता से समंक को इस प्रकार खानों या पंक्तियों में व्यवस्थित किया जाता है जिससे तथ्यों की सरलता से तुलना की जा सके।
4. **न्यूनतम स्थान में तथ्यों का प्रस्तुतीकरण :** सारणीयन का उद्देश्य समंक को न्यूनतम स्थान में क्रमबद्ध तथा सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना होता है।
5. **आंकड़ों को अधिकाधिक उपयोगी बनाना :** सारणीयन द्वारा समंक को इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि उसे अधिकाधिक उपयोगी बनाया जा सके।
6. **आंकड़ों में एकता प्रकट करना :** सारणीयन समूह की इकाइयों की विभिन्नता में सम्मिलित एकता को प्रकट करता है।

सारणीयन के प्रमुख भाग

एक सारणी के प्रमुख भाग निम्न होते हैं-

1. **सारणी नंबर या संख्या :** सारणी को बनाते समय सर्वप्रथम सबसे ऊपर या मध्य में उसका नंबर दिया जाता है। सारणी संख्या या नंबर एक संदर्भ का कार्य करता है। इससे सारणी को ढूंढ़ने में सुविधा रहती है।
2. **सारणी का शीर्षक :** सारणी संख्या अंकित करने के पश्चात उसके नीचे ही सारणी का शीर्षक देना आवश्यक होता है। शीर्षक छोटा, सरल, प्रभावपूर्ण एवं स्पष्ट होना चाहिए। शीर्षक से निम्न बातें स्पष्ट होनी चाहिए-
   - आंकड़े या समंक किस समय के हैं।
   - आंकड़े किससे संबंधित हैं।
   - आंकड़े कहां के हैं?
3. **उपशीर्षक :** सारणी अनेक छोटे-बड़े स्तंभों या खानों में विभक्त होती है। इन स्तंभों को दिये गए शीर्षक या नाम उपशीर्षक कहलाते हैं। ये छोटे से छोटे एवं प्रभावपूर्ण होने चाहिए।
4. **सारणी का आकार :** सारणी का महत्व उसके उचित आकार से है। इसका आकार न तो बहुत विशाल हो और न ही बहुत छोटा हो। सारणी का आकार संतुलित होना चाहिए।
5. **पदों की व्यवस्था :** सारणी का आकार बना लेने के बाद विभिन्न पंक्तियों एवं खानों में समंकों को लिखा जाता है। समंकों से संबंधित सभी पदों को वर्णनात्मक, भौगोलिक, सामयिक अथवा आकार के आधार पर व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

टिप्पणी

6. **टिप्पणियां :** सारणी के अंत में उन समंकों अथवा उपशीर्षकों का स्पष्टीकरण दिया जा सकता है जो विशेष प्रकृति के हों। जैसे-किसी सारणी में, का चिह्न समंक के विशेष गुण को दर्शाता है कि यह आंकड़ा स्रोत में उपलब्ध नहीं है केवल अनुमानतः लिखा गया है।
7. **स्रोत :** सारणी में दिए गए आंकड़े प्राथमिक अथवा द्वितीय स्रोतों से प्राप्त किए गए हो सकते हैं। अतः सारणी के नीचे उस स्रोत अथवा संदर्भ का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है जहां से इस सूचना को प्राप्त किया गया है।

सांख्यिकीय सारणियों के प्रकार

सामान्यतः तीन प्रकार की सांख्यिकीय साराणियां प्रयोग में लाई जाती हैं–

1. **साधारण या एक गुणी सारणी :** इसमें समंक अथवा तथ्यों के एक गुण को दिखाया जाता है।

   उदाहरण-

आयु	श्रमिकों की संख्या

   इस तालिका में केवल एक चर (आयु) के आधार पर वर्गीकरण किया गया है।

2. **द्विपक्षीय अथवा द्विगुणीय सारणी :** ये वे सारणियां होती हैं जिनमें तथ्यों का वर्गीकरण दो चरों, गुणों अथवा लक्षणों के आधार पर होता है। शोधकर्ता इस स्थिति में दो चरों के वर्गीकरण द्वारा यह देखने का प्रयास करता है कि इन चरों में कोई संबंध है या नहीं। उदाहरण के लिए शिक्षा और व्यवसाय, आयु और श्रमिकों की संख्या के बीच सहसंबंध द्विपक्षीय सारणी में देखा जा सकता है।

   उदाहरण-

आयु	श्रमिकों की संख्या पुरुष/स्त्री	कुल

   द्विपक्षीय तालिकाएं सामाजिक अनुसंधान का महत्वपूर्ण अंग होती हैं, क्योंकि वे विषय का गहनता से अध्ययन करने और उसे समझने में मदद करती हैं।

3. **बहुपक्षीय अथवा बहुगुणीय :** जब सामाजिक शोधकर्ता जटिल संबंधों एवं परिस्थितियों का अध्ययन करना चाहता है और अध्ययन समस्या को अधिक गहराई से समझना चाहता है तब बहुपक्षीय या बहुगुणीय सारणी का निर्माण

किया जाता है। जैसे-आयु व श्रमिकों की संख्या के साथ लिंग जोड़कर तथा विभाग या संस्थान में विभिन्न पदों या स्तरों पर श्रमिक (स्त्री/पुरुष) को जोड़कर यह देखा जाए कि विभिन्न आयु वर्गों के पुरुषों और महिलाओं की स्थिति संस्थान में विभिन्न पदों या स्तरों पर कितनी है। तब उसे बहुगुणीय या बहुपक्षीय सारणी कहा जाएगा।

उदाहरण-

आयु	पद						कुल
	अधिकारी		क्लर्क		कुल		
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	

सारणियों के इन सभी प्रकारों से स्पष्ट होता है कि शोधकर्ता को जितने सरल अथवा विधिपूर्वक तथ्यों को प्रदर्शित करना होता है उन्हीं के अनुसार सारणी की संरचना का निर्माण किया जाता है। एक उत्तम सारणी के अंदर वैज्ञानिकता, आकर्षकता, समुचित आकार, तुलना की सुविधा, स्पष्टता तथा सरलता आदि गुणों का समावेश होना आवश्यक है। तथा सारणी का निर्माण लक्ष्य के अनुकूल होना चाहिए जिससे अध्ययन के उस उद्देश्य की पूर्ति हो सके, जिसके लिए सारणी को निर्मित करना जरूरी समझा गया है।

सारणीयन के लाभ

सारणीयन के निम्नलिखित लाभ हैं-

1. सारणीयन के द्वारा जटिल समंक समूह को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।
2. सारणीयन के द्वारा तथ्यों का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है।
3. सांख्यिकीय समंक को सारणीबद्ध करने से अशुद्धियों की जांच सरल हो जाती है।
4. आंकड़ों की पुनरावृति को रोका जा सकता है। यह समय, स्थान और धन की बचत करता है।
5. इसकी सहायता से दो या दो से अधिक श्रेणियों की तुलना आसान हो जाती है। सांख्यिकीय गणनाओं व विश्लेषण में भी सहायक हो जाता है।
6. आंकड़ों को सारणीबद्ध करने के पश्चात वे आवश्यकता पड़ने पर संदर्भ के रूप में सहायक होते हैं।
7. सारणीयन वर्गीकरण में भी सहायक होता है।
8. यह समंक को पहचान देता है।

टिप्पणी

सारणीयन की सीमाएं

सारणीयन की निम्न सीमाएं हैं-

- सारणियों के द्वारा तथ्यों को केवल संख्यात्मक रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।
- सारणियों को समझने के लिए अंकों का उचित ज्ञान होना आवश्यक है।
- सारणी द्वारा प्रदर्शित जटिल तथ्यों को साधारण व्यक्तियों द्वारा समझना कठिन कार्य होता है। अतः यह साधारण व्यक्तियों के लिए अधिक उपयोगी नहीं है।
- सारणीयन में सभी इकाइयों को समान रूप में माना जाता है। इसके द्वारा स्थिति को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।
- सारणी किसी विशेष महत्व के खंड को कोई विशेष महत्व नहीं दे पाती।
- गुणात्मक तथ्य सारणी में प्रस्तुत नहीं किए जा सकते।

उपरोक्त सीमाओं के रहते हुए भी सारणी का सामाजिक अनुसंधान में महत्व है। सारणीयन में तथ्यों के भंडारों का सुव्यवस्थित एवं सुस्पष्टता से क्रमबद्ध तरीके से वर्गीकरण करना संभव हो पाता है। निष्कर्षतः वैज्ञानिक जांच अथवा शोध में सारणीयन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सारणी निर्माण के सिद्धांत

सामान्यतः सारणी के निर्माण में जो सिद्धांत प्रयुक्त होते हैं उनका वर्णन निम्न प्रकार से है-

1. प्रत्येक सारणी साफ, संक्षिप्त और उचित शीर्षक के साथ होनी चाहिए ताकि सारणी को तर्कपूर्ण बनाया जा सके। इसका शीर्षक संदर्भ सहित सारणी के ऊपर होना चाहिए।
2. प्रत्येक सारणी को एक अलग संख्या द्वारा सुलभ संदर्भ देना चाहिए।
3. सारणी की पंक्ति तथा स्तंभ का उचित शीर्षक होना चाहिए।
4. माप की इकाई शीर्षक या उपशीर्षक के साथ सारणी में दर्शायी जानी चाहिए।
5. वर्णनात्मक टिप्पणियां यदि कोई हों (सारणी से संबंधित) तो वे सारणी के नीचे संदर्भ चिह्न के साथ दी जानी चाहिए तथा यही संदर्भ चिह्न सारणी में उस माप, इकाई या तथ्य के लिए भी होने चाहिए।
6. सारणी के नीचे समंक के स्रोत को लिखा जाना चाहिए।
7. सामान्यतः स्तंभों को एक-दूसरे से रेखा द्वारा अलग किया जाना चाहिए। इसी प्रकार पंक्ति भी रेखाओं द्वारा अलग होनी चाहिए।
8. स्तंभों के संदर्भ के लिए कोई अंक (क्रमबद्ध या सतत) देना चाहिए, जैसे-1, 2, 3
9. वे स्तंभ जिनके समंक तुलनात्मक हों उन्हें एक के बाद एक रखना चाहिए। इसी प्रकार प्रतिशत और औसत समंक के साथ ही रखने चाहिए।

10. सारणी बनाने से पहले लगभग योग या औसत लिखा होना चाहिए क्योंकि यह सारणी का अनावश्यक वर्णन करने को कम करता है।
11. यह महत्वपूर्ण है कि सभी स्तंभों की संख्या या समंक उसी स्थान पर होने चाहिए तथा उनके सम्मुख दशमलव बिंदु तथा (+) और (−) चिह्न लगे होने चाहिए।
12. संक्षिप्तीकरण सारणी में नहीं करना चाहिए। जैसे-मिश्रित तथा अलग तथ्य या पद यदि कोई हो तो उन्हें सारणी में आखिरी पंक्ति में लिखना चाहिए।
13. सारणी तर्कपूर्ण, सही तथा सामान्य होनी चाहिए। यदि समंक या तथ्य बहुत ज्यादा हैं तो उन्हें एक ही सारणी में नहीं दिखाना चाहिए, इससे समझने में असुविधा होती है।
14. पंक्तियों का योग सामान्यतः सबसे बाद के स्तंभ में लिखा जाना चाहिए। और स्तंभों का योग पंक्तियों के सबसे नीचे लिखा जाना चाहिए।
15. वर्गों की व्यवस्था सारणी में संख्या के आधार पर, शब्दों के आधार पर, स्थान के आधार पर तथा क्रम के आधार पर व तुलनात्मक आधार पर की जा सकती है।

अंत में कह सकते हैं कि सारणी का निर्माण शोधकर्ताओं को विषय की आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

आंकड़ों या समंकों का वर्गीकरण

समंकों अथवा तथ्यों में पाई जाने वाली समानता या विभिन्नता के आधार पर उनको व्यवस्थित रूप से विभिन्न क्षेणियों में विभाजित करने को वर्गीकरण कहा जाता है। इस प्रकार समंक को सजातीयता के आधार पर विभाजन करने की प्रक्रिया वर्गीकरण कहलाती है।

परिभाषा : प्रो. कॉनर के अनुसार, "वर्गीकरण, समंकों या तथ्यों को (वास्तविक या कल्पित रूप में) उनकी समानता तथा सजातीयता के अनुसार, समूहों या वर्गों में क्रमबद्ध करने की प्रक्रिया है और यह इकाइयों की भिन्नता के बीच में, उनके गुणों की एकता को प्रदर्शित करता है।"

एल्हांस के अनुसार-"सादृश्यताओं एवं समानताओं के अनुसार तथ्यों अथवा समंकों को समूह एवं वर्गों में व्यवस्थित करने की तकनीकी प्रक्रिया वर्गीकरण कहलाती है।"

वर्गीकरण के उद्देश्य

समंकों अथवा तथ्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है–

- संकलित तथ्यों को जटिलता और व्यापकता से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए सरल और संक्षिप्त बनाना।
- वर्गीकरण से भिन्न-भिन्न इकाइयों को भिन्न-भिन्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।
- वर्गीकरण पदों की भिन्नता के मध्य एकता को प्रकट करता है।
- वर्गीकरण समंकों के गुणों की समानता पर आधारित होता है।

टिप्पणी

- वर्गीकरण से समंकों में एकरूपता स्पष्ट होती है।
- वर्गीकरण की सहायता से समंकों को वैज्ञानिक रूप से व्यवस्थित किया जाता है। इससे जटिल समंक भी सरल और समझने योग्य बन जाते हैं।
- यह भावात्मक अथवा यथार्थ रूप से स्पष्टता प्रकट करता है।

इस प्रकार, समंकों में समानता, उन्हें वैज्ञानिक आधार में प्रस्तुत करना, बोधगम्य बनाने तथा यथार्थता लाने के लिए वर्गीकरण बहुत महत्वपूर्ण है।

वर्गीकरण के प्रकार

समंकों का वर्गीकरण उनके गुणों अथवा लक्षणों के आधार पर होता है। सामान्यत: सांख्यिकीय समंक या तथ्य दो प्रकार के होते हैं–

1. संख्यात्मक तथ्य
2. गुणात्मक तथ्य

1. संख्यात्मक तथ्य : जिन तथ्यों को संख्या में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त किया जा सकता है उन्हें संख्यात्मक तथ्य कहते हैं; जैसे आयु, भार, ऊंचाई, मात्रा आदि। ऐसे तथ्यों को चर मूल्य भी कहते हैं।

2. गुणात्मक तथ्य : जिन तथ्यों का प्रत्यक्ष माप नहीं किया जा सकता, केवल उनकी उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर गणना की जा सकती है या अनुमान लगाया जा सकता है उन्हें गुणात्मक तथ्य कहते है; जैसे ईमानदारी, बौद्धिक स्तर आदि।

अत: उक्त तथ्यों के आधार पर वर्गीकरण की निम्न रीतियां हैं-

1. गुणात्मक वर्गीकरण
2. संख्यात्मक वर्गीकरण

1. **गुणात्मक वर्गीकरण :** संकलित समंकों का वर्गीकरण जब अनेक गुणों के अनुसार किया जाता है तब उसे गुणात्मक वर्गीकरण कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि हम कुछ विशेष प्रकार की मनोवृत्तियों, बौद्धिकता, सुंदरता, साक्षरता, स्वास्थ्य, धर्म, लिंग के आधार पर तथ्यों को अनेक वर्गों में विभाजित करते हैं तो यह वर्गीकरण इस वर्ग के अंतर्गत आता है। जैसे 50 व्यक्तियों का वर्गीकरण साक्षरता के आधार पर किया जाए तो वह निम्न प्रकार हो सकता है–

अनपढ़	3
प्राइमरी	5
हाईस्कूल	18
इंटर	14
स्नातक	8
परास्नातक	2
योग	**50**

गुणात्मक वर्गीकरण भी दो प्रकार का हो सकता है-

(क) **सरल या विभेदात्मक :** इसके अंतर्गत केवल एक गुण की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति के आधार पर तथ्यों को विभाजित किया जाता है। जैसे साक्षरता, धर्म, व्यवसाय आदि। उदाहरणार्थ साक्षरता के आधार पर जनसंख्या को दो वर्गों में बांटना- (1) साक्षर तथा (2) निरक्षर, सरल या विभेदात्मक वर्गीकरण कहलाता है।

(ख) **बहुगुणी वर्गीकरण :** इसमें तथ्यों को एक से अधिक गुणों को आधार पर वर्गीकृत किया जाता है, जैसे जनसंख्या के आधार पर वर्गीकरण।

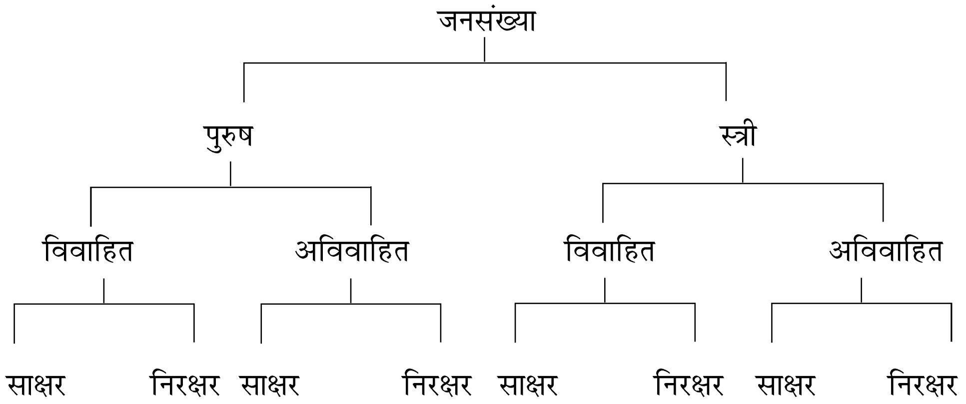

गुणात्मक वर्गीकरण सरल होता है परंतु इसमें निम्न सावधानियों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है-?

1. आधार का स्पष्ट होना।
2. गुणों में होने वाले परिवर्तनों का पर्याप्त रूप से ज्ञान होना।

2. संख्यात्मक वर्गीकरण : ऐसे तथ्य जिनका संख्यात्मक माप किया जा सकता है, उनका वर्गीकरण संख्यात्मक वर्गीकरण कहलाता है। यह वर्गीकरण प्राय: अंकों के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए आय, व्यय, लंबाई, चौड़ाई अथवा संख्यात्मक विशेषता के आधार पर किया गया वर्गीकरण इसके अंतर्गत आता है। इस प्रकार का वर्गीकरण सांख्यिकीय श्रेणियों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सामान्य रूप से सांख्यिकीय श्रेणियां निम्न प्रकार की होती हैं-

1. समयानुसार वर्गीकरण
2. स्थानानुसार वर्गीकरण
3. दशानुसार वर्गीकरण
4. पारवर्गीकरण
5. वर्गांतरानुसार वर्गीकरण

1. **समयानुसार वर्गीकरण :** जब समंक को समय के आधार पर (जैसे घंटे, दिन, सप्ताह, महीने, वर्ष) विभाजित किया जाता है तो उसे समयानुसार वर्गीकरण कहते हैं। निम्न श्रेणी समयानुसार वर्गीकरण का उदाहरण है-

टिप्पणी

भारत की जनसंख्या

वर्ष	1951	1961	1971	1981	1991	2002
जनसंख्या करोड़ों में	36.1	43.9	54.8	68.4	84.6	98.2

2. **स्थानानुसार वर्गीकरण :** इसमें समंकों को स्थान या क्षेत्र के आधार पर दर्शाया जाता है। स्थानानुसार श्रेणी का एक उदाहरण निम्न प्रकार से दिखाया गया है। नीचे की तालिका में छह राष्ट्रों की सकल घरेलू पूंजी निर्माण % में दिखाई गई है।

सकल घरेलू पूंजी निर्माण

राष्ट्र का नाम	सकल घरेलू पूंजी निर्माण
अमेरिका	18
जापान	27
ब्रिटेन	20
ऑस्ट्रेलिया	23
कनाडा	20
भारत	12

3. **दशानुसार वर्गीकरण :** जब संकलित समंकों का वर्गीकरण परिस्थिति या दशा के अनुसार किया जाता है तो उसे दशा या परिस्थिति अनुरूप वर्गीकरण कहते हैं। दशानुसार श्रेणियां लंबाई, प्राप्तांक, आय, वेतन आदि अनेक बातों से संबंधित होती हैं। शोध कार्य में अधिकतर दशानुसार अथवा परिस्थिति अनुसार श्रेणियों का ही प्रयोग होता है।

   उदाहरण–

   एम. ए. राजनीति शास्त्र (अंतिम वर्ष) में विद्यार्थियों के प्राप्तांक अग्रलिखित हैं–

प्राप्त किए गए अंक	विद्यार्थियों की संख्या
0–20	4
20–40	6
40–60	38
60–80	15
80–100	2
योग	**65**

4. **पारवर्गीकरण :** दो या अधिक विशेषताओं में संबंध देखने के लिए पारवर्गीकरण किया जाता है इसके अंतर्गत एक गुण अथवा विशेषता को दूसरे गुण/गुणों अथवा विशेषता/विशेषताओं के साथ व्यवस्थित किया जाता है।

टिप्पणी

शैक्षिक स्थिति	लिंग	
	स्त्री	पुरुष
शैक्षिक		
अनपढ़		

5. **वर्गांतरानुसार वर्गीकरण :** वर्गांतरानुसार वर्गीकरण में समंकों अथवा तथ्यों के संख्यात्मक माप संभव होने पर ही वर्गीकरण संभव होता है। इस प्रकार के वर्गीकरण में आय, भार, किलो, ऊंचाई, उत्पादन, आयात, निर्यात आदि से संबंधित समंकों का अध्ययन संभव है। अंकों के आधार पर इन्हें भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त कर दिया जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण में प्राय: निम्न शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

   इन शब्दों को भली-भांति समझने के लिए निम्न उदाहरण को ध्यान से देखिए। किसी संस्था के 200 छात्रों के एम.ए. राजनीति शास्त्र के विषय में अग्रलिखित सारणी द्वारा प्राप्त अंकों को दर्शाया गया है।

वर्ग अंतराल (प्राप्तांकों का)	आवृत्ति (छात्रों की संख्या)	संचयी आवृत्ति
0—20	16	16
20—40	39	55
40—60	75	130
60—80	42	172
80—100	28	200
	200	

विस्तार

किसी आवृत्ति वितरण में अंतिम वर्गांतर की ऊपरी सीमा तथा प्रथम वर्गांतर की निचली सीमा के अंतर को उस आवृत्ति वितरण का विस्तार कहा जाता है। उपर्युक्त आवृत्ति वितरण में विस्तार = 100 – 0 = 100 है।

वर्ग सीमाएं

प्रत्येक वर्गांतर की दो सीमाएं होती हैं, निचली सीमा तथा ऊपरी सीमा। उपरोक्त उदाहरण में प्रथम पंक्ति की वर्ग सीमा 0 (निचली सीमा) तथा 20 (ऊपरी सीमा) है। इसी प्रकार दूसरी पंक्ति की वर्ग सीमा 20 (निचली सीमा) तथा 40 (ऊपरी सीमा) है।

वर्ग विस्तार

ऊपरी तथा निचली सीमाओं के अंतर को वर्ग विस्तार कहते हैं। उक्त उदाहरण में वर्ग विस्तार 20 – 0 = 20, (प्रथम पंक्ति का) तथा 40 – 20 = 20 (द्वितीय पंक्ति का) है।

टिप्पणी

वर्गांतर

आवृति वितरण में प्रत्येक वर्ग के आधार को वर्गांतर कहा जाता है। उक्त आवृत्ति वितरण में 0 - 20, 20 - 40, 40 - 60, 60 - 80, 80 - 100 वर्गांतर है।

वर्ग आवृत्ति या बारंबारता

किसी वर्ग विस्तार या वर्गांतर में जितने पद या इकाइयां सम्मिलित होती हैं, उन्हें वर्ग विस्तार की आवृत्ति या बारंबारता कहते हैं। उक्त उदाहरण में प्रथम वर्ग की बारंबारता = 16, द्वितीय वर्ग की बारंबारता = 39 है।

वर्गांतर बनाने की विधियां

वर्गांतर दो प्रकार से बनाए जा सकते हैं–

1. अपवर्जी रीति
2. समावेशी रीति

1. अपवर्जी रीति : अपवर्जी रीति में एक वर्ग की ऊपरी सीमा अगले वर्ग की निचली सीमा होती है। उपरोक्त उदाहरण में प्रथम वर्ग की ऊपरी सीमा 20 है जो अगले वर्ग की निचली सीमा है और इस प्रकार दूसरे वर्ग की ऊपरी सीमा 40 तीसरे वर्ग की निचली सीमा है। अर्थात् यदि किसी छात्र को 20 अंक मिले हैं तो वह 20 - 40 के वर्गांतर में आएगा। इसी प्रकार 40 अंक प्राप्त करने वाला छात्र 40 - 60 के वर्गांतर में आएगा। उपरोक्त उदाहरण को निम्न प्रकार लिख सकते हैं-

प्राप्तांक (वर्ग अंतराल)	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
0 से अधिक किंतु 20 से कम	16
20 से अधिक किंतु 40 से कम	39
40 से अधिक किंतु 60 से कम	75
60 से अधिक किंतु 80 से कम	42
80 से अधिक किंतु 100 से कम	28

अतः स्पष्ट है अपवर्जी रीति में वर्ग की ऊपरी सीमा वाले पद को उस वर्ग में शामिल नहीं करते हैं।

2. समावेशी रीति : यह वह रीति है जिसमें प्रथम वर्ग की ऊपरी सीमा दूसरे वर्ग की निम्न सीमा के समान नहीं होती अपितु उसमें 1 या अधिक अंतर कर दिया जाता है। इस प्रकार के वर्गीकरण में किसी वर्ग की ऊपरी सीमा के पद या इकाई को भी उसी वर्ग में समावेशित किया जाता है।

प्राप्तांक (वर्ग अंतराल)	छात्रों की संख्या (आवृत्ति)
0—19	16
20—39	39
40—59	75
60—79	42
80—99	28

टिप्पणी

समावेशी रीति का उपयोग ऐसे समंकों के लिए अधिक उपयुक्त है जहां मूल्यों का भाव पूर्णांक में हो। परंतु यदि मूल्य दशमलव बिंदु में हो तो उनका वर्ग निश्चित करने में कठिनाई आती है। ऐसी दशा में समावेशी वर्गांतरों को भी अपवर्जी में परिवर्तित कर लिया जाता है। इसके लिए प्रथम वर्ग की उच्च सीमा तथा द्वितीय वर्ग को निम्न सीमा के अंतर को निकालकर उसमें दो का भाग देकर जो संख्या आये, उसे प्रथम वर्ग की उच्च सीमा में जोड़ देना चाहिए तथा द्वितीय वर्ग की निम्न सीमा में से घटा देना चाहिए।

उदाहरण

उपरोक्त सारणी में प्रथम वर्ग की उच्च सीमा 19 है तथा द्वितीय वर्ग की निम्न सीमा 20 है। इन दोनों का अंतर 20 – 19 = 1 है। इसमें दो से भाग देने पर = 0.5 आता है। इस संख्या को प्रथम वर्ग की उच्च सीमा में जोड़ देने पर 19 + 0.5 = 19.5 आता है तथा द्वितीय वर्ग की निम्न सीमा से घटाने पर 20 – 0.5 = 19.5 आएगा इसी प्रकार उपर्युक्त समावेशी वर्गांतरों को निम्न रूप में अपवर्जी बनाया जाता है–

प्राप्तांक (वर्ग अंतराल)	छात्रों की संख्या (बारंबारता)
0 – 19.5	16
19.5 – 39.5	39
39.5 – 59.5	75
59.5 – 79.5	42
79.5 – 99.5	28

प्रत्येक वर्ग अंतराल की आवृत्ति या बारंबारता को कैसे ज्ञात करें?

बारंबारता ज्ञात करने के लिए उस वर्ग अंतराल में आने वाले पदों को या तो मिलान चिह्न द्वारा या सीधे गिनकर या यांत्रिक तरीके से ज्ञात करते हैं। मिलान चिह्न द्वारा बारंबारता ज्ञात करने के लिए वर्ग समूह को पहले स्तंभ में लिखकर उसके अंतर्गत आने वाले प्रत्येक पद को एक खड़ी रेखा द्वारा प्रदर्शित करते हैं। सामान्यत: चार पदों तक खड़ी रेखा द्वारा प्रदर्शित करके तथा पांचवें पद के लिए चारों रेखाओं को तिरछा काट कर दिखाते हैं, जैसे प्रथम चार के लिए (IIII) तथा पांचवें पद के लिए (~~IIII~~) दिखाते हैं। इस तरह पांचवें पद के लिए उससे पहले वाले चार पदों को एक तिरछी रेखा द्वारा काट कर दिखाया जाता है। उक्त विवरण को निम्न उदाहरण द्वारा दिखाया गया है–

सारणी– निम्न सारणी 70 परिवारों के विभिन्न आय समूह को दर्शाती है।

आय समूह (रुपये में)	मिलान चिह्न	आवृत्ति परिणाम संख्या
400 से कम	~~IIII~~ ~~IIII~~ II	12
401 – 800	~~IIII~~ ~~IIII~~ ~~IIII~~ ~~IIII~~	20
801 – 1200	~~IIII~~ ~~IIII~~ III	13
1201 – 1600	~~IIII~~ ~~IIII~~ ~~IIII~~ III	18
1600 से ऊपर	~~IIII~~ II	7
योग		70

टिप्पणी

जब सर्वेक्षण बहुत बड़े स्तर पर किया गया हो तो प्राप्त समंक का वर्ग समूह तथा आवृत्ति उपरोक्त विधि से ज्ञात नहीं की जा सकती इसके लिए यांत्रिक विधियों की सहायता ली जाती है। जैसे-छटाई मशीन (ये मशीनें कम समय में ही हजारों-लाखों पदों को अलग कर सकती हैं। परंतु ये बहुत खर्चीली होती हैं इसलिए सर्वे के लिए एक विशेष वर्ग समूह को ही लिया जाता है और उससे प्राप्त समंकों को उक्त विधि से वर्गीकृत करके प्राप्त परिणामों का विश्लेषण किया जाता है।)

अपवर्जी एवं समावेशी रीतियों में अंतर

क्र.सं.	अपवर्जी रीति	स्मावेशी रीति
1.	अपवर्जी रीति में एक वर्ग की ऊपरी सीमा तथा उसके अगले वर्ग की निम्न सीमा एक समान होती है।	समावेशी रीति में एक वर्ग की ऊपरी सीमा एवं उसके अगले वर्ग की निम्न सीमा का मूल्य समान नहीं होता बल्कि उनमें प्राय 1 का अंतर होता है
2.	इस रीति में वर्गांतरों में किसी वर्ग की ऊपरी सीमा के बराबर मूल्य की माप या इकाई उस वर्ग में शामिल नहीं की जाती है।	इस रीति में ऊपरी सीमा के बराबर मूल्य भी ऊपरी वर्ग में सम्मिलित होता है।
3.	गणन क्रिया के लिए अपवर्जी रीति को समावेशी में बदलने की आवश्यकता नहीं होती है।	कुछ गणन क्रियाओं की शुद्धता के लिए इस रीति को पहले अपवर्जी में बदलना आवश्यक होता है।
4.	यह विधि हमेशा उपयुक्त होती है चाहे पद मूल्य पूर्ण संख्या में हो या दशमलव में।	यह विधि तभी उपयुक्त मानी जाती है जब पद मूल्य पूर्ण संख्या में हो।
5.	अपवर्जी रीति में वास्तविक वर्ग सीमाएं तथा मध्य बिंदु ज्ञात करने में समस्या नहीं आती है।	समावेशी रीति में वास्तविक वर्ग सीमाएं तथा मध्य बिंदु ज्ञात करने में समस्या आती है। अतः इन्हें ज्ञात करने के लिए समावेशी वर्गांतरों को अपवर्जी वर्गांतरों में बदल लेना चाहिए।

वर्गीकरण तथा सारणीयन में अंतर

वर्गीकरण तथा सारणीयन सांख्यिकीय अध्ययन में महत्वपूर्ण प्रक्रियाएं हैं। इन दोनों ही प्रविधि से समंक को क्रमबद्ध व व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार दोनों प्रक्रियाओं में समानता होते हुए भी कुछ भिन्नताएं हैं। जो इस प्रकार हैं-

वर्गीकरण	सारणीयन
आंकड़ों के विश्लेषण में वर्गीकरण सारणीयन से पहले आता है। अतः वर्गीकरण सारणीयन का आधार है।	सारणीयन वर्गीकरण के पश्चात की क्रिया है।
वर्गीकरण में संकलित आंकड़ों को उनके समान-असमान गुणों के आधार पर वर्गों या श्रेणियों में बांटा जाता है।	सारणीयन में वर्गीकृत तथ्यों को खाना और पंक्तियों में विभाजित करके प्रस्तुत किया जाता है।
वर्गीकरण का आधार आंकड़ों की विशेषताएं होती हैं।	सारणीयन वर्गीकृत आंकड़ों के आधार पर किया जाता है।
वर्गीकरण सांख्यिकीय विश्लेषण की एक प्रक्रिया है।	सारणीयन आंकड़ों के प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया है।
वर्गीकरण में भौतिक समंकों का ही प्रयोग किया जाता है।	सारणीयन में व्युत्पन्न आंकड़ों जैसे-प्रतिशत, अनुपात आदि का भी प्रयोग किया जाता है।
वर्गीकरण साधारण व्यक्तियों द्वारा भी समझा जा सकता है।	सारणीयन को साधारण व्यक्ति आसानी से नहीं समझ सकता।
वर्गीकरण आसानी से हो सकता है।	जबकि सारणीयन में संभवतः दक्षता होना जरूरी है।

निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि वर्गीकरण द्वारा जटिल व बिखरे हुए तथ्यों को सरल संक्षिप्त, तर्कसंगत तथा बुद्धिगम्य रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वर्गीकरण की प्रक्रिया से अनावश्यक विवरण को समाप्त कर दिया जाता है।

4.2.5 आंकड़ों का रेखाचित्रीय या ग्राफिक प्रस्तुतीकरण

विशाल आंकड़ों या समंक समूहों के अर्थों को सरल, स्पष्ट एवं व्यापक रूप में समझने में सहायता करना सांख्यिकीय विज्ञान का एक प्रमुख कार्य है। इस कार्य का निष्पादन करने के लिए अनेक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है जिनमें से समंकों का चित्रमय एवं ग्राफिक निरूपण एक महत्वपूर्ण दृष्टिगत विधि है। नीरस समंकों को चित्र या ग्राफ के माध्यम से प्रदर्शित करके उन्हें अर्थपूर्ण तथा रोचक और उनकी विशेषताओं को स्पष्ट बनाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के समंकों को प्रस्तुत करने में चित्रों तथा ग्राफ का प्रयोग अत्यंत प्रभावी रहता है। किसी दृश्य का फोटो उसके शाब्दिक विवरण से अधिक श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार आंकिक तथ्यों का चित्रित प्रदर्शन उनकी विशेषताओं को अधिक श्रेष्ठ रूप में स्पष्ट करता है। उचित प्रकार से बनाए गए चित्र तथा ग्राफ, जानकारी को आसानी से समझने योग्य बना देते हैं जबकि समंकात्मक सारणी के विवरणों में उसे ढूंढ़ना कठिन हो जाता है। चित्रों तथा ग्राफ के माध्यम से सांख्यिकीय तथ्यों का निरूपण करने की कला संख्याशास्त्री की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

चित्रमय और बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण

हमारे द्वारा एकत्र किए गए आंकड़ों को व्याख्या हेतु अधिक सरलता से समझा जा सकता है, यदि उसे ग्राफिकली अथवा चित्रीय रूप में प्रस्तुत किया गया हो। आरेख व ग्रॉफ्स से आंकड़ों में विस्तारों, समूहनों, प्रचलनों एवं प्रारूपों के दृश्य संकेत मिलते हैं। आरेखों (ग्रॉफ्स) के रूप में इन महत्वपूर्ण लक्षणों को अधिक सरलता से प्रस्तुत कर दिया जाता है। डायग्राम्स में तो आंकड़ों के दो अथवा अधिक समुच्चयों (सेट्स) के मध्य तुलनाएं भी सहज हो जाती हैं।

आरेख समझने में स्पष्ट व सरल रहते हैं। उसी आरेख में बहुत अधिक सूचनाएं न दर्शायी जाएं; अन्यथा वह बाधापूर्ण एवं असमंजसकारी हो सकता है। हर आरेख में विषय-वस्तु से संबंधित संक्षिप्त व स्व-व्याख्यात्मक शीर्षक का समावेश होना चाहिए। प्रस्तुतीकरण का पैमाना इस प्रकार चुना जाए कि जिससे उपयुक्त आकार का आरेख बने। ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज अक्षों पर मध्यांतर समान आकार के हों अन्यथा विकृतियां आएंगी।

पृथक् (डिस्क्रीट) आंकड़ों को दर्शाने के लिए आरेख एवं सतत् आंकड़ों को दर्शाने के लिए ग्राफ्स अधिक उपयुक्त एवं बेहतर रहते हैं। सामान्यतया प्रयोग की जाने वाली आरेखिक व ग्राफिक प्रस्तुतीकरण विधियां निम्न हैं-

आरेखिक (चित्रमय) प्रस्तुतीकरण

आरेखिक प्रस्तुतीकरण को तीन प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. दंड चित्र (बार डायग्राम)
2. वृत्त चित्र (पाइ चार्ट)
3. चित्रलेख (पिक्टोग्राम)

• **दंड चित्र (बार डायग्राम):** दंड चित्र ऊधर्वाधर रेखाएं हैं जहां दंडों की लंबाइयां उनके सुमेलित संख्यात्मक मानों के समानुपाती होती हैं। दंड की चौड़ाई महत्वहीन होती है तथापि सभी दंड एकसमान चौड़ाई के रखे जाएं ताकि डायग्राम के पाठक को असमंजस न हो। इसके अतिरिक्त दंडों में मध्य की दूरियां समान रहें।

उदाहरण : मान लें कि वर्ष 1989, 1990 व 1991 के लिए XYZ कंपनी के सकल राजस्व (100,000.00 रुपयों में) निम्नानुसार थे-

वर्ष	राजस्व
1989	110
1990	95
1991	65

इन आंकड़ों के लिए दंड चित्र बनाएं।

हल

इन आंकड़ों के लिए दंड चित्र को निम्नानुसार ऊधर्वाधर अक्ष पर राजस्व एवं क्षैतिज अक्ष पर वर्ष दर्शाते हुए तैयार किया जा सकता है।

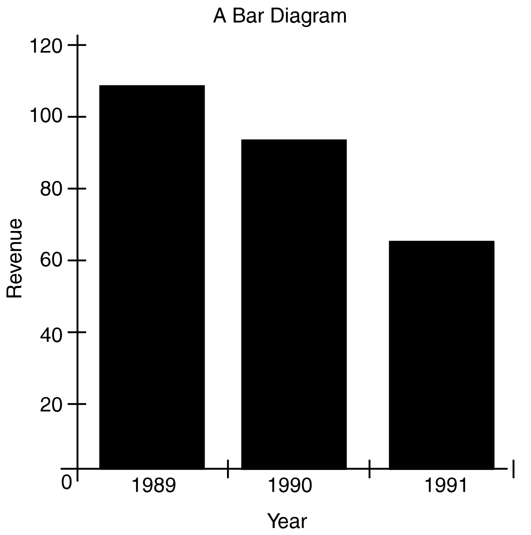

खींचे गए दंडों को आरेख में दर्शायी जाने वाली सूचनाओं के प्रकार के अनुसार आगे अंगों में उपविभाजित किया जा सकता है। निम्न उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जाएगा जिसमें हम दंड में तीन अंगों को प्रस्तुत कर रहे हैं।

उदाहरण : वर्ष 1988, 1989, 1990 व 1991 के लिए चार परिजनों के परिवार के लिए डॉलर्स में तीन प्रकारों के व्यय के लिए उपविभाजित बार चार्ट निम्नानुसार बनाइए-

वर्ष	भोजन	शिक्षा	अन्य	कुल
1988	3000	2000	3000	8000
1989	3500	3000	4000	10500
1990	4000	3500	5000	12500
1991	5000	5000	6000	16000

हलण

उपविभाजित बार चार्ट अग्रानुसार होगा–

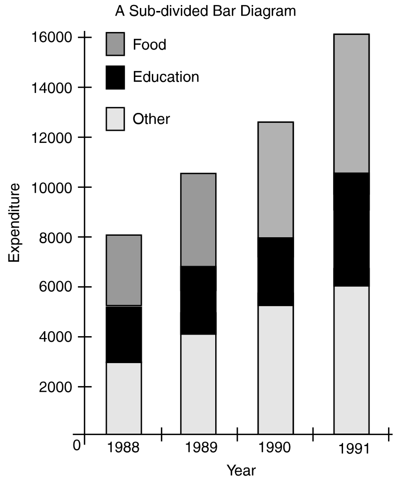

टिप्पणी

• **वृत्त चित्र (पाइ चार्ट):** इस प्रकार के आरेख से हम कुल आंकड़ों को अंग (घटक) भागों में विभाजित होता पाते हैं। आरेख तो वृत्त के रूप में होता है एवं वृत्त (पाइ) कहलाता है क्योंकि पूरा आरेख पाइ जैसा दिखता है व उसके अंग उसकी फांकों जैसे दिखायी देते हैं। फांक का आकार पूरे में अंग के अनुपात को प्रदर्शित करता है।

उदाहरण : निम्नांकित संख्याएं मकान के विनिर्माण की लागत से संबंधित हैं। लागत के विभिन्न अंगों को कुल लागत के प्रतिशतों के रूप में प्रदर्शित किया गया है–

वस्तु	*% व्यय*
श्रम	25
सीमेंट, ईंटें	30
इस्पात	15
इमारती लकड़ी, कांच	20
विविध	10

उक्त आंकड़ों से पाइ चार्ट बनाइए।

हल

इन आंकड़ों के लिए पाइ चार्ट निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है–

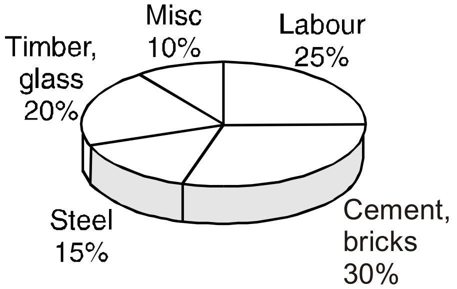

तुलनात्मक प्रयोजनों के लिए पाइ चार्ट्स अति उपयोगी हैं, विशेषतया वहां जहां कुछ ही अंग हों।

यदि बहुत अंग हों तो पाइ में आपेक्षिक मानों को विभेदित करना असमंजसकारी हो जाता है।

- **चित्रलेख (पिक्टोग्राम) :** चित्रलेख की तकनीक का विकास वियना के निवासी डॉ. ऑटो न्यूरैथ ने किया था। अत: इस पद्धति को वियना पद्धति भी कहते हैं। इस रीति के अनुसार समंकों को आकर्षक चित्रों की भाषा में प्रदर्शित किया जाता है। इनको समझना सरल तथा इनका प्रभाव स्थायी होता है। विज्ञापन एवं प्रचार कार्यों में इनका विशेष महत्व है।

चित्रलेख का तात्पर्य चित्रों के रूप में आंकड़ों का प्रस्तुतीकरण है। यह सूचनात्मक प्रदर्शनों के लिए शासनों एवं अन्य संगठनों द्वारा प्रयोग की जाने वाली सबसे प्रचलित विधि है। इसका प्रमुख लाभ इसका आकर्षक मान है। चित्रलेख से प्रस्तुत की जा रही सूचनाओं में रुचि उत्पन्न होती है।

समाचार-पत्रिकाओं को इस रूप में आंकड़े प्रस्तुत करना बहुत भाता है। उदाहरण हेतु यू.एस.ए. एवं रूस के सशस्त्र बलों के सामर्थ्य की तुलना करते हुए ये सैनिकों के खाके बनाएंगे जहां हर खाके द्वारा 100,000 सैनिक दर्शाए जा सकते हैं। इसी प्रकार प्रक्षेपास्त्रों व हौजों की भी तुलना की जाती है।

चित्रमय प्रस्तुतीकरण का महत्व

सांख्यिकीय गणनाओं की त्रुटियों का पता लगाने में चित्र महत्वपूर्ण साधन होते हैं अतः चित्रीय प्रस्तुतीकरण का सांख्यिकीय विधियों में महत्वपूर्ण स्थान है, इसके निम्नलिखित कारण हैं–

(1) चित्र आकर्षक होते हैं तथा मानव मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालते हैं।

(2) चित्रों में तथ्यों को सरल व बुद्धिगम्य बनाने का गुण होता है। चित्रों के द्वारा अत्यंत समंक समूहों को सरलता से प्रदर्शित किया जा सकता है। समंक की समस्त विशेषताएं चित्रों के माध्यम से स्पष्ट हो जाती हैं।

(3) चित्रों द्वारा प्रदर्शित समंकों को समझने में समय व श्रम की बचत होती है।

(4) समंकों के चित्रमय प्रदर्शन का प्रयोग व्यापक रूप में होता है।

(5) एक चित्र सारणीबद्ध समंकों से अधिक जानकारी प्रदर्शित करता है। चित्रों के द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि समंकों में विद्यमान प्रवृत्ति में कितना परिवर्तन हुआ है तथा किस प्रकार परिवर्तन हुआ है।

दोष या सीमाएं

चित्रों के माध्यम से तथ्यों की माप का एक मोटा सा विचार हो जाता है। चित्रमय निरूपण उन व्यक्तियों के लिए भ्रमात्मक होते हैं जो सावधानी पूर्वक अध्ययन के बिना ही उनसे निष्कर्ष निकालते हैं। इस विधि का प्रयोग करते समय और उससे निष्कर्ष निकालते समय विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। चित्रमय प्रस्तुतीकरण के दोष निम्नलिखित हैं–

(1) गलत या कृत्रिम मानदंड पर बने चित्र भ्रमात्मक होते हैं अतः चित्रीय प्रदर्शन का सरलता से दुरुपयोग हो सकता है।

(2) चित्र एक सीमित मात्रा में ही जानकारी दिखा सकते हैं।

(3) चित्र केवल अनुमानित मूल्यों का ही प्रदर्शन करते है।

(4) चित्रों में समंकों के एक या दो पहलुओं का ही प्रदर्शन हो सकता है अतः उनको समझना या उनसे ठोस निष्कर्ष निकालना कठिन हो जाता है।

(5) चित्रों के माध्यम से विभिन्न मूल्यों का सूक्ष्म अंतर प्रदर्शित करना संभव नहीं होता है।

बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण

सांख्यिकीय तथ्यों का बिंदुरेखीय प्रदर्शन उन्हें समझने योग्य बनाने की सरल व प्रभावी विधि है। अंग्रेजी शब्द ग्राफ से बने शब्द 'ग्राफिक' का अर्थ सचित्र अथवा सजीव है। बिंदु रेखा उस समंक प्रणाली के संदर्भ में है जिसे वह प्रदर्शित करती है। सांख्यिकीय सामग्री इतनी जटिल होती है कि उसे समझना सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन होता है। बिंदु रेखा से संख्यात्मक तथ्यों को सरल, स्पष्ट तथा प्रभावी ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है। समंक स्वभाव से ही नीरस होते हैं परंतु जब विशाल व जटिल समंक समूहों को रेखाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो उनको समझना सरल हो जाता है।

बिंदुरेखा के कार्य

बिंदुरेखा के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. बिंदुरेखा समंकों के प्रदर्शन का कार्य करती है।
2. बिंदुरेखा का प्रयोग सांख्यिकीय सामग्री के विश्लेषण में उपयोगी तथा प्रभावी सिद्ध होता है।
3. विश्लेषण के यंत्र के रूप में बिंदुरेखा अनुसंधान के नियोजन, उसकी सामान्य विधि तथा उनसे संबंधित गणना कार्य में विश्लेषणकर्ता का मार्ग प्रदर्शन करती है।
4. बिंदुरेखा प्रत्येक स्तर पर होने वाली प्रगति का चित्र प्रस्तुत करती है जिससे परिणामों की सत्यता की जांच हो जाती है।
5. जटिल समंकों को चित्रित करके उन्हें सरल व समझने योग्य बनाती है।

बिंदुरेखीय प्रदर्शन को तीन प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

1. आवृत्ति आयात चित्र (हिस्टोग्राम)
2. आवृत्ति बहुभूत (आवृत्ति पॉलिगौन)
3. संचयी आवृत्ति वक्र (ओगिव)

- **आवृत्ति आयात चित्र (हिस्टोग्राम)**

यह आंकड़ों का ग्राफिकल विवरण है तथा आवृत्ति सारणी से बनाया जाता है। इसमें आंकड़ों के समुच्चय की वितरण विधि प्रदर्शित होती है तथा इसका प्रयोग सांख्यिकीय एवं गणितीय गणनाओं में किया जाता है। इसे सांख्यिकीय गुणवत्ता नियंत्रण प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण मूलभूत औजार माना जाता है।

इस प्रकार के प्रस्तुतीकरण में दिये गए आंकड़ों को आयतों की श्रृंखला के रूप में गढ़ लिया जाता है। उपयुक्त पैमाने के अनुसार वर्ग मध्यांतरों को X–अक्ष में चिह्नित कर

टिप्पणी

लेते हैं एवं आवृत्तियों को Y-अक्ष में रख लेते हैं। दंड चार्ट तो एकविमीय होता है अर्थात दंड (बार) की लंबाई ही महत्वपूर्ण होती है, चौड़ाई नहीं किंतु हिस्टोग्राम द्वि-विमीय है अर्थात इसमें लंबाई व चौड़ाई दोनों का महत्व है। हिस्टोग्राम को समूहबद्ध आंकड़ों के आवृत्ति वितरण से बनाया जाता है जहां आयत की ऊंचाई वर्ग मध्यांतर में प्रदर्शित संबंधित आवृत्ति एवं चौड़ाई के अनुक्रमानुपाती होती है। हर आयत दूसरे आयत से जुड़ा रहता है व आयतों के मध्य रिक्त स्थान का आशय होता है कि वह वर्ग खाली है एवं उस वर्ग मध्यांतर में कोई मान नहीं है।

एक उदाहरण में आइए 30 श्रमिकों की आयु के लिए हिस्टोग्राम बनाएं। सुविधा के लिए हम हर मध्यांतर के मध्य-बिंदु के साथ आवृत्ति वितरण प्रस्तुत करेंगे, जहां मध्य-बिंदु हर वर्ग मध्यांतर की निम्नतर व उच्चतर परिसीमा के मानों का औसत है। आवृत्ति वितरण सारणी निम्नानुसार प्रदर्शित है–

वर्ग मध्यांतर (वर्ष)	मध्य-बिंदु	आवृत्ति (*f*)
15 से 25 तक	20	5
25 से 35 तक	30	3
35 से 45 तक	40	7
45 से 55 तक	50	5
55 से 65 तक	60	3
56 से 75 तक	70	7

इस आंकड़े के हिस्टोग्राम को निम्नानुसार दर्शाया जाएगा–

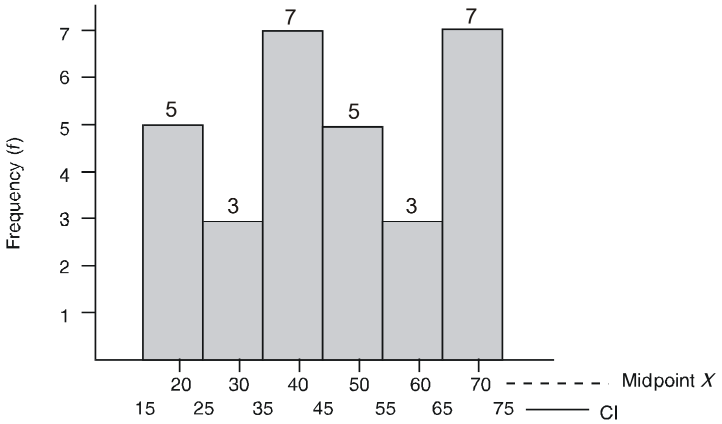

- **आवृत्ति बहुभूत (आवृत्ति पॉलिगौन)**

आवृत्ति पॉलिगौन तो आवृत्ति वितरण का लाइन चार्ट है, जिसमें वर्ग मध्यांतरों के मध्य-बिंदुओं अथवा पृथक् (डिस्क्रीट) चरों के मानों को आवृत्तियों के आगे आरेखित (प्लॉट) किया जाता है तथा ये आरेखित बिंदु एक-दूसरे से सीधी रेखाओं द्वारा जुड़े होते हैं। चूंकि आवृत्तियां साधारणत: न तो शून्य पर आरंभ होती हैं, न ही उस पर समाप्त, अत: यह आरेख स्वयं क्षैतिज अक्ष को स्पर्श नहीं करेगा। वैसे संपूर्ण वक्र का क्षेत्र उस हिस्टोग्राम के क्षेत्र के समान नहीं होता, जो कि प्रस्तुत आंकड़ों का 100 प्रतिशत है, इसलिए वक्र को बंद किया जा सकता है ताकि आरंभ बिंदु उस काल्पनिक बिंदु से पीछे

टिप्पणी

जुड़े जिसका मान शून्य है जिससे वक्र का आरंभ क्षैतिज अक्ष पर हो व अंतिम बिंदु उस काल्पनिक बिंदु से आगे जुड़ जाए जिसका मान भी शून्य है ताकि वक्र 'क्षैतिज अक्ष' पर समाप्त हो। इस बंद आरेख को आवृत्ति बहुभूत कहा जाता है।

हम ऊपर प्रदर्शित सारणी से आवृत्ति बहुभूत बना सकते हैं-

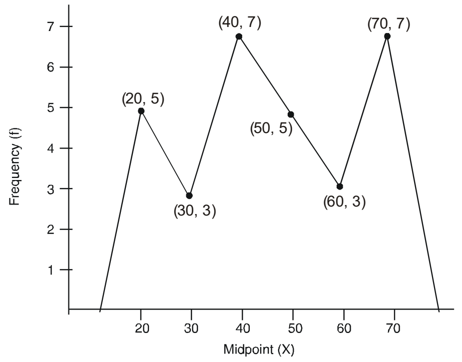

• संचयी आवृत्ति वक्र (ओगिव)

संचयी आवृत्ति वक्र अथवा ओगिव तो संचयी आवृत्ति वितरण का बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण है। ओगिव दो प्रकारों के होते हैं। इनमें से एक छोटा व दूसरा ओगिव संचर्या आवृत्ति से बड़ा होता है। इन दोनों ओगिव को 30 श्रमिकों के उदाहरण के द्वारा निम्न सारणी के आधार पर बनाया जाता है-

वर्ग मध्यांतर (वर्ष)	मध्य-बिंदु	*(f)*	संचयी आवृत्ति (से कम)	संचयी आवृत्ति (से अधिक)
15 से 25 तक	20	5	5 (से कम 25)	30 (से ज्यादा 15)
25 से 35 तक	30	3	8 (से कम 35)	25 (से ज्यादा 25)
35 से 45 तक	40	7	15 (से कम 45)	22 (से ज्यादा 35)
45 से 55 तक	50	5	20 (से कम 55)	15 (से ज्यादा 45)
55 से 65 तक	60	3	23 (से कम 65)	10 (से ज्यादा 55)
65 से 75 तक	70	7	30 (से कम 75)	7 (से ज्यादा 65)

ओगिव से कम : इस प्रकरण में संचयी आवृत्तियों से कम को उनके संबंधित वर्ग मध्यांतरों की ऊपरी परिसीमाओं की आगे आरेखित कर दिया जाता है।

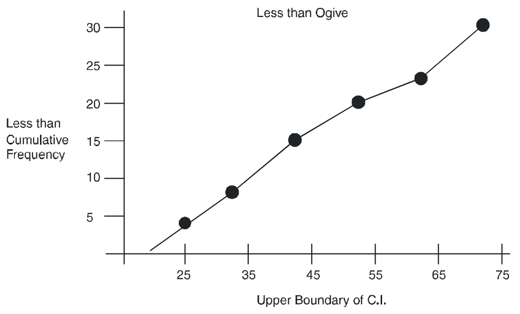

ओगिव से अधिक : इस प्रकरण में संचयी आवृत्तियों से अधिक को उनके संबंधित वर्ग मध्यांतरों की निचली परिसीमाओं के आगे आरेखित किया जाता है।

टिप्पणी

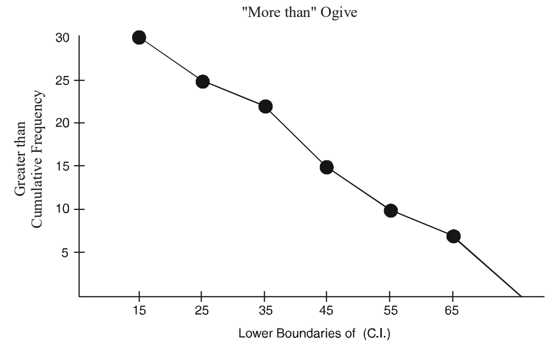

इन ओगिव का प्रयोग तुलनात्मक प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है। अनेक ओगिव्स को एक ग्रिड पर खींचा जा सकता है, सरल दृश्य व विभेदन के लिए भिन्न-भिन्न रंगों को वरीयता दी जाती है।

यद्यपि सांख्यिकीय आंकड़ों को प्रस्तुत करने के लिए आरेख व ग्राफ्स शक्तिशाली व प्रभावी माधयम हैं, ये सूचनाओं के सीमित परिमाण को ही प्रस्तुत कर सकते हैं एवं जब आंकड़ों का सघन विश्लेषण आवश्यक हो तब ये बहुत सहायता नहीं करते।

बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण के गुण

बिंदुरेखा समंकों का प्रदर्शन करने की दृष्टिगत विधि है। सभी प्रकार के समंकों का प्रभावी प्रस्तुतीकरण करने के लिए बिंदुरेखा का प्रयोग किया जाता है। समंकों के बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. बिंदुरेखाओं के माध्यम से दो संबंधित तथ्यों की तुलना करना सरल होता है।
2. सांख्यिकीय तथ्यों को प्रदर्शित करने में बिंदुरेखा सरलतम विधि है।
3. समंकों का बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण प्रभावशाली तथा रोचक होता है।
4. बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण को समझने के लिए गणित के विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है।
5. बिंदुरेखाओं की सहायता से विभिन्न सांख्यिकीय मापों को ज्ञात किया जा सकता है।

बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण के दोष

बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण पूर्णतः दोषरहित नहीं है। आई.आर. वेसेलो के अनुसार, "शीघ्रता से पढ़ने में कुछ संबंधों को आवश्यकता से अधिक महत्व देना और यहां तक कि अविद्यमान संबंधों को देखना आसान होता है।"

जे.आर. रिगलमैन तथा आई.एन. फ्रिस्वी के अनुसार, "यदि बिंदुरेखीय प्रदर्शन को सर्वाधिक प्रभावी बनाना है तो जो इनसे अनभिज्ञ हैं उन्हें इनके आधारभूत ढांचे पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सरल रेखाचित्रों से भी उन्हें पूर्णतः समझे बिना, गलत निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।"

बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं–

1. रेखाचित्रों को उद्धरण के रूप में प्रस्तुत करना संभव नहीं होता है।

2. रेखाचित्रों का मानदंडों में परिवर्तन करके प्रवृत्तियों व उच्चावचनों के महत्व में परिवर्तन किया जा सकता है।
3. रेखाचित्र में आंकिक शुद्धता संभव नहीं होती है।
4. अनेक व्यक्ति रेखाचित्रों से अनभिज्ञ होते हैं, वे इनको कोई महत्व नहीं देते हैं।
5. बिंदुरेखा केवल समंकों की प्रवृत्ति तथा उनके उच्चावचनों का ही प्रस्तुतीकरण करती है। समंकों का वास्तविक मूल्य ज्ञात नहीं होता है। इससे रेखाचित्रों की शुद्धता का भी आभास नहीं हो पाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. अखंडित आवृत्ति विवरण में किन शब्दों का प्रयोग किया जाता है?
   (क) वर्ग सीमाएं (ख) वर्ग विस्तार
   (ग) वर्ग आवृत्ति (घ) उपरोक्त सभी
2. प्रत्येक मापन क्रिया कितने पदों में की जाती है?
   (क) दो (ख) चार
   (ग) छह (घ) आठ
3. मापन के कितने स्तर होते हैं?
   (क) दो (ख) तीन
   (ग) चार (घ) पांच
4. आंकड़ों का संगठित रूप किसके माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है?
   (क) वर्गीकरण (ख) संकलन
   (ग) विश्लेषण (घ) संगठन

4.3 केंद्रीय प्रवृत्ति की माप

अंक सामग्री को आवृत्ति वितरण के रूप में व्यवस्थित कर लेने के पश्चात् विभिन्न समूहों अथवा योग्यताओं की तुलना के लिए एक ऐसे मूल्य की आवश्यकता पड़ती है जो कि समस्त समूह का प्रतिनिधित्व का सके। जिस प्रकार किसी समूह या समुदाय का मुखिया उस समूह अथवा समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है ठीक उसी प्रकार केन्द्रीय मान भी सम्पूर्ण समूह या प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करता है।

एक अकेला आंकिक मूल्य जो कि किसी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति का द्योतक हो, उस समूह का सर्वोत्तम रूप में प्रतिनिधित्व कर सकता हो केन्द्रीय मान कहलाता है। वह विधि जिसके द्वारा किसी आंकिक शृंखला की केन्द्रीय प्रवृत्ति का द्योतक,एक अकेला अंक ज्ञात किया जाता है, केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप कहलाती है। केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप को प्राय: औसत (Average) कहते है। सामान्य लोग प्राय: औसत का अर्थ गणीतय माध्य

(Airthmetic Mean) से लगाते हैं। परन्तु वस्तुत: सांख्यिकी में औसत का अर्थ केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप से लगाया जाता है। Simpson and Kafka के अनुसार, "एक केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप, वह विशिष्ट मूल्य है जिसमें चहुँ ओर अन्य अंक संगठित होते हैं या जो अंकों को दो अर्ध भागों में विभाजित करता है।"

किसी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति को संक्षेप में प्रकट करने के लिए जिन मानों का प्रयोग किया जाता है। उन्हें केन्द्रीय मान कहते हैं। समूह का केन्द्रीय मान उस समूह का प्रतिनिधि प्राप्तांक होता है और समूह के अधिकतर प्राप्तांक उसके इधर-उधर होते है। कुछ उससे कम और कुछ उससे अधिक होते हैं। केन्द्रीय मान किसी सम्पूर्ण समूह का वह प्रतिनिधि प्राप्तांक होता है जिसके आस-पास उस समूह के अधिकतर प्राप्तांक केन्द्रित होते हैं।

केंद्रीय प्रवृत्ति मान की परिभाषाएं

रॉस (Ross) के अनुसार, "केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान वह मान है जो कि सारे आँकड़ों का श्रेष्ठतम प्रतिनिधित्व करता है।"

जे. पी. गिल्फर्ड के अनुसार, "व्यक्तियों के निरीक्षणों के एक समूह के केन्द्रीय मूल्य को इंगित करने वाला अंक एक औसत होता है।"

क्लार्क एवं शकाड़े के अनुसार, "माध्य समंकों के संपूर्ण समूह को विवरण प्रस्तुत करने हेतु, कोई अकेला अंक प्राप्त करने का प्रयास है।"

ए.ई. बाघ के अनुसार, "एक माध्य मूल्यों के एक समूह में से चुना गया वह मूल्य है जो उसका किसी रूप में प्रतिनिधित्व करता है। यह एक ऐसा मूल्य है जो पूर्ण समूह के लिए समूह के मूल्यों के प्रतिरूप के रूप में है जिसका वह एक अंश है।"

सिम्परान एवं व्याफ्का के अनुसार, "केंद्रीय प्रवृत्ति का मान एक ऐसा मूल्य होता है जिसके आस–पास अन्य संख्याएँ केंद्रित होती हैं।"

केन्द्रीय प्रवृत्ति का महत्व : केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान द्वारा हम किसी की विशेषता का आकलन सरलता से कर सकते हैं। प्राय: पूर्ण सूचना उपलब्ध न होने पर भी केवल केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान द्वारा कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इन मानों के द्वारा विभिन्न समूहों की तुलना करना सम्भव हो जाता है । एच. ई. गैरेट के अनुसार केन्द्रीय प्रवृत्ति की दोहरी उपयोगिता है। इसका महत्व निम्नलिखित है-

1. यह एक अकेला ऐसा अंक होता है जो समस्त अंकों का प्रतिनिधित्व करता है तथा समस्त समूह के कार्य सम्पादन का संक्षिप्त विवरण प्रदान करता है।
2. इसके द्वारा विभिन्न समूहों के Typical कार्य सम्पादन की तुलना सम्भव हो जाती है।
3. इसके अतिरिक्त केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप द्वारा उच्च सांख्यिकीय गणना में सहायता मिलती है। जैसे- मानक विचलन (Standard Deviation), सह-सम्बन्ध (Correlation) आदि।
4. ये मान प्राथमिक के रूप में प्रयोग किये जाते हैं और इनके बिना उच्च कोटि के सांख्यिकीय अनुमान सम्भव नहीं हैं।

5. इसके माध्यम से विद्यार्थियों के प्राप्तांकों की तुलना आसानी से की जा सकती है।
6. इसके माध्यम से दो या दो से अधिक समूहों के प्राप्तांकों की तुलना करना सम्भव है।
7. शोध के क्षेत्र में कुछ परिस्थितियों में इनका प्रयोग बहुत साहयक होता है।

केन्द्रीय प्रवृत्ति की सीमाएँ

केंद्रीय प्रवृत्ति की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मानों की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसके द्वारा केवल वैयक्तिक विशेषताओं पर ही प्रकाश पड़ता है।
2. इनसे समूह विशेष में विद्यार्थी विशेष की सापेक्षिक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता है।
3. सामूहिक गुणों, विशेषताओं और उपलब्धियों पर, उन अवस्थाओं में जब समूह विषमजातीय हो, इनसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। हम एक समूह की औसत उपलब्धि का ज्ञान तो इससे प्राप्त कर सकते है पर समूह में सर्वोत्तम या निकृष्ट उपलब्धि वाले व्यक्ति का ज्ञान इन मानों से नहीं होता है।
4. इनका उपयोग यदि सूझबूझ से न किया जाए तो इनके द्वारा हानिकारक परिणाम हो सकते हैं। क्योंकि भिन्न-भिन्न सांख्यिकीय विश्लेषणों में भिन्न केन्द्रीय प्रवृत्ति के मानों से अलग मूल्य प्राप्त होते हैं।

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मान की गणना

यह गणना निम्न तीन विधियों से की जाती है-

1. माध्य या मध्यमान
2. मध्यांक या माध्यिका
3. बहुलांक

केन्द्रीय प्रवृत्ति से संबंधित तथ्य

1. जब सर्वेक्षण या परीक्षण से प्राप्त अंक वितरण सामान्य और सममित (Symmetrical)होता है, तब दोनों केन्द्रीय मानों में समानता रहती है। इस स्थिति में मध्यमान, मध्यांक और बहुलांक तीनों का मान समान प्राप्त होता है।
2. जब सर्वेक्षण या परीक्षण से प्राप्त अंक वितरण में विषमता (Skewness) होती है तब तीनों ही केन्द्रीय मानों में अन्तर पाया जाता है।
3. जब अंक वितरण में ॠणात्मक विषमता (Negative Skewness) होती है तब मध्यमान का मान सबसे अधिक, मध्यांक का मान कम तथा बहुलांक का मान सबसे कम होता है।

$$\text{मध्यमान} > \text{मध्यांक} > \text{बहुलांक}$$

4. जब अंक वितरण में धनात्मक विषमता (Positive Skewness) होती है तब मध्यमान का मान कम, मध्यांक का मान उससे अधिक और बहुलांक का मान उससे भी अधिक होता है।

$$\text{मध्यमान} < \text{मध्यांक} < \text{बहुलांक}$$

टिप्पणी

5. केन्द्रीय मान में मध्यमान सबसे शुद्ध, मध्यांक उससे कम और बहुलांक उससे कम शुद्ध होता है।

4.3.1 मध्यमान की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना, मध्यमान का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं

अंकगणितीय भाषा में जिसे औसत मान कहते हैं उसे ही सांख्यिकीय भाषा में मध्यमान ,माध्य और समान्तर माध्य कहते हैं। यह गणितीय माध्यों में सबसे अधिक लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण एवं सबसे अधिक विश्वसनीय मान है। यह किसी समूह के प्राप्तांकों की केन्द्रीय प्रवृत्ति को स्पष्ट करता है और उसके समस्त प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व करता है।

माध्य की परिभाषा

वर्मा एवं श्रीवास्तव, "किसी समंकमाला के समस्त अंकों के योगफल को उन अंकों की संख्या से भाग देने पर जो भागफल आता है वही मध्यमान होता है।"

फरग्यूसन के अनुसार, "मध्यमान वह मान है, जो संख्याओं के योग को उनकी संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है।"

जे.पी. गिलफर्ड, "औसत वह अंक है जो निरीक्षणों या व्यक्तियों के प्राप्तांकों के मध्य का प्रतीक होता है।"

एच.टी. मैनुअल, "औसत को मूल्यों की श्रृंखला के उस बिन्दु के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिससे लिये गये ॠणात्मक और धनात्मक विचलनों का योग शून्य हो।"

सरल शब्दों में समंकमाला या श्रेणी का माध्य वह मूल्य होता है जो उस श्रेणी के सभी मूल्यों का योग करके उनकी संख्या से भाग देने पर जो भागफल के रूप में प्राप्त होता है। इसके लिए संकेताक्षर X का प्रयोग किया जाता है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इसके दोनों ओर के प्राप्तांकों के विचलनों का योग शून्य होता है।

उदाहरण के लिए 50 अंकों की एक परीक्षा में पाँच विद्यार्थियों के प्राप्तांक इस प्रकार हैं-

25 32 29 16 18

प्राप्तांकों का औसत $(X) = \frac{25+32+29+16+18}{5} = \frac{120}{5} = 24$

मध्यमान की गणना विधि- मध्यमान की गणना दोनों प्रकार के प्रदत्तों से की जाती है- (क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत आंकड़े (ख) व्यवस्थित/वर्गीकृत आंकड़े। एक बड़े समूह के प्रदत्तों की गणना अव्यवस्थित प्रदत्तों द्वारा सम्भव नहीं होती उन्हें पहले व्यवस्थित/वर्गीकृत करना पड़ता है।

(क) अव्यवस्थित/ अवर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना : अव्यवस्थित/ अवर्गीकृत प्रदत्तों से मध्यमान की गणना निम्न सूत्र के माध्यम से की जाती है-

टिप्पणी

$$\bar{x} = \frac{\sum X}{N}$$

$\bar{x}$ = मध्यमान

$\sum X$ = प्रदत्तों का योग

N = पदों की संख्या

उदाहरण

(1) निम्न अंकों से मध्यमान ज्ञात कीजिए-

5, 7, 6, 3, 4, 2, 9, 8, 10, 11

हल = 5+7+6+3+4+2+9+8+10+11= 65

$\sum X$ = 65

N = 10

मध्यमान = $\bar{x} = \frac{\sum X}{N}$

$$\bar{x} = \frac{65}{10}$$

$$\bar{x} = 6.5$$

उदाहरण

100 अंकों के एक परीक्षण में 10 विद्यार्थियों ने निम्न अंक प्राप्त किए हैं। इन प्राप्तांकों का मध्यमान ज्ञात कीजिए-

प्राप्तांक = 45, 75, 48, 68, 73, 69, 81, 55, 70, 56

45+75+48+68+73+69+81+55+70+56 = 640

$\sum X$ = 640

N = 10

मध्यमान = $\bar{x} = \frac{\sum X}{N}$

$$\bar{x} = \frac{640}{10} \bar{x} = 64$$

जब प्रदत्तों की पुनरावृत्ति हो अथवा पदों की संख्या काफी अधिक होती है तो इस विधि से माध्यमान ज्ञात करना कठिन होता है। इसके लिए पहले आवृत्ति तालिका का निर्माण किया जाता है तत्पश्चात औसत/मध्यमान ज्ञात किया जाता है।

उदाहरण

10 अंकों की एक परीक्षा में 20 विद्यार्थियों के निम्न प्रकार के प्राप्तांक हैं इनसे मध्यमान ज्ञात कीजिए- 9, 8, 4, 3, 4, 8, 5, 10, 5, 6, 7, 6, 3, 4, 5, 6, 9, 5, 3, 2

हल (solution)

प्राप्तांक	आवृत्ति (f)
1	0
2	1
3	3
4	3
5	4
6	3
7	1
8	2
9	2
10	1
कुल	20

प्राप्तांक	आवृत्ति (f)	fx
1	0	0
2	1	2
3	3	9
4	3	12
5	4	20
6	3	18
7	1	7
8	2	16
9	2	18
10	1	10
कुल	20	112

$$\sum fx = 112 \quad N$$

$$\overline{x} = \frac{\sum fX}{N}$$

$$\overline{x} = \frac{112}{20}$$

$$\overline{x} = 5.6$$

इस प्रश्न का और भी अधिक सरल विधि से निम्न सूत्र द्वारा हल किया जा सकता है–

प्राप्तांक X	आवृत्ति (f)	कल्पित माध्य से विचलन (X-A= dx)	कल्पित माध्य से विचलनों का आवृत्ति से गुणनफल fdx	
1	0	-4	0	
2	1	-3	-3	
3	3	-2	- 6	-12
4	3	-1	-3	
5	4	0	0	
6	3	+1	3	
7	1	+2	2	24
8	2	+3	6	
9	2	+4	8	
10	1	+5	5	
कुल	20		+12	

$$\overline{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$\sum fdX$ = कल्पित माध्य से विचलनों का आवृत्ति से गुणनफल = +12

टिप्पणी

dX = कल्पित माध्य से विचलन N = 20

A = कल्पित माध्य =5

$$\overline{x} = 5 + \frac{12}{20}$$

$$\overline{x} = 5 + .6$$

$$\overline{x} = 5.6$$

(ख) व्यवस्थित/वर्गीकृत समंकों से मध्यमान की गणना : जब विद्यार्थियों की संख्या अधिक होती है और उपर्युक्त दोनों प्रकार से मध्यमान ज्ञात करना कठिन होता है तो उस स्थिति में प्राप्तांकों के वर्ग बनाये जाते हैं और फिर उनकी आवृत्ति तालिका बनाकर उसकी सहायता से मध्यमान निकालते हैं। व्यवस्थित/वर्गीकृत प्रदत्तों से मध्यमान निकालने के दो तरीके अपनाये जाते हैं- (1) दीर्घ विधि (Long Method) (2) लघु/सरल विधि (Short/simple Method)।

(1) दीर्घ विधि (Long Method) : इस विधि में समस्त प्राप्तांकों को उचित वर्गान्तर लेकर उचित वर्गों में व्यवस्थित किया जाता है और फिर प्रत्येक वर्ग की आवृत्तियों को ज्ञात किया जाता है। इस विधि में मध्यमान ज्ञात करने के लिए निम्न सोपानों का प्रयोग किया जाता है-

1. सर्वप्रथम प्रत्येक वर्ग विस्तार का मध्यबिन्दु ज्ञात किया जाता है। इस बिन्दु को ज्ञात करने के लिए वर्गान्तर का योग करके उसे 2 से भाग दिया जाता है। जैसे 0-10,10-20, 20-30।

   $$\frac{0+10}{2} = 5 \quad \frac{10+20}{2} = 15, \quad \frac{20+30}{2} = 25$$

2. प्रत्येक मध्यबिन्दु को सम्बन्धित आवृत्ति से गुणा करते हैं।
3. गुणनफल का योग करके आवृत्तियों की कुल संख्या से भाग करते हैं।

   इसके बाद निम्न सूत्र द्वारा मध्यमान ज्ञात किया जाता है।

   $$\overline{x} = \frac{\sum fX}{N}$$

   निम्न प्राप्तांकों के माध्यम से मध्यमान ज्ञात कीजिए -

टिप्पणी

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)
0-10	3
10-20	1
20-30	3
30-40	3
40-50	4
50-60	1
60-70	3
70-80	2

हल

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	मध्य बिन्दु (M.V) (X)	मध्य बिन्दु तथा आवृत्तियों का गुणनपफल (fX)
0-10	3	5	15
10-20	1	15	15
20-30	3	25	75
30-40	3	35	105
40-50	4	45	180
50-60	1	55	55
60-70	3	65	195
70-80	2	75	150
	20		790

$\sum fX$ = मध्यबिन्दु एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग = 790

N = आवृत्तियों का योग = 20

$$\bar{x} = \frac{\sum fX}{N} \qquad \bar{x} = \frac{790}{20} \quad \bar{x} = 39.5$$

(2) लघु/सरल विधि : दीर्घ विधि से मध्यमान ज्ञात करने में काफी गुणा जोड़ करना पड़ता है। इसलिए समय बहुत लगता है। समय के सदुपयोग की दृष्टि से मध्यमान निकालने के लिए एक सरल विधि निकाली गयी है। इस विधि में मध्यबिन्दु से एक कल्पित माध्य लेकर मध्यमान ज्ञात किया जाता है। इस विधि से मध्यमान ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N}$$

$\bar{x}$ = मध्यमान

टिप्पणी

Σfdx = कल्पित माध्य से विचलनों का आवृत्ति से गुणनफल

N = आवृत्तियों का योग

dX = कल्पित माध्य से विचलन

A = कल्पित माध्य

i = वर्गअन्तराल

(M.V)/(X) = मध्यबिन्दु

निम्न प्राप्तांकों की सहायता से मध्यमान ज्ञात कीजिए-

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)
10-14	4
15-19	5
20-24	4
25-29	6
30-34	12
35-39	14
40-44	3
45-49	2

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	मध्य बिन्दु (M.V)(X)	कल्पित माध्य से विचलन dX X-A/i	कल्पित माध्य से विचलन तथा आवृत्तियों का गुणनफल (fdX)
10-14	4	12	-3	-12
15-19	5	17	-2	-10
20-24	4	22	-1	-4
25-29	6	27 A	0	0
30-34	12	32	+1	12
35-39	14	37	+2	28
40-44	3	42	+3	9
45-49	2	47	+4	8
	50			**-26 +57 =31**

मध्य बिन्दु (M.V) (X) 10+14/2 =12, 15+19/2 =17...........

$\sum fdX = 31 \quad N = 50 \quad A = 27 \qquad i = 5$

$$\bar{x} = A + \frac{\sum fdx}{N} \times i$$

$$\bar{x} = 27 + \frac{+31}{50} \times 5$$

$$\bar{x} = 27 + \frac{155}{50}$$

$$\bar{x} = 27 + 3.1$$

$$\bar{x} = 30.1$$

टिप्पणी

मध्यमान का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं

मध्यमान का व्याख्यात्मक प्रयोग निम्नलिखित है-

1. यह शृंखला के प्रत्येक पद के प्राप्तांक से प्रभावित होता है।
2. सांख्यिकीय माध्यों में मध्यमान सबसे अधिक सरल एवं बोद्धगम्य है।
3. मध्यमान प्राप्तांकों का औसत मान होता है, अत: इसे गणितीय विधियों से सरलता से ज्ञात किया जा सकता है।
4. समूह के प्राप्तांकों का मध्यमान समूह का सन्तुलन बिन्दु होता है, क्योंकि इसमें धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ओर के विचलनों का योग शून्य होता है।
5. मध्यमान अन्य माध्यों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होता है।
6. मध्यमान का प्रयोग व्यापक रूप में किया जाता है।

मध्यमान की सीमाएँ निम्न हैं-

1. जब समूह में प्राप्तांक ज्यादा हों तब मध्यमान का प्रयोग सम्भव नहीं होता है।
2. मध्यमान किसी समूह के प्राप्तांकों का प्रतिनिधित्व उसी समय करता है जब प्राप्तांकों का वितरण सामान्य हो।
3. समूह के प्राप्तांकों को देखकर साधारण ढंग से मध्यमान का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।
4. जब उपलब्ध समूह के प्राप्तांक अपूर्ण हों, तो मध्यमान ज्ञात नहीं किया जा सकता है।
5. गुणात्मक प्रदत्तों के विवेचन में मध्यमान का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
6. जब समूह प्राप्तांक विषम या असामान्य या विषम हो, तो मध्यमान ज्ञात नहीं करना चाहिए।
7. समूह के प्राप्तांकों का मध्यमान कभी-कभी समूह का प्रतिनिधित्व नहीं करता है क्योंकि यह समूह के प्राप्तांकों में पाया भी जा सकता और नहीं भी।

4.3.2 माध्यिका की अवधारणा : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से माध्यिका की गणना, माध्यिका का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं

किसी शृंखला को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर उस शृंखला के मध्य में जो मूल्य आता है उसे माध्यिका या मध्यांक कहते हैं। मध्यांक/माध्यिका वह केन्द्रवर्ती मान है जो किसी समूह के प्राप्तांकों को दो बराबर भागों में बाँटता है एक भाग के सभी प्राप्तांक उससे अधिक होते हैं और दूसरे भाग के सभी प्राप्तांक उससे कम होते हैं।

परिभाषाएं

कॉनर के अनुसार, "*मध्यांक समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में इस प्रकार बाँटता है कि एक भाग के सारे मूल्य मध्यांक से अधिक और दूसरे भाग के सारे मूल्य मध्यांक से कम होते हैं*"

प्रो. बाउले के अनुसार, "*मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो वितरण को दो बराबर भागों में बांटता है।*"

गिलफोर्ड के अनुसार, "*किसी मापनी पर मध्यांक वह बिन्दु है आधे जिसके ऊपर होते हैं और आधे नीचे होते हैं।*"

मध्यांक किसी समंक माला को दो बराबर भागों में विभाजित करता है। इसे स्थिति सम्बन्धी माध्य भी कहा जाता है। मध्यांक किसी समूह का वह प्राप्तांक होता है जो उसको स्थिति क्रम में रखने पर उसके ठीक मध्य में पड़ता है और जिसके दोनों ओर समूह के आधे-आधे प्राप्तांक वितरित होते हैं।

माध्यिका की गणना

माध्यिका की गणना दो प्रकार के प्रदत्तों से की जाती है- (क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत आंकड़े और (ख) व्यवस्थित/वर्गीकृत आंकड़े।

(क) अव्यवस्थित/ अवर्गीकृत समंकों से मध्यांक की गणना : मध्यांक को संकेताक्षर (M) से दिखाया जाता है। मध्यांक निकालने की सबसे सीधी विधि यह है कि इसमें सबसे पहले प्राप्तांकों को क्रम से न्यूनतम से अधिकतम की दिशा में व्यवस्थित किया जाता है और फिर उसमें से बीच के प्राप्तांक को लिया जाता है और फिर निम्न सूत्र की सहायता से मध्यांक ज्ञात किया जाता है-

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{वां पद}$$

अवर्गीकृत / अव्यवस्थित आंकड़े दो स्थितियों में होते है- जब प्राप्तांकों की संख्या विषम होती है और जब प्राप्तांकों की संख्या सम होती है।

उदाहरण : जब प्राप्तांकों की संख्या विषम होती है, निम्न प्रदत्तों की सहायता से मध्यांक ज्ञात कीजिए-

प्राप्तांक/प्रदत्त	2	5	9	8	7	6	4

हल (Soluation)

पहले प्रदत्तों को इस प्रकार आरोही क्रम में व्यवस्थित करेंगे-

प्राप्तांक/प्रदत्त	2	4	5	6	7	8	9

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{वां पद}$$

टिप्पणी

$$M = \left(\frac{7+1}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = \left(\frac{8}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = (4) \text{ वां पद}$$

$$M = 6$$

उदाहरण

जब प्राप्तांकों की संख्या सम होती है, निम्न प्रदत्तों की सहायता से मध्यांक ज्ञात कीजिए-

प्राप्तांक / प्रदत्त	12	15	19	11	18	17	16	14

हल (Soluation)

पहले प्रदत्तों को इस प्रकार आरोही क्रम में व्यवस्थित करेंगे-

प्राप्तांक / प्रदत्त	11	12	14	15	16	17	18	19

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = \left(\frac{8+1}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = \left(\frac{9}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = (4.5) \text{ वां पद}$$

$$M = 4^{th} + 5^{th} / 2$$

$$M = \left(\frac{15+16}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = \left(\frac{31}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = (15.5)$$

उदाहरण

प्राप्तांक / प्रदत्त	11	12	14	15	16	17	18	19
आवृत्ति	3	7	9	10	9	6	5	2

हल

इसमें सबसे पहले संचयी आवृत्ति तैयार करते हैं-

प्राप्तांक / प्रदत्त	11	12	14	15	16	17	18	19	
आवृत्ति	3	7	9	10	9	6	5	2	N 51
संचयी आवृत्ति	3	10	19	29	38	44	49	51	

$$M = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = \left(\frac{51+1}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = \left(\frac{52}{2}\right) \text{ वां पद}$$

$$M = (26) \text{ वां पद}$$

यह पद संचयी आवृत्ति में 29 के अन्तर्गत है अतः इसके सामने वाला X मूल्य ही मध्यांक (M) होगा। यहाँ M =15 है।

(ख) व्यवस्थित/ वर्गीकृत समंकों से मध्यांक की गणना : व्यवस्थित/ वर्गीकृत प्राप्तांकों से मध्यांक की गणना निम्न सूत्र से ज्ञात की जाती है–

$$M = L + \frac{i}{f}(m-c) \qquad m = \frac{N}{2}$$

M = मध्यांक

L = मध्यांक वर्ग की निचली सीमा

f = मध्यांक वर्ग की आवृत्ति

c =मध्यांक वर्ग के ऊपर वाली संचयी आवृत्ति

i = मध्यांक वर्ग का वर्ग अन्तराल

उदाहरण (Solution)

100 विद्यार्थियों के निम्नांकित प्राप्तांकों से मध्यांक ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
आवृत्ति	8	30	40	12	10

हल

इसमें सबसे पहले संचयी आवृत्ति तैयार करते हैं–

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	संचयी आवृत्ति (cf)
0-10	8	8
10-20	30	38
20-30	40	78 …………... median group
30-40	12	90
40-50	10	100
	100	

L = 20 f = 40 c = 38 i = 10

$$M = L + \frac{i}{f}(m-c) \qquad m = \frac{100}{2} = 50$$

टिप्पणी

टिप्पणी

$$M = 20 + \frac{10}{40}(50 - 38)$$

$$M = 20 + \frac{1}{4}(12)$$

$$M = 20 + \frac{12}{4}$$

$$M = 20 + 3$$

$$M = 23$$

जब माध्यिका मान वाले वर्गान्तर की आवृत्तियां शून्य हों

उदाहरण

वर्ग अन्तराल	90-99	80-89	70-79	60-69	50-59	40-49	30-39	20-29	10-19
आवृत्ति	2	1	0	0	2	0	0	3	2

हल (Solution)

वर्ग विस्तार (C.I)	आवृत्तियाँ (f)	संचयी आवृत्ति (cf)	वास्तविक वर्ग अन्तराल
90-99	2	10	89.5- 99.5
80-89	1	8	79.5-89.5
70-79	0	7	69.5-79.5
60-69	0	7	59.5-69.5
50-59	2	7	49.5-59.5……..Md_2
40-49	0	5	39.5-49.5
30-39	0	5	29.5-39.5
20-29	3	5	19.5-29.5 ……..Md_1
10-19	2	2	09.5-19.5
	10		

$$m = \frac{10}{2} = 5$$

Md_2= 50-59

Md_1 =20-29

चूँकि N/2 ज्ञात करने के लिए सभी आवृत्तियों का योग करना पड़ता है। यहाँ यह संख्या 5 है जो (20-29) अर्थात् 39.5 से नीचे 9 आवृत्तियाँ हैं। इसी प्रकार दूसरी बार यह मूल्य (50-59) में पड़ रहा है। इन दोनों वर्गान्तरों को मिलाकर एक नया वर्गान्तर बनाया जाएगा, जो 20-59 में आता हो तथा फिर इसे वास्ताविक वर्गान्तर में बदलने के लिए निम्न सीमा से 0.5 घटा देते हैं और उच्च सीमा में 0.5 जोड़ देते हैं। इस प्रकार वर्गान्तर की वास्तविक सीमाएँ 19.5 -59.5 होंगी तो ऐसी स्थिति में मध्यांक निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाएगा -

मध्यांक $m = \frac{19.5 + 59.5}{2}$

मध्यांक = $m = \frac{79}{2}$ मध्यांक $= m = 39.5$

उपरोक्त उदाहरण के लिए एक दूसरी विधि का प्रयोग किया जा सकता है-

मध्यांक $m = \frac{Md_1 + Md_2}{2}$

टिप्पणी

Md_1 का हल

$$Md_1 = U - \frac{i}{f}(m - c)$$

$$Md_1 = 29.5 - \frac{10}{3}(5 - 2)$$

$$Md_1 = 29.5 - \frac{30}{3}$$

$$Md_1 = 29.5 - 10$$

$$Md_1 = 19.5$$

Md_2 का हल

$$M = U - \frac{i}{f}(m - c)$$

$$Md_2 = 59.5 - \frac{10}{2}(5 - 5)$$

$$Md_2 = 59.5 - \frac{00}{4}$$

$$Md_2 = 59.5 - 00$$

$$Md_2 = 59.5$$

अब

मध्यांक $m = \frac{19.5 + 59.5}{2}$

मध्यांक = $m = \frac{79}{2}$ मध्यांक $= m = 39.5$

माध्यिका का व्याख्यात्मक प्रयोग

मध्यांक को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. मध्यांक, वितरण का मध्य बिन्दु होता है अतः वितरण के आधे प्राप्तांक मध्यांक मान से ऊपर तथा आधे प्राप्तांक नीचे होते हैं।
2. जब किसी वितरण के प्राप्तांकों का विचलन असामान्य होता है तो ऐसी स्थिति में मध्यमान की अपेक्षा मध्यांक अधिक उपयोगी होता है।
3. मध्यांक किसी वितरण के प्राप्तांकों की गुणात्मक व्याख्या के लिए अन्य केन्द्रवर्ती मानों (मध्यमान बहुलांक) की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।
4. मध्यांक मान को वितरण के किनारों पर स्थित प्राप्तांक अधिक प्रभावित नहीं करते है।

मध्यांक की सीमाएँ

1. मध्यांक, मध्यमान की अपेक्षा अधिक शुद्ध मान होता है।
2. मध्यांक किसी वितरण के प्राप्तांकों का स्थितिमान होता है। अत: मध्यांक को ज्ञात करने के लिए वितरण के प्राप्तांकों को स्थिति क्रम में सजाना आवश्यक होता है। वितरण बड़ा होने पर समय एवं शक्ति व्यय होती है।
3. मध्यांक की गणना केवल अपूर्ण एवं विकृत वितरण में ही की जाती है।

4.3.3 बहुलक : अवर्गीकृत व वर्गीकृत समंकों से बहुलक की गणना, बहुलक का व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं

एक वितरण में प्राप्त प्राप्तांकों में जिस प्राप्तांक की आवृत्ति सर्वाधिक होती है उसे उस वितरण का बहुलक कहा जाता है। यह मूल्यों के अधिकतम संकेन्द्रण का बिन्दु बहुलक कहलाता है। बहुलक किसी समूह का वह प्राप्तांक है जिसकी उस समूह के प्राप्तांकों में सबसे अधिक आवृत्ति होती है। बहुलक को संकेताक्षर Z द्वारा दर्शाया जाता है।

प्रो. गिलफर्ड के अनुसार, *"किसी वितरण में वह प्राप्तांक जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक होती है।"*

क्राक्सटन एवं काउडन के अनुसार, "एक समंक श्रेणी का बहुलक वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयाँ अधिक से अधिक केन्द्रित होती हैं। उसे मूल्यों की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी मूल्य माना जाता है।"

क्रो व क्रो के अनुसार, "प्राप्तांकों के समूह में जिस अंक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है बहुलक कहलाता है।"

बहुलांक की गणना (Computation of Mode): बहुलांक मान भी दो प्रकार के प्रदत्तों से ज्ञात किया जाता है- (क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत प्रदत्त (Unorganised Data), (ख) व्यवस्थित/वर्गीकृत प्रदत्त (Unorganised Data)

(क) अव्यवस्थित/अवर्गीकृत प्रदत्तों से बहुलक की गणना : बहुलक हेतु किसी सूत्र का प्रयोग नहीं किया जाता है। केवल सर्वेक्षण विधि के द्वारा यह देखा जाता है कि जो प्राप्तांक अधिकतम प्रयोग हुआ है उसे बहुलक कहते हैं।

उदाहरण

प्राप्तांक	8	6	5	8	10	9	15	8	4	2	11	8

चूँकि इस सारणी में प्राप्तांक 8 की आवृत्ति सबसे अधिक(4) बार हुई है अत: यहाँ बहुलक (Z) 8 होगा।

कभी-कभी दो या दो से अधिक प्राप्तांकों की आवृत्ति समान होती है तो ऐसी स्थिति में बहुलक ज्ञात करने के लिए निम्न नियम का पालन किया जाता है-जिन प्राप्तांकों की संख्या व आवृत्तियां सर्वाधिक और आपस में समान होती हैं उन दोनों प्राप्तांकों का औसत ज्ञात ही बहुलक होता है।

उदाहरण

प्राप्तांक	8	6	15	8	10	6	15	8	6	12	6	8

टिप्पणी

यहाँ प्राप्तांक 6 तथा प्राप्तांक 8 दोनों चार-चार बार हैं अत: यहां बहुलक इस प्रकार ज्ञात किया जाएगा-

$$Mode = Z = \frac{8+6}{2} \quad Mode = Z = 7$$

नोट - यदि समूह में सभी अथवा अनेक प्राप्तांकों की संख्या समान होती है तो कोई बहुलक नहीं होता है। जैसे-

उदाहरण

प्राप्तांक 3 6 15 8 10 9 15 3 6 10 9 8

इस समूह में सभी प्राप्तांक दो-दो बार आये हैं अत: किसी भी प्राप्तांक को बहुलक नहीं कहा जा सकता है।

(ख) व्यवस्थित/ वर्गीकृत प्रदत्तों से बहुलक की गणना : जब समूह बहुत बड़ा होता है अथवा विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है तो प्राप्तांकों को स्थिति क्रम में लगाना कठिन होता है और भूल की सम्भावना भी अधिक होती है। ऐसी स्थिति में वितरण को तालिका में परिवर्तित करके बहुलक का मान ज्ञात किया जाता है। इसकी भी दो विधियाँ होती हैं-

(1) अनुमानित बहुलांक ज्ञात करने की विधि : जब विद्यार्थियों के अंकों का वितरण बहुत अधिक हो तो पहले उन्हें व्यवस्थित किया जाता है और फिर सर्वेक्षण विधि द्वारा बहुलक ज्ञात किया जाता है। जिस प्राप्तांक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है वह प्राप्तांक बहुलक कहलाता है।

उदाहरण

अंकों की एक परीक्षा में 40 विद्यार्थियों के अंकों का वितरण निम्न प्रकार है इसमें बहुलक क्या होगा?

1	7	2	8	5	4	10	5
3	2	5	9	8	9	8	9
7	6	3	8	3	7	10	5
3	4	10	4	8	9	8	9
4	6	10	2	4	1	8	10

हल

प्राप्तांक (X)	आवृत्ति (f)
1	2
2	3
3	4
4	5
5	4
6	2
7	3
8	7
9	5
10	4

यहाँ पर प्राप्तांक 8 की आवृत्ति सर्वाधिक 7 है अत: बहुलक (Z)= 8 होगा।

(2) सूत्र द्वारा बहुलांक ज्ञात करने की विधि : वर्गीकृत प्रदत्तों का बहुलांक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग किया जाता है-

टिप्पणी

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times_i$$

उदाहरण

एक परीक्षा में 100 विद्यार्थियों के अंकों का वितरण निम्न प्रकार है इसमें बहुलक क्या होगा

प्राप्तांक	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
विद्यार्थियों की संख्या	11	17	32	28	12

प्राप्तांक / वर्ग अन्तराल	आवृत्ति
30-40	11
40-50	17 …… f_0
50-60 … L	32…… f_1
60-70	28…… f_2
70-80	12

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times_i$$

$$Z = 50 + \frac{32 - 17}{2(32) - 17 - 28} \times_{10}$$

$$Z = 50 + \frac{15}{(64) - 45} \times_{10}$$

$$Z = 50 + \frac{150}{19}$$

Z=50+7.89

Z=57.89

एक अन्य उदाहरण

एक परीक्षा में 46 विद्यार्थियों के अंकों का वितरण निम्न प्रकार है इसमें बहुलक क्या होगा?

प्राप्तांक	0-9	10-19	20-29	30-39	40-49	50-59	60-69	70-79
विद्यार्थियों की संख्या	2	5	9	10	8	6	4	2

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2}\ i$$

टिप्पणी

$$Z = 29.5 + \frac{10-9}{2(10)-9-8} \times_{10}$$

$$Z = 29.5 + \frac{1}{(20)-17} \times_{10}$$

$$Z = 29.5 + \frac{10}{3}$$

$$Z = 29.5 + 3.33$$

$$Z = 32.83$$

कभी-कभी समूहन के बाद यह ज्ञात होता है कि दो या अधिक वर्गों की आवृत्तियाँ समान रूप से अधिकतम बार पाई जाती हैं तो ऐसी स्थिति में अलग-अलग वर्गों तथा निकटवर्ती वर्गों की आवृत्तियों को जोड़कर जोड़ों की तुलना की जाती है। जिस वर्ग का योग अधिक होता है उसे बहुलक वर्ग माना जाता है। और निम्न वैकल्पिक सूत्र से बहुलक ज्ञात किया जाता है-

$$Z = \frac{f_2}{f_0 + f_2} \times i$$

उदाहरण-

वर्गान्तर	आवृत्ति	दो–दो के जोडे		तीन–तीन के जोडे			अधिकतम आवृत्ति वाले समूह	
	(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)		
10-20	5							
20-30	9	14	22	27			I	1
30-40	13				43		II	2
40-50	21	34	41			56	IIIII	5
50-60	20			56			IIIII	5
60-70	15	35	23		43		III	3
70-80	8					26	I	1
80-90	3							

उपरोक्त सारणी में 40-50 तथा 50-60 दोनों वर्गों में अधिकतम आवृत्ति 5-5 है अत: दोनों में से बहुलक वर्ग छाँटने के लिए निम्न विधि का प्रयोग किया जाता है-

40–50	50–60
13 f_0	21 f_0
21 f_1	20 f_1
20 f_2	15 f_2
54	56

इस प्रकार 50-60 वाला वर्ग बहुलक वर्ग है क्योंकि इस समूह का योग ज्यादा है जिसकी आवृत्ति 20 है और इससे नीचे की आवृत्ति 21 है। यहाँ $f_0 > f_1$ है । अत: वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग किया जाएगा

टिप्पणी

$$Z = L + \frac{f_2}{f_0 + f_2} \times i$$

$$Z = 50 + \frac{15}{21+15} \times 10$$

$$Z = 50 + \frac{150}{36}$$

$$Z = 50 + 4.166$$

$$Z = 54.166 \, or \, 54.17$$

सही बहुलक निकालने की विधि : सही बहुलक ज्ञात करने के लिए पहले मध्यमान निकाला जाता है। फिर मध्यांक ज्ञात किया जाता है। और उसके बाद निम्न सूत्र के माध्यम से बहुलक ज्ञात किया जाता है। ऐसा भी कहा जा सकता है कि जब किसी वितरण से मध्यमान एवं मध्यांक तथा बहुलक भी ज्ञात करना हो तो बहुलक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$Z = 3M - 2X$$

निम्न प्रदत्तों की सहायता से मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलक ज्ञात कीजिए-

प्राप्तांक	10-19	20-29	30-39	40-49	50-59	60-69	70-79	80-89	90-99
आवृत्ति	2	3	5	4	12	9	8	5	2

हल

वर्ग अन्तराल	वास्तविक वर्ग अन्तराल	आवृत्ति	c.f	m.v (x)	dx (X-A)	fdx	
10-19	9.5- 19.5	2	2	14.5	-4	-8	m= n/2
20-29	19.5-29.5	3	5	24.5	-3	-9	m=50/2=25
30-39	29.5-39.5	5	10	34.5	-2	-10	
40-49	39.5-49.5	$4f_0$	14c	44.5	-1	-4	
50-59	49.5-59.5	$12f_1$	26	54.5	0	0	
60-69	59.5-69/5	$9f_2$	35	64.5	1	9	
70-79	69.5-79.5	8	43	74.5	2	16	
80-89	79.5-89.5	5	48	84.5	3	15	
90-99	89.5-99.5	2	50	94.5	4	8	
		50				-31+48=17	

मध्यमान (X)

$$\overline{x} = A + \frac{\sum fdx}{N} \times i$$

$$\overline{x} = 54.5 + \frac{17}{50} \times 10$$

$$54.5 + \frac{170}{50}$$

$$54.5 + 3.4$$

$$57.9$$

मध्यांक (M)

$$M = L + \frac{i}{f}(m - c)$$

$$M = 49.5 + \frac{10}{12}(25 - 14)$$

$$M = 49.5 + \frac{10}{12}(11)$$

$$M = 49.5 + \frac{110}{12}$$

$$M = 49.5 + 9.166$$

$$M = 58.67$$

बहुलाक (Z)

$$Z = L + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times 10$$

$$Z = 49.5 + \frac{12 - 4}{2(12) - 4 - 9} \times 10$$

$$Z = 49.5 + \frac{8}{(24) - 13} \times 10$$

$$Z = 49.5 + \frac{80}{11}$$

$$Z = 49.5 + 7.27$$

$$Z = 56.77$$

अब बहुलक इस सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाएगा- $Z= 3M-2X$

$Z = 3(58.67)-2(57.9) \quad Z= (176.01)- (115.8) \quad Z=60.21$

टिप्पणी

जब केवल बहुलक ही ज्ञात करना होता है तो उपरोक्त सूत्र का प्रयोग करना ही अधिक उपयोगी रहता है क्योंकि पहली विधि में यदि किसी भूलवश मध्यमान या मध्यांक में से कोई एक गलत हो जाए तो बहुलक स्वत: गलत हो जाएगा।

बहुलक के गुण

बहुलक को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. किसी समूह के प्राप्तांकों का बहुलांक बहुत सरलता से ज्ञात किया जा सकता है, असामान्य प्राप्तांकों का भी।
2. किसी समूह के प्राप्तांकों के बहुलांक का मान प्राप्तांकों के ग्राफ द्वारा भी ज्ञात किया जा सकता है। यह वह बिन्दु है जिस पर आवृत्ति वक्र की ऊँचाई सबसे अधिक होती है।
3. यदि किसी समूह के कुछ प्राप्ताकों का मान अन्य प्राप्तांकों के मान की अपेक्षा बहुत अधिक अथवा बहुत कम होता है तो उस स्थिति में भी उस समूह के प्राप्तांकों का बहुलांक प्रभावित नहीं होता।
4. यह किसी समूह के प्राप्तांकों की गुणात्मक व्याख्या के लिए अधिक उपयोगी होता है।

बहुलक की सीमाएं

बहुलक की कुछ सीमाएं भी हैं जो निमनलिखित हैं–

1. जब किसी समूह में कोई भी प्राप्तांक नहीं होता अथवा दो से अधिक ऐसे प्राप्तांक जिनमें बहुत अधिक अन्तर होता है, बहुलांक की श्रेणी में आते हैं तो उस स्थिति में बहुलांक अर्थहीन होता है।
2. बहुलांक एक अनुमानित केन्द्रवर्ती मान होता है इसलिए सांख्यिकीय गणनाओं के लिए यह कम उपयोगी होता है।

बहुलक की शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता एवं महत्व

यूँ तो बहुलक अन्य केन्द्रवर्ती मानों, मध्यमान एवं मध्यांक की अपेक्षा कम विश्वसनीय होता है फिर भी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ ऐसी परिस्थितियां होती हैं, जब इसका प्रयोग किया जाता है-

1. जब किसी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति का अनुमान लगाना होता है तब बहुलांक मान का उपयोग किया जाता है।
2. जब किसी समूह की सर्वाधिक पसन्दों या उपलब्धियों का पता लगाना हो तो तब भी बहुलांक का ही प्रयोग किया जाता है।
3. जब किसी समूह के बहुचर्चित मान का पता लगाना होता है तब भी बहुलक का प्रयोग किया जाता है।

टिप्पणी

4. जब मध्यमान या मध्यांक निकालने के लिए समय नहीं होता तब सरलता से बहुलांक ज्ञात करना लिया जाता है और उससे काम चला लिया जाता है।
5. जब शैक्षिक शोधों के क्षेत्र में उपकल्पनाओं का निर्माण करना होता है, तब कभी-कभी बहुलांक का प्रयोग किया जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. मध्यांक को किस संकेताक्षर से दर्शाया जाता है?

   (क) X (ख) M

   (ग) N (घ) Z

6. प्राप्तांकों के समूह में जिस अंक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, वह क्या कहलाता है?

   (क) गुणक (ख) मध्यमान

   (ग) मध्यांक (घ) बहुलक

7. बहुलक को किस संकेताक्षर के द्वारा दर्शाया जाता है?

   (क) O (ख) T

   (ग) X (घ) Z

4.4 विचलनशीलता की माप

विचलनशीलता या विक्षेपण की मापों का अर्थ है– विचलनशीलता के मापन की विधियां। विचलनशीलता के मापों की सहायता से एक समूह की सजातीयता और विषमजातीयता का मापन किया जाता है। एक समूह में विचलनशीलता, जितनी अधिक होती है, समूह में विषमजातीयता उतनी ही अधिक पाई जाती है तथा समूह में सजातीयता उतनी ही अधिक मात्रा में होती है।

विभिन्न मानसिक गुणों की दृष्टि से यदि एक छात्रों का समूह सजातीय है तो ऐसे समूह को शिक्षित और प्रशिक्षित करना अधिक सरल होता है। दूसरी ओर विषमाजतीय समूह के बालकों को शिक्षा देना कठिन होता है क्योंकि रुचि, आयु तथा अन्य मानसिक योग्यताओं की दृष्टि से उनमें पर्याप्त अंतर होता है।

विक्षेपण को उस सांख्यिकी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक के चारों ओर वस्तुओं के छितराव/बिखराव के विस्तार को दर्शाता है।

4.4.1 विचलनशीलता का अर्थ

विचलनशीलता से तात्पर्य प्राप्तांकों के वितरण या फैलाव से है, यह फैलाव प्राप्तांकों की केंद्रीय प्रवृत्ति के चारों ओर होता है।

विक्षेपण के मापक को 'निरपेक्ष रूप' में अथवा 'सापेक्ष रूप' में प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे तब निरपेक्ष रूप में कहा जाता है, जब यह वह वास्तविक परिमाण बताता है, जिसके द्वारा वस्तु का मान केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक से औसत विचलित होता है। निरपेक्ष मापकों को ठोस इकाइयों में प्रदर्शित किया जाता है, मुख्यतः उन इकाइयों में, जिनमें आंकड़ों को प्रदर्शित किया जा चुका है, जैसे– रुपयों, सेंटीमीटर, किलोमीटर इत्यादि में; इनका प्रयोग आवृत्ति वितरण का विवेचन करने में भी किया जाता है।

विक्षेपण के सापेक्ष मापक की गणना, गुणवत्ता द्वारा इस संदर्भ में निरपेक्ष मापकों को भाग देते हुए की जाती है, जिसमें निरपेक्ष विचलन की गणना कर ली गयी है। यह अपने आप में शुद्ध संख्या है एवं इसे प्रायः प्रतिशत रूप में प्रदर्शित किया जाता है। दो अथवा अधिक वितरणों के मध्य तुलनाएं करने के लिए सापेक्ष मापकों का प्रयोग किया जाता है।

विक्षेपण के मापक में वे समस्त अभिलक्षण होने चाहिए, जिन्हें केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक के लिए आवश्यक माना जाता है, जैसे–

(1) यह सभी अवलोकनों पर आधारित हो।
(2) इसे सहजता से समझा जा सके।
(3) इसकी गणना स्पष्टतया सरलता से की जाए।
(4) इस पर प्रतिदर्शन के उतार–चढ़ावों का जितना हो सके, कम प्रभाव पड़े।
(5) इसे बीजगणितीय उपचार में प्रयोग किया जा सके।

विचलनशीलता के मापों का प्रकार

शिक्षा के क्षेत्र में प्रायः निम्नलिखित विचलनशीलता के मापों का उपयोग किया जाता है–(1) प्रसार, (2) मध्यमान विचलन, (3) चतुर्थक विचलन, (4) मानक विचलन, एवं (5) विचलन गुणांक।

4.4.2 परास की अवधारणा

एक अंक वितरण की विचलनशीलता का माप परास है। परास का अर्थ उस मान से है, जो एक अंक वितरण के उच्चतम प्राप्तांक को न्यूनतम प्राप्तांक से घटाने पर प्राप्त होता है। इसका सूत्र निम्न है– परास = उच्चतम प्राप्तांक – न्यूनतम प्राप्तांक।

प्रकीर्णन का सबसे सरल मापक वितरण का परास है। किसी शृंखला का परास उस शृंखला के उच्चतम व न्यूनतम मानों के मध्य का अंतर है। यदि एक परीक्षा में 248 शिक्षार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों को आरोही क्रम में विन्यस्त किया जाये तो परास उच्चतम व न्यूनतम अंकों के मध्य के अंतर के समतुल्य होगा।

आवृत्ति वितरण में परास को वितरण के निम्नतम छोर के वर्ग की निम्नतम सीमा एवं वितरण के ऊपरी छोर के वर्ग की उच्चतम सीमा के मध्य अंतर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

टिप्पणी

निम्न तालिका में प्रदर्शित चार कार्यशालाओं में श्रमिकों के साप्ताहिक अर्जन (कमायी) के आंकड़ों का विचार करें–

तालिका : चार कार्यशालाओं में श्रमिकों के साप्ताहिक अर्जन के आंकड़े

साप्ताहिक अर्जन ₹	श्रमिकों की संख्या			
	कार्यशाला A	**कार्यशाला** B	**कार्यशाला** C	**कार्यशाला** D
15–16	...	...	2	...
17–18	...	2	4	...
19–20	...	4	4	4
21–22	10	10	10	14
23–24	22	14	16	16
25–26	20	18	14	16
27–28	14	16	12	12
29–30	14	10	6	12
31–32	...	6	6	4
33–34	...	...	2	2
35–36	...	...	...	...
37–38	...	...	4	...
कुल योग	80	80	80	80
माध्य	25.5	25.5	25.5	25.5

कार्यशाला	**परास**
A	9
B	15
C	23
D	15

उपरोक्त तालिका में दर्शाये इन आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि परास अधिक होने से समूह में मानों का भिन्न अधिक है।

परास, निरपेक्ष प्रकीर्णन का मापक है एवं इसका प्रयोग यथावत् भिन्न–भिन्न इकाइयों में व्यक्त दो वितरणों की भिन्नताओं की तुलना करने के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। प्रकीर्णन की मापित राशि (जैसे कि पाउंड्स में) की तुलना इन्चेज़ में मापित प्रकीर्णन से नहीं की जा सकती। इस प्रकार आपेक्षिक प्रकीर्णन के मापन की आवश्यकता अनुभव की गयी।

निरपेक्ष मापक को आपेक्षिक मापक में परिणत किया जा सकता है, यदि इसे हम प्रयोजन के लिए किसी अन्य मान को मानक के रूप में मानते हुए इस मानक से भाग दें तो। हम वितरण के माध्य अथवा किसी अन्य स्थैतिक औसत का प्रयोग मानक के रूप में कर सकते हैं।

उपरोक्त तालिका के लिए आपेक्षिक प्रकीर्णन होगा–

कार्यशाला $A = \frac{9}{25.5}$ कार्यशाला $C = \frac{23}{25.5}$

टिप्पणी

कार्यशाला $B = \frac{15}{25.5}$ कार्यशाला $D = \frac{15}{25.5}$

निरपेक्ष भिन्न को आपेक्षिक में बदलने की एक वैकल्पिक विधि के रूप में चरम सीमा के कुलयोग का प्रयोग मानक के रूप में किया जाएगा। यह चरम सीमा के आइटम्स के कुल योग से चरम सीमा के आइटम्स के अंतर को भाग देने के समतुल्य होगा। इस प्रकार–

$$\text{Relative Dispersion} = \frac{\text{Difference of extreme items, i.e, Range}}{\text{Sum of extreme items}}$$

शृंखला के आपेक्षिक प्रकीर्णन को प्रकीर्णन–गुणांक अथवा प्रकीर्णन का अनुपात कहा जाता है। पूर्व में हमारे द्वारा श्रमिकों के साप्ताहिक अर्जन के उदाहरण में गुणांक निम्नानुसार होंगे–

कार्यशाला $A = \frac{9}{21+30} = \frac{9}{51}$ कार्यशाला $B = \frac{15}{17+32} = \frac{15}{49}$

कार्यशाला $C = \frac{23}{15+38} = \frac{23}{53}$ कार्यशाला $D = \frac{15}{19+34} = \frac{15}{53}$

परास की गणना

परास की गणना का निर्धारण समंकमाला के दो सीमांत मूल्यों से किया जाता है तथा यह वितरण के सबसे अधिक मूल्य तथा सबसे कम मूल्य का अंतर होता है।

सूत्रानुसार

परास = अधिकतम मूल्य – न्यूनतम मूल्य

उदाहरण

निम्नलिखित शृंखला (अकेली शृंखला) में परास और उसके गुणांक की गणना कीजिए–

96, 180, 98, 75, 270, 80, 102, 100, 94.

हल

यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 270

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 75

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (270–75) = 195

और परास का गुणांक $= \frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(270-75)}{(270+75)} = \frac{195}{345} = 0.56$

उदाहरण

निम्नलिखित (अलग) शृंखला में परास और उसके गुणांक की गणना कीजिए–

मासिक औसत (in ₹)	100	150	200	250	300	500
मजदूरों की संख्या	30	20	15	10	4	1

हल

यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 500

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 100

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (500–100) = 400

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(500-100)}{(500+100)}$ = 0.66

टिप्पणी

उदाहरण

निम्नलिखित (लगातार) शृंखला में परास और उसके गुणांक की गणना कीजिए।

आकार	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60
आवृत्ति	8	15	20	5	3

हल

यहां, L = आइटम का सबसे बड़ा मूल्य = 60

और S = आइटम का सबसे छोटा मूल्य = 10

इसलिए, परास (R) = (L–S) = (60– 10) = 50

और परास का गुणांक = $\frac{(L-S)}{(L+S)} = \frac{(60-10)}{(60+10)}$ = 0.714

परास के लाभ

परास के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. इसे समझना सरल है।
2. इसकी संगणना सरल है।
3. एक अंक–वितरण के सभी प्राप्तांकों का प्रभाव, मध्यमान विचलन की गणना पर पड़ता है, अतः उस अंक वितरण का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।
4. मध्यमान विचलन की प्रकृति को आसानी से समझा जा सकता है।
5. इस पर चरम मदों का प्रभाव कम पड़ा है।

परास की सीमाएं

परास में भिन्नता की अवधारणा के रूप में निम्नांकित सीमाएं निहित हैं–

1. चूंकि यह समग्र वितरण में दो चरम प्रकरणों पर आधारित है, अतः परास तब अत्यधिक परिवर्तित हो सकता है। यदि एक भी चरम प्रकरण घट गया तो किसी अन्य प्रकरण की निकासी से कोई प्रभाव नहीं पड़ने वाला।
2. इससे केंद्रीय प्रवृत्ति के मापक के सापेक्ष शृंखला में मानों के वितरण के विषय में कुछ पता नहीं चलता।
3. यदि वितरण में ओपन–एंड क्लोसेज़ हों तो इसकी संगणना नहीं की जा सकती।
4. इसमें संपूर्ण आंकड़ों को ध्यान में नहीं रखा जाता। इसे निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है। निम्न तालिका में प्रदत्त आंकड़े देखिए–

टिप्पणी

तालिका : समान संख्या के किंतु भिन्न भिन्नता वाले प्रकरणों का वितरण

वर्ग	शिक्षार्थियों की संख्या		
	अनुभाग A	अनुभाग B	अनुभाग C
0–10	...	...	...
10–20	1	...	...
20–30	12	12	19
30–40	17	20	18
40–50	29	35	16
50–60	18	25	18
60–70	16	10	18
70–80	6	8	21
80–90	11	...	...
90–100	...	...	...
महायोग	110	110	110
परास	80	60	60

इस तालिका की रचना करते हुए समान संख्या के किंतु भिन्न, भिन्नता वाले तीन वितरणों को प्रदर्शित किया गया है। अनुभाग A से दो सीमांत शिक्षार्थियों को हटा देने से इसका परास B अथवा **C** के समतुल्य हो जाएगा।

A का अधिक परास 110 शिक्षार्थियों के समूचे समूह का विवरण नहीं है वरन् मात्र दो सीमांत शिक्षार्थियों का विवरण है। अनुभागों B व C में परास समान है। अनुभाग B में शिक्षार्थी समूह केंद्रीय प्रवृत्ति की ओर अधिक थे, जबकि अनुभाग C में ऐसी स्थिति नहीं थी। इस प्रकार, परास में B की अधिक समांगता अथवा C के अधिक प्रकीर्णन का पता नहीं चलता। इस प्रभाव के कारण प्रकीर्णन के मापक के रूप में इसका प्रयोग यदा–कदा किया जाता है।

परास के विशिष्ट उपयोग

प्रकीर्णन के मापक के रूप में परास के बहुसंख्य परिसीमनों के बावजूद यह निम्नांकित परिस्थितियों में सर्वाधिक उपयोगी रहता है–

(क) उन परिस्थितियों में, जहां छोरों में ऐसी कोई दुविधा हो, जहां तैयारी की जानी हो। उन परिस्थितियों में वितरण के विषय में कुछ और जानने से अधिक महत्वपूर्ण यह जानना हो सकता है कि सर्वाधिक छोर–प्रकरण कौन–कौन–से आने वाले हैं। उदाहरण हेतु कोई यात्री उस अंचल के न्यूनतम व अधिकतम तापक्रम को जानना चाहेगा, जहां वह जाने की योजना बना रहा है। तूफान के पानी की निकासी हेतु विनिर्माण–कार्य करने के लिए 24 घंटों के दौरान अधिकतम वर्षा को जानने की इच्छा अभियंता को होगी।

(ख) प्रतिभूतियों की कीमतों के अध्ययन में परास का विशेष महत्व होता है। बुलियन अथवा शेयर्स की कीमतों में उच्चावचन (उतार–चढ़ाव) दर्शाने के लिए परास का प्रयोग लगातार किया जाता है कि किस समयावधि में अधिकतम–न्यूनतम कीमतें कितनी रहीं। यह जानकारी प्रचालकों (ऑपरेटर्स) के अतिरिक्त अन्य

टिप्पणी

व्यक्तियों के लिए भी उपयोगी है क्योंकि इससे बुलियन मार्केट की स्थिरता व निवेश के परिवेश का पता चलता है।

(ग) सांख्यिकीय गुणवत्ता नियंत्रण में परास का प्रयोग भिन्न के मापक के रूप में किया जाता है। उदाहरणार्थ हम उस परास को निर्धारित करते हैं, जिस पर यादृच्छिक कारणों से गुणवत्ता में भिन्नताएं आ सकती हैं, जो कि नियंत्रण–सीमाओं के स्थिरीकरण का आधार है।

4.4.3 चतुर्थक विचलन की अवधारणा : गणना व्याख्यात्मक प्रयोग एवं सीमाएं

किसी भी श्रेणी के तृतीय व प्रथम चतुर्थकों के आधे को चतुर्थक विचलन कहते हैं। चतुर्थक विचलन का दूसरा नाम 'अर्द्ध मध्यांक–चतुर्थक प्रसार' भी है।

चतुर्थक विचलन (QD) अपकिरण की स्थिति मापों पर आधारित माप है। यह माप उस औसतन दूरी को मापता है जिसमें प्रथम तथा तृतीय चतुधिक अध्यका से होते हैं। यह वितरण के प्रथम तथा अंतिम चतुर्थ भाग को छोड़कर मध्य के आधे पदों के विस्तार को मापता है। इस माप को अर्द्ध–अंतर चर्तुथक परास भी कहते हैं। चतुर्थक विचलन ज्ञात करने का सूत्र निम्न है–

$$\text{चतुर्थक विचलन } (Q.D) = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

चतुर्थक विचलन की गणना विधि : चतुर्थक विचलन की गणना विधि को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

(1) दिये हुये अंक वितरण को आरोही क्रम में लिखिए, फिर दी हुई आवृत्तियों को संचित आवृत्तियों में परिवर्तित कीजिए।

(2) सर्वप्रथम Q_1 की गणना कीजिए। इसके बाद Q_3 की।

(3) Q_3 तथा Q_1 का मान प्राप्त कर लेने के बाद Q की गणना, दिये हुए सूत्र की सहायता से कीजिए।

उदाहरण

निम्नलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना कीजिए–

C.I.	f	F
120-124	2	46
115-119	4	44
110-114	6	40
105-109	8	34
100-104	9	26
95-99	7	17
90-94	5	10
85-89	3	5
80-84	2	2
	N=46	

टिप्पणी

हल

Q_1 की गणना–

$$Q = L + \left(\frac{N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$$

यहां, $L = 94.5,\ N/4 = \frac{46}{4} = 11.5, F = 10, f = 7$

सूत्र में, इन मूल्यों को रखने पर

$$Q_1 = 94.5 + \left(\frac{115 - 10}{7}\right) \times 7$$

$$= 94.5 + \frac{1.5 \times 7}{7}$$

$$= 94.5 + 1.5 = 96$$

Q_3 की गणना $= Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$

प्रश्न में $L = 109.5$, $3N/4 = 34.5$, $F = 34$, $F = 6$ $C.I. = 5$

सूत्र में मूल्यों को रखने पर,

$$Q_3 = 109.5 + \left\{\frac{34.5 - 34}{6}\right\} \times 5$$

$$= 109.5 + \frac{.5 \times 5}{6}$$

$$=109.5+.416$$

$$=109.08$$

Q की गणना–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

$$= \frac{109.08 - 96}{2} \quad = \frac{13.08}{2} \quad = 6.54$$

चतुर्थक विचलन की गणना दो विधियों से की जाती है– (क) अव्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थक विचलन, (ख) व्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थक विचलन।

(क) अव्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थक विचलन (Q) की गणना

अव्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना का सूत्र निम्न है–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

टिप्पणी

जबकि
$$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$Q_3 = \left\{\frac{3(N+1)}{4}\right\} \text{पद}$$

गणना विधि–

(1) दी हुई अव्यवस्थित सामग्री से पहले Q_1 फिर Q_3 की गणना कीजिए अंत में सूत्र में Q_3 और Q_1 के मान रखकर Q का मान ज्ञात कर लीजिए।

(2) Q_1 और Q_3 की गणना में केवल N का मान ज्ञात होना आवश्यक है।

(3) Q_1 और Q_3 ज्ञात करने से पहले दिये हुए प्राप्तांकों को क्रम में व्यवस्थित कर लीजिए।

उदाहरण

प्राप्तांक 12, 13, 11, 14, 13, 18, 17, 16, 15

हल

क्रम में व्यवस्थित प्राप्तांक– 11, 12, 13, 13, 14, 15, 16, 17, 18

$N = 9$

Q_1 की गणना :

$$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$= \left(\frac{9+1}{4}\right) \text{पद}$$

$$= \left(\frac{10}{4}\right) \text{पद}$$

$$= 2.5 \text{ पद}$$

$$= 12.5$$

Q_3 की गणना :

$$Q = \left\{\frac{3(N+1)}{4}\right\} \text{पद}$$

$$= \left\{\frac{3(9+1)}{4}\right\} \text{पद}$$

$$= \left(\frac{30}{4}\right) \text{पद}$$

$= 7.5$ पद

$= 16.5$

Q की गणना :

टिप्पणी

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

$$= \frac{16.5 - 12.5}{2}$$

$$= \frac{4}{2} = 2$$

(ख) व्यवस्थित अंक सामग्री से चतुर्थक विचलन *(Q)* की गणना

व्यवस्थित अंक सामग्री से Q की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है—

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

जबकि Q = चतुर्थक विचलन

Q_3 = तृतीय चतुर्थक अथवा वह चतुर्थक, जिसके नीचे 75ः आवृत्तियां होती हैं।

Q_1 = प्रथम चतुर्थक (अर्थात जिसके नीचे 25ः आवृत्तियां हों)

Q_3 की गणना करने का सूत्र—

$$Q_3 = L + \left(\frac{3N/4 - F}{f}\right) \times C.I$$

Q_1 की गणना करने का सूत्र—

$$Q_1 = L + \left(\frac{N/4 - F}{f}\right) \times C.I.$$

यहां

L = उस वर्गांतर की निम्नतम शुद्ध सीमा, जिसके नीचे Q_1 पड़ता है या Q_3 पड़ता है।

F = उस वर्गांतर की नीचे की संचित आवृत्ति, जिसमें Q_1 या Q_3 है।

f = उस वर्गांतर की आवृत्ति, जिसमें Q_1 या Q_3 है।

$C.I.$ = वर्गांतर का आकार।

चतुर्थक विचलन गुणक : चतुर्थक विचलन, विचलनशीलता की निरपेक्ष माप है। इसका सापेक्ष माप, चतुर्थक विचलन गुणक कहलाता है। इसे ज्ञात करने के लिए चतुर्थक विचलन के निरपेक्ष माप को दोनों Q_1 तथा Q_3 के माध्य से भाग दे दिया जाता है। सूत्र के रूप में—

टिप्पणी

$$Q.D = \frac{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}$$

$$Q.D = \frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}$$

चतुर्थक विचलन के गुण

1. इसका समझना व निर्धारण करना सरल है।
2. विचलन के इस माप पर चरम मूल्यों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।
3. जहां श्रेणी के मध्य भाग का ही अध्ययन करना है, वहां इस माप का प्रयोग होता है।

चतुर्थक विचलन के दोष

1. चतुर्थक विचलन, श्रेणी के सभी मूल्यों पर आधारित नहीं होता।
2. इसका बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।
3. निर्देशन– परिवर्तन का इस पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
4. इससे समंकमाला की रचना का ठीक से पता नहीं चलता है।

इसका प्रयोग कब करना चाहिए?

1. जब अंक–वितरण पूर्ण हों।
2. जब प्रमाणिक विचलन की गणना न की जा सके।
3. जब प्रतिदर्श छोटा हो।
4. जब मध्यांक की गणना की गई हो।
5. जब अंक वितरण सामान्य तथा पूर्ण हो।

उदाहरण

निम्न डाटा से चतुर्थक विचलन (या अर्द्ध–अंतःचतुर्थक परास) और उसके गुणांक का पता लगाएं–

आकार	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
आवृत्ति	3	2	5	7	9	5	8	10	2	1

हल

आकार	आवृत्ति	संचित आवृत्ति
1	3	3
2	2	5
3	5	10
4	7	17
5	9	26
6	5	31
7	8	39
8	10	49
9	2	51
10	1	52
		$N = \Sigma f = 52$

टिप्पणी

अब, निचला चतुर्थक

$Q_1 = \left(\frac{N+1}{4}\right)$, वें आइटम का आकार

$= \left(\frac{52+1}{4}\right)$, वें आइटम का आकार या $13\frac{1}{4}$, वां आइटम

= 13वां आइटम + $\frac{1}{4}$, (13वें और 14वें आइटम के बीच अंतर)

$= 4+\frac{1}{4}(4-4)$, क्योंकि $T_{13} = T_{14} = 4$

और ऊपरी चतुर्थक,

$Q_3 = \frac{3(N+1)}{4}$, वें आइटम का आकार

$= \frac{3}{4}$ (52 + 1) वें आइटम का आकार या $39\frac{3}{4}$ वां आइटम

= 39वां आइटम + $\frac{3}{4}$, (39वें और 40वें आइटम के बीच अंतर)

$= \left[7 + \frac{3}{4}(8-7)\right] = 7.75$

इसलिए, अपेक्षित चतुर्थक विचलन = ½ $(Q_3 - Q_1)$ = ½ (7.75 – 4)

= 1.725

और चतुर्थक विचलन का गुणांक,

$= \left(\frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}\right) = \left(\frac{7.75-4}{7.75+4}\right) = 0.32$

उदाहरण

निम्न लगातार श्रृंखला से चतुर्थक विचलन और उसके गुणांक का पता लगाएं–

वजन (पौंड)	व्यक्तियों की संख्या	वजन (पौंड)	व्यक्तियों की संख्या
70–80	12	110–120	50
80–90	18	120–130	45
90–100	35	130–140	20
100–110	42	140–150	8

टिप्पणी

हल– यहां, हमारे पास है–

वजन (पौंड)	आवृत्ति (व्यक्तियों की संख्या)	संचित आवृत्ति (C.F)
70–80	12	12
80– 90	18	30
90–100	35	65
100–110	42	107
110–120	50	157
120–130	45	202
130–140	20	222
140–150	8	230
कुल	$N = \Sigma f = 230$	

यहां $\frac{N}{4} = \frac{1}{4}(230) = 57.5$

$\therefore$ Q_1 = 57.5वें or 58वें आइटम जो 90.100 समूह में निहित हैं।

$$\therefore \quad Q_1 = \left\{L + \left(\frac{\frac{N}{4} - c.f}{f}\right) \times i\right\} = \left\{90 + \left(\frac{\frac{230}{4} - 30}{35}\right) \times 10\right\} = 97.85$$

इसी तरह,

$$\frac{3}{4}N = \frac{3}{4}(230) = 172.5$$

$\therefore$ Q_3 = 172.5वें or 173वें आइटम, जो 120.30 समूह में निहित हैं।

$$\therefore \quad Q_3 = \left\{L + \left(\frac{\frac{3N}{4} - c.f}{f}\right) \times i\right\} = \left\{120 + \left(\frac{\frac{3}{4}(230) - 157}{45}\right) \times 10\right\} = 123.22$$

इसलिए, चतुर्थक विचलन $Q = ½ (Q_3 - Q_1)$

= ½ (123.22 – 97.85) = 12.685

और, चतुर्थक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{Q_3 - Q_1}{Q_3 + Q_1}\right) = \left(\frac{123.22 - 97.85}{123.22 + 97.85}\right) = 0.114$$

माध्य विचलन

एक श्रृंखला के किसी माध्य (समांतर माध्य, माध्यिका या बहुलक) से निकाले गए विचलनों के जोड़े के समांतर माध्य को माध्य विचलन कहा जाता है।

माध्य विचलन किसी केंद्रीय प्रवृत्ति की माप से समंक समूह के मूल्यों के विचलनों का माध्य होता है। इस माप को किसी सांख्यकीय माध्य से प्रत्येक पद–मूल्य या अवलोकन के निरपेक्ष विचलन ज्ञात कर और उन विचलनों का माध्य निकालकर प्राप्त किया जाता है।

कलकि तथा शकाडे के अनुसार, "माध्य विचलन एक वितरण के पदों का माध्य $(\bar{X})$ अथवा माध्यका $(\bar{M})$ से विचलनों के चिन्हों की उपेक्षा करके ज्ञात विचलनों की माध्य मात्र है। विचलनों का माध्य लिया जाता है, इसी कारण इस माप को प्रायः माध्य विचलन कहा जाता है।" माध्य विचलन की गणना में सभी विचलनों को धनात्मक माना जाता है।

माध्य विलचन की गणना विधि : माध्य विचलन की गणना दो प्रकार से की जाती है–

(क) अव्यवस्थित अंक–सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना

1. सर्वप्रथम दी हुई अव्यवस्थित अंक–साम्रगी का मध्यमान (M) ज्ञात कीजिए।
2. इसके बाद प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन ज्ञात कीजिए।
3. मध्यमान से सभी विचलन ज्ञात कर लेने के बाद $\Sigma(d)$ का मान ज्ञात कीजिए।
4. निम्न सूत्र में सभी मान रखकर मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

$$AD = \frac{\Sigma|d|}{N}$$

d	=	मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन
$|d|$	=	d के दोनों ओर खिंची रेखाओं का तात्पर्य है कि विचलन का योगफल निकालते समय धन तथा ऋण चिन्हों का महत्व नहीं दिया जाता है।
N	=	प्राप्तांकों की संख्या
$\Sigma|d|$	=	मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन

उदाहरण

निम्न अव्यवस्थित अंक सामग्री का मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

28, 28, 30, 35, 34, 33, 32, 36

हल

दिए गए प्राप्तांकों को एक पंक्ति में लिखकर मध्यमान निकालिए, फिर मध्यमान से विचलन निम्न प्रकार ज्ञात कीजिए–

X(Score)	X–M = |d|
28	28–32=4
28	28–32=4
30	30–32=2
35	35–32=3
34	34–32=2
33	33–32=1
32	32–32=0
36	36–32=4
	$\Sigma|d| = 20$

मध्यमान की गणना : $M = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{256}{8} = 32$

टिप्पणी

मध्यमान विचलन की गणना :

$$N = 8, \sum|d| = 20$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$AD = \frac{\sum|d|}{N} = \frac{20}{8} = 2.5$$

उदाहरण

कक्षा के परीक्षण में 11 शिक्षार्थियों द्वारा प्राप्त अंकों के निम्नांकित आंकड़ों से माध्य विचलन की गणना कीजिए–

14, 15, 23, 20, 10, 30, 19, 18, 16, 25, 12.

हल

माध्यिका $= \text{The size of the } \frac{11+1}{2} \text{ th item}$

$= \text{size of 6th item 18}$

Serial No.	Marks	| X – Median | | d |
1	10	8
2	12	6
3	14	4
4	15	3
5	16	2
6	18	0
7	19	1
8	20	2
9	23	5
10	25	7
11	30	12
		$\sum \|d\| = 50$

माध्यिका से माध्य विचलन $= \frac{\sum|d|}{N}$

$= \frac{50}{11} = 4.5$ अंक

समूहबद्ध आंकड़ों के लिए निम्न सूत्र द्वारा माध्य विचलन को देखना सरल है–

माध्य विचलन (M.D.) $= \frac{\sum f|d|}{\sum f}$ ...(4)

(ख) व्यवस्थित अंक–सामग्री से मध्यमान विचलन की गणना

1. सर्वप्रथम व्यवस्थित अंक–सामग्री से मध्यमान ज्ञात किया जाता है।
2. मध्यबिंदु का मध्यमान से विचलन ज्ञात किया जाता है।
3. मध्यमान से मध्यबिंदुओं का विचलन ज्ञात करने के पश्चात् इन विचलनों को संबंधित वर्गांतरों की आवृत्तियों से गुणा कीजिए, अर्थात (fd)।

4. अंत में Σfd का मान ज्ञात करके सूत्र में मूल्य को रखकर मध्यमान विचलन (AD) ज्ञात कर लेते हैं।

सूत्र

$$AD = \frac{\sum|fd'|}{N}$$

यहां

d' = मध्यबिंदु के मध्यमान से विचलन।

$\Sigma|d|$ = मध्यमान से मध्य बिंदुओं के विचलनों का योग जब संबंधित आवृत्तियों से गुणा किया गया हो तथा + और – चिह्नों का ध्यान नहीं रखा गया हो।

N = आवृत्तियों का कुल योग।

F = आवृत्तियां।

उदाहरण

अग्रलिखित व्यवस्थित अंक सामग्री से मध्यमान विचलन (AD) ज्ञात कीजिए–

C.I.	f	X Mid-Point	fX	|d'| (X–M)	|fd'|
60-64	1	62	62	19.13	19.13
55-59	2	57	104	14.13	28.26
50-54	3	52	156	9.13	27.39
45-49	4	47	188	4.13	16.52
40-44	6	32	252	.87	5.22
35-39	3	37	111	5.87	17.61
30-34	2	32	64	10.87	21.74
25-29	1	27	27	15.87	15.87
20-24	1	22	22	20.87	20.87
	N = 23		ΣfX = 986		Σ|fd'| =172.61

हल

सर्वप्रथम मध्यमान ज्ञात कीजिए–

$$M = \frac{\sum fX}{N} = \frac{986}{23} = 42.869 = 42.87$$

मध्यमान विचलन की गणना–

$$\sum|fd'| = 172.61, N = 23$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$AD = \frac{\sum|fd'|}{N} = \frac{172.61}{23} = 7.50$$

टिप्पणी

यह अंक सामग्री छोटी विधि द्वारा ज्ञात की गयी है। मध्यमान विचलन के लिए लघु विधि या कल्पित मान का प्रयोग भी किया जाता है।

उदाहरण

निम्नलिखित तालिका से संक्षिप्त विधि द्वारा मध्यमान विचलन ज्ञात कीजिए–

C.I.	f	d	fd	X Mid-Point	|d'| (X–M)	|fd'|
60-64	1	–4	+4	62	20	20
55-59	3	–3	+9	57	15	45
50-54	3	–2	+6	52	10	30
45-49	4	–1	+4	47	5	20
40-44	7	0	0	42	0	0
35-39	3	–1	–3	37	5	15
30-34	3	–2	–6	32	10	30
25-29	2	–3	–6	27	15	30
20-24	2	–4	–8	22	20	40
	N = 28		Σfd = 0			Σ|fd'| = 230

हल

मध्यमान की गणना–

$$M = A + \left(\frac{\sum fd}{N}\right) \times C.I.$$

$$= 42 + \frac{0}{28} \times 5 = 42$$

मध्यमान विचलन की गणना–

$$AD = \frac{\sum|fd'|}{N} = \frac{230}{28} = 8.21$$

जहां समूहबद्ध पृथक् (डिस्क्रीट) आंकड़ों के लिए $|d| = |X - \text{median}|$ एवं समूहबद्ध सतत आंकड़ों के लिए $|d| = M - \text{median}|$ समूह विशेष के मध्य–मान के रूप में M है। इस सूत्र के प्रयोग को निम्न उदाहरणों द्वारा दर्शाया जा रहा है–

उदाहरण

निम्न आंकड़ों से माध्य विचलन की गणना करें–

वस्तु का आकार	6	7	8	9	10	11	12
आवृत्ति	3	6	9	13	8	5	4

टिप्पणी

हल

Size	Frequency f	Cumulative Frequency	Deviations from Median (9) | d |	f | d |
6	3	3	3	9
7	6	9	2	12
8	9	18	1	9
9	13	31	0	0
10	8	39	1	8
11	5	44	2	10
12	4	48	3	12
	48			60

माध्यिका= $\frac{48+1}{2}$ का आकार = 24.5th वस्तु, जो कि 9 है।

इसीलिए विचलनों की गणना 9 अर्थात $|d| = |X-9|$ से की जाती है।

माध्य विचलन= $\frac{\sum f|d|}{\sum f} = \frac{60}{48} = 1.25$

उदाहरण

निम्न आंकड़े से माध्य विचलन की गणना करें–

X	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
f	18	16	15	12	10	5	2	2

हल

यह सतत चर वाला एक आवृत्ति वितरण है। इस प्रकार विचलनों की गणना मध्यमानों से की जाती है।

X	Mid-value	f	Less than *c.f.*	Deviation from median $\|d\|$	$f\|d\|$
0–10	5	18	18	19	342
10–20	15	16	34	9	144
20–30	25	15	49	1	15
30–40	35	12	61	11	132
40–50	45	10	71	21	210
50–60	55	5	76	31	155
60–70	65	2	78	41	82
70–80	75	2	80	51	102
		80			1182

$$\text{Median} = \text{The size of } \frac{80}{2} \text{ th item}$$

$$= 20 + \frac{6}{15} \times 10 = 24$$

and then, Mean Deviation $= \frac{\sum f|d|}{\sum f} = \frac{1182}{80} = 14.775.$

टिप्पणी

उदाहरण

निम्न डेटा निकटतम ग्राम (द्रव्यमान की एक मीट्रिक इकाई) से 20 अंडों के एक नमूने का घन (ग्राम में) देता है–

46, 51, 48, 62, 54, 51, 58, 60, 71, 75, 47, 73, 62, 65, 53, 57, 65, 72, 49, 51

इस नमूने के घन के समांतर माध्य से माध्य विचलन की गणना करें।

हल

यहां, N = आइटम की संख्या = 20

समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{(46+51+48+...+49+51)}{20}$$

$$= \frac{1170}{20} = 58.5 \text{ ग्राम} = M$$

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास हैं–

X	X – M	|X– M|
46	– 12.5	12.5
51	– 7.5	7.5
48	– 10.5	10.5
62	+ 3.5	3.5
54	– 4.5	4.5
51	– 7.5	7.5
58	– 0.5	0.5
60	+ 1.5	1.5
71	+ 12.5	12.5
75	+ 16.5	16.5
47	– 11.5	11.5
73	+ 14.5	14.5
62	+ 3.5	3.5
65	+ 6.5	6.5
53	– 5.5	5.5
57	– 1.5	1.5
65	+ 6.5	6.5
72	+ 13.5	13.5
49	– 9.5	9.5
51	– 7.5	7.5
कुल		Σ|X – M| = 157.0

$$\text{अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma|\ X-M|}{N} = \frac{157.0}{20} \text{ ग्राम} = 7.85 \text{ ग्राम}$$

उदाहरण

पांच मजदूरों की मासिक आय (₹ के हजार में) को 30, 40, 45, 50, 55 के रूप में दिया जाता है। मीडियन से विचलन का पता लगाएं।

हल

N = आइटम की संख्या = 5

आय, पहले से आरोही क्रम में मौजूद थी।

$$\text{मीडियन} = \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ वें आइटम का आकार}$$

= तीसरे आइटम का आकार = ₹ 45 = M

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास है—

X	(X – M) = (X – 45)	|X – M|
30	– 15	15
40	– 5	5
45	0	0
50	+ 5	5
55	+ 10	10
कुल		Σ|X – M| = 35

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma|X-M|}{N} = \frac{35}{5} = 7$

उदाहरण

छात्रों के एक विशिष्ट समूह की गर्दन परिधि का विवरण देते हुए निम्न डेटा के लिए माध्य से माध्य विचलन की गणना करें।

मध्य–मूल्य	30	31.5	33	34.5	36	37.5	39	40.5
छात्रों की संख्या	4	19	30	63	66	29	18	1

हल

तालिकाबद्ध रूप में लिखकर, हमारे पास है—

मध्य–मूल्य (X)	छात्रों की संख्या (f)	d = (X – A) = (X – 36)	fd = f(X – A)
30	4	– 6.0	– 24.0
31.5	19	– 4.5	– 85.5
33	30	– 3.0	– 90.0
34.5	63	– 1.5	– 94.5
36	66	0	0.0
37.5	29	+ 1.5	43.5
39	18	+ 3.0	54.0
40.5	1	+ 4.5	4.5
कुल	Σf = N = 230		Σfd = – 192

(A = 36 मानते हुए)

$$\text{समांतर माध्य} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\}$$

$$= \left\{36 + \left(\frac{-192}{230}\right)\right\} = 35 \text{ सेमी} = M \text{ (कहिए)}$$

अब, माध्य विचलन के लिए गणना निम्न तालिका में दिखाई जा रही है—

x	f	$\|X - M\| = \|X - 35\|$	$f.\|X - M\|$
30	4	5	20
31.5	19	3.5	66.5
33	30	2	60
34.5	63	0.5	31.5
36	66	1	66
37.5	29	2.5	72.5
39	18	4	72
40.5	1	5.5	5.5
	N = 230 (= Σf)		394 (= Σf|x – M|)

$$\therefore \text{ अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma f|\ X-M|}{N} = \frac{394}{230} = 1.77$$

उदाहरण

टिप्पणी

निम्नलिखित श्रृंखला की माध्यिका से माध्य विचलन की गणना करें–

आकार	4	6	8	10	12	14	16
आवृत्ति	2	4	5	3	2	1	4

हल

$N = \Sigma f = 21$

माध्य, $M = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वें आइटम का आकार = 8

आकार (X)	आवृत्ति (f)	संचित आवृत्ति	|X–M| = |X – 8|	f.|X– M|
4	2	2	4	8
6	4	6	2	8
8	5	11	0	0
10	3	14	2	6
12	2	16	4	8
14	1	17	6	6
16	4	21	8	32
	N = Σf = 21			Σf |X – M| = 68

$$\therefore \text{ अपेक्षित माध्य विचलन} = \frac{\Sigma f|X-M|}{N}$$

$$= \frac{68}{21} = 3.24$$

उदाहरण

निम्नलिखित तालिका के लिए माध्य से माध्य विचलन की गणना करें–

अंक	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50
छात्रों की संख्या	5	8	15	16	6

हल

मान लीजिए $A = 25$ (माना गया माध्य)

श्रेणी	आवृत्ति (f)	मध्य–मान (X)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right)$ $\left(\frac{X-25}{10}\right)$	fd	|X–M| =|X–27|	f.|X–M|
0–10	5	5	– 2	– 10	22	110
10–20	8	15	– 1	– 8	12	96
20–30	15	25	0	0	2	30
30–40	16	35	1	16	8	128
40–50	6	45	2	12	18	108
	N = Σf = 50			Σfd = 10		Σf | X – M| = 472

$$\text{समांतर माध्य } M = \left\{A + \left\{\frac{\Sigma fd}{N}\right\} \times i\right\}$$

टिप्पणी

$$= \left\{25 + \left\{\frac{10}{50}\right\} \times 10\right\}$$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma f\,|X - M|}{N}$

$$= \frac{472}{50} = 9.44$$

और, माध्य विचलन का गुणांक

$$= \frac{\text{माध्य विचलन}}{\text{माध्यिका}}$$

$$= \frac{9.44}{27} = 0.35$$

उदाहरण

निम्नलिखित तालिका के माध्य से माध्य विचलन का पता लगाएं–

से नीचे उम्र	10	20	30	40	50	60	70	80
व्यक्तियों की संख्या	15	30	53	75	100	110	115	125

हल

दिए गए आंकड़ों को तालिकाबद्ध रूप में लिखें, हमारे पास है–

श्रेणी	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80
संचित आवृत्ति	15	30	53	75	100	110	115	125
आवृत्ति	15	15 (30–15)	23 (53–30)	22 (75–53)	25 (100–75)	10 (110–100)	5 (115–110)	10 (125–115)

गणना निम्न तालिका में दिखाई जा रही है–

श्रेणी	आवृत्ति (f)	माध्य–मूल्य (X)	$d = \left(\frac{X - A}{i}\right) = \left(\frac{X - 45}{10}\right)$	fd	$\|X–M\|$ $=\|X–35.16\|$	$f\,\|X–M\|$
0–10	15	5	– 4	– 60	+ 30.16	452.40
10–20	15	15	– 3	– 45	+ 20.16	302.40
20–30	23	25	– 2	– 46	+ 10.16	233.68
30–40	22	35	– 1	– 22	+ 0.16	3.52
40–50	25	45	0	0	+ 9.84	246.00
50–60	10	55	+ 1	+ 10	+ 19.84	190.84
60–70	5	65	+ 2	+ 10	+ 29.84	149.20
70–80	10	75	+ 3	+ 30	+ 39.84	398.40
कुल	$N = \Sigma f = 125$			$\Sigma fd =$ $= -123$		$\Sigma f\|X–M\| =$ $= 1976.44$

मान लीजिए, माना गया समांतर माध्य $A = 45$

समांतर (असली) माध्य,

$$M = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{n}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{45 + \left(\frac{-123}{125}\right) \times 10\right\} = 35.16$$

$\therefore$ अपेक्षित माध्य विचलन $= \frac{\Sigma f \mid X - M \mid}{N} = \frac{1976.44}{125} = 15.8$

टिप्पणी

माध्य विचलन के गुण

माध्य विचलन के प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(1) माध्य विचलन को समझना अधिक सरल तथा गणना करना अधिक आसान है।

(2) माध्य विचलन वितरण में माध्य के महत्व को दर्शाता है।

(3) माध्य विचलन की गणना किसी भी माध्य से की जा सकती है।

(4) माध्य विचलन समंकमाला के सभी पदों पर आधारित होता है अतः श्रेणी के प्रत्येक पद का प्रभाव उस पर पड़ता है।

(5) माध्य विचलन गणना पर आधारित होता है अतः यह गणना द्वारा प्राप्त मूल्य होता है।

माध्य विचलन के दोष या सीमाएं

माध्य विचलन में निम्न दोष पाए जाते हैं–

(1) माध्य विचलन उपकिरण की अस्पष्ट तथा अनिश्चित माप है। इस माप को प्रत्येक स्थिति में ज्ञात नहीं किया जा सकता है।

(2) इसमें चरम मूल्यों पर अधिक बल दिया जाता है क्योंकि इसमें मूल्यों के वर्ग लिए जाते हैं।

(3) इसमें सामान्य वक्र के क्षेत्र का निर्धारण नहीं होता है।

(4) चिह्नों का परित्याग कर देने से यह माप गणितीय दृष्टिकोण से अशुद्ध एवं अवैज्ञानिक हो जाती है।

(5) इसका बीजगणितीय विवेचन संभव नहीं है।

4.4.4 मानक विचलन

किसी श्रेणी के समांतर माध्य के निकाले गए उसके विभिन्न मद–मूल्यों के विचलनों के वर्गों का माध्य वर्गमूल, उस श्रेणी का मानक विचलन या प्रमाणिक विचलन कहलाता है। इसे द्वितीय घात का विचलन या मूल मध्यक वर्ग विचलन भी कहते हैं।

मानक विचलन की गणना विधि : मानक विचलन की गणना विधि को निम्न प्रकार से समझाया गया है–

1. सर्वप्रथम दी हुई अंक सामग्री क्रमबद्ध कीजिए फिर सभी अंकों का ΣX और N का मूल ज्ञात करके मध्यमान की गणना कीजिए।
2. प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन, (X–M) करके d प्राप्त कर लिया जाता है। यहां + और – चिह्नों को लगाने की आवश्यकता नहीं है।
3. प्रत्येक विचलन का वर्ग करके d^2 प्राप्त करते हैं।

4. अंतिम चरण में Σd^2 और N का मान SD मान में रखते हैं और गणना करके SD का मान प्राप्त कर लिया जाता है।

उदाहरण

नीचे दी हुई अव्यवस्थित अंक–सामग्री से प्रमाणिक विचलन की गणना कीजिए–

5, 7, 8, 8, 9, 10, 11, 12

हल

सर्वप्रथम मध्यमान निकालिए–

$$M = \frac{\sum X}{N} = \frac{72}{8} = 9$$

प्राप्तांक	X–M=d	d^2
5	5–9=4	16
7	7–9= –2	4
8	8–9= –1	1
9	9–9= –0	0
10	10–9=1	1
10	10–9=1	1
11	11–9=2	4
12	12–9=3	9
		$\Sigma d^2 = 36$

अतः $\Sigma d^2 = 36, \quad N=8$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}} = \sqrt{\frac{36}{8}}$$

$$= \sqrt{4.5}$$

$$= 2.12$$

मानक विचलन की गणना दो प्रकार से की जा सकती है–

(क) अव्यवस्थित अंक–सामग्री से मानक विचलन की गणना

अव्यवस्थित अंक–सामग्री से मानक विचलन की गणना के सूत्र निम्नलिखित हैं। इन सभी सूत्रों से S.D. का समान मान प्राप्त होता है–

प्रथम सूत्र – $S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N}}$

जबकि, d = प्राप्तांकों का मध्यमान से विचलन

Σd^2 = मध्यमान से लिए गए विचलनों के वर्गों का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

द्वितीय सूत्र– $S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N} - (C)^2}$

टिप्पणी

तृतीय सूत्र– $S.D. = \sqrt{\frac{\sum d^2}{N} - (M)^2}$

यहां M = मध्यमान, C = मध्यमान– कल्पित मध्यमान

उदाहरण

निम्न प्राप्तांकों का मानक विचलन, द्वितीय सूत्र द्वारा ज्ञात कीजिए–

7, 8, 8, 10, 11, 13, 14, 15

हल

सर्वप्रथम मध्यमान की गणना कीजिए–

$$M = \frac{\sum x}{N} = \frac{86}{8} = 10.75$$

कल्पित माध्य = 11

C = मध्यमान– कल्पित माध्य

= 10.75 − 11.0 = −0.25

प्राप्तांक	X–Am=d	d^2
7	7–11=–4	16
8	8–11=–3	9
8	8–11=–3	9
10	10–11=–1	1
11	11–11=0	0
13	13–11=2	4
14	14–11=3	9
15	15–11=4	16
N=8		ΣX = 64

$$\Sigma d^2 = 64, \quad C^2 = (-0.25)^2, N=8$$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$S.D. = \sqrt{\frac{64}{8} - (-0.25)^2}$$

$$= \sqrt{8 - 0.06} = \sqrt{7.94} = 2.817$$

(ख) व्यवस्थित अंक–सामग्री से मानक विचलन की गणना

व्यवस्थित अंक–सामग्री से S.D. की गणना के निम्न दो सूत्र प्रचलित हैं–

प्रथम सूत्र– $S.D. = i\sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$

टिप्पणी

द्वितीय सूत्र– $S.D. = {}^{i/N}\sqrt{N(\sum fd^2) - (\sum fd)^2}$

जबकि, $S.D.$ = मानक विचलन

i = वर्गांतर का आकार

Σfd = आवृत्तियों एवं विचलनों का योग

Σfd^2 = विचलनों के वर्ग एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

दीर्घ विधि द्वारा $S.D.$ की गणना का सूत्र,

$$S.D. = \frac{\sum fd^2}{N}$$

जबकि d = मध्य बिंदुओं का मध्यमान से विचलन

Σfd^2 = विचलनों के वर्ग एवं आवृत्तियों के गुणनफल का योग

N = प्राप्तांकों की संख्या

लघु /संक्षिप्त विधि द्वारा $S.D.$ की गणना

उदाहरण

दीर्घ विधि द्वारा प्रमाणिक विचलन की गणना कीजिए–

C.I.	*f*	*X (Midpoint)*	*fX*	*X–M (d)*	*fd*	fd^2
34-36	1	35	35	11.89	11.89	23.78
31-33	2	32	64	8.89	17.78	26.67
28-30	3	29	87	5.89	17.67	23.56
25-27	5	26	130	2.89	14.45	17.34
22-24	6	23	138	0.11	00.66	00.77
19-21	4	20	80	3.11	12.44	15.55
16-18	3	17	51	6.11	18.33	24.44
13-15	2	14	28	9.11	18.22	27.33
10-12	1	11	11	12.11	12.11	24.22
	N=27		ΣfX=624			Σfd^2=183.66

हल

मध्यमान की गणना,

$$M = \frac{\sum fX}{N} = \frac{624}{27} = 23.11$$

दीर्घ विधि से S.D. की गणना–

$$S.D. = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N}}$$

$$= \sqrt{6.802} = 2.608$$

टिप्पणी

दीर्घ गणना विधि

(1) इस विधि द्वारा *S.D.* की गणना करते समय कुछ गणनाएं वैसे ही करनी पड़ती हैं; जैसे मध्यमान में करनी पड़ती हैं।

(2) सर्वप्रथम जिस वर्गांतर की आवृत्ति सर्वाधिक होती है या जो वर्गांतर मध्य में होता है, उसमें कल्पित माध्य (AM) मानकर शून्य लगा देते हैं तथा d और fd की गणना करते हैं। अंत में fd^2 की गणना की जाती है।

(3) गणना के तीसरे चरण में Σfd, Σfd^2 तथा N और *C.I.* के मान प्राप्त कर लेते हैं।

(4) गणना के अंतिम चरण में S.D. के सूत्र में सभी मानों को रखकर प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर लिया जाता है।

उदाहरण

निम्नलिखित व्यवस्थित अंक–सामग्री से लघु संक्षिप्त विधि द्वारा S.D. की गणना कीजिए।

C.I.	f	d	fd	fd^2
26-27	1	+4	+4	16
24-25	2	+3	+6	18
22-23	3	+2	+6	12
20-21	5	+1	+5	5
18-19	8	0	0 (21)	0
16-17	4	–1	–4	4
14-15	3	–2	–6	12
12-13	2	–3	–6	18
10-11	1	–4	–4 (20)	16
	N=29		$\Sigma fd = 1$	$\Sigma fd^2 = 101$

हल

यहां $\Sigma fd = 1$, $Sfd^2 = 101$, $N = 29$ तथा $i = 2$

सूत्र में मूल्यों को रखने पर,

प्रथम सूत्र– $$\sqrt[i]{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt[i]{\frac{101}{29} - \left(\frac{1}{29}\right)^2}$$

$$= \sqrt[2]{3.482 - 0.001}$$

$$2 \times 1.865 = 3.73$$

द्वितीय सूत्र–

$$S.D. = \frac{i}{N}\sqrt{N(\sum fd^2) - \left(\sum fd\right)^2}$$

$$= \frac{2}{29}\sqrt{29 \times 101 - (1)^2} = \frac{2}{29}\sqrt{2928}$$

$$\frac{2}{29} \times 54.11$$

$$= 3.73$$

प्रमाणिक विचलन के गुण

(1) अंक वितरण के प्रत्येक अंक से प्रमाणिक विचलन प्रभावित होता है।

(2) प्रमाणिक विचलन, सामान्य संभावना वक्र का मुख्य आधार है।

(3) विचलनशीलता का यह सर्वशुद्ध और विश्वसनीय माप है।

(4) अंक–वितरण के मध्यमान की विश्वसनीयता का अध्ययन प्रमाणिक विचलन के आधार पर किया जाता है।

प्रमाणिक विचलन का उपयोग कब करना चाहिए?

1. जब सर्वाधिक शुद्ध और विश्वसनीय विचलन माप की आवश्यकता हो।
2. जब केंद्रीय मापकों में मध्यमान की गणना की गई हो।
3. जब दो अंक–वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना हो।
4. जब सह–संबंध गुणांक तथा मध्यमानों के अंतर की सार्थकता की जांच करनी होती है, तब S.D. (प्रमाणिक विचलन) की गणना आवश्यक होती है।
5. प्रमाणिक विचलन की गणना की आवश्यकता तब भी पड़ती है, जब मूल प्राप्तांकों को प्रमाणिक प्राप्तांकों में बदलना होता है।
6. विचलन गुणांकों और प्रमाणिक त्रुटि के अध्ययन में इसकी आवश्यकता होती है।
7. जब सीमांत प्राप्तांकों को महत्व देना होता है, तब भी S.D. की गणना की जाती है।

विचलन गुणांक

विचलन गुणांक, मानक विचलन और संबंधित मध्यमान का अनुपात है। बहुधा इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है।

विचलन गुणांक का प्रयोग

जब दो या दो से अधिक अंक वितरणों के *N*, *M*, और S.D. तो ज्ञात हों साथ–साथ *M* और S.D. की मान इकाइयां भिन्न–भिन्न हों (जैसे एक वितरण की मापन इकाई सेंटीमीटर में हो तथा दूसरे वितरण की इकाई ग्राम में हो) और इन अंक वितरणों का तुलनात्मक अध्ययन करना हो तो इस अवस्था में विचलन गुणांक की गणना करके इस गुणांक के आधार पर दोनों समूहों की तुलना की जा सकती है।

इसकी गणना का सूत्र निम्नलिखित है–

$$C.V. = \frac{\sigma \times 100}{M}$$

टिप्पणी

यहां σ = प्रमाणिक विचलन, M = मध्यमान

उदाहरण

एक कक्षा के विद्यार्थियों के शिक्षाशास्त्र में औसत अंक 70 तथा S.D. 8.4 है तथा इसी कक्षा के विद्यार्थियों का इतिहास में औसत प्राप्तांक 54 है तथा S.D. 6.8 है। C.V. की गणना करके परिणामों की विवेचना कीजिए।

हल

शिक्षाशास्त्र के C.V. की गणना।

$$C.V. = \frac{\sigma}{M} \times 100 = \frac{8.4}{70} \times 100 = 12$$

अतः इतिहास के प्राप्तांकों में विचलनशीलता, मनोविज्ञान के प्राप्तांकों की अपेक्षा अधिक है।

उदाहरण

चार छात्रों A, B, C, D द्वारा प्राप्त 5, 7, 9, 11 अंकों से मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें।

हल–

छात्र का नाम	अंक (X)	$(X - \bar{X})$ = (X – 8)	$(X - \bar{X})^2$ = $(X - 8)^2$
A	5	– 3	9
B	7	– 1	1
C	9	+ 1	1
D	11	+ 3	9
N = 4	ΣX = 32		$\Sigma(X - \bar{X})^2$ = 20

समांतर माध्य, $\bar{X} = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{32}{4} = 8$

मानक विचलन, $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma(X - \bar{X})^2}{N}} = \sqrt{\frac{20}{4}} = \sqrt{5} = 2.23$

और, मानक विचलन का गुणांक,

$$= \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) = \frac{2.23}{8} = 0.28$$

उदाहरण

निम्नलिखित श्रृंखला के लिए मानक विचलन की गणना करें–

X	0	10	20	30	40	50	60	70	80
f	150	140	100	80	80	70	30	14	0

हल

यहां, हमारे पास हैं–

टिप्पणी

X	f	fX	$\left(X-\bar{X}\right)$ = (X – 23)	$\left(X-\bar{X}\right)^2$ = (X – 23)²	$f\left(X-\bar{X}\right)^2$ f(X – 23)²
0	150	0	– 23	529	79350
10	140	1400	– 13	169	23660
20	100	2000	– 3	9	900
30	80	2400	7	49	3920
40	80	3200	17	289	23120
50	70	3500	27	729	51030
60	30	1800	37	1369	41070
70	14	980	47	2209	30926
80	0	0	57	3249	0
	$N = \Sigma f$ = 664	ΣfX = 15,280			$\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2$ = 253976

यहां, $$\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N}$$

$$= \left(\frac{15280}{664}\right) \approx 23$$

$$\therefore \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{253976}{664}} = 19.557$$

उदाहरण

निम्नलिखित के मानक विचलन की गणना करें–

श्रेणी	5–10	10–15	15–20	20–25	25–30	30–35	35–40	40–45
आवृत्ति	6	5	15	10	5	4	3	2

हल

यहां हमारे पास हैं–

श्रेणी	मध्य–मान (X)	आवृत्ति (f)	$\left(X-\bar{X}\right)$	$\left(X-\bar{X}\right)^2$	$f\left(X-\bar{X}\right)^2$
5–10	7.5	6	– 13.7	187.69	1126.14
10–15	12.5	5	– 8.7	75.69	378.45
15–20	17.5	15	– 3.7	13.69	205.35
20–25	22.5	10	1.3	1.69	16.90
25–30	27.5	5	6.3	39.69	198.45
30–35	32.5	4	11.3	127.69	510.76
35–40	37.5	3	16.3	265.69	797.07
40–45	42.5	2	21.3	453.69	907.38
कुल		$N = \Sigma f = 50$			$\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2$ = 4140.50

यहां, $$\bar{X} = \frac{\Sigma fX}{N} = \left\{\frac{7.5(6) + 12.5(5) + \ldots + 42.5(2)}{50}\right\}$$

$$\bar{X} = \frac{1060}{50} = 21.2$$

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma f\left(X-\bar{X}\right)^2}{N}} = \sqrt{\frac{4140.50}{50}} = 9.1$$

मानक विचलन का गुणांक $= \frac{\sigma}{\bar{X}} = \frac{9.1}{21.2} = 0.429$

उदाहरण

निम्न तालिका से लघु विधि द्वारा मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें–

श्रेणी	20 – 25	25 – 30	30 – 35	35 – 40	40 – 45	45 – 50
आवृत्ति	18	44	102	160	57	91

हल

मान लीजिए, माना गया माध्य $A = 32.5$

मध्य–मान (X)	आवृत्ति (f)	(X –A) = d	d^2	fd	fd^2
22.5	18	– 10	100	– 180	1800
27.5	44	– 5	25	– 220	1100
32.5	102	0	0	0	0
37.5	160	5	25	800	4000
42.5	57	10	100	570	5700
47.5	91	15	225	285	4275
कुल	$N = 472$			Σfd = 1255	Σfd^2 = 16875

∴ मानक विचलन, $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$

$$= \sqrt{\frac{16875}{472} - \left(\frac{1255}{472}\right)^2} = \sqrt{35.75 - 7.06} = \sqrt{28.69} = 5.356$$

और, समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\} = \left\{32.5 + \left(\frac{1255}{472}\right)\right\} = 35.15$$

मानक विचलन का गुणांक $= \left(\frac{\sigma}{\bar{X}}\right) = \frac{5.356}{35.15} = 0.152$

उदाहरण

चरण विचलन विधि द्वारा निम्न तालिका से मानक विचलन और उसके गुणांक की गणना करें–

श्रेणी	20–30	30–40	40–50	50–60	60–70	70–80	80–90
आवृत्ति	3	61	132	153	140	51	2

हल

मान लीजिए माना गया माध्य, $A = 55$, तो हमें मिलता है–

टिप्पणी

मध्य–मान (X)	आवृत्ति (f)	(X – A) = (X – 55)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right)$ = (X – 55)/10	fd	fd^2
25	3	– 30	– 3	– 9	27
35	61	– 20	– 2	– 122	244
45	132	– 10	– 1	– 132	132
55	153	0	0	0	0
65	140	10	1	140	140
75	51	20	2	102	204
85	2	30	3	6	18
कुल	$N = \Sigma f = 542$			$\Sigma fd = -15$	$\Sigma fd^2 = 765$

$\therefore$ मानक विचलन, $\sigma = i \times \sqrt{\left\{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2\right\}}$

$$= 10 \times \sqrt{\left\{\frac{765}{542} - \left(\frac{-15}{542}\right)^2\right\}} = 11.84$$

और, समांतर माध्य,

$$\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{55 + \left(\frac{-15}{542}\right) \times 10\right\} = 54.72$$

मानक विचलन का गुणांक $= \frac{\sigma}{\bar{X}} = \frac{11.84}{54.72} = 0.216$

अपनी प्रगति जांचिए

8. किसकी सहायता से एक समूह की सजातीयता एवं विषमजातीयता का मापन किया जाता है?

   (क) विचलनशीलता (ख) गुणात्मकता

   (ग) विक्षेपण (घ) विचलनशीलता के माप

9. विचलनशीलता के माप कितने प्रकार के होते हैं?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) पांच (घ) सात

10. बुलियन अथवा शेयर्स की कीमतों में उच्चावचन दर्शाने के लिए किसका प्रयोग किया जाता है?

    (क) परास (ख) विक्षेपण

    (ग) बहुलक (घ) माध्य

टिप्पणी

4.5 सामान्य प्रायिकता वक्र और सह–संबंध

सामान्य संभावना वक्र एक ऐसा सैद्धांतिक, आदर्श एवं गणितीय वक्र है जिसके प्राप्तांक मध्यमान के दोनों ओर एकदम समान रूप से वितरित होते हैं।

4.5.1 सामान्य प्रायिकता वक्र : अवधारणा, विशेषताएं, महत्व अनुप्रयोग

किसी भी समूह के किसी चर पर प्राप्त प्राप्तांक प्रायः मध्यमान की ओर झुके हुए होते हैं। जब इन प्राप्तांकों के मध्यमान का वितरण दोनों ओर एकदम समान होता है तो प्राप्तांकों के इस प्रकार के वितरण को सामान्य वितरण कहते हैं और इस प्रकार के आरेख को सामान्य वितरण वक्र कहते हैं।

वास्तव में प्राप्तांकों का इस प्रकार का सामान्य वितरण व्यावहारिक रूप में कभी नहीं होता है, यह इसके लगभग ही होता है और इस लगभग के होने के आधार पर ही संभावना की जाती है। इस प्रकार के संभावित प्राप्तांकों के आरेख को इसी कारण सामान्य वक्र न कह कर सामान्य संभावना वक्र कहते हैं। इस वक्र का सर्वप्रथम प्रतिपादन सन् 1933 में फ्रांस के डी. मोइवर ने किया था। उनके द्वारा ही इस वक्र का गणितीय समीकरण प्रस्तुत किया गया था। कुछ विद्वान इस वक्र को उनके नाम के आधार पर डी मोइवर वक्र के नाम से भी जानते हैं। इस वक्र का सर्वप्रथम गणितीय प्रयोग जर्मनी के खगोलशास्त्री गॉस ने किया था इसलिए कुछ इसे गॉसियन वक्र भी कहते हैं किंतु सामान्य प्रयोग में इसे सामान्य संभावना वक्र ही कहा जाता है।

सभी प्रायिकता वितरणों में सामान्य वितरण सबसे महत्वपूर्ण और सबसे अधिक उपयोग होने वाला सतत प्रायिकता वितरण है। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह वितरण कई समस्याओं के लिए उपयुक्त होता है। इस वितरण का आनुमानिक सांख्यिकी में बहुत महत्व है क्योंकि यह संभावित रूप से स्थैतिक और प्राचल के बीच लिंक (अर्थात प्रतिदर्श परिणाम और जनसंख्या, जिससे यह प्रतिदर्श प्राप्त किया गया है) की व्याख्या करता है। अठाहरवीं शताब्दी के गणितज्ञ–खगोलविद् कार्ल गॉस का नाम इस वितरण से जुड़ा है और उनके योगदान के सम्मान में इस वितरण को आमतौर पर 'गॉसीय वितरण' के नाम से जाना जाता है। सामान्य वितरण को सैद्धांतिक रूप से कई विविक्त वितरणों के सीमांकन के रूप में प्राप्त किया जा सकता है।

आवृत्ति विवरण तालिका छात्रों द्वारा किसी परीक्षण में प्राप्त मूल प्राप्ताकों के आधार पर तैयार की जाती है। इन आवृत्ति वितरणों को प्राप्य वितरण तथा प्राप्य वक्र कहते हैं। जैसे–जैसे छात्रों के समूह का आकार बढ़ता जाता है वैसे–वैसे आवृत्ति वक्र एक उल्टी घंटी (∩) के आकार का स्वरूप प्राप्त करता जाता है, जिसमें अधिकतर आवृत्तियां केन्द्र में स्थित होती हैं।

संक्षेप में यदि किसी आवृत्ति वितरण तालिका के आंकड़े इस प्रकार व्यवस्थित हों कि उन्हें एक रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित करने पर उल्टी घंटी की सी आकृति बने तो उस अंक वितरण को सामान्य वितरण (Normal Distribution) कहते हैं और इस प्रकार प्राप्त वक्र को सामान्य वितरण वक्र कहते हैं।

विशेषताएं

टिप्पणी

सामान्य प्रायिकता वक्र की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. सामान्य संभावना वक्र की आकृति घंटाकार होती है।
2. माध्य μ निर्धारित करता है कि वितरण का शीर्षबिंदु कहां होगा। अन्य शब्दों में, माध्य की कोटि उच्चतम कोटि होती है। माध्य से एक मानक विचलन की दूरी पर कोटि की ऊंचाई माध्य कोटि की ऊंचाई का 60.653% होता है और इसी प्रकार माध्य से विभिन्न मानक विचलनों (σ_s) की अन्य कोटियों की ऊंचाई का माध्य कोटि की ऊंचाई से निश्चित संबंध होता है।
3. वितरण सदैव क्षैतिज अक्ष की ओर बढ़ता जाता है किंतु उसे कभी स्पर्श नहीं करता है।
4. प्रसरण (σ^2) वक्र के फैलाव को परिभाषित करता है।
5. माध्य कोटि और माध्य से एक मानक विचलन की दूरी पर एक कोटि के बीच का क्षेत्रफल सदैव वितरण के कुल क्षेत्रफल का 34.134% होता है। इसका अर्थ है कि दूसरी ओर माध्य से एक सिग्मा (S.D.) दूरी पर दो कोटियों के बीच का क्षेत्रफल सदैव कुल क्षेत्रफल का 68.268% होगा। इसे निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है–

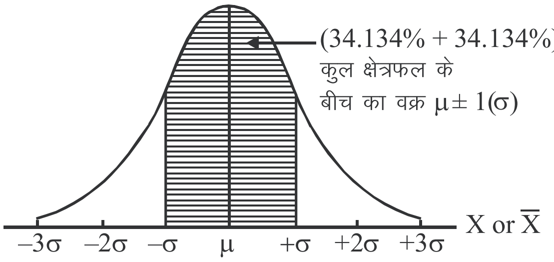

इसी प्रकार, अन्य क्षेत्रफल संबंध निम्न प्रकार हैं–

बीच		सामान्य वितरण के कुल क्षेत्रफल का आच्छादित क्षेत्रफल
$\mu \pm 1$	S.D.	68.27%
$\mu \pm 2$	S.D.	95.45%
$\mu \pm 3$	S.D.	99.73%
$\mu \pm 1.96$	S.D.	95%
$\mu \pm 2.578$	S.D.	99%
$\mu \pm 0.6745$	S.D.	50%

6. सामान्य वितरण का केवल एक ही बहुलक होता है क्योंकि वितरण का एक ही शीर्ष बिंदु होता है। अन्य शब्दों में, यह सदैव एकल बहुलक वितरण होता है।
7. उच्चतम कोटि सामान्य वितरण के ग्राफ को दो बराबर भागों में विभाजित करती है।

टिप्पणी

8. ऊपर बताए गए गुणों के अतिरिक्त वितरण के निम्नलिखित गुण होते हैं–

(i) $\mu = \bar{x}$

(ii) $\mu_2 = \sigma^2$ = प्रसरण

(iii) $\mu_4 = 3\sigma^4$

महत्व और अनुप्रयोग

सामान्य प्राथिकता वक्र के महत्व और अनुप्रयोग को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

सामान्य वितरण वक्र का अनुप्रयोग

सामान्य वितरण वक्रों का प्रयोग निम्न समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है–

1. किसी समूह में किसी प्राप्तांक से अधिक या कम अंक पाने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करने के लिए।
2. किसी समूह में किन्ही दो प्राप्तांकों के बीच अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करने के लिए।
3. किसी समूह में किसी विशेष स्थिति वाले छात्रों की प्राप्तांक सीमाएं ज्ञात करने के लिए।
4. किसी परीक्षण के प्रश्नों की सापेक्षिक कठिनाई स्तर ज्ञात करने के लिए।
5. सम–वितरण को योग्यता स्तर के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित करने के लिए।
6. दो सम–वितरणों की पारस्परिक आच्छादन की दृष्टि से तुलना करने के लिए।

किसी प्राप्तांक से अधिक या कम अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करने के लिए

इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम प्राप्तांक की उच्च अथवा निम्न सीमा निर्धारित करते हैं। तालिका की सहायता से प्राप्तांकों का वह प्रतिशत ज्ञात कर लिया जाता है जो माध्य तथा δ value के बीच पड़ता है। उदाहरण के लिए माना हमें 24 से कम अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करनी है तो इसके लिये हम तालिका से 23.5 की δ value देखेंगे क्योंकि वास्तव में 24 अंक उन सभी छात्रों को देते हैं जिनके प्राप्तांक 23.5 से लेकर 24.5 तक होते हैं। यदि हमें किसी निर्धारित प्राप्तांक से कम अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करनी है तो उस प्राप्तांक की निम्नतम सीमा लेनी चाहिए। यदि निर्धारित प्राप्तांक से ऊपर वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करनी है तो प्राप्तांक की उच्चतम सीमा लेनी चाहिए।

उदाहरण

माना $M = 50$ δ (S.D) $= 6$ तो 56 से ऊपर तथा 46 से नीचे अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात कीजिए।

टिप्पणी

हल

Upper Limit of raw Score = 57 is 57.5

$$Z = \frac{X - M}{\delta} \quad \frac{57.5 - 50}{6} = \frac{7.5}{6} = 1.25\delta$$

तालिका के आधार पर छात्रों की संख्या का प्रतिशत 50 तथा + 1.25δ = 39.00 प्रतिशत होता है तो 57 से अधिक प्राप्तांक वाले छात्रों की संख्या होगी– 50–39.44% = 10.56%

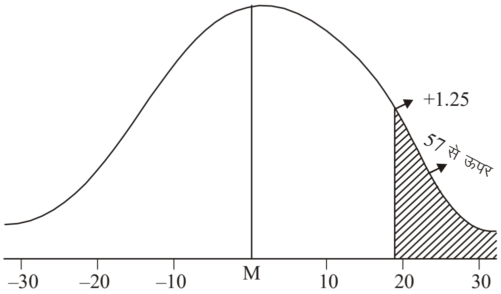

किन्हीं दो प्राप्तांकों के बीच अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करने के लिए

Lower Limit of raw score 46 is 45.5

$$Z = \frac{X - M}{\delta} \quad \frac{45.5 - 50}{6} = \frac{-4.5}{6} = .75\sigma$$

तालिका के आधार पर M से –075σ के बीच छात्रों का प्रतिशत 27.34% अतः 46 से नीचे अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्य होगी।

50 – 39.44% = 10.56%

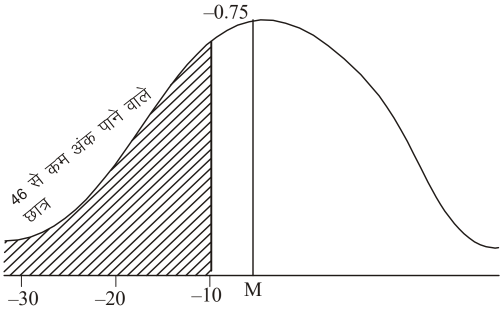

उदाहरण

किसी समूह में किन्ही दो प्राप्तांकों के बीच अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात करना

Let M= 100 δ(S.D) = 20

8S तो 125 प्राप्तांकों के बीच अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या ज्ञात कीजिए

हल

Given M = 100 δ = 20

Lower Limit = 85 = 85.5

टिप्पणी

Upper Limit = 125 = 125.5

Z for 84.5 = $\frac{X-M}{\delta}$ $\frac{84.5-100}{20} = \frac{-15.5}{20} = .775$ or $-.78\delta$

Z for 125.5 = $\frac{X-M}{\sigma}$ $\frac{125.5-100}{20} = \frac{25.5}{20} = +1.28\delta$

तालिका के अनुसार M तथा –0.78 के बीच छात्रों का प्रतिशत 28.23% तथा M व 1.28δ के बीच का प्रतिशत 39.9% है

अतः 85 से 125 के बीच अथवा = – .78δ and + 1.28δ के बीच पड़ने वाले छात्रों का प्रतिशत 28.23% + 39-97% = 68.2%

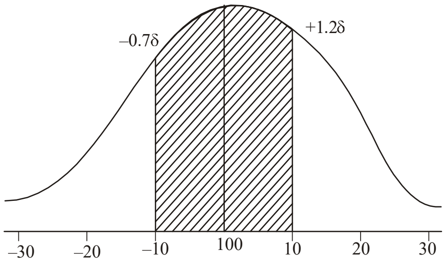

किसी विशेष स्थिति वाले छात्रों की प्राप्तांक सीमाएं ज्ञात करना

Let M = 16 δ = 4 बीच के 75% प्राप्तांक वाले छात्रों की संख्या ज्ञात कीजिए।

हल

बीच के 75% का मतलब है 37.5% वितरण में M के ऊपर तथा 37.5 M के नीचे होंगे। तालिका में 37.5% का मान 1.15δ है।

किसी δ-value को मूल प्राप्तांक में बदलने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

X = M ± δ values x (S.D)

X = M ± δ value x S.D

= 16 ± 1.15δ × 4 and 16 – 1.15 × 4

16 + 4.6 and 16– 4.6

20.6 and 11.4

बीच के 75% की सीमाएं 20.6 व 11.4 हों।

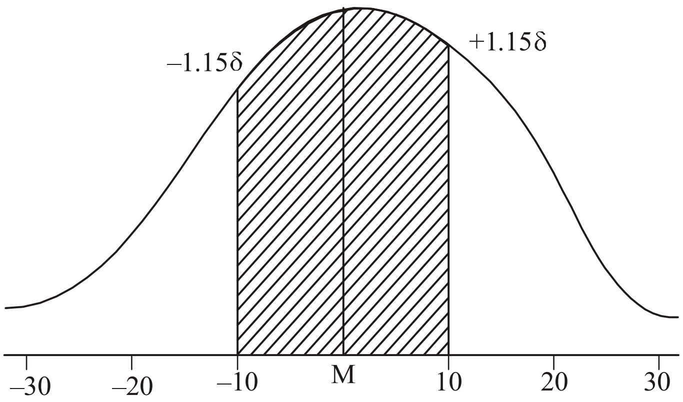

टिप्पणी

प्रश्नों की सापेक्षित कठिनाई स्तर का ज्ञात करना

उदाहरण माना A, B, C, D चार प्रश्न हैं। प्रश्न A का 40% छात्रों द्वारा सही उतर दिया गया। B प्रश्न का उत्तर 60% छात्रों ने सही दिया। प्रश्न C का सही उत्तर 30% छात्रों द्वारा तथा प्रश्न D का सही उत्तर 80% छात्रों द्वारा दिया गया। इन प्रश्नों का कठिनाई स्तर क्या होगा।

हल

चारों प्रश्नों का तालिका के आधार पर कठिनाई स्तर निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाएगा—

Item	% of students who Solved Correctly	Difficulty Value	δ Differnce
A	40	50 – 40% = 10% = + 0.25	.....
B	60	50 – 60 = –10% = – 0.25δ	+ .50δ
C	30	50 – 30 = –20% = + 0.52δ	+ .77δ
D	80	50 – 80 = –30% = – 0.84δ	+ 1.36δ

QA

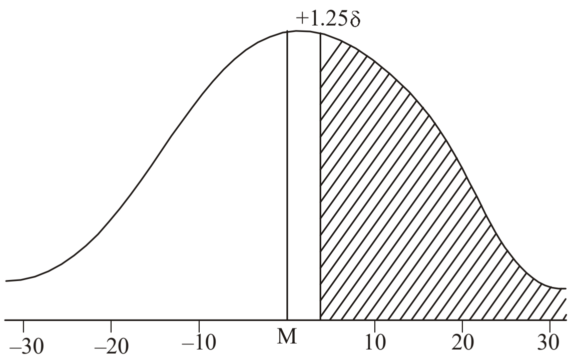

प्रश्न 1. 40 प्रतिशत बालकों/छात्रों द्वारा सही उत्तर दिया गया इसका तात्पर्य है कि ये 40 प्रतिशत तीव्र बुद्धि छात्र हैं, ये वक्र के दायीं ओर होंगे तालिका से δ मान (50–40) = 10 प्रतिशत के लिए + .25δ होगा। प्रश्न A का कठिनाई स्तर .25δ है।

प्रश्न 2. प्रश्न का 60 प्रतिशत छात्रों ने सही उत्तर दिया है। ये 60 प्रतिशत तीव्र बुद्धि छात्र वक्र के दायीं ओर होंगे। तालिका से इनका δ मान (50–60) = –10 प्रतिशत –.25δ होगा।

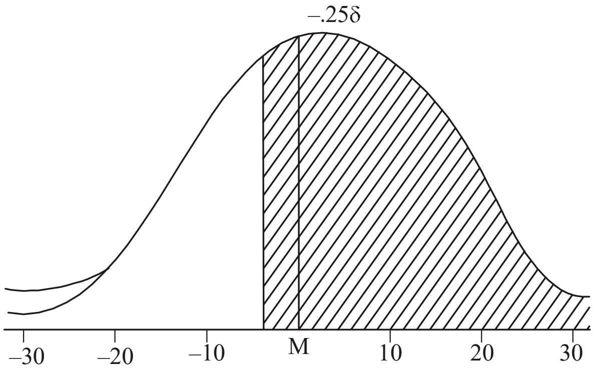

टिप्पणी

प्रश्न 3. सही उत्तर देने वाले छात्रों का प्रतिशत 30 है अर्थात् ये 30 प्रतिशत छात्र वक्र के दायीं ओर होंगे, तालिका से इनका मान 50–30 = 20 प्रतिशत = +.52δ होगा।

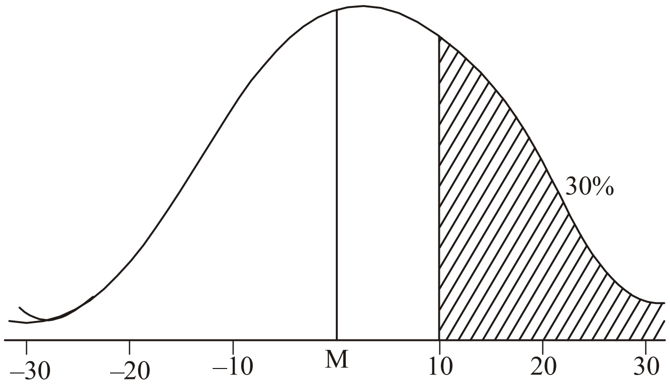

प्रश्न 4. प्रश्न D का सही उत्तर 80 प्रतिशत छात्रों ने दिया अर्थात् ये 80 प्रतिशत छात्र वक्र के दायीं ओर होंगे, इनका तालिका मान 50–80 = 30 प्रतिशत व –.84δ होगा।

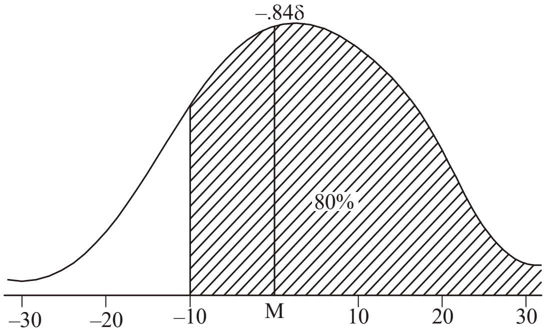

इस प्रकार से स्पष्ट है कि प्रश्न D सबसे सरल है तथा प्रश्न C कठिन है।

सम वितरण को योग्यता स्तर के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित करने के लिए–

इस स्थिति में सामान्य वक्र का उपयोग करके छात्रों के एक बड़े समूह को ऐसे कई उप–समूहों में विभाजित किया जाता है जिससे प्रत्येक उप समूह में छात्रों के प्राप्तांकों का विस्तार समान हो इसके लिये सामान्य वितरण की कुल दूरी 6δ को उतने भागों में विभाजित कर लिया जाता है, जितने उप–समूह बनाने होते हैं। उसके बाद इन भागों से संबंधित कोटियों के सापेक्ष मूल्य (δ) निकाल कर मूल प्राप्तांकों में बदल लिया जाता है।

वक्र की कुल दूरी 6δ अर्थात +3δ के बीच का क्षेत्रफल 99.74% होता है जो लगभग 100% मान लिया जाता है।

उदाहरण

माना एक अध्यापक अपनी कक्षा के छात्रों को 10 उप–विभागों (ग्रेड) में विभाजित करना चाहता है जो A^+, A, A^-, B^+ B, B^-, C^+, C, C^- तथा D हैं। यदि योग्यता वितरण समान हो तो बताइए कि प्रत्येक ग्रेड में कितने छात्र हैं। यदि समूह में कुल 500 छात्र हैं और मध्यमान (M) = 60, मानक विचलन S.D (δ) = 12 है।

टिप्पणी

हल

इस समस्या में सम्पूर्ण समूह को 10 वर्गों में विभाजित किया गया है। NPC का कुलक्षेत्र 6δ होता है तो प्रत्येक वर्ष का विस्तार $\frac{6}{10}\delta = .60\delta$ होगा। अतः पूरे वक्र को 10 बराबर भागों में बांटा जाएगा।

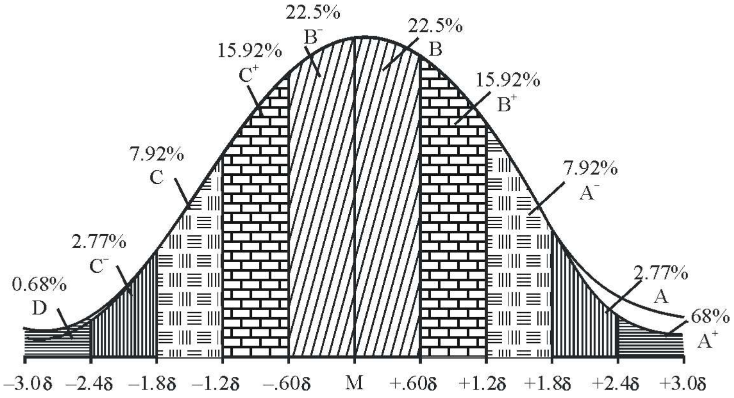

1. उन छात्रों की संख्या जिनका ग्रेड B तथा B^- है–

   $B = \frac{22.57 \times 500}{100} = 112.58$ or 113 इतने ही छात्रों ने B^- ग्रेड हासिल किया है।

2. उन छात्रों की संख्या जिनका ग्रेड B^+ तथा C^+ है इन दोनों का तालिका में प्रतिशत = 15.92 है। तालिका में 1.2δ की value 38.49 B से B^+ के बीच की Value 38.49–22.57 अर्थात 15.92 होगी

   $$\frac{15.92 \times 500}{100} = 79.6 \text{ or } 80 \text{ छात्र}$$

3. उन छात्रों की संख्या जिनका ग्रेड A^- तथा C है–

   Value for 1.8δ is 46.41 है अतः 18δ तथा 1.2δ के बीच की value 46.41 – 38.49 = 7.92

   $$\frac{7.92 \times 500}{100} = 39.8 \text{ or } 40 \text{ छात्र}$$

4. उन छात्रों की संख्या जिनका ग्रेड A^- तथा C है–

   2.4δ की value 49.19 तो (49.18–46.41) = 2.77 है–तो

   $$\frac{2.77 \times 500}{100} = 13.85 \text{ or } 14 \text{ छात्र}$$

5. उन छात्रों की संख्या जिनका ग्रेड A^+ तथा D है–

   3.0δ की value = 49.86 तथा 2.4δ = 49.18 तो

   (49.86 – 49.18) = .68

$\frac{.68 \times 500}{100} = 3.4$ अर्थात् 3 छात्र

इस प्रकार कुल 500 छात्रों का ग्रेड के अनुसार वितरण निम्न प्रकार है–

ग्रेड	A^+	A	A^-	B^+	B	B^-	C^+	C	C^-	D	कुल
छात्रों की संख्या	03	14	40	80	113	113	80	40	14	03	500

टिप्पणी

हमें प्रत्येक ग्रेड में छात्रों को व्यवस्थित करने के लिए प्राप्तांकों का विस्तार ज्ञात करना होता है अतः हम विभिन्न δ value को मूल प्राप्तांकों में इस प्रकार परिवर्तित करेंगे।

Raw Score for δ value 2.4

मानक मूल्य 2.4 के लिए मूल्य प्राप्तांक $= M \pm 2.4\delta$

$60 + 2.4\ (12)$

Upper value $60 + 22.8 = 88.8$

Lower Value $60 - 28.8 = 31.20$

मानक मूल्य 1.8δ के लिए मूल्य प्राप्तांक $= M \pm 1.8\delta$

$60 + 2.4\ (12)$ तथा $60 - 1.8\ (12)$

$60 + 21.6$ तथा $60 - 2.16$

81.6 38.4

81.6 and 38.40

मानक मूल्य 1.2δ के लिए मूल्य प्राप्तांक $= M \pm 1.2\delta$

$60 + 1.2\ (12)$ and $60 - 1.2\ (12)$

$60 + 14.4$ and $60 - 14.4$

74.4 and 45.6

मानक मूल्य .68δ के लिये मूल्य प्राप्तांक $= M \pm .68\delta$

$60 + 0.60\ (12)$ and $60 - 60\ (12)$

$60 + 72.2$ and $60 - 7.2$

67.2 and 52.8

इस प्रकार

छात्र जिन्होंने 88.8 अंक प्राप्त किये हैं। उनका ग्रेड = A^+

छात्र जिन्होंने 81.60 से 88.8 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = A

छात्र जिन्होंने 74.4 से 81.8 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = A^-

छात्र जिन्होंने 62.2 से 74.4 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = B^+

छात्र जिन्होंने 60.00 से 67.2 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = B

छात्र जिन्होंने 52.8 से 60.00 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = C^+

छात्र जिन्होंने 45.6 से 52.8 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = C

छात्र जिन्होंने 38.4 से 45.8 के बीच अंक प्राप्त किये हैं उनका ग्रेड = C^-

छात्र जिन्होंने 31.2 नीचे अंक प्राप्त किये हैं उन्हें D ग्रेड दिया जायेगा।

टिप्पणी

दो सम–वितरणों की पारस्परिक आच्छादन की दृष्टि से तुलना करना

माना एक सामान्य वितरण में लड़के हैं और दूसरे समूह में लड़कियां हैं और दोनों सम वितरणों के लिए M तथा SD भी दिये हैं अब देखना यह है कि कितने प्रतिशत लड़कियां हैं जिनका IQ लड़कों की मध्यमान IQ से अधिक है अथवा कितने प्रतिशत लड़के हैं जिनका IQ लड़कियों के मध्यमान से कम है।

उदाहरण

गणित की परीक्षा के कक्षा 12 के छात्रों के एक समूह पर परीक्षण किया गया जिसमें लड़कों का (M) मध्यमान = 28 तथा मानक विचलन SD = 4.8 और लड़कियों के समूह में M=31.60 तथा $\delta = 4$ है। कितने प्रतिशत छात्र लड़कियों की Value से अधिक हैं तथा कितनी प्रतिशत छात्राएं लड़कों के मध्यमान से ऊपर हैं।

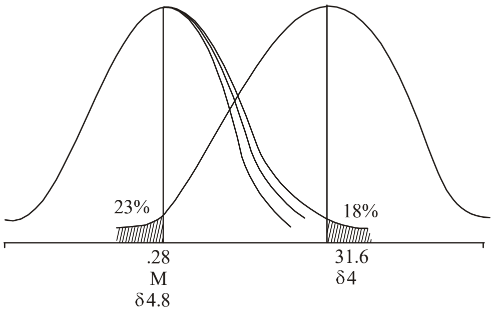

% of Boys standing above the mean of girls group z = score for 31.60 =

$$\frac{X-M}{\delta} \quad \frac{31.60-28}{4.8} = \frac{3.6}{4.8} = .75\delta$$ from Table percentage for .75δ is = 27.34

लड़कियों के समूह के मध्यमान से ऊपर लड़कों का प्रतिशत

50 – 27.34 = 22.66% or 23%

50 – 27.34 = 22.66 प्रतिशत तथा 23 प्रतिशत

% of Girls standing above the mean of boys Group

z for 28 $$\frac{X-M}{\delta} = \frac{28.-31.6}{4.0} = \frac{-3.6}{4.0} = -.90\delta$$

From table percentage for –.90δ is 31.59%

लड़कों के समूह के मध्यमान के ऊपर लड़कियों का प्रतिशत

50 – 31.59 = 18.41% or 18%

अध्यापक शिक्षण के पश्चात परीक्षण करके यह ज्ञात करने का प्रयत्न करता है कि बालकों को पढ़ाई गयी सामग्री कितनी समझ आयी है। इसके लिये परीक्षाओं का आयोजन किया जाता और उन्हें अंक प्रदान किये जाते हैं, ये मापांक केवल अंकगणितीय अंक होते हैं। ये अर्थहीन होते हैं। इन अंकों को सांख्यिकीय विधियों द्वारा अर्थयुक्त व तुलना योग्य बनाया जाता है और निर्वचन किया जाता है। उन मापांकों की सार्थकता की जांच की जाती है। प्राप्त परिणामों के आधार पर छात्रों के विभिन्न समूह ज्ञात किये जाते हैं।

टिप्पणी

4.5.2 प्रसामान्य में विचलन : स्क्यूनेस, क्यूरटोसिस

सामान्य प्रायिकता वितरण के कई वर्गीकरण हो सकते हैं किंतु प्रत्येक विशेष सामान्य वितरण को इसके दो प्राचलों, माध्य (μ) और मानक विचलन (σ) के द्वारा परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार, केवल एक सामान्य वितरण नहीं होता बल्कि सामान्य वितरणों का वर्ग होता है। इनमें से हम कुछ को निम्नानुसार प्रदर्शित कर सकते हैं–

(1) समान माध्य किंतु विभिन्न मानक विचलनों वाले सामान्य वक्र–

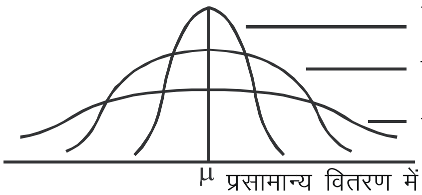

(2) समान मानक विचलन किंतु विभिन्न माध्यों वाले सामान्य वक्र–

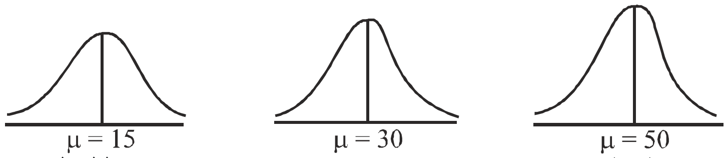

(3) विभिन्न मानक विचलन और विभिन्न माध्यों वाले सामान्य वक्र–

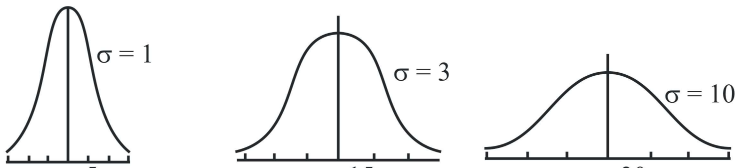

सामान्य वक्र के अंतर्गत क्षेत्रफल का मापन

हमने ऊपर बताया है कि कुछ क्षेत्रफल संबंधों में माध्यों से मानक विचलनों के कुछ निश्चित अंतराल (धनात्मक और ऋणात्मक) होते हैं, जो सामान्य वितरण की स्थिति में सही हैं किंतु अन्य सभी स्थिति में क्या किया जाना चाहिए? इस उद्देश्य के लिए हम गणितज्ञों द्वारा बनाई गई सांख्यिकी तालिका का उपयोग कर सकते हैं। इन तालिकाओं का उपयोग करके हम क्षेत्रफल (अथवा वितरण के संपूर्ण क्षेत्रफल को 1 के बराबर लेते हुए प्रायिकता) प्राप्त कर सकते हैं, जिसमें सामान्य रूप से बंटित यादृच्छिक चर माध्य से कुछ निश्चित दूरियों पर आएगा। इन दूरियों को मानक विचलनों के पदों में परिभाषित किया जाता है। सामान्य वितरण के अंतर्गत क्षेत्रफल को दिखाने वाली तालिकाओं का उपयोग करते समय हम मानक चर (प्रतीकात्मक रूप से Z) की बात करते हैं, जिसका अर्थ है कि मानक विचलन मापन की इकाइयों के बिना होते हैं और इस Z को निम्न प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है–

$$Z = \frac{X - \mu}{\sigma}$$

जहां, Z = मानक चर (या X से वितरण के माध्य तक मानक विचलनों की संख्या)।

X = विचाराधीन यादृच्छिक चर का मान।

μ = यादृच्छिक चर के वितरण का माध्य।

σ = वितरण का मानक विचलन।

टिप्पणी

सामान्य वक्र के अंतर्गत क्षेत्रफल प्रदर्शित करने वाली तालिका (जिसे सामान्यत: मानक सामान्य प्रायिकता वितरण तालिका कहा जाता है) को मानक चर (अथवा Z) मानों के पदों में संगठित किया जाता है। यह सामान्य वितरण के अंतर्गत केवल आधे क्षेत्रफल को ही देता है, जिसका माध्य $Z = 0$ पर प्रारंभ होता है। चूंकि सामान्य वितरण पूर्ण रूप से सममित होता है इसलिए आधे वितरण के लिए सत्य मान दूसरे आधे वितरण के लिए भी सही होते हैं।

उदाहरण

एक बैंकर दावा करता है कि उसके बैंक में खोले गए नियमित बचत खाते की औसत अवधि 6.45 महीनों के मानक विचलन के साथ 18 महीने है। निम्नलिखित का उत्तर दीजिए–

1. प्रायिकता ज्ञात कीजिए कि किसी जमाकर्ता द्वारा उस बैंक में खोले गए बचत खाते में अभी भी 22वें महीने में धन होगा?
2. प्रायिकता ज्ञात कीजिए कि खाता दो सालों के पूर्व बंद हो चुका होगा?

हल

1. आवश्यक प्रायिकता प्राप्त करने के लिए हमें नीचे छायांकित और दिखाए गए सामान्य वितरण के भाग के क्षेत्रफल में रुचि है–

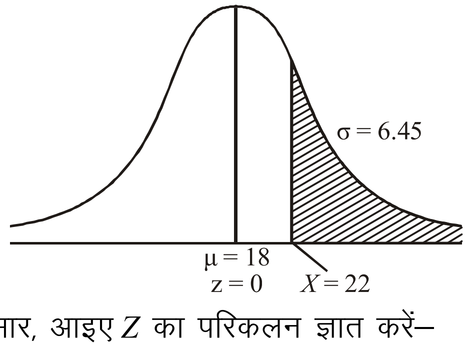

नीचे बताए अनुसार, आइए Z का परिकलन ज्ञात करें–

$$Z = \frac{X - \mu}{\sigma} = \frac{22 - 18}{6.45} = 0.62$$

$Z = 0.62$ के लिए सामान्य वितरण के अंतर्गत क्षेत्रफल दिखाने वाली तालिका का मान 0.2324 है। इसका अर्थ है कि $\mu = 18$ और $X = 22$ के बीच वितरण का क्षेत्रफल 0.2324 है।

इस प्रकार, वितरण का छायांकित क्षेत्रफल (0.5) – (0.2324) = 0.2676 है क्योंकि वितरण के दाईं ओर के भाग का क्षेत्रफल हमेशा 0.5 होता है। इस प्रकार बचत खाते में 22वें महीने में अभी भी धन होने की प्रायिकता 0.2676 है।

टिप्पणी

2. आवश्यक प्रायिकता प्राप्त करने के लिए चित्र में छायांकित और दिखाए गए सामान्य वितरण के भाग के क्षेत्रफल हम पाते हैं–

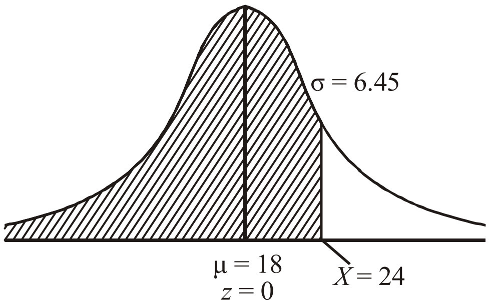

उद्देश्य के लिए हम परिकलित करते हैं,

$$Z = \frac{24-18}{6.45} = 0.93$$

जब Z = 0.93 है, तो प्रमाणित तालिका से मान 0.3238 है जो μ = 18 और X = 24 के बीच वितरण का क्षेत्रफल प्रदर्शित करता है। वितरण के संपूर्ण बाईं ओर भाग का क्षेत्रफल सदा की तरह 0.5 है। इस प्रकार, छायांकित भाग का क्षेत्रफल (0.5) +(0.3238) = 0.8238 है जो आवश्यक प्रायिकता है कि खाता दो वर्षों अर्थात 24 महीनों के पूर्व बंद हो चुका होगा।

उदाहरण

व्यक्तियों की आय पर विचार करते हुए कुछ सामान्य वितरण के संबंध में हमें दिया गया है कि माध्य=₹500 और मानक विचलन =₹100 प्रायिकता ज्ञात कीजिए कि यादृच्छिक रूप से चुने गए कोई व्यक्ति निम्न आय समूह से संबंधित होगा–

(1) ₹ 550 से ₹ 650 (2) ₹ 420 से ₹ 570

हल

(1) आवश्यक प्रायिकता प्राप्त करने के लिए नीचे छायांकित और दिखाए गए सामान्य वितरण के भाग के क्षेत्रफल पर ध्यान दें–

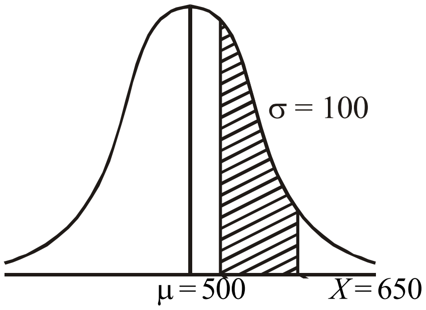

X = 550 से 650 के बीच क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए, आइए निम्नलिखित परिकलन करें–

$$Z = \frac{550-500}{100} = \frac{50}{100} = 0.50$$

प्रमाणित तालिका के अनुसार वितरण में μ = 500 और X = 550 के बीच का क्षेत्रफल 0.1915 के बराबर है और, $Z = \frac{650-500}{100} = \frac{150}{100} = 1.5$

प्रमाणित तालिका के अनुसार वक्र में μ = 500 और X = 650 के बीच का क्षेत्रफल के बराबर 0.4332 है। इस प्रकार, X= 550 और X = 650 के बीच आने वाले वितरण का क्षेत्रफल (0.4332) – (0.1915) = 0.2417 है। यह आवश्यक प्रायिकता है कि यादृच्छिक रूप से चुना गया कोई व्यक्ति रू. 550 से रू. 650 के आय समूह में आएगा।

(2) आवश्यक प्रायिकता प्राप्त करने के लिए आगे छायांकित और दिखाए गए सामान्य वितरण के भाग के क्षेत्रफल को देखें और परिकलन करें–

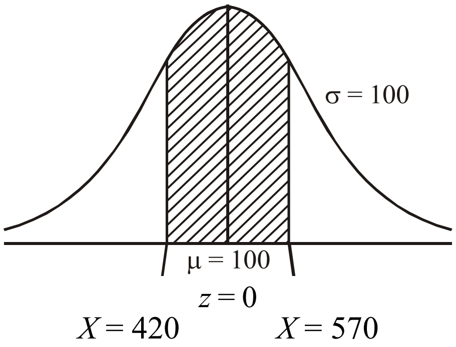

$$Z = \frac{570-500}{100} = 0.70$$

प्रमाणित तालिका के अनुसार वितरण में μ = 500 और X = 570 के बीच का क्षेत्रफल 0.2580 के बराबर है।

और $Z = \frac{420-500}{100} = -0.80$

प्रमाणित तालिका के अनुसार, वक्र में μ = 500 और X = 420 के बीच का क्षेत्रफल 0.2881 के बराबर है। इस प्रकार, X= 420 और X = 570 के बीच वितरण में आवश्यक क्षेत्रफल (0.2580) + (0.2881) = 0.5461 है। यह आवश्यक प्रायिकता है कि यादृच्छिक रूप से चुना गया कोई व्यक्ति आय समूह ₹420 से ₹570 से संबंधित होगा।

उदाहरण

एक विशेष कंपनी आयातित सामान से $1\frac{1''}{2}$ सर्वउद्देश्यीय रस्सी का निर्माण करती है। कंपनी के प्रबंधक को ज्ञात है कि रस्सी की औसतन भारवहन क्षमता 200 lbs है।

टिप्पणी

कल्पना कीजिए कि सामान्य वितरण लागू होता है, तो $1\frac{1''}{2}$ रस्सी के लिए भारवहन क्षमता का मानक विचलन ज्ञात कीजिए, यदि रस्सी को 68 lbs या कम खींचने पर टूटने की प्रायिकता 0.1210 है।

हल

दी गई जानकारी को नीचे दिखाए अनुसार सामान्य वितरण में प्रदर्शित किया जा सकता है–

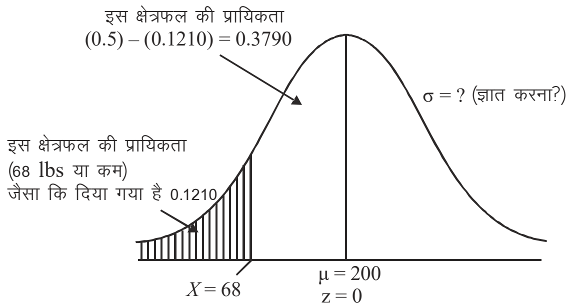

यदि μ = 200 और X = 68 के बीच में आने वाले क्षेत्रफल की प्रायिकता 0.3790 है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, तो सामान्य वितरण का क्षेत्रफल दिखाने वाली प्रमाणित तालिका के अनुसार, Z का संगत मान – 1.17 है (ऋणात्मक चिह्न इंगित करता है कि हम वितरण के बाएं भाग में हैं।)

σ प्राप्त करने के लिए हम लिख सकते हैं–

$$Z = \frac{X-\mu}{\sigma}$$

या $$-1.17 = \frac{68-200}{\sigma}$$

या $$-1.17\sigma = -132$$

या $$\sigma = 112.8 \text{ lbs लगभग}$$

इस प्रकार, आवश्यक मानक विचलन लगभग 112.8 lbs है।

उदाहरण

किसी सामान्य वितरण में, 31 प्रतिशत आइटम 45 से नीचे हैं और 8 प्रतिशत 64 से ऊपर हैं। इस वितरण का $\bar{X}$ और σ प्राप्त करें।

हल

हम इस सामान्य वितरण को निमांकित चित्र से समझ सकते हैं–

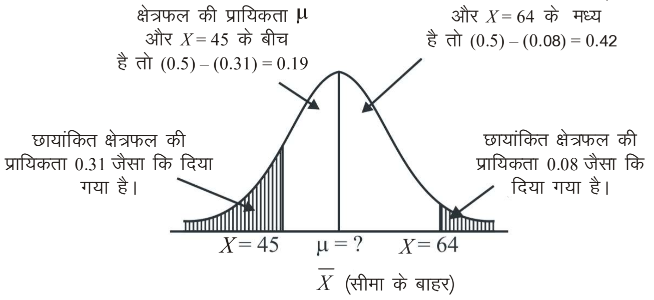

यदि μ और $X = 45$ के बीच आने वाले क्षेत्रफल की प्रायिकता 0.19 है जैसा कि ऊपर बताया गया है, तो सामान्य वितरण का क्षेत्रफल दिखाने वाली प्रमाणित तालिका से Z का संगत मान 0.50 है। चूंकि, हम वितरण के बाईं ओर हैं, तो हम इसे नीचे दिए अनुसार व्यक्त कर सकते हैं–

$$-0.50 = \frac{45-\mu}{\sigma} \qquad (1)$$

इसी प्रकार, μ और $X = 64$ के बीच आने वाले क्षेत्रफल की प्रायिकता 0.42 है, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तो प्रमाणित तालिका से Z का संगत मान $+1.41$ है। चूंकि, हम वक्र के दाईं ओर हैं, तो इसे निम्नानुसार व्यक्त कर सकते हैं–

$$1.41 = \frac{64-\mu}{\sigma} \qquad (2)$$

यदि हम μ या $\bar{X}$ का मान प्राप्त करने के लिए ऊपर दिए गए समीकरण (1) और (2) को हल करते हैं, तो हम पाते हैं–

$$-0.5\,\sigma = 45-\mu \qquad (3)$$

$$1.41\,\sigma = 64-\mu \qquad (4)$$

समीकरण (3) में से समीकरण (4) को घटाने पर, हम पाते हैं–

$$-1.91\,\sigma = -19$$

$$\therefore \quad \sigma = 10$$

समीकरण (3) में $\sigma = 10$ रखने पर हम पाते हैं–

$$-5 = 45-\mu$$

$$\therefore \quad \mu = 50$$

इस प्रकार,

संबंधित सामान्य वितरण के लिए $\bar{X}$ (अथवा μ)=50 और σ =10.

• स्क्यूनेस

स्क्यूनेस का आशय वितरण में सममिति के अभाव से है। सममिति वितरण में माध्य, माध्यिका व बहुलक (मोड) एक समान होते हैं।

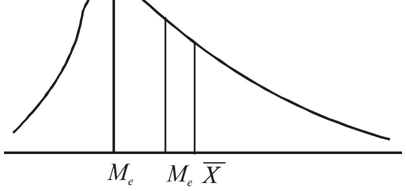

धनात्मक स्क्यूड वितरण

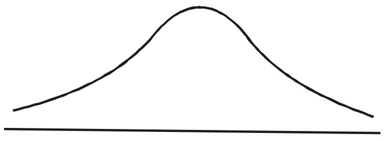

सममिति वितरण

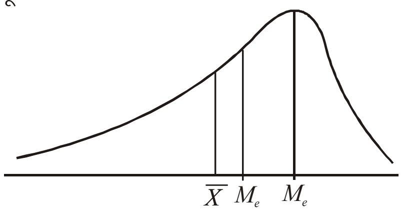

ऋणात्मक स्क्यूड वितरण

टिप्पणी

धनात्मक स्क्यूड वितरण में बड़ी टेल दायीं ओर होती है एवं माध्य, माध्यिका के दायीं ओर होता है।

ऋणात्मक स्क्यूड वितरण में बड़ी टेल बायीं ओर होती है एवं माध्य, माध्यिका के बायीं ओर होता है।

स्क्यूड वितरण में माध्य एवं मध्यिका के मध्य की दूरी माध्य एवं बहुलक के मध्य की दूरी की एक–तिहाई के लगभग होती है।

वितरण में स्क्यूनेस की उपस्थिति कैसे परखें

निम्नलिखित प्रकरणों में आंकड़ों में स्क्यूनेस उपस्थित होता है–

1. आरेख सममित न होना;
2. माध्य, माध्यिका व बहुलक एक समान न होना;
3. चतुर्थक (क्वार्टाइल्स) माध्य से समदूरस्थ (इक्विडिस्टेंट) न हों;
4. माध्यिका से धनात्मक व ऋणात्मक विचलनों का योगफल शून्य न हो;
5. बहुलक के किसी भी ओर आवृत्तियां समानता में वितरित न हों।

स्क्यूनेस का मापन

स्क्यूनेस के मापन से वितरण में असममिति की संख्यात्मक अभिव्यक्ति एवं दिशा मालूम होती है। इससे वितरण की आकृति एवं केंद्रीय मान के किसी ओर भिन्न के स्तर की जानकारी हो जाती है।

स्क्यूनेस के कुछ आपेक्षिक मापक निम्नानुसार हैं–

(क) पियर्सन (Pearson) स्क्यूनेस गुणांक

$$PSk = \frac{\bar{x} - Mo}{s} = \frac{3(\bar{x} - Me)}{s}$$

इसका मान कुछ भी हो सकता है, परंतु प्रायः –1 व +1 के मध्य होता है।

उदाहरणार्थ, निम्नांकित आंकड़े के लिए पाया गया कि $\bar{x} = 10$, माध्य = 8, s = 4, हमारे पास,

$$PSk = \frac{\bar{x} - Mo}{s} = \frac{10-8}{4} = 0.5$$

(ख) बाउली (Bowley) स्क्यूनेस गुणांक

$$BSk = \frac{Q_3 + Q_1 - 2Me}{Q_3 - Q_1}$$

इसका मान –1 एवं +1 के मध्य आता है।

उदाहरणार्थ, निम्नांकित आंकड़े में यदि $Q_1 = 2,\ Q_3 = 8,\ Me = 5$ हो तो,

$$BSk = \frac{Q_3 + Q_1 - 2\,Me}{Q_3 - Q_1} = \frac{8+2-5}{8-2} = 0.83$$

टिप्पणी

(ग) केली (Kelly) स्क्यूनेस गुणांक

$$KSk = P_{50} - \frac{1}{2}(P_{10} + P_{90})$$

जहां P_{10}, P_{50}, और P_{90} आंकड़ों के दसवें, पचासवें एवं 90वें शतमक (परसेंटाइल्स) हैं।

(घ) मूमेंट्स (Moments) की विधि

यदि μ_2, μ_3 मूमेंट्स के माध्य हो तो हम प्राप्त कर सकते हैं, स्क्यूनेस का गुणांक।

$$\beta_1 = \frac{\mu_3^2}{\mu_2^3} = \mu_3^2 / \sigma^6$$

कभी–कभी हम स्क्यूनेस के गुणांक को ऐसे भी निश्चित कर सकते हैं–

$$\gamma_1 = \sqrt{\beta_1} = \sqrt{\frac{\mu_3^2}{\mu_2^3}} = \frac{\mu_3}{\sigma^3}$$

स्क्यूनेस की गणना

दो वितरणों का माध्य एक समान और विचलन मानक हो सकता है, लेकिन वे अपने संपूर्ण परिदृश्य में भिन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में, बिना क्रमबद्ध वितरण के (जैसे कि बिना माध्य = माध्यिका = बहुलक (मोड) केंद्रीय प्रवृत्ति के मापन और प्रकीर्णन इसकी सारी विशेषताओं को संपुटित नहीं करते हैं। स्क्यूनेस का तात्पर्य, एक आवृत्ति वितरण के अकारण में असममिति अथवा सममिति की कमी से होता है। स्क्यूनेस का कोई भी मापक उस अंतर के परिप्रेक्ष्य में संकेत करता है, जो वस्तुएं किसी विशेष तुलनात्मक सममिति (अथवा साधारण) वितरण के साथ बांट दी गईं हों। स्क्यूनेस की अवधारणा उस तथ्य से महत्व प्राप्त करती है कि सांख्यिकीय सिद्धांत प्रायः साधारण वितरण की मान्यता पर आधारित होता है। इसलिए स्क्यूनेस के एक मापक की सुरक्षा मान्यता के प्रभाव के विरुद्ध करना आवश्यक है। इसलिए स्क्यूनेस सममिति की कमी है और यदि वितरणाकार आवृत्ति की लंबी पुच्छल चरराशि के उच्च मान की ओर है तो यह इसी प्रकार धनात्मक माना जाता है। यह ऋणात्मक माना जाता है, यदि वक्राकार आवृत्ति की लंबी पुच्छल चरराशि के छोटे मान की ओर हो। दूसरे शब्दों में, स्क्यूनेस धनात्मक है, यदि माध्य > माध्यिका > बहुलक है और ऋणात्मक है, जब यदि बहुलक > माध्यिका > माध्य है।

टिप्पणी

प्रकीर्णन को भिन्नता के मान के साथ मान्यता दी जाती है, बजाय उसकी दिशा के। स्क्यूनेस हमें भिन्नता की दिशा अथवा सममिति के झुकाव के बारे में बताता है। तथ्यों में, स्क्यूनेस का मापन प्रकीर्णन की राशि पर निर्भर करता है।

(1) धनात्मक वितरित स्क्यूनेस प्रणाली

टिप्पणी

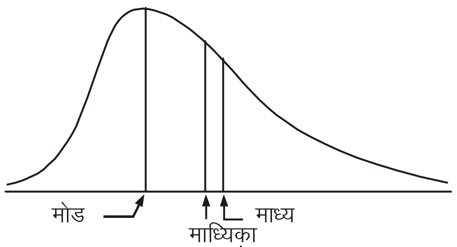

धनात्मक स्क्यूनेस

(2) समान या सममिति वितरण

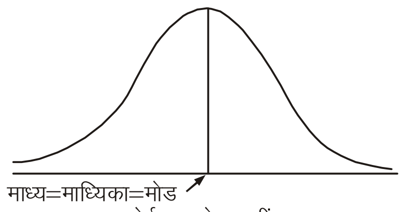

कोई स्क्यूनेस नहीं

(3) ऋणात्मक स्क्यूनेस वितरण

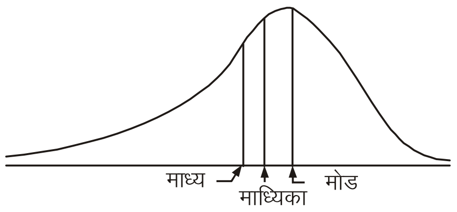

ऋणात्मक स्क्यूनेस

स्क्यूनेस मौजूद रहता है यदि–

- माध्य, माध्यिका और मोड के मान द्विपक्षीय नहीं होते हैं।
- जब आंकड़े साधारण रेखाचित्र पर आयोजित किए जाते हैं, वे हमें साधारण दलपुंज आकार नहीं देते हैं। जब एक लंबवत रेखा को केंद्र से काटा जाता है तब दो अर्धांश एक समान नहीं होते हैं।
- धनात्मक विचलन का योग माध्यिका से ऋणात्मक विचलन के योग के समान नहीं होता है।
- चतुर्थक माध्यिका से समान दूरी पर नहीं हों।
- आवृत्ति को समान विचलन के मोड से एक समान वितरित नहीं किया गया हो।

स्क्यूनेस के मापक हमें एक श्रृंखला में असममिति की सीमा और दिशा के बारे में बताते हैं और इस संबंध में दो या इससे अधिक श्रृंखला की तुलना की अनुमति देते हैं। वे या तो स्वच्छंद या संबंधित हो सकते हैं।

(1) स्वच्छंद Sk = (माध्य – मोड)

अन्य असंगति–

(2) स्वच्छंद Sk = (Q_3+Q_1-2 माध्यिका)

इन मापकों का प्रयोग दो अथवा उससे अधिक वितरण के बीच तुलना के लिए किया जाता है।

(1) कार्ल पियर्सन का स्क्यूनेस का गुणांक–

$$Sk_P = \left(\frac{\text{माध्य} - \text{बहुलक (मोड)}}{\sigma}\right), \text{ यदि मोड सुपरिभाषित हो}$$

$$Sk_P = \frac{3(\text{माध्य} - \text{मध्यिका})}{\sigma} \text{ यदि मोड दूषित तौर पर परिभाषित हो}$$

(2) बाउली का स्क्यूनेस का गुणांक–

$$Sk_P = \left(\frac{Q_3 + Q_1 - 2Q_2}{Q_3 - Q_1}\right) \text{ जहां } Q_2 = \text{माध्यिका}$$

(3) केली का स्क्यूनेस का गुणांक–

$$Sk_K = \left(\frac{P_{90} + P_{10} - 2P_{50}}{P_{90} - P_{10}}\right) \text{ जहां } P_{50} = \text{माध्यिका}$$

टिप्पणी

1. अन्य विचर, जिसका प्रयोग किया जा सकता था

$$Sk = \left(\frac{D_9 + D_1 - 2D_5}{D_9 - D_1}\right) \text{ जहां } D_5 = \text{माध्यिका}$$

2. स्क्यूनेस का एक मापन माध्य के संबंध में तीसरे क्षण के उपयोग से हासिल किया जा सकता है।

• क्यूरटोसिस

सिंपसन (Simpson) और काफ्का (Kafka) के अनुसार, सांख्यिकी में, "क्यूरटोसिस का संबंध एक आवृत्ति वितरण के भाग में समतलपन अथवा उच्चता (अथवा उभरेपन) से होता है। वितरण में क्यूरटोसिस की डिग्री एक साधारण वितरण में उच्चता के संबंध को मापती है।"

क्लार्क (Clark) और सेहकोड (Sehkode) के अनुसार, "क्यूरटोसिस एक वितरण की संपत्ति है, जो कि अपने उच्चता के संबंध को निश्चित करती है।"

कार्ल पियर्सन ने 1905 में तीन अलग–अलग वक्रों, जैसे–लेप्टोक्यूरोटिक, मेसोक्यूरोटिक और प्लेटीक्यूरोटिक का उपयोग किया। उन्होंने इन शब्दों को वितरण के आकार के आधार पर परिभाषित किया, जैसे–

1. बहुत तेज और ऊंचा वितरण लेप्टोक्यूरोटिक (Leptokurtic),
2. मध्यम ऊंचाई का वितरण मेसोक्यूरोटिक (Mesokurtic),
3. समतल वितरण का अर्थ प्लेटीक्यूरोटिक (Platykurtic)।

एक आवृत्ति वितरण की प्रणाली में यदि खंड में आवृत्ति बहुत सघन हो, तब वितरण तीक्ष्ण रूप से वितरणाकार होता है। आवृत्ति की समरूपता एक वितरण आवृत्ति की प्रणाली के खंड में बिखर जाती है, फिर वितरण का आवृत्ति समतल उच्च होता है

टिप्पणी

और यदि वितरण आवृत्ति की प्रणाली में आवृत्तियों का वितरण एक सामान्य तरीक से किया जाए तो आवृत्ति वितरण मध्यम उच्चता पर होता है। यह निम्नलिखित चित्रों में दिखाया गया है–

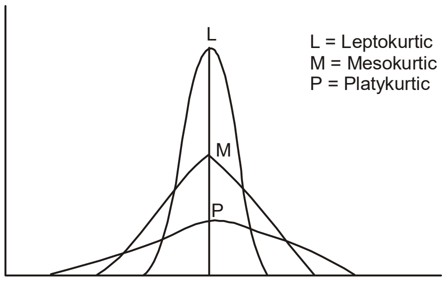

कार्ल पियर्सन ने निम्नलिखित गुणांक को परिभाषित किया है–

$$\beta_1 = \frac{\mu_3^2}{\mu_2^3} \qquad \beta_2 = \frac{\mu_4}{\mu_2^2}$$

$$\gamma_1 = +\sqrt{\beta_1} \qquad \gamma_2 = (\beta_2 - 3) \left(\frac{\mu_4 - 3\mu_2^2}{\mu_2^2}\right)$$

पहले दो प्रकार (β_1 और β_2) को बीटा (Beta) गुणांक कहा जाता है और अंतिम दो (γ_1 और γ_2) प्रकार को गामा (Gamma) गुणांक कहा जाता है।

आवृत्ति वितरण की प्रकृति स्थिति	
$\beta_2 = 3$, i.e., $\gamma_2 = 0$	मेसोक्यूरोटिक (मध्यम ऊंचाई)
$\beta_2 > 3$, i.e., $\gamma_2 > 0$	लेप्टोक्यूरोटिक (तीक्ष्ण ऊंचाई)
$\beta_2 < 3$, i.e., $\gamma_2 < 0$	प्लेटिक्यूरोटिक (समतल ऊंचाई)

नोट : एक सममिति वितरण के लिए $\mu_3 = 0; \beta_1 = 0; \gamma_1 = 0$

उदाहरण

कार्ल पियर्सन के गुणांक स्क्यूनेस की गणना–

चर राशि	आवृत्ति	चर राशि	आवृत्ति
70 – 80	11	30 – 40	21
60 – 70	22	20 – 30	11
50 – 60	30	10 – 20	6
40 – 50	35	0 – 10	5

हल

काल्पनिक माध्य लें, माना कि माध्यिका $A = 35$ है।

दिए गए आंकड़ों को पुर्नव्यवस्थित करने पर हम निम्न सारणी पाते हैं–

श्रेणी	मध्य बिंदु (X)	आवृत्ति (f)	$d = \left(\frac{X-A}{i}\right) = \left(\frac{X-35}{10}\right)$	fd	fd^2
0 – 10	5	5	– 3	– 15	45
10 – 20	15	6	– 2	– 12	24
20 – 30	25	11	– 1	– 11	11
30 – 40	35	21	0	0	0
40 – 50	45	35	+ 1	+ 35	35
50 – 60	55	30	+ 2	+ 60	120
60 – 70	65	22	+ 3	+ 66	198
70 – 80	75	11	+ 4	+ 44	176
		$N = \Sigma f = 141$		$\Sigma fd = 167$	$\Sigma fd^2 = 609$

स्क्यूनेस का गुणांक = $\left(\frac{\text{माध्य} - \text{मोड}}{\sigma}\right)$

माध्यः $\bar{X} = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right) \times i\right\}$

$$= \left\{35 + \left(\frac{167}{141}\right) \times 10\right\} = 46.84$$

मोड निरीक्षण के द्वारा मॉडल कक्षा है 40–50

$$M_0 = \left\{L + \left(\frac{\Delta_1}{\Delta_1 + \Delta_2}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{40 + \frac{(35-21)}{(35-21)+(35-30)} \times 10\right\} = 47.37$$

S.D., $\sigma = i \times \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$

$$= 10 \times \sqrt{\frac{609}{141} - \left(\frac{167}{141}\right)^2} = 17.08$$

स्क्यूनेस का गुणांक $= \left(\frac{46.84 - 47.37}{17.08}\right) = -\ 0.031$

उदाहरण

निम्नलिखित आंकड़ों से कार्ल पियर्सन के स्क्यूनेस गुणांक की गणना कीजिए–

अंक	*विद्यार्थियों की संख्या*	*अंक*	*विद्यार्थियों की संख्या*
करीब 0	150	करीब 50	70
करीब 10	140	करीब 60	30
करीब 20	100	करीब 70	14
करीब 30	80	करीब 80	0
करीब 40	80		

टिप्पणी

हल

हम जानते हैं कि :

कार्ल पियर्सन का स्क्यूनेस गुणांक $= \dfrac{3\,(\text{माध्य} - \text{माध्यिका})}{\sigma}$

चूंकि, यहां दो मॉडल कक्षाएं हैं, हम इसका प्रयोग करते हैं (विद्यार्थी खुद के लिए इसे जांच सकते हैं)।

अब, उपयोगकर्ता के तरीके में, हम पा सकते हैं कि माध्य = 39.27; माध्यिका = 45

और $\sigma = 22.08$ (उक्त मानों की प्राप्ति विद्यार्थियों के लिए एक अभ्यास के समान है)

$$\therefore \qquad Sk_P = \frac{3(39.27-45)}{22.8} = -\,0.75$$

उदाहरण

निम्नलिखित आंकड़ों से बाउली के स्क्यूनेस गुणांक की गणना करें–

वजन (lbs)	विद्यार्थियों की संख्या	वजन (lbs)	विद्यार्थियों की संख्या
70 – 80	12	110 – 120	50
80 – 90	18	120 – 130	45
90 – 100	35	130 – 140	20
100 – 110	42	140 – 150	8

हल

यहां, व्यक्तियों की संख्या का संचयी भार हमारे पास हैं–

वजन	*व्यक्तियों की संख्या (lbs)*	*संचयी (f) आवृत्ति (cf)*
70 – 80	12	12
80 – 90	18	30
90 – 100	35	65
100 – 110	42	107
110 – 120	50	157
120 – 130	45	202
130 – 140	20	222
140 – 150	8	230
योग	$N = \Sigma f = 230$	

नोटः बॉउली का स्क्यूनेस गुणांक $= \left(\dfrac{Q_3 + Q_1 - 2Q_2}{Q_3 - Q_1}\right)$

यहां, जैसे $N = \Sigma f = 230$, So $= \dfrac{N}{2} = 115$, जो श्रेणी 110 - 120. में निहित है।

टिप्पणी

$$\therefore \quad Q_2 = \text{ माध्यिका } = \left\{L + \left(\frac{\frac{N}{2} - c.f}{f}\right) \times i\right\}$$

$$= \left\{110 + \left(\frac{115-107}{50}\right) \times 10\right\} = 111.6$$

हम गणना कर सकते हैं $Q_1 = 97.85$ और $Q_3 = 123.22$

$$\therefore \text{ स्क्यूनेस का गुणांक} = \frac{97.85 + 123.22 - 2(111.6)}{123.22 - 97.85} = -0.08$$

उदाहरण

निम्नलिखित शृंखला में (माध्यिका) μ_2 और μ_3 प्राप्त करें–

x	0	1	2	3	4	5	6	7	8
f	1	9	26	59	72	52	29	7	1

हल

A = 4 (काल्पनिक माध्य) लें

x	f	$d = (x - A)$	fd	fd^2	fd^3
0	1	– 4	– 4	16	– 64
1	9	– 3	– 27	81	– 243
2	26	– 2	– 52	104	– 208
3	59	– 1	– 59	59	– 59
4	72	0	0	0	0
5	52	1	52	52	52
6	29	2	58	116	232
7	7	3	21	63	189
8	1	4	4	16	64
योग	$N = 256$		$\Sigma fd - 7$	Σfd^2 507	$\Sigma fd^3 - 37$

$$M = \left\{A + \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)\right\} = 4 + \frac{(-7)}{256} = 3.973$$

$$\mu'_1 = \frac{\Sigma f(x-A)}{N} = \frac{\Sigma fd}{N} = \frac{-7}{256} = -0.027$$

$$\mu'_2 = \frac{\Sigma f(x-A)^2}{N} = \frac{\Sigma fd^2}{N} = \frac{507}{256} = 1.980$$

$$\mu'_3 = \frac{\Sigma f(x-A)^3}{N} = \frac{\Sigma fd^3}{N} = \frac{-37}{256} = -0.145$$

अब, $\mu_2 = [\mu'_2 - (\mu'_1)^2] = [1.980 - (-0.027)^2] = 1.979$

$\mu_3 = [\mu'_3 - 3\mu'_2\, \mu'_1 + 2(\mu'_1)^3]$

$= [-0.145 - 3\,(1.980)\,(-0.027) + 2\,(-0.027)^3] = 0.015$

टिप्पणी

4.5.3 सह–संबंध : अवधारणा, प्रकार, सह–संबंध गणना विधि

भौतिक विज्ञान में भविष्य कथन की क्षमता अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक होती है। भौतिक विज्ञान ऐसे ठोस सिद्धांतों एवं वैज्ञानिक नियंत्रणों पर आधारित है, जिसके आधार पर विशिष्ट परिस्थितियों के अंतर्गत, किसी एक घटना के संबंध विश्वास के साथ पूर्णतः सत्य भविष्य–कथन किया जा सकता है। अन्य विषयों में भी भविष्य कथन विश्वसनीय ढंग से किया जा सकता है। परंतु उनमें विश्वास की मात्रा उतनी अधिक नहीं होती। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में कार्य–करण (Cause and Effect) के संबंध को सामान्यतः सरलतापूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है। परंतु मनोविज्ञान व शिक्षा के क्षेत्र में कार्य–करण के संबंधों को समझना अपेक्षाकृत कठिन होता है, क्योंकि मानव–व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों का ठीक–ठीक पता लगाना एक कठिन समस्या है। लेकिन इन समस्याओं के होते हुए भी मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धांतों के निर्माण में वैज्ञानिक पद्धति को ही अपने अध्ययन का मूल आधार बनाया तथा कार्य–करण के संबंध को समझने के लिए सह–संबंध विधियों (Correlation Techniques) का सहारा लिया है। वास्तव में, आज के वैज्ञानिक युग में मनोवैज्ञानिक चरों (Variables) की व्याख्याओं में भी वैसी ही वैज्ञानिक विचारधारा की कठोरता, शुद्धता व वस्तुनिष्ठता सक्रिय दिखायी पड़ती है, जैसी भौतिक विज्ञान में दिखाई पड़ती है और इसके लिए मनोवैज्ञानिक भी सह–संबंध विधियों को सक्रिय रूप में उपयोग में ला रहे हैं।

सह–संबंध की अवधारणा

जब दो या दो से अधिक चरों (Variables) तथा घटनाओं में साहचर्यात्मक संबंध (Associative Relationship) पाया जाता है, तो ऐसे पारस्परिक संबंध को सह–संबंध कहते हैं।

अन्य शब्दों में–सह–संबंध से दो चरों में पाये जाने वाले संयुक्त–संबंध (Joint-relation) का पता लगाया जाता है।

फरग्यूसन (Ferguson) के शब्दों में–''सह–संबंध का उद्देश्य दो चरों में पायी जाने वाली संबंध की मात्रा का पता लगाना होता है।''

सह–संबंध की दिशाएं (Directions of Correlation)

दो घटनाओं या चरों के मध्य में सह–संबंध प्रायः दो दिशाओं–समान दिशा में अथवा विपरीत दिशा में हो सकता है

समान एवं विपरीत दिशा (Equal and Opposite Direction)

जब दो चरों की पारस्परिक अंतः क्रिया में, एक चर की मात्रा जैसे–जैसे बढ़ती है परिणामस्वरूप दूसरे चर की मात्रा में भी तद्नुसार वृद्धि होती है तब सह–संबंध समान दिशा में होता है। इसके विपरीत, जब दो चरों की पारस्परिक अंतःक्रिया में एक चर की मात्रा बढ़ती है और दूसरे चर की मात्रा घटती है अर्थात् दूसरे चर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, तब सह–संबंध विपरीत दिशा में होता है।

इन चरों (Variables) में ऋणात्मक (Negative) सह–संबंध पाया जाता है।

सह–संबंध के प्रकार

प्रायः सह–संबंध चार प्रकार का होता है।

1. धनात्मक सह–संबंध (Positive Correlation)

जब दो चरों (Variables) में एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा में भी वृद्धि होती है अथवा एक चर की मात्रा में कमी होने पर दूसरे चर की मात्रा में भी कमी आती है तो दोनों चरों की ऐसी अनुरूपता को धनात्मक सह–संबंध कहते हैं। जब दो चर एक ही दिशा में परिवर्तित होते हैं तो उनमें धनात्मक सह–संबंध पाया जाता है। अन्य शब्दों में जब दोनों चर साथ–साथ एक ही दिशा में घटते अथवा बढ़ते हैं तो उनमें धनात्मक सह–संबंध मध्यम एवं निम्न प्रकार का हो सकता है। धनात्मक सह–संबंध तीन प्रकार के होते हैं–

(क) पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध (Perfect Positive Correlation) : जब दो चरों की मात्राएं समान दिशा में समान अनुपात में घटती–बढ़ती हैं तो उनमें पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध पाया जाता है। इस प्रकार का सह–संबंध एक सरल रेखा का रूप लिए हुए होता है और यह रेखा नीचे से ऊपर उठती हुई होती है। इस चित्र में OP रेखा पूर्णतः धनात्मक सह–संबंध को स्पष्ट करती है।

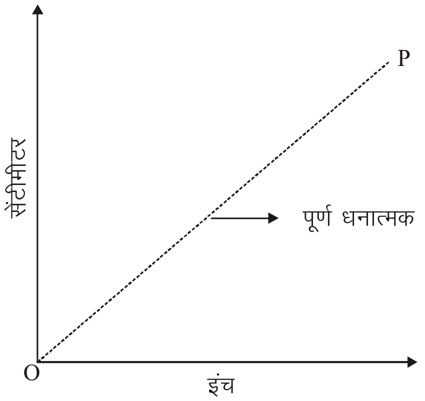

(ख) उच्च श्रेणी का धनात्मक सह–संबंध (High Positive Correlation) : कभी–कभी धनात्मक सह–संबंध पूर्ण न होकर उच्च श्रेणी का भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में सह–संबंध एक पतली रेखा न होकर कुछ मोटी रेखा के रूप में दिखाई देता है।

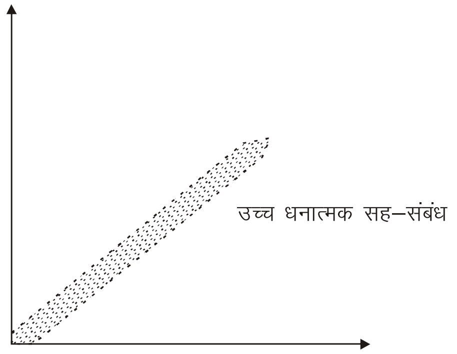

चित्र में उच्च धनात्मक सह–संबंध को दर्शाया गया है इस स्थिति में दोनों चर एक दिशा में बढ़ते अथवा घटते हैं लेकिन एक अनुपात में नहीं।

(ग) मध्यम अथवा निम्न सह–संबंध (Medium or Low Correlation) : जब दोनों चरों के मध्यमानों का वितरण पर्याप्त मात्रा में मध्य रेखा के इधर–उधर फैला रहता है तब दोनों चरों में सह–संबंध मध्यम अथवा निम्न हो सकता है। ऐसे सह–संबंध को सामान्य सह–संबंध भी कहा जा सकता है यह स्थिति निम्न चित्र में स्पष्ट है–

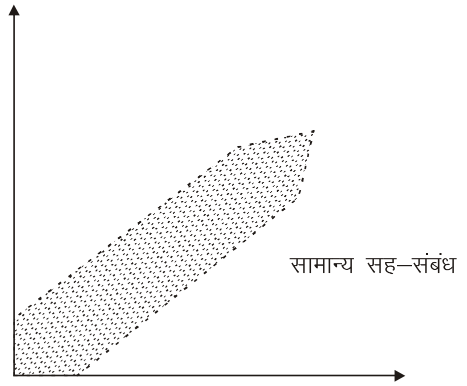

2. ऋणात्मक सह–संबंध (Negative Correlation)

जब दो चरों (Variables) की मात्रा में एक चर की मात्रा घटने पर दूसरे चर की मात्रा बढ़ती है अथवा एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा घटती है तो ऐसी स्थिति में उनमें ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है। अन्य शब्दों में ऋणात्मक सह–संबंध की स्थिति में दोनों चर विपरीत दिशा में चलते हैं। चरों की बहिर्मुखता तथा अन्तर्मुखता ऋणात्मक सह–संबंधों का एक अच्छा उदाहरण है। ऋणात्मक सह–संबंध भी धनात्मक सह–संबंध की भांति पूर्ण, उच्च श्रेणी का अथवा सामान्य (मध्यम/उच्च) हो सकता है।

(क) पूर्ण ऋणात्मक सह–संबंध (Perfect Negative Correlation) : जब दो चरों की मात्राएं समान अनुपात में विपरीत दिशा में घटती अथवा बढ़ती है तो उनमें पूर्णतः ऋणात्मक सह–संबंध पाया जाता है। इस प्रकार का सह–संबंध एक सरल रेखा के रूप में होता है जो ऊपर से नीचे गिरती हुई होती है जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है–

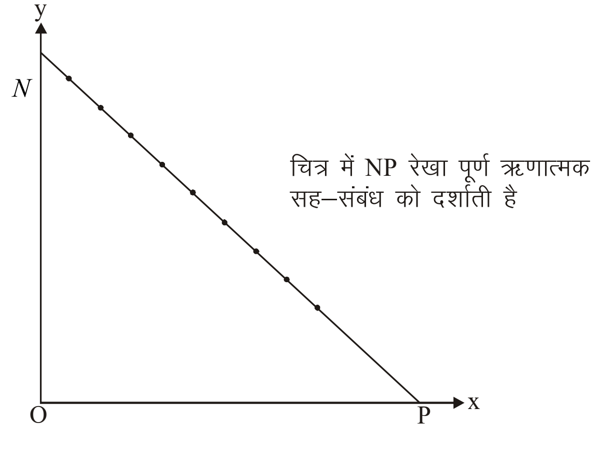

(ख) उच्च ऋणात्मक सह–संबंध (High Negative Correlation) : धनात्मक सह–संबंध की भांति ऋणात्मक सह–संबंध भी कभी–कभी पूर्ण न होकर उच्च श्रेणी का भी हो सकता है। दोनों श्रेणियों में उच्च ऋणात्मक सह–संबंध को निम्न रेखा चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

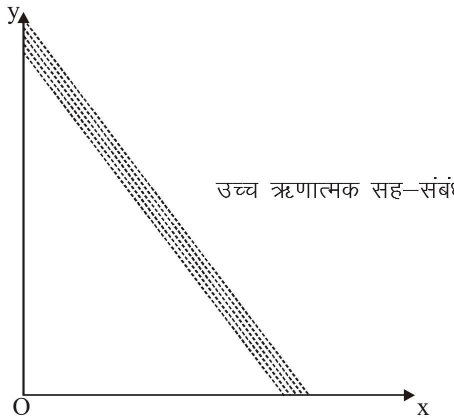

(ग) मध्यम/निम्न (सामान्य) ऋणात्मक सह–संबंध (Moderate Negative Correlation) : जब दोनों चरों के मध्यमानों का वितरण मध्य रेखा के दोनों ओर फैला रहता है तो सामान्य ऋणात्मक सह–संबंध होता है। जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है ऐसी स्थिति में सह–संबंध रेखा पतली न होकर काफी मोटी होती है–

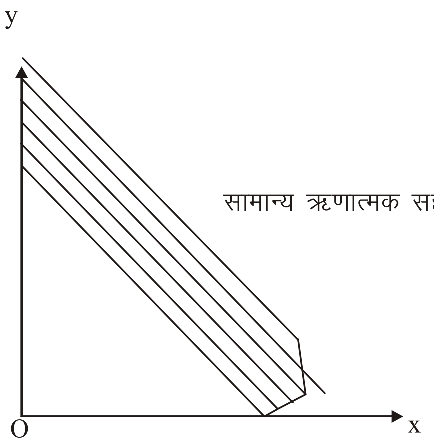

3. शून्य सह–संबंध (Zero Correlation)

जब दो चरों में से कोई भी चर एक दूसरे को प्रभावित नहीं करता है, तब ऐसी स्थिति में दोनों चरों में सहचर्यात्मक संबंध (Associative Relationship) भी शून्य होता है, और उनमें सह–संबंध की मात्रा भी शून्य होती है। जैसे एक बालक के भार (Weight) तथा उसकी बुद्धिलब्धि (IQ) में कोई भी चर एक दूसरे पर प्रभाव नहीं डालता है अतः इन दोनों चरों में शून्य सह–संबंध की मात्रा शून्य है ऐसे सह–संबंध को निम्नांकित चित्र के माध्यम से भी स्पष्ट किया जा सकता है–

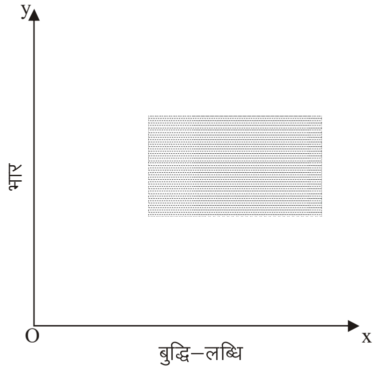

इस आकृति में बुद्धिलब्धि को x अक्ष पर तथा भार को y अक्ष पर दर्शाया गया है। चित्र को देखने से पता चलता है कि बुद्धि व भार के मान मध्य रेखा के चारों ओर बिखरे हुए हैं। इनमें न तो ऋणात्मक और न ही धनात्मक सह–संबंध है।

4. वक्र–रेखीय सह–संबंध (Curuilinear Correlation)

सह–संबंध के उपरोक्त तीन मुख्य प्रकारों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार का भी सह–संबंध पाया जाता है, जिसे वक्र–रेखीय सह–संबंध कहते हैं सह–संबंध की ऐसी स्थिति में दोनों चरों में सह–संबंध एक विशेष सीमा तक धनात्मक होता है और आगे चलकर जब दो चरों में सह–संबंध पहले धनात्मक तथा फिर ऋणात्मक होता है तब सह–संबंध रेखा केवल सीधी (Linear) न होकर आगे जाकर कुछ वक्र (Curve) वाली होती है जैसा निम्न चित्र में स्पष्ट है–

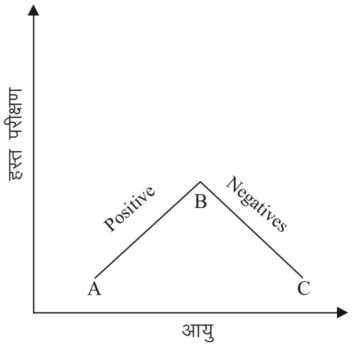

ऊपर चित्र में स्पष्ट है कि जैसे–जैसे आयु बढ़ती है, बालक के हस्त परीक्षण (High Grip Test) में प्राप्तांक भी बढ़ते चले जाते हैं परंतु एक विशेष अवस्था के बाद इसी परीक्षण में प्राप्तांक घटने लगते हैं। चित्र में बिन्दु A से B तक धनात्मक सह–संबंध है और B से C तक ऋणात्मक सह–संबंध है प्रारंभ जैसे–जैसे आयु बढ़ती है व्यक्ति की हस्त परीक्षण शक्ति भी बढ़ती है अर्थात् एक उम्र के बाद शारीरिक तथा आयु में ऋणात्मक सह–संबंध दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकार सह–संबंध पहले एक दिशा की ओर अग्रसर होता है और उसके पश्चात् दूसरी दिशा में। इस प्रकार के दो चरों में पाये जाने वाले सहचर्यात्मक संबंध को वक्र–रेखीय (Curvilinear) सह–संबंध कहते हैं।

निरर्थक सह–संबंध (Nonsensical Correlation)

कभी–कभी साधारण अध्यनकर्ता अपने अध्ययन में दो पूर्णतः असह–संबंधित चरों में भी सह–संबंध की स्थिति स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं ऐसा तब ही होता है जब अध्ययनकर्ता को दोनों चरों में पारस्परिक कार्य–कारण के संबंध का ठीक ज्ञान नहीं होता है। जैसे अध्ययनकर्ता अपने आंकड़ों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि देश में जैसे–जैसे सड़कों की संख्या बढ़ रही है वैसे–वैसे बीमारों की संख्या भी बढ़ रही है। यह प्रयास निरर्थक है क्योंकि इन आंकड़ों का परस्पर कोई संबंध नहीं है।

सह–संबंध गुणांक

सह–संबंध से केवल यही ज्ञात होता है कि दोनों चरों Variables में पारस्परिक संबंध किस प्रकार का है–धनात्मक, ऋणात्मक या शून्य। इसके अतिरिक्त हम यह ज्ञात कर

सकते हैं कि सह–संबंध थोड़ा है, सामान्य है अथवा अधिक है परंतु इसके द्वारा दोनों चरों में सह–संबंध की मात्रा का परिशुद्ध (Precise) वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा स्पष्ट ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। इस दोष को दूर करने के लिए सह–संबंध को सह–संबंध गुणांक के रूप में व्यक्त किया जाता है। सह–संबंध गुणांक एक प्रकार का ऐसा सूचकांक Index है जिससे दो चरों में एक का ज्ञान होने पर दूसरे चर के भविष्य में भविष्य कथन किया जा सकता है।

सह–संबंध गुणांक दो चरों में पाये जाने वाला ऐसा अनुपात है जिससे यह पता लगता है कि एक चर में होने वाले परिवर्तन दूसरे चर में होने वाले परिवर्तनों पर कितनी मात्रा में आधारित है, अथवा किस मात्रा में उनका अनुसरण करते हैं।

सह–संबंध गुणांक का विस्तार (Magnitudeal Co-efficient Correlation)

सामान्यतः सह–संबंध गुणांक का मान +1.00 से –1.00 तक आता है। अर्थात् इसके सभी मान +1.00 से –1.00 तक की सीमाओं के अंतर्गत ही रहते हैं जब सह–संबंध गुणांक का मान (+) में आता है तब वह धनात्मक सह–संबंध का प्रतीक होता है और जब इसका मान (–) में आता है तब ऋणात्मक सह–संबंध कहलाता है। इन दोनों दशाओं के विपरीत जब सह–संबंध गुणांक का मान शून्य (Zero) होता है तब सह–संबंध शून्य कहलाता है। सह–संबंध के विस्तार को निम्न प्रकार से भी समझाया जा सकता है–

उदाहरण

एक परीक्षा में 10 छात्रों ने अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य में निम्न अंक प्राप्त किए–

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
अर्थशास्त्र	30	25	23	29	24	28	31	22	32	26
वाणिज्य	32	27	25	34	26	36	38	24	39	28

हल

क्रम संख्या x	अर्थशास्त्र x	वाणिज्य y	Rank x	Rank y	कोटि अंतर D	कोटि अंतरों के वर्ग का योग $\sum D^2$
1	30	32	3	5	–2	4
2	25	27	7	7	0	0
3	23	25	9	9	0	0
4	29	34	4	4	0	0
5	24	26	8	8	0	0
6	28	36	5	3	2	4
7	31	38	2	2	0	0
8	22	24	10	10	0	0
9	32	39	1	1	0	0
10	26	28	6	6	0	0
योग						**8**
				N = 10 **$\sum D^2 = 8$**		

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{6(8)}{10(10^2 - 1)} \quad P = 1 - \frac{48}{10(99)} = P = 1 - \frac{48}{990}$$

$$P = 1 - 0.048 = 0.952 \qquad \text{or} \qquad 0.95$$

टिप्पणी

विवेचन : दोनों विषयों में अत्यधिक उच्च श्रेणी का धनात्मक सह–संबंध है।

सह–संबंध गुणांक का विस्तार

धनात्मक सह–संबंध

	पूर्ण धनात्मक सह–संबंध
+ 1.00	
	उच्च श्रेणी का सह–संबंध
+ 0.99	
	सामान्य सह–संबंध
+ 0.70	
	निम्न परन्तु निश्चित सह–संबंध
+ 0.40	
	सूक्ष्म एवं नगण्य सह–संबंध
+ 0.20	

ऋणात्मक सह–संबंध

− 0.20	सूक्ष्म एवं नागण्य सह–संबंध
− 0.40	निम्न परन्तु निश्चित सह–संबंध
− 0.70	सामान्य सह–संबंध
− 0.99	उच्च श्रेणी का ऋणात्मक सह–संबंध
+ 1.00	पूर्ण ऋणात्मक सह–संबंध

सह–संबंध गुणांक की विशेषताएं

सह–संबंध गुणांक की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. **प्रसार** (Range) : सह–संबंध गुणांक का मान −1.00 से लेकर +1.00 के बीच होता है। सह–संबंध गुणांक (τ) का मान कभी भी −1 से कम नहीं होता अथवा सैद्धान्तिक प्रसार −1 से +1 तक होता है।

2. **इकाइयों का प्रभाव नहीं** (No Effect of Units) : सह–संबंध गुणांक एक शुद्ध अंक है इसकी कोई इकाई नहीं होती है। यदि प्राप्तांकों की इकाइयों को बदल दिया जाए तो सह–संबंध गुणांक के मान में कोई अंतर नहीं आता है यही कारण है कि लंबाई को चाहे इंचों में नापें अथवा सेमी में, किसी दूसरे चर के साथ लंबाई का सह–संबंध गुणांक का मान अपरिवर्तित रहता है।

3. **प्राप्तांकों में स्थिरांक जोड़ने, घटाने, गुणा या भाग करने का प्रभाव नहीं** (No Effect of Addition, Subtraction, Multiplication or Division of Constant) : किसी एक अथवा दोनों चरों के प्राप्तांकों में किसी स्थिरांक (Constant) को जोड़ने, घटाने, गुणा करने अथवा भाग देने पर सह–संबंध गुणांक अप्रभावित रहता है। सह–संबंध गुणांक (τ) की यह विशेषता गणना कार्य में अत्यंत उपयोगी है। इस विशेषता के कारण ही बड़े प्राप्तांकों से सह–संबंध गुणांक ज्ञात करते समय सभी प्राप्तांकों से किसी स्थिरांक को घटाने का सुझाव दिया जाता है। दोनों चरों से अलग–अलग स्थिरांक घटाये जा सकते हैं।

4. **सह–संबंध कारणता नहीं** ;ब्वततमसंजपवद पे दवज ब्नेंजपवदद्ध : सह–संबंध कभी भी कार्य–करण संबंध का द्योतक नहीं होता है। कभी–कभी ऐसा भ्रमवश समझ लिया जाता है। यदि x तथा y के बीच सह–संबंध है तो तीन संभावनाएं हो सकती हैं–

   (क) x का कारण y है।

   (ख) y का कारण x है।

   (ग) x व y दोनों का कारण कोई तीसरा चर z है।

केवल सह–संबंध गुणांक के आधार पर इन तीनों में से किसी एक को स्वीकार कर लेना अथवा अन्यों को अस्वीकार करना उचित नहीं होता है।

• सह–संबंध गुणांक निकालने की विधि और गणना

सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की मुख्य विधियां निम्नलिखित हैं–

1. स्पीयर मैन की कोटि अंतर/विधि
2. पीयरसन गुणन–आघूर्ण विधि

स्पीयर मैन की कोटि अंतर विधि : चार्ल्स स्पीयरमैन ने व्यक्तिगत समंकमालाओं में सह–संबंध ज्ञात करने की एक सरल रीति का प्रतिपादन किया है। इस रीति को कोटि–अंतर या क्रमान्तर–रीति भी कहते हैं। यह रीति उन परिस्थितियों के लिए अधिक उपयुक्त मानी जाती है जहां तथ्यों को केवल कोटि क्रम (Rank-Order) के अनुसार ही रखा जा सकता है उदाहरण के लिए जैसे सुंदरता का अंकात्मक माप संभव नहीं लेकिन फिर भी विभिन्न इकाइयों की सुंदरता को देखकर अर्थात् गुण की अधिकता के आधार पर उन्हें पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि क्रम प्रदान किया जा सकता है। इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक का सांकेतिक चिह्न (Symbol) P होता है।

इस विधि में सर्वप्रथम X तथा Y श्रेणी के पद–मूल्यों को अलग–अलग कोटि क्रम प्रदान किए जाते हैं। इसमें सबसे बड़ी संख्या को 1 (एक) उससे छोटी को 2 (दो) फिर तीन इस प्रकार क्रम निश्चित किया जाता है। तत्पश्चात् X श्रेणी के क्रमों में से Y श्रेणी के क्रमों को घटाकर क्रमान्तरों के अंतर (D = Rank X–Rank Y) की गणना की जाती है। ध्यान रखने की बात है कि $\sum D$ क्रमान्तरों के अंतर का योग सदैव (0) शून्य होता है। फिर क्रमान्तरों का वर्ग निकालकर उनका योग किया जाता है अर्थात् $\sum D^2$ ज्ञात किया जाता है और अंत में निम्न सूत्र का प्रयोग करके सह–संबंध ज्ञात किया जाता है।

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)} \quad or \quad P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N^3 - N}$$

उदाहरण

दो परीक्षणों में छात्रों के प्राप्तांक निम्न प्रकार हैं कोटि–अंतर विधि द्वारा दोनों परीक्षणों में सह–संबंध ज्ञात कीजिए।

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
परीक्षण I	15	12	13	18	16	20	19	17	14	21
परीक्षण II	25	30	28	22	24	20	21	23	27	19

टिप्पणी

	परीक्षण I	परीक्षण II	Rank I	Rank II	कोटि अंतर D	कोटि अंतरों के वर्गों का योग $\sum D^2$
1	15	25	7	4	3	9
2	12	30	10	1	9	81
3	13	28	9	2	7	49
4	18	22	4	7	–3	9
5	16	24	6	5	1	1
6	20	20	2	9	–7	49
7	19	21	3	8	–5	25
8	17	23	5	6	–1	1
9	14	27	8	3	5	25
10	21	19	1	10	–9	81
					–25 + 25 =0	330

$$P = 1 - \frac{6\sum D^2}{N(N^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{6(330)}{10(10^2-1)}$$

$$P = 1 - \frac{1980}{10(99)}$$

$$P = 1 - \frac{1980}{990}$$

$$P = 1 - 2$$

$$P = -1$$

पीयरसन गुणनफल–आघूर्ण विधि

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध विधि का प्रतिपादन कार्ल पियरसन के द्वारा 1896 में फ्रांसिस गाल्टन के द्वारा विकसित विचारों के आधार पर किया गया था। पियरसन के नाम पर इस विधि को पियरसनियन विधि तथा इस विधि से प्राप्त गुणांक को पियरसन सह–संबंध गुणांक कहा जाता है। इस विधि के अंतर्गत दोनों चरों पर विभिन्न व्यक्तियों के प्राप्तांकों के सापेक्ष Z प्राप्तांकों की गुणाओं का आघूर्ण अर्थात् गुणनफल–आघूर्ण (Moment of Product) ज्ञात किया जाता है। यह गुणनफल आघूर्ण ही दोनों चरों के बीच सह–संबंध की मात्रा को बताता है जिसे अंग्रेजी के अक्षर r (आर) से प्रदर्शित किया जाता है।

$$r = \frac{\sum Zx\, Zy}{N}$$

आघूर्ण वास्तव में विज्ञान/गणित से लिया गया शब्द है, किन्हीं अंकों का आघूर्ण उन अंकों के माध्यम से उनकी दूरियों का मध्यमान होता है। आघूर्ण को $\sum(X-M)/N$ या $\sum(X-M)/N \sum X/N$ से लिखा जा सकता है। द्विचर आघूर्ण में दो चरों के प्राप्तांकों के मध्यमानों से लिये गये विचलनों को गुणा करते हैं इसलिए इसे गुणनफल आघूर्ण भी कहते हैं। यह आघूर्ण दो चरों के साथ–साथ परिवर्तित हो रहे विचलन को भी व्यक्त करता है इसलिए इसे सह–संबंध प्रसरण भी कहते हैं। गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक दोनों चरों के गुणनफल–आघूर्ण का दोनों चरों के मानक विचलनों के गुणनफल के साथ अनुपात है अतः–

$$r = \frac{\sum_{xy} / N}{\delta_x \cdot \delta_y}$$

टिप्पणी

गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक के इस सूत्र को निम्नवत् ढंग से भी लिखा जा सकता है–

$$\frac{\sum \frac{x}{\delta x} \cdot \frac{y}{\delta y}}{N} \text{ क्योंकि } \frac{x}{\delta_x} = Z_x \frac{y}{\delta_y} = zy \text{ अतः } r = \frac{\sum z_x \cdot z_y}{N}$$

यह सह–संबंध ज्ञात करने का मूल एवं परिभाषिक सूत्र है किन्तु इस सूत्र से सह–संबंध गुणांक की गणना करना जटिल होता है। क्योंकि सभी प्राप्तांकों को z में बदलना पड़ता है तथा मानक विचलन एवं मध्यमान के दशमलव संख्या में होने पर घटाने व भाग की गणना जटिल व श्रम साध्य हो जाती है। इसलिये इस सूत्र को सरल रूप में बदलने की आवश्यकता हुई। गुणनफल–आघूर्ण सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए इस सूत्र को निम्न प्रकार से सरल रूप में बदला जा सकता है–

$$r = \frac{\sum xy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y}$$

$$r = \frac{\sum xy}{\sqrt{\sum x^2 \sum y^2}} = \frac{\sum(X - \overline{X})\,(4 - \overline{4})}{\sqrt{\sum(X - \overline{X})^2 \,\sum(Y - \overline{Y})^2}}$$

$$r = \sum xy - \frac{(\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{\sum x^2 - \frac{(\sum x^2)}{N}}\sqrt{\sum y^2 - \frac{(\sum y)^2}{N}}}$$

या

$$r = \frac{N \cdot \sum xy - (\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{N \cdot \sum x^2 - (\sum x)^2}\sqrt{N \cdot \sum y^2 - (\sum y)^2}}$$

यह रीति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है क्योंकि इस रीति द्वारा सह–संबंध गुणांक का निश्चित रूप से तथा अंकात्मक रूप से अध्ययन किया जा सकता है। यह रीति गणितीय दृष्टि से उपयुक्त है क्योंकि यह प्रमाप विचलन व समान्तर माध्य पर आधारित है।

गुणांक निकालने की विधि (Method Calculation of Coefficient)

इस रीति के अंतर्गत सर्वप्रथम दोनों श्रेणियों का समान्तर माध्य निकाला जाता है।

1. तत्पश्चात् दोनों श्रेणियों के समान्तर माध्य से विचलन ज्ञात किया जाता है पहली श्रेणी के विचलनों को 'dx' तथा दूसरी श्रेणी के विचलनों को 'dy' कहते हैं।
2. दोनों श्रेणियों के विचलनों का वर्ग d_x^2 तथा d_y^2 ज्ञात करके उनका योग किया जाता है। दोनों विचलनों को परस्पर गुणा करके ($dxdu$) योग ज्ञात किया जाता है और अन्त में निम्न सूत्र द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है–

$$r = \frac{\sum dx\, dy}{N \cdot \delta \cdot \delta y} \text{ या } r = \frac{\sum dx\, dy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}} \text{ जहां } \begin{matrix} dx = (X - \overline{X}) \\ dy = (Y - \overline{Y}) \end{matrix} \text{ है}$$

उपरोक्त सूत्र x तथा y के सह–विचरण (Co-Variance) पर आधारित है अर्थात् $\sum xy / N$ इसलिए इसे सह–विचरण रीति भी कहा जाता है।

टिप्पणी

उदाहरण

निम्न समंकों की सहायता से कार्ल पियरसन सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

$\sum(X-\overline{X})(Y-\overline{Y}) = 150 \; N = 9 \quad \delta \times 5.8 \quad \delta y = 3.2 \quad \sum(X-\overline{X})(Y-\overline{Y}) = \sum dxdy$

हल

$$r = \frac{\sum dxdy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y} = \frac{150}{(9)(5.8)(3.2)} = \frac{150}{167.04} = +\,0.898$$

उदाहरण

X =	17	18	19	19	20	20	21	21	22	23
Y =	12	16	14	11	15	19	22	16	15	20

हल

X श्रेणी			y श्रेणी			
x	$(X-\overline{X})$ Dx	$(X-\overline{X})^2$ d_x^2	y	$dy^{y-\overline{y}}$	$d_y^{2\,y-\overline{y}}$	$dxdy$
17	–3	9	12	–4	16	12
18	–2	4	16	0	0	0
19	–1	1	14	–2	4	2
19	–1	1	11	–5	25	5
20	0	0	15	–1	1	0
20	0	0	1.9	+3	9	0
21	+1	1	22	+6	36	6
21	+1	1	16	0	0	0
22	+2	4	15	–1	1	–2
23	+3	9	20	+4	16	12
200	0	30	160	0	108	+35

$$\overline{X} = \frac{\sum y}{N} \qquad \overline{Y} = \frac{\sum y}{N}$$

$$\overline{X} = \frac{200}{10} \qquad \overline{Y} = \frac{160}{10}$$

$$X = 20 \qquad \overline{Y} = 16$$

$$\delta x = \sqrt{\frac{\sum d_x^2}{N}} \qquad \delta y \sqrt{\frac{\sum d_y^2}{N}}$$

$$\delta x = \sqrt{\frac{30}{10}} \qquad \delta y = \sqrt{\frac{108}{10}}$$

$$\delta x = \sqrt{3} \qquad \delta y = \sqrt{10.8}$$

$$\delta x = 1.73 \qquad \delta y - 3.28$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{N(\delta x)\,(\delta y)}$$

$$= \frac{35}{10(1.73)\,(3.28)} = +0.615$$

$$r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}}$$

$$= \frac{35}{\sqrt{30 \times 108}}$$

$$= \frac{35}{\sqrt{3240}}$$

$$= \frac{35}{56.9}$$

$$= +0.615$$

इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए $r = \frac{\sum dxdy}{N \cdot \delta x \cdot \delta y}$ सूत्र की अपेक्षा $r = \frac{\sum dxdy}{\sqrt{\sum d_x^2}\sqrt{\sum d_y^2}}$ का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि इस सूत्र में δx तथा δy अलग–अलग निकालने की आवश्यकता नहीं होती है। यह सूत्र ऊपर बताये गये मूल सूत्र का ही सरल रूप है। इस सूत्र का प्रयोग करने में सापेक्षिकतः परिकलन (Calculation) कम करना पड़ता है, समय भी कम लगता है लेकिन $r =$ की शुद्धता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

परन्तु उपर्युक्त उदाहरण में एक विशेष बात देखने में आयी है कि दोनों चरों के मध्यमान (Means) पूरी संख्या (Round Figures) में ही आये हैं। यदि दोनों चरों के मध्यमान (Mean) दशमलव में आते हैं तो उन्हें मूल पदों से घटाने पर संबंधित विचलन (dx) तथा (dy) भी दशमलव में होंगे तथा उनके गुणनफल का मान भी अधिकतर दशमलव में होगा तो ऐसी स्थिति में गणना करना कठिन हो जाता है और हल करने में त्रुटियां भी आ सकती हैं। इस प्रकार की त्रुटियों की आशंका को दूर करने के लिए सह–संबंध गुणांक के लिए एक अन्य सूत्र का प्रयोग किया जाता है जो कि कल्पित मध्यमान पर आधारित होता है।

कल्पित मध्यमान विधि (Assumed Mean Method)

इस सूत्र में दोनों चरों के अथवा एक चर के कल्पित मध्यमान को मान लिया जाता है और वास्तविक मध्यमान के आगे वाली या पहले वाली पूरी संख्या को कल्पित कर लिया जाता है। इस कल्पित मध्यमान को पूरी संख्या बनाने के लिए वास्तविक मध्यमान से घटाया या जोड़ा जाता है। इसे शुद्धता का मान कहते हैं। यह शुद्धता M–Assumed Mean की होती है। यदि शुद्धता की आवश्यकता दोनों चरों में पड़ती है तो दोनों ही चरों में कल्पित मध्यमान का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जा सकता है। कल्पित मध्यमान द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए इस सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

सूत्र

$$\frac{\frac{\sum dxdy}{N} - (\overline{X} - A)(\overline{Y} - A)}{\left[\frac{\sum d_x^2}{N} - (\overline{X} - A)^2\right]\left[\frac{\sum d_y^2}{N} - (\overline{Y} - A)^2\right]}$$

उदाहरण

दो विषयों में 10 विद्यार्थियों ने निम्न अंक प्राप्त किये हैं, इनके आधार पर दोनों विषयों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

विद्यार्थी क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
गणित	25	32	18	24	29	33	28	19	23	25
विज्ञान	27	34	21	27	23	35	31	23	18	16

हल

	गणित x श्रेणी			विज्ञान y श्रेणी			
क्रम संख्या	x	A = 26 (X–A) dx	d_x^2	y	$\frac{A=26}{(y-A)}dy$	d_y^2	$dxdy$
1	25	–1	1	27	+1	1	–1
2	32	+6	36	34	+8	64	48
3	18	–8	64	21	–5	25	40
4	24	–2	4	27	+1	1	–2
5	29	+3	9	23	–3	9	–9
6	33	+7	49	35	+9	81	63
7	28	+2	4	31	+5	25	10
8	19	–7	49	23	–3	9	21
9	23	–3	9	18	–8	64	24
10	25	–1	1	16	–10	100	10
योग	256		226	255		379	204

$\sum x = 256$	$\sum y = 255$
$X = \frac{\sum x}{N}$	$Y = \frac{\sum y}{N}$
$\overline{X}\frac{256}{10}$	$\overline{Y} = \frac{255}{10}$
$\overline{X} = 25.6$	$\overline{Y} = 25.5$
$\overline{X} - A$	$\overline{Y} - A$
$25.6 - 26 = (-.4)$	$25.5 - 26 = (-.5)$
$(\overline{X} - A)^2$	$(\overline{Y} - A)^2$
$(25.6 - 26)^2$	$(25.5 - 26)^2$
$(-.4)^2$	$(-.5)^2$
$= .16$	$.25$

$$r = \frac{\frac{\sum dxdy}{N} - (\overline{X} - A)(\overline{Y} - A)}{\left[\sqrt{\frac{\sum d_x^2}{N} - (\overline{X} - A)^2}\right]\left[\frac{\sum d_y^2}{N} - (\overline{Y} - A)^2\right]}$$

$$\frac{\frac{204}{10} - (-.4)(-.5)}{\left[\frac{226}{10} - (-0.4)\right]\left[\frac{379}{10} - (-0.5)\right]}$$

$$\frac{20:4 - (+0.2)}{\sqrt{[22.6 - 0:16][37.9 - 0.25]}}$$

$$\frac{20.2}{\sqrt{(22.44)\,37.65}}$$

$$\frac{20.2}{\sqrt{844.9}} = \frac{20.2}{29.07} = 0.69$$

उच्च धनात्मक सह–संबंध

लघु प्राप्तांक विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना (Correlation by Reduced Score Method)

कभी–कभी मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में दोनों चरों के आंकड़े काफी बड़े–बड़े होते हैं तथा प्रयासों अथवा निरीक्षणों की संख्या भी काफी बड़ी होती है। इस प्रकार की संख्याओं से गणना करना अत्यधिक कठिन हो जाता है, संख्याओं के बड़े तथा विषम होने के कारण सावधानी रखते हुए भी भूल होने की आशंका बनी रहती है। ऐसी स्थिति से निबटने के लिए लघु प्राप्तांक विधि (Reduced Score Method) का प्रयोग अधिक उपयोगी रहता है। इस विधि की प्रमुख विशेषता यही है कि इसमें बड़े आंकड़ों को घटाकर सरलतापूर्वक कम कर दिया जाता है इससे गणना का भार कम हो जाता है और परिणाम में भी शुद्धता की कमी नहीं होती है। उदाहरण के लिए नीचे सह–संबंध गुणांक को इसी विधि से निकाला गया है–

उदाहरण

एक कम्प्यूटर प्रोग्राम को सीखने में 20 विद्यार्थियों की बुद्धिलब्धि (I.Q) तथा सीखने के समय के मध्यमानों को निम्न तालिका में दिया गया है। इन दिए गये आंकड़ों के आधार पर सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

विद्यार्थियों की क्रम संख्या	बुद्धिलब्धि	सीखने का समय
1	92	110
2	108	86
3	96	112
4	85	120
5	110	82
6	108	85
7	96	112
8	113	90
9	98	81
10	88	118
11	94	112
12	106	82
13	115	80
14	94	110
15	118	100
16	120	80
17	99	102
18	100	90
19	98	100
20	106	86

हल

टिप्पणी

	x श्रेणी			*y* श्रेणी			
	X	*dx*	d_x^2	*x*	*dy*	d_y^2	*Dxdy*
1	92	−8	64	110	10	100	−80
2	108	8	64	86	−14	196	−112
3	96	−4	16	112	12	144	−48
4	85	−15	225	120	20	400	−300
5	110	10	100	82	−18	324	−180
6	108	8	64	85	−15	225	−120
7	96	−4	16	112	12	144	−48
8	113	13	169	90	10	100	−130
9	98	−2	4	81	−19	361	+38
10	88	−12	144	118	18	324	−216
11	94	−6	36	112	12	144	−72
12	106	6	36	82	−18	324	−108
13	115	15	225	80	−20	400	−300
14	94	−6	36	110	10	100	−60
15	118	18	324	100	0	0	00
16	120	20	400	80	−20	400	−400
17	99	−1	1	102	+2	4	−2
18	100	0	0	90	−10	100	00
19	98	−2	4	100	0	0	00
20	106	6	36	86	−14	196	−84
योग		−6 +104 +44	1964		−158 +96 −62	3986	−2260 +38 −2222

$\sum dx = +44$ $\qquad\sum dy = -62$

$\sum d_x^2 = 1964$ $\qquad\sum d_y^2 = 3986$

$\sum dxdy - 2222$

$$\frac{\sum dxdy - \frac{(\sum dx)(\sum dy)}{N}}{\sqrt{\left[\sum d^2x - \frac{(\sum dx)^2}{N}\right]\left[\sum d^2y - \frac{(\sum dy)^2}{N}\right]}}$$

$$\frac{-2222 - \frac{(+44)\,(-62)}{20}}{\sqrt{\left[1964 - \frac{(44)^2}{20}\right]\left[3986 - \frac{(62)^2}{20}\right]}}$$

$$\frac{-2222 - (-136.4)}{\sqrt{[1964 - 96.8][3986 - 192.2]}}$$

$$\frac{-2222 + 136.4}{\sqrt{[1867.2][3793.8]}}$$

$$\frac{-2085.6}{7083783.36}$$

$$\frac{-2085.6}{2661.537} = 0.784$$

टिप्पणी

उपरोक्त दोनों चरों (x तथा y) के निरीक्षण से पता चलता है कि इनके मध्यमानों का विस्तार 80 से लेकर 120 तक फैला हुआ है। लघु प्राप्तांक विधि के अंतर्गत प्रत्येक चर में से एक स्थिर संख्या (Constant Number) घटानी होती है, वह संख्या ऐसी होनी चाहिए जिसके घटाने से प्राप्तांक का मान काफी कम से कम हो सके। इस उदाहरण के आधार पर यदि हम स्थिर संख्या 100 चुनते हैं तो शेष प्राप्तांक लघु संख्या ± 20 रहती है। यह संख्या सुविधाजनक है। दोनों चरों के लिए स्थिर संख्या 100 चुनने से हमारा गणना कार्य काफी सरल हो जाता है। यह स्थिर संख्या कुछ भी हो सकती है, तथा दोनों चरों के लिए स्थिर संख्या अलग–अलग हो सकती है और प्रायः अलग ही होती है। स्थिर संख्या का चयन करते समय माननीय कसौटी यह है कि संख्या ऐसी होनी चाहिए कि प्राप्तांकों को घटाने से प्राप्त शेष संख्या कम से कम रहे, जिससे गणना (Calculation) का कार्य सरल से सरल हो सके।

मूल प्राप्तांकों से सह–संबंध गुणांक निकालने की विधि

इस विधि से सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना अधिक सरल होता है। इस विधि में विचलन नहीं लिये जाते बल्कि मूल्यों का सीधे ही प्रयोग किया जाता है। इसमें गणित कार्य कम करना पड़ता है। इस विधि से सह–संबंध गुणांक निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

$$r = \frac{N\sum xy - (\sum x)\,(\sum y)}{\sqrt{\left[N \times \sum x^2 - (\sum x)^2\right]\left[N \times \sum y^2 - (\sum y)^2\right]}}$$

उदाहरण

निम्न सारणी से मूल प्राप्तांकों का प्रयोग करते हुए सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

X–	3	4	6	7	10	11	14	16	18	20
Y–	1	3	5	4	8	7	9	10	13	12

हल

x	x^2	y	$y2$	X^4
3	9	1	1	3
4	16	3	9	12
6	36	5	25	30
7	49	4	16	28
10	100	8	64	80
11	121	7	49	77
14	196	9	81	126
16	256	10	100	160
18	324	13	169	234
20	400	12	144	240

$$\frac{N \times \sum xy - (\sum x)(\sum y)}{\sqrt{\left[N \times \sum x^2 - (\sum x)^2\right]\left[N \times \sum y^2 - (\sum y)^2\right]}}$$

टिप्पणी

$$\frac{10 \times 990 - (109)(72)}{\sqrt{10(1507) - (109)^2}\sqrt{10(658) - (72)^2}}$$

$$\frac{9900 - 7848}{\sqrt{15070 - 11881}\sqrt{6580 - 5184}}$$

$$\frac{2052}{\sqrt{3189 \times 1396}} = \frac{2052}{\sqrt{4451844}} = \frac{2052}{2109.93} = +0.97$$

गेन्स विधि (Gains Method)

यह विधि कोटि अंतर विधि (Rank Difference Method) का ही सरल रूप है। इसके अंतर्गत दोनों चरों की कोटियों में केवल धनात्मक अंतरों की ही गणना की जाती है जबकि ऋणात्मक संख्या में आने वाले पदमूल्यों को छोड़ दिया जाता है। इस विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक का सांकेतिक चिन्ह (Symbol) R होता है। इस विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$R = 1 - \frac{6\sum G}{(N^2 - 1)}$$

यहां R = गेन्स विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक है।

$\sum$G = धनात्मक अंतरों का योग, यहां G Gain को संक्षिप्त रूप में व्यक्त करता है।

N = निरीक्षणों की संख्या।

उदाहरण

निम्न सारणी में दिये गये मध्यमानों का गेन्स विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

विद्यार्थी	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
x	38	35	30	32	26	46	50	42	36	20
y	40	30	35	25	30	45	55	40	40	10

हल

क्रम संख्या	x	y	R^1	R^2	G R^1-R^2	G R^2-R^1
1	38	40	4	4	0	0
2	35	30	6	7.5	–	1.5
3	30	35	8	6	2	–
4	32	25	7	9	–	2
5	26	30	9	7.5	1.5	–
6	46	45	2	2	0	0
7	50	55	1	1	0	0
8	42	40	3	4	–	1
9	36	40	5	4	1	–
10	20	10	10	10	0	0
योग					$\sum G = 45$	$\sum G = 4.5$

Note: $\sum$G के दोनों स्तंभों का योग समान (Equal) होना चाहिए।

$$R = 1 - \frac{6\sum G}{N^2 - 1}$$

टिप्पणी

$$= 1-\frac{6(4.5)}{10^2-1}$$

$$= 1-\frac{27}{100-1}$$

$$= 1-\frac{27}{99}$$

$$= 1-.2727$$

$= 0.727$ or $+0.73$ धनात्मक सह–संबंध है।

सह–संबंध गुणांक को ज्ञात करने की प्रमुख विधियों का वर्णन ऊपर किया गया है। इनमें प्रथम क्रमांतर विधि (Rank Difference Method) तथा दूसरी आघूर्ण गुणनफल विधि (Product Moment Method) है। क्रमांतर विधि का प्रयोग केवल उसी स्थिति में अधिक उपयुक्त रहता है जब दोनों चरों के आंकड़े केवल कोटियों के आधार पर व्यक्त किए जाते हैं और संख्या (N) अथवा प्रेक्षित आवृत्तियां कम रहती हैं इसीलिए कोटि–अंतर विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक (P) की गणना अप्राचल विधियों (Non-Parametric Method) में की जाती है। इसके विपरीत, प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक (*r*) की गणना प्राचल विधियों (Parametric Method) में की जाती है क्योंकि इस विधि के अंतर्गत प्राप्त आंकड़ों में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा (Assumption) रहती है।

इन दोनों प्रकार के आंकड़ों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी आंकड़े रहते हैं जिनमें एक चर (Variable) के आंकड़े निरंतर श्रेणी में तथा दूसरे चर के आंकड़ों का स्वरूप द्विभाजी रहता है। अथवा उनका स्वरूप किसी अन्य मानदण्ड के आधार पर दो भागों में विभाजित रहता है, तथा दोनों चरों के आंकड़ों (Data) के विषय में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा भी रहती है। दोनों चरों मे से किसी एक चर के विषय में प्रसामान्य वितरण की धारणा अवश्य रहती है परन्तु दूसरे चर के आंकड़ों को प्रसामान्य वितरण के आधार पर विभाजित करना कठिन होता है, क्योंकि ऐसे आंकड़ों का स्वरूप वास्तव में द्वि–भाजी रहता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे आंकड़े भी रहते हैं जिनमें दोनों चरों का विभाजन द्वि–भाजी रहता है, और उनके आधार पर 2×2 की सारणी द्वारा सह–संबंध गुणांक ज्ञात करना होता है। इन विभिन्न प्रकार के आंकड़ों के आधार पर सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने की अलग–अलग विधियां होती हैं, तथा ऐसे सह–संबंधों को ज्ञात करने की विभिन्न विधियां एवं सूत्र भी अलग–अलग हैं जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं–

1. द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (Biserial Correlation)
2. बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (Point Bisorial Correlation)
3. फाई–गुणांक (Phi-Co-efficient)
4. चतुष्कोटिक सह–संबंध (Tetracboric Correlation)
5. आंशिक सह–संबंध (Partial-Correlation)
6. बहुचरीय सह–संबंध (Multiple Correlation)

टिप्पणी

द्वि–भाजी आंकड़े (Dichotomases Data)

सांख्यिकी में ऐसे आंकड़े आते हैं, जिनका स्वरूप खण्डित तथा द्वि–भाजी रहता है। द्वि–भाजी आंकड़ों से प्रायः ऐसे आंकड़ों का बोध होता है जिनकी व्याख्या तथा गणना व्यावहारिक रूप से केवल दो ही श्रेणियों में की जा सकती है। जैसा स्त्री–पुरुष, जीवित–मृत विवाहित–अविवाहित ऐसा द्वि–भाजन अरेखीय होता है। परन्तु कुछ द्वि–भाजी आंकड़े ऐसे भी होते हैं जिनका स्वरूपरेखीय होता है तथा जिनका द्वि–भाजन किसी एक सूक्ष्म बिन्दु पर आधारित रहता है। जैसे सफल–असफल, आशावादी–निराशावादी, शुद्ध–अशुद्ध, धार्मिक–अधार्मिक आदि। यहां द्वि–भाजन का आधार कोई एक मानदण्ड लिया जा सकता है। आंकड़ों के द्वि–भाजन का आधार मध्यमान (Mean) भी हो सकता है। इस स्थिति में श्रेणी का विभाजन मध्यमान के ऊपर तथा मध्यमान के नीचे किया जा सकता है। इस प्रकार द्वि–भाजन का आधार मध्यांक (Mediun) भी हो सकता है। इस स्थिति में श्रेणी का भाजन मध्यांक के ऊपर तथा मध्यांक के नीचे किया जा सकता है। यहां आंकड़ों के वितरण के संबंध में कल्पना प्रसामान्य होने तथा निरंतर वितरण की होनी चाहिए।

द्वि–भाजी आंकड़ों के आधार पर प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा सह–संबंध गुणांक की गणना नहीं की जाती है क्योंकि प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि के लिए आंकड़ों में रेखीय सम्बन्ध होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता तो सह–संबंध गुणांक का मान कम रहता है।

1. **द्वि–पंक्तिक सह–संबंध** (Biserial Correlation)

जब दो चरों के आंकड़ों में निम्न विशेषताएं पायी जाती हैं तब द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना करना अधिक उपयुक्त होता है–

1. जब दोनों चरों का वितरण निरंतर (Continuous) हो, अथवा किसी कारणवश एक चर का वितरण निरंतर श्रेणी (Continuous Series) में न होकर द्वि–भाजी (Dichotomous) हो लेकिन यह द्वि–भाजन वास्तविक द्वि–भाजन (Real Dichotomy) नहीं होना चाहिए।
2. जब प्रेक्षित संख्या (Observed Number) बड़ी हो।
3. जब द्वि–भाजी चर में बहुत कम श्रेणियां (Categories) हों।
4. जब द्वि–भाजी आंकड़ों का वितरण अधिकतर अपने मध्यांक (Median) के निकट हो।
5. दोनों चरों के वितरणों के विषय में प्रसामान्य वितरण (Normal Distribution) की उपधारणा (Assumption) का होना आवश्यक है। यदि आंकड़े काफी विषम (Skewed) हैं तो उनके विषय में प्रसामान्य वितरण की कल्पना प्रसामान्य वितरण की ही होनी चाहिए।
6. जब प्रतिदर्श के दोष के कारण, परीक्षण के प्रमापीकृत न होने के कारण अथवा प्रयोग में लाये गये यंत्र के दोष के कारण आंकड़े विषम हों। ये आंकड़े प्रतिदर्श के कारण विषम हो सकते हैं लेकिन आंकड़ों के विषय में हमारी कल्पना प्रसामान्य वितरण की ही होनी चाहिए।

7. प्राप्त आंकड़ों का वितरण रेखीय (Linear) होना आवश्यक है।
8. जब द्वि–भाजी आंकड़े किसी कारण अपूर्ण हों और यह सन्देह बना रहे कि वे अपने मध्यमान से प्रायः समान दूरी पर नहीं हैं।
9. दोनों चरों के आंकड़ों के वितरण अपने–अपने मध्यमानों के दोनों और समान रूप से विचलित रहने चाहिए, आंकड़ों में इस प्रकार के विचलन की स्थिति को समविचलिता (Homascedasticity) कहा जाता है। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए आंकड़ों में ऐसी स्थिति होना प्रत्याशित है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिन्ह (Symbol) r_b होता है। इसकी गणना में प्रायः चार स्तम्भों (Four-Coloumns) का प्रयोग होता है। प्रथम स्तम्भ के प्रथम श्रेणी के व्यक्तियों की आवृत्तियां, तीसरे स्तंभ में y चर के द्वितीय श्रेणी के व्यक्तियों की आवृत्तियां तथा चौथे स्तम्भ में समस्त व्यक्तियों की आवृत्तियां होती हैं। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक को ज्ञात करने का सूत्र

$$r_b = \frac{m_p - m_q}{\delta_t} \times \frac{pq}{y}$$

r_b = द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक।

r_b = प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का मध्यमान।

नोट : अधिक संख्या वाले विद्यार्थियों की गणना।

m_p = प्रथम में तथा कम संख्या वाले विद्यार्थियों की गणना द्वितीय श्रेणी अर्थात् m_q में की जाती है।

p = समानुपात (Proportion) प्रथम श्रेणी वाले समूह में।

q = समानुपात (Proportion) द्वितीय श्रेणी वाले समूह।

y = प्रसामान्य वितरण के कन्टिनुअम के उस बिन्दु पर कोटि का मान जहां p तथा q के समानुपात एक–दूसरे से अलग होते हैं।

δ_t = निरंतर वितरण (Continuous Distribution) वाले अथवा x चर के समस्त आंकड़ों का मानक विचलन।

उदाहरण

बुद्धिलब्धि तथा समायोजन (Adjustment) के स्तर में सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए 64 विद्यार्थियों का एक प्रतिदर्श चुना गया है। और समायोजन अनुसूची के आधार पर समस्त समूह को दो श्रेणियों A तथा B में विभाजित किया गया है। A श्रेणी में समायोजित विद्यार्थियों को तथा B श्रेणी में असमायोजित विद्यार्थियों को द्वि–भाजित किया गया है तथा बुद्धिलब्धि के आंकड़ों के सामने समायोजित व असमायोजित विद्यार्थियों की आवृत्तियां (F) दी गयी हैं। इन आंकड़ों के आधार पर दोनों चरों के मध्य द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

टिप्पणी

बुद्धिलब्धि प्राप्तांक	A श्रेणी की आवृत्तियां	B श्रेणी की आवृत्तियां
125—129	9	1
120—124	8	1
115—119	7	2
110—114	5	2
105—109	4	3
100—104	3	3
95—99	2	2
90—94	1	4
85—89	1	6
N =	40	24

हल

	Y– Variable									
x Variable	A श्रेणी			B श्रेणी			A + B			
C–I	f	d	fd	f	d	fd	f	d	fd	Fd^2
125–129	9	+4	36	1	+4	4	10	+4	40	160
120–124	8	+3	24	1	+3	3	9	+3	27	81
115–119	7	+2	14	2	+2	4	9	+2	18	36
110–114	5	+1	5	2	+1	2	7	+1	7	7
105–109	4	0	–	3	0	—	7	—	—	—
100–104	3	–1	–3	3	–1	–3	6	–1	–6	6
95–99	2	–2	–4	2	–2	–4	4	–2	–8	16
90–94	1	–3	–3	4	–3	–12	5	–3	–15	45
85–89	1	–4	–4	6	–4	–24	7	–4	–28	112
	40		64	24		–30	64		+35	463

NP = 40   Nq = 24   N = 64 $\sum fd^2 = 463$

$\sum fd^2 = +79 - 14 = 64$ $\sum fd - 43 + 13 = -30$ $\sum fd = +92 - 57 = +35$

$$M = AM + \frac{\sum fd}{N} \times i$$

$$Mp = 107 + \frac{65 \times 5}{40} = 107 + 8.125 = 115.125$$

$$Mq = 107 + \frac{-30 \times 5}{64} = 107 - 6.25 = 100.75$$

$$Mt = \frac{35 \times 5}{64} = 107 + 2.734 = 109.734$$

$$\delta t = \sqrt{\frac{\sum fd^2}{N} - \left(\frac{\sum fd}{N}\right)^2} \times i$$

$$= \sqrt{\frac{463}{64} - \left(\frac{35}{64}\right)^2} \times 5$$

$$= \sqrt{7.234 - .299 \times 5}$$

$$= \sqrt{6.935 \times 5}$$

$$= 2.633 \times 5$$

$$= 13.165$$

$$p = n_p/N = 40/64 = 0.625$$

$$q = n_q/N = 24/64 = 0.375$$

$$y = .3792$$

$$r_b = \frac{m_p - m_q}{\delta_t} \times \frac{p_q}{y}$$

$$= \frac{115.125 - 100.75}{13.165} \times \frac{0.625 \times 0.375}{.3792}$$

$$= \frac{14.375}{13.165} \times \frac{0.234375}{0.3792}$$

$$= 1.092 \times 0.6181 = 0.675$$

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का वैकल्पिक सूत्र–

$$r_b = \frac{m_p - m_t}{\delta_t} \times \frac{p}{y}$$

$$r_b = \frac{115.125 - 109.734}{13.165} \times \frac{0.625}{0.3792}$$

$$= \frac{5.391}{13.165} \times 1.648$$

$$= 0.4094 \times 1.648 = 0.67469$$

or $\quad 0.675$

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) ज्ञात करने के चरण (Steps for Calculation of Biserial Co-efficient Correlation)

1. प्रथम श्रेणी (x) का मध्यमान ज्ञात करना। (115.125)
2. द्वितीय श्रेणी (y) का मध्यमान ज्ञात करना। (100.75)
3. x–चर की आवृत्ति वितरण का मानक विचलन ज्ञात करना। (13.165)
4. p तथा q का का मान ज्ञात करना।

$$p = \frac{p \text{ की संख्या}}{\text{समस्त संख्या}} = {}^{40}\!/_{64} = .625$$

$$q = \frac{q \text{ की संख्या}}{\text{समस्त संख्या}} = {}^{24}\!/_{64} = 0.375$$

5. y का मान ज्ञात करना

टिप्पणी

6. m_t यदि वैकल्पिक सूत्र का प्रयोग करना हो तो समस्त संख्या के मध्यमान m_t की गणना की जाती है। (109.734)
7. समस्त मानों को ज्ञात करके सूत्र में रखकर r_b का मान ज्ञात किया जाता है।

y के मान का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण–

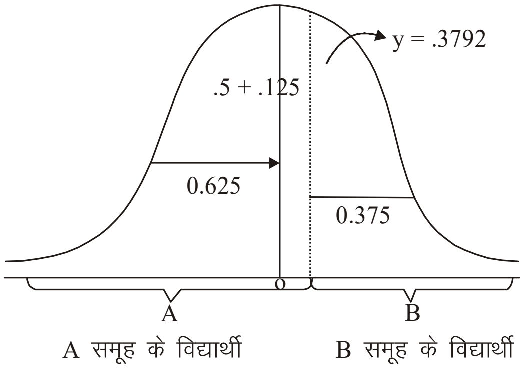

p चर में अंकों का विचलन अपने मध्यमान के दोनों ओर लगभग समान रूप से विस्तृत रहना चाहिए। अन्य शब्दों में p तथा q के मान 0.5 के ही निकट रहने चाहिए तथा दोनों में अधिक अंतर नहीं रहना चाहिए।

कभी–कभी द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) की मात्रा विशेष परिस्थितियों में ± 1 से अधिक भी हो सकती है। ऐसा तभी संभव है जब चरों के अंकों का वितरण द्वि–बहुलांकी (Bimodal) होता है। द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) का मान प्रायः प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा ज्ञात सह–संबंध गुणांक (r) से अधिक होता है। दोनों प्रकार के सह–संबंध गुणांक में r_b की अपेक्षा (r) का मान अधिक विश्वसनीय होता है।

r_b की मान त्रुटि भी (r) की अपेक्षा अधिक होती है क्योंकि मानक त्रुटि की मात्रा p तथा q के मानों के अंतर में वृद्धि होने के साथ–साथ बढ़ जाती है। यहां एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि r_b प्रयोग प्रतीपगमन समीकरण (Regression Equation) में नहीं किया जा सकता क्योंकि y चर के अंकों का वितरण द्वि–भाजी रहता है।

2. बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (Point Biserial Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिन्ह ($rpbi$) होता है। जब एक चर (Variable) का वितरण निरंतर (Continuous) तथा प्रसामान्य (Normal) रहता है और दूसरे चर का वितरण वास्तविक रूप से खण्डित (Discrete) व द्वि–भाजी (Dichotomous) रहता है अथवा दूसरे चर को वितरण के संबंध में प्रसामान्य (Normal) होने की कल्पना नहीं रहती है तो उस स्थिति में द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) की अपेक्षा बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना करना अधिक उपयुक्त होता है। अर्थात् जब कभी एक चर के आंकड़ों के संबंध में खण्डित व वास्तविक रूप से द्वि–भाजी (Dichotomous) होने का सन्देह होता है तो उस स्थिति में (r_{pbi}) की गणना की जानी चाहिए, तथा जब कभी एक चर का वितरण प्रसामान्य नहीं है इस बात का सन्देह होने लगे तो भी बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना ही उपयुक्त रहती है। स्मरण रहे कि जब आंकड़ों का वास्तविक द्वि–भाजन रहता है तब उनमें प्रसामान्य वितरण का प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तविक द्वि–भाजन

के उदाहरण हैं—जीवित—मृत, पुरुष—स्त्री, विवाहित—अविवाहित आदि। लेकिन व्यावहारिक जीवन में कभी—कभी एक चर के आंकड़ों का द्वि—भाजन किसी एक मानदण्ड के आधार पर किया जाता है और ऐसे द्वि—भाजन को ही एक प्रकार से वास्तविक द्वि—भाजन मान लिया जाता है जैसे सफल—असफल, समायोजित—असमायोजित आदि। यहां दो श्रेणियों के मध्य अंतर एक सूक्ष्म बिन्दु के आधार पर ही किया जाता है और बिन्दु द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणांक की गणना में कभी—कभी ऐसे कृत्रिम द्वि—भाजन को भी वास्तविक द्वि—भाजन मान लिया जाता है, भले ही आंकड़ों का वितरण निरंतर भी हो और सामान्य भी हो।

बिन्दु द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणाक की गणना

बिन्दु द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना में द्वि—भाजी आंकड़ों को दो श्रेणियों में अलग—अलग तथा शून्य (0) के भारित अंक प्रदान किये जाते हैं। अधिक संख्या वाली श्रेणी के व्यक्तियों को 1 अंक तथा कम संख्या वाली श्रेणी के व्यक्तियों को शून्य (0) अंक प्रदान किया जाता है।

बिन्दु द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणांक ज्ञात करने का सूत्र

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_q}{\delta_t}\sqrt{pq}$$

बिन्दु द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणांक (r_{pbi}) की गणना बहुत कुछ (r_b) के ही सूत्र व गणना के समान है। बिन्दु द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणांक की गणना को निम्न उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया गया है—

उदाहरण

एक अध्ययन में बुद्धिलब्धि तथा यांत्रिक अभियोग्यता में सह—संबंध ज्ञात करने के लिए 10 विद्यार्थियों का संयोगिक आधार पर (On Random Basis) चयन किया गया। पहले उनका मानकीकृत बुद्धि परीक्षण किया गया तथा उनके प्राप्तांक ज्ञात किए गये तत्पश्चात् उन्हें एक मानकीकृत यांत्रिक अभियोग्यता परीक्षण दिया गया। इस परीक्षण में सफल होने वाले विद्यार्थियों को भारित अंक 1 तथा असफल विद्यार्थियों को 0 अंक प्रदान किया गया। दोनों परीक्षणों में परीक्षित विद्यार्थियों के संबंधित अंक निम्न सारणी में दिये गये दोनों चरों में विद्यार्थियों को दिये गये अंकों के आधार पर बिन्दु—द्वि—पंक्तिक सह—संबंध गुणांक (r_{pbi}) ज्ञात कीजिए—

विद्यार्थी	बुद्धिलब्धि x-Variable	यांत्रिक अभियोग्यता के परिणाम y-Variable		x^2	y^2	xy
		सफल	असफल			
1	120	1		14400	1	120
2	95		0	9025	0	00
3	118	1		13924	1	118
4	115		0	13225	0	00
5	124	1		15376	1	124
6	98		0	9604	0	00
7	116	1		13456	1	116
8	114		0	12996	0	00
9	112	1		12544	1	112
10	118	1		13924	1	118
	1130	Np = 6	Nq = 4	1,28,747	6	708

टिप्पणी

$\sum x = 1130, \quad \sum p = 6, \quad \sum q = 4, \quad Np = 6, \quad Nq = 4, \quad N = 10$

$\sum x^2 = 128474 \quad \sum 4^2 = 6 \quad \sum x4 = 708$

$m_p = 120 + 118 + 124 + 116 + 112 + 118 + 708/6 = 118$

$m_q = 95 + 115 + 98 + 114 + = 422/4 = 105.5$

$m_t = 120 + 95 + 118 + 115 + 124 + 98 + 116 + 114 + 112 + 118 = 1130/$
$10 = 113$

$$\delta_t = \sqrt{\frac{\sum x^2}{N} - \left(\frac{\sum x}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{128474}{10} - \left(\frac{1130}{10}\right)^2}$$

$$= \sqrt{12847.4 - (113)^2}$$

$$= \sqrt{12847.4 - 12769}$$

$$= \sqrt{78.4} \quad = \quad 8.854$$

$$= \delta_t = 8.854$$

$$p = \sum P/N = 6/10 = 0.6$$

$$q = \sum q/N = 4/10 = 0.4$$

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_q}{\delta_t}\sqrt{pq}$$

$$= \frac{118 - 105.7}{8.854}\sqrt{0.6(0.4)}$$

$$= \frac{12.5}{8.854} \times \sqrt{0.24}$$

$$= 1.412 \times 0.48989$$

$$= 0.69$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए वैकल्पिक सूत्र–

$$r_{pbi} = \frac{m_p - m_t}{\delta_t}\sqrt{\frac{p}{q}}$$

उपर्युक्त उदाहरण की सूचनाओं के आधार पर वैकल्पिक सूत्र के माध्यम से की गई गणना

$$= \frac{118 - 113}{8.854}\sqrt{\frac{0.6}{0.4}}$$

$$\frac{5}{8.854}\sqrt{1.5}$$

$$0.5647 \times 1.225 = 0.69$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक एक प्राचल (Parametric) विधि है इसी कारण इसका संबंध प्रोडक्ट मोमेण्ट विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक से है। वास्तविकता तो यह है कि बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक जैसा ही है तथा गणना करने पर दोनों का मान एक ही आता है। इस बात को हम उदाहरण के मानों को मूल आंकड़ों से प्रोडक्ट मोमेण्ट द्वारा सह–संबंध गुणांक के सूत्र में रखकर सिद्ध भी कर सकते हैं।

मूल आंकड़ों से प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक का सूत्र है–

$$\frac{N\sum x4-(\sum x)(\sum 4)}{\sqrt{\left[N(\sum x^2)-(\sum x)^2\right]\left[N(\sum y^2)-(\sum y^2)\right]}}$$

उदाहरण में दिये गये मानों को सूत्र में रखने पर

$$\frac{10(708)-(1130)\ (6)}{\sqrt{[10(128474)-1130\times 1130][10(6)-6\times 6]}}$$

$$\frac{7080-6780}{\sqrt{[1284740-1276900][60-36]}}$$

$$\frac{300}{\sqrt{(7840)\ 24}}$$

$$\frac{300}{\sqrt{188160}}=\frac{300}{433.774}$$

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का मूल्यांकन (Evaluation of Point Biserial Co-efficient of Correlation)

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) का मान प्रत्यक्ष रूप से m_q के अंतर पर आधारित होता है। यदि अंतर सार्थक रूप से अधिक होता है तो सह–संबंध गुणांक का मान भी उच्च तथा सार्थक होता है। बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक r_{pbi} के मान के संबंध में सार्थकता की जांच के लिए t परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रस्तुत उदाहरण में r_{pbi} का मान 0.69 है। यदि हमारी परिकल्पना बुद्धिलब्धि वाले विद्यार्थियों तथा यांत्रिक अभियोग्यता में सह–संबंध शून्य है तो ऐसी स्थिति में बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की सार्थकता की जांच (Significance of Point Biserial Correlation) प्रोडक्ट मोमेण्ट (r) के आधार पर की जा सकती है। क्योंकि r_{pbi} तथा r एक समान ही है। r_{pbi} की सार्थकता की जांच संबंधित सारणी में N-2 स्वतंत्रता के अंशों पर की जा सकती है।

प्रस्तुत उदाहरण में N = 10 तथा d.f. = 10–2 = 8 है। अतः 8 d.f. पर संबंधित सारणी देखने से पता लगता है कि 0.69 का r_{pbi} का मान .05 के विश्वास स्तर पर सार्थक है। क्योंकि इस स्तर पर सार्थकता का क्रान्तिक मान 0.632 से अधिक है। किन्तु यह मान 0.01 के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं है क्योंकि इस स्तर पर सार्थकता का मान 0.765 है और r_{pbi} का मान सार्थकता मान से कम है।

द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक तथा बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक का तुलनात्मक मूल्यांकन

1. तुलनात्मक दृष्टि से बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_b) से अधिक उपयुक्त एवं अधिक विश्वसनीय होता है क्योंकि r_{pbi} गुणांक द्वि–भाजी आंकड़ों में प्रसामान्य वितरण की कोई कल्पना नहीं करता।
2. r_{pbi} का मान ± 1 की सीमाओं के अंतर्गत रहता है। यदि एक ही उदाहरण में r_b तथा r_{pbi} के सूत्रों का प्रयोग करके गणना की जाती है तो r_{pbi} का मान से सदैव कम होगा। इसके विपरीत r_b का मान कभी–कभी ± 1 की सीमाओं से अधिक हो सकता है।
3. द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक r_b की तुलना किसी अन्य विधि द्वारा प्राप्त सह–संबंध गुणांक से करना कठिन होता है इसके विपरीत बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) एक प्रकार से प्रोडक्ट मोमेण्ट (r) ही है।
4. पद विश्लेषण Item Analysis में दोनों प्रकार के सह–संबंधों r_b तथा r_{pbi} का प्रयोग किया जाता है परन्तु r_{pbi} का उपयोग अधिक उपयुक्त रहता है, क्योंकि इसमें द्वि–भाजी आंकड़ों के प्रति प्रसामान्य वितरण होने की कल्पना का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक की मात्रा की अधिक सीमा (Maximum Limit of Point Biserial Co-efficient Correlation)

जब दो चरों में से एक चर Variable निरंतर श्रेणी में रहता है और दूसरा चर द्वि–भाजी। उस स्थिति में कभी–कभी उनमें पूर्ण सह–संबंध (Perfect Correlation) भी हो सकता है परंतु फिर भी r_{pbi} का मान प्रायः ± 1 से कम ही होता है।

बिन्दु द्वि–पंक्तिक सह–संबंध गुणांक (r_{pbi}) का अधिकतम मान कभी भी न तो ± 1 रहता है और न ही इसका न्यूनतम मान कभी भी -1 तक आता है। अर्थात् r_{pbi} का मान ± 1 के बीच ही रहता है।

अभी तक सह–संबंध ज्ञात करने के जिन आंकड़ों का प्रयोग किया गया है उनमें एक चर निरंतर तथा दूसरा द्वि–भाजी रहा था लेकिन मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में ऐसी भी स्थितियां आती हैं जब दोनों ही चरों के आंकड़े द्वि–भाजी हों। तो ऐसी स्थिति में सह–संबंध गुणांक की गणना के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. फाई गुणांक (Phi-Co-efficient)
2. चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (Tetrachoric Correlation)

3. फाई गुणांक (Phi-Co-efficient)

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में दोनों चरों के आंकड़ों का स्वरूप द्वि–भाजी रहता है। यदि ये आंकड़े वास्तव में द्वि–भाजी होते हैं तो उनका विभाजन प्रसामान्य वितरण के स्वरूप का अनुसरण नहीं करता है। अतः जब दोनों चरों के आंकड़े खण्डित (Discrete) तथा द्वि–भाजी (Dichatomous) होते हैं और उनका वितरण प्रसामान्य नहीं होता है तो

सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए फाई गुणांक की गणना अधिक उपयुक्त रहती है। या इस प्रकार कहें कि आंकड़ों का किसी एक विशेष आधार पर द्वि–भाजन होता है तो उस स्थिति में फाई गुणांक की गणना की जा सकती है।

सैद्धान्तिक तौर पर जब आंकड़ों को केवल दो ही खण्डित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है जैसे विवाहित–अविवाहित, जीवित–मृत व स्त्री–पुरुष आदि तो आंकड़ों का वितरण प्रसामान्य नहीं हो सकता तथा सैद्धान्तिक रूप से ऐसे ही आंकड़ों के आधार पर 2×2 तालिका बनती है और ऐसे आंकड़ों से फाई–गुणांक की गणना उपयुक्त रहती है। परन्तु व्यावहारिक रूप में निरंतर चरों को किसी एक विशेष आधार पर द्वि–भाजी बनाया जा सकता है जैसे तीव्र बुद्धि–मन्दबुद्धि, सफल–असफल, समायोजित–असमायोजित आदि अथवा जब आंकड़ों को मध्यांक के आधार पर मध्यांक के ऊपर तथा मध्यांक के नीचे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है उस स्थिति में 2×2 की तालिका के आधार पर फाई गुणांक ज्ञात किया जा सकता है–

फाई गुणांक को ज्ञात करने का सूत्र (Formula of Phi-Co-efficient)

फाई गुणांक का प्रतीकात्मक चिन्ह ϕ होता है।

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+B)\,(C+D)\,(A+C)\,(B+D)}}$$

A, B, C तथा D दी गयी चतुष्पदी तालिका की चारों कोष्ठिकाओं (Cells) की आवृत्तियां हैं। B एवं C कोष्ठिकाओं की आवृत्तियां समान चिह्नों की आवृत्तियों को व्यक्त करती हैं। अर्थात् कोष्ठिका B में (++) (yes हां–yes हां) (सफल Pass–सफल Pass) आदि की आवृत्तियां रहती हैं तथा कोष्ठिका C में (– –) (No नहीं–No नहीं) (Fail–Fail) (असफल–असफल) आदि की आवृत्तियां। इसके विपरीत A व D कोष्ठिकाएं असमान आवृत्तियों को प्रदर्शित करती हैं। कोष्ठिका N में आवृत्तियों का स्वरूप (– +) (नहीं–हां) असफल–सफल आदि, जबकि कोष्ठिका D में (+ –) (हां–नहीं) सफल–असफल की आवृत्तियां रहती हैं। फाई गुणांक (Phi co-efficient) की गणना के लिए अंश (Numerator) में समान चिह्न वाली आवृत्तियों (++) तथा (– –) के गुणनफल में से असमान चिह्न वाली आवृत्तियों (– +) तथा (+ –) के गुणनफल को घटाकर लिखा जाता है, तथा हर (Denominator) में सीमान्त वाले (Marginal) योगों (Total) का वर्गमूल (Square root) रहता है। फाई गुणांक का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

X चर
++

Y चर (– –)

No-Yes नहीं–हां A	Yes-Yes हां–हां B	P A+B
No-No नहीं–नहीं C	Yes-No हां–नहीं D	q C+D
P' A+C	q' B+D	A+B+C+D N

टिप्पणी

उदाहरण

एक परीक्षण के दो पक्षों X तथा Y में 45 परीक्षार्थियों के परीक्षाफल के प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निम्न तालिका द्वारा फाई गुणांक ज्ञात कीजिए–

X चर

Y चर		असफल	सफल	योग
	असफल	A 11	B 16	A + B 27
	सफल	C 14	D 4	C+D 18
	योग	A+C 25	B+D 20	A+B+C+D =N 45

हल

$$\phi = \frac{BC - AD}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

$$\phi = \frac{(16 \times 14) - (11 \times 4)}{\sqrt{(25)(20)(27)(18)}}$$

$$= \frac{224 - 44}{\sqrt{243000}}$$

$$= \frac{180}{482.95} = 0.3651 \text{ or } 0.37$$

उदाहरण

एक अभिरुचि अनुसूची में 100 परीक्षार्थियों के दो प्रश्नों (X तथा Y) के अन्तर हां तथा नहीं (Yes or No) में नीचे तालिका में दिये गये हैं। दी गयी आवृत्तियों के आधार पर दोनों प्रश्नों में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

X चर

No	Yes	Total
A 27	B 20	A + B 47 P
C 24	D 29	C+D 53 q
A+C 51 P’	B+D 49 q’	A+B+C+D 100

$$\phi = \frac{(BC) - (AD)}{\sqrt{(A+C)(B+D)(A+B)(C+D)}}$$

टिप्पणी

$$= \frac{(20)(24)-(27)(29)}{\sqrt{(51)(49)(47)(53)}}$$

$$= \frac{480-783}{\sqrt{6225009}}$$

$$= \frac{-303}{\sqrt{2494-996}} \text{ or } \frac{-303}{2495} = 0.12$$

फाई गुणांक की गणना दी गयी आवृत्तियों के समानुपातों (Proportions) के आधार पर भी की जा सकती है। आवृत्तियों के समानुपातों के आधार पर फाई गुणांक ϕ का सूत्र इस प्रकार होता है–

$$\phi = \frac{bc-ad}{\sqrt{Pq\,P'q'}}$$

उदाहरण

उपर्युक्त उदाहरण के मानों को इस सूत्र में रखकर भी सह–संबंध गुणांक ज्ञात किया जा सकता है–

$$bc = \frac{20}{100} \times \frac{24}{100} = .0480$$

$$ad = \frac{27}{100} \times \frac{29}{100} = .0783$$

$$P = \frac{51}{100} = 0.51 \qquad q = \frac{49}{100} = 0.49$$

$$P' = \frac{47}{100} = 0.47 \qquad q' = \frac{53}{100} = 0.53$$

$$= \frac{0.0480-0.0783}{\sqrt{(0.51)(0.49)(0.47)(0.53)}}$$

$$= \frac{-.0303}{.06225009} = \frac{-0.0303}{0.2495}$$

$$= -0.12$$

यदि फाई गुणांक की गणना के लिए 2×2 तालिका के एक सीमान्त की दोनों कोष्ठिकाओं (Cells) के योग समान हों तब फाई गुणांक की गणना के लिए निम्न सरल सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\phi = \frac{B-A}{\sqrt{Pq}}$$

टिप्पणी

उदाहरण

50 विद्यार्थियों को दिये गये परीक्षण के दो पदों x तथा y में सफल तथा असफल विद्यार्थियों की आवृत्तियां नीचे तालिका में दी गयी हैं। प्राप्त परिणामों के आधार पर दोनों पदों x व y में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए।

X चर

Y चर			
सफल	A 12	B 18	A + B 30 P
असफल	C 13	D 7	C+D 20 q
	A+C 25 P′	B+D 25 q′	A+B+C+D 100

इस तालिका में (A+C) तथा (B+D) के मान समान होने पर फाई गुणांक ϕ ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है–

$$\phi = \frac{B - A}{\sqrt{Pq}}$$

$$\phi = \frac{18 - 12}{\sqrt{30 \times 20}} = \frac{6}{\sqrt{600}}$$

$$= \frac{6}{24.495} = .245$$

फाई गुणांक ϕ के मान की जांच सबसे पहले प्रयुक्त किये गये फाई गुणांक के सूत्र द्वारा भी का जा सकती है। दोनों सूत्रों में ϕ का मान समान ही होगा।

उदाहरण

दोनों के संबंध को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

A 24	B 12	A+B 36
C 32	D 32	C+D 64
A+C 56	B+D 44	A+B+ C+C 100N

$$x^2 = \frac{N(AD - BC)^2}{(A+B)(B+D)(C+D)(A+C)} \qquad x^2 = \frac{100\,(24)\,32 - (12)\,(32)}{(56)\,(44)\,(36)\,(64)}$$

$$x^2 = \frac{100\,(768 - 384)}{5677056} \qquad \frac{100\,(768 - 384)^2}{5677056}$$

$$\frac{14745600}{5677056} \qquad = 2.59 \ or \ 2.6$$

टिप्पणी

$$\phi = \frac{(AD)-(BC)}{\sqrt{(A+C)\,(B+D)\,(A+B)\,(C+D)}}$$

$$\phi = \frac{(24)\,(32)-(12)\,(32)}{\sqrt{(56)\,(44)\,(36)\,(64)}} = \frac{768-384}{\sqrt{5677056}} = \frac{384}{2382.66}$$

$$= 0.16$$

$$x^2 = N\phi^2$$

$$x^2 = 100\,(.16)^2$$

$$= 100\,(0.256)$$

$$= 2.56$$

$$= 2.6$$

$$\phi = \frac{\sqrt{x^2}}{N}$$

$$\phi = \sqrt{\frac{2.6}{100}} = \sqrt{.026}$$

$$= .16$$

फाई गुणांक ϕ का मूल्यांकन

द्वि–भाजी आंकड़ों के लिए फाई गुणांक एक प्रकार का प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक ही है लेकिन प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक (r_{xy}) तथा फाई गुणांक (ϕ) की विवेचना समरूप नहीं होती है क्योंकि फाई गुणांक के लिए आंकड़ों का स्वरूप प्रसामान्य वितरण पर आधारित नहीं होता है जबकि प्रोडक्ट मोमेण्ट सह–संबंध गुणांक के लिए अंकों के वितरण में प्रसामान्य वितरण की कल्पना जरूरी होती है। माना ϕ का मान 0.45 है तथा r_{xy} का मान भी +.45 तब भी इन समान मानों की विवेचना समान नहीं होती है।

फाई वर्ग गुणांक की अपनी सीमाएं होती हैं। व्यावहारिक रूप से इसका मान +1 तथा –1 नहीं आता है। फाई गुणांक (ϕ) केवल उसी विशेष स्थिति में +1 के मान तक पहुंच सकता है जब 2×2 की तालिका में B = C है तथा A व D का मान अलग–अलग शून्य (0) होता है। जैसे निम्न तालिका से स्पष्ट है–

0	20	20
20	0	20
20	20	140

$\phi = +1$

इसी प्रकार फाई गुणांक के –1 मान के लिये B तथा C के अलग–अलग शून्य होने चाहिए–

50	0	50
0	50	50
50	50	100

$\phi = -1$

टिप्पणी

इन विशेष परिस्थितियों के अतिरिक्त अन्य परिस्थितियां भी फाई गुणांक के मान के सीमित रहने के कारण एक चर के ज्ञान के आधार पर, दूसरे चर के विषय में शुद्ध रूप से भविष्य कथन (Prediction) करना कठिन हो जाता है। अन्य शब्दों में 2×2 तालिका के द्वि–भाजी आंकड़ों में ϕ की सहायता से एक चर के ज्ञान द्वारा दूसरे मान का भविष्य–कथन शुद्ध रूप से करना संभव नहीं होता है और फाई गुणांक ϕ में यह दोष निरंतर देखने में आता है। परंतु इस कमी के कारण फाई गुणांक ϕ की उपयोगिता कम नहीं हुई है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में इसका विशेष महत्व होता है और उस स्थिति में फाई गुणांक का महत्व और भी बढ़ जाता है जबकि आंकड़ों का स्वरूप वास्तव में द्वि–भाजी रहता है।

फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच (Testing Significance of the value of ϕ)

फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच के लिए कोई सुविधाजनक सूत्र नहीं है अतः फाई गुणांक की मानक त्रुटि (Standard Error) का पता लगाना कठिन है। परंतु (x^2) फाई–वर्ग के माध्यम से फाई गुणांक के मान की सार्थकता की जांच आसानी से की जा सकती है। इसके लिए पहले फाई गुणांक ϕ के मान को निम्न सूत्र द्वारा फाई–वर्ग (x^2) में परिवर्तित करते हैं।

$$x^2 = N(\phi)^2$$

इस अध्याय की 2×2 तालिका पर आधारित एक उदाहरण में फाई गुणांक का मान 0.37 है तथा N = 45 है इस मान को x^2 में परिवर्तित करने पर

$x^2 = N\phi 2$

$x^2 = 45\,(0.37)\,(0.37)$

$x^2 = 45\,(.1369)$

$x^2 = 6.16$

2×2 की तालिका में स्वतंत्रता (Degree of Freedom) = 1 होती है, x^2 तालिका में सार्थकता मान–

5% विश्वास स्तर पर 3.84

1% विश्वास स्तर पर 6.64 है

प्रस्तुत उदाहरण में प्राप्त x^2 का मान 6.16 5% विश्वास स्तर पर सार्थक है परंतु 1% के विश्वास स्तर पर सार्थक नहीं है। इस प्रकार ϕ फाई गुणांक के मान को कोई वर्ग (x^2) में परिवर्तित किया जाता है। तब फाई गुणांक ϕ का मान उसी विश्वास स्तर पर सार्थक होगा जिस पर x^2 का मान सार्थक होगा इसके विपरीत यदि x^2 का मान सार्थक नहीं आता है तो फाई गुणांक ϕ का मान भी सार्थक नहीं माना जाता है।

4. चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (Tetracboric Correlation)

जब द्विचर आंकड़ों का स्वरूप सुविधाजनक द्वि–भाजी होता है तथा उनका विवरण निरंतर रहता है और ऐसे आंकड़ों के संबंध में कल्पना प्रसामान्य वितरण की रहती है तो ऐसी स्थिति में 2×2 तालिका के आधार पर फाई गुणांक के स्थान पर चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की गणना अधिक उपयुक्त रहती है क्योंकि फाई गुणांक ऐसे दोनों चरों में

व्याप्त सह–संबंध गुणांक का मूल्यांकन कम करता है। दूसरा फाई गुणांक की गणना में प्रसामान्य वितरण की कल्पना नहीं होती क्योंकि जब आंकड़े वास्तविक रूप से द्वि–भाजी होते हैं तो प्रसामान्य रूप से वितरित होने की कल्पना नहीं की जा सकती है।

जब आंकड़ों का वास्तविक स्वरूप तो निरंतर हो तथा दोनों चरों के द्वि–भाजी आंकड़ों का स्वरूप रेखीय हो लेकिन गणना की सुविधा के लिए किसी अन्य कृत्रिम आधार में दो भागों में विभाजित कर लिया जाता है तो ऐसे आंकड़ों का स्वरूप द्वि–भाजी होते हुए भी निरंतर तथा कन्टिन्यूअम पर रहता है तो चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक का प्रतीकात्मक चिन्ह rt होता है। इसकी गणना का मौलिक सूत्र जटिल है इसी कारण इसका प्रयोग बहुत कम किया जाता है।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक *rt* को ज्ञात करने का सूत्र (Formula for Calculating Tetrachoric Correlation)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक (rt) की गणना के लिए निम्नलिखित को साइन–पाई सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$rt = \text{Cos } Cos\left(\frac{180}{1+\sqrt{BC/AD}}\right)$$

यहां rt चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक है ABC तथा D चतुष्कोष्टिक तालिका की कोष्ठिकाओं (Cells) की अलग–अलग आवृत्तियां हैं तथा पाई (π) का मान 180° है। rt को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

उदाहरण

समायोजन तथा शैक्षिक योग्यता में सह–संबंध गुणांक ज्ञात करने के लिए दो अलग–अलग परीक्षणों के लिए एक कक्षा से संयोगिक आधार पर 125 विद्यार्थियों का चयन किया गया। समायोजन अनुसूची (Test x) के आधार पर 125 विद्यार्थियों में से 60 समायोजित तथा 65 असमायोजित पाए गये। दूसरे परीक्षण (Test y) में शैक्षिक योग्यता परीक्षण में 125 में 70 सफल तथा 55 असफल पाये गये। दोनों परीक्षणों द्वारा प्राप्त परिणाम को 2×2 की तालिका में अंकित किया गया है। दिये गये इन आंकड़ों के परिणाम के आधार पर दोनों चरों x तथा y में सह–संबंध गुणांक ज्ञात कीजिए–

x–चर

	असफल	सफल	योग
x–*चर*	A 30	B 40	A+B 70
	C 35	D 20	C+D 55
	A+C 65	B+C 60	N 125

हल

उपरोक्त तालिका के आधार पर $AD = 30 \times 20 = 600$

$$BC = 40 \times 35 = 1400$$

टिप्पणी

$$rt = Cos\frac{180}{1+\sqrt{\frac{BC}{AD}}}$$

$$= Cost\left[\frac{180}{1+\sqrt{\frac{1400}{600}}}\right]$$

$$= \text{Cosine } \frac{180 \times 24.495}{61.912}$$

$$= \text{Cosine } \frac{4409.100}{61.912}$$

$$= 71.2 \quad \text{or} \quad 71°$$

$$= .326 \quad \text{or}.33$$

(परिशिष्ट में दी गयी Cosine Table में 71° का मान देखने पर 71° = .326 0.033)

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध *rt* का अन्य उदाहरण।

संक्षिप्त सूत्र द्वारा चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की गणना की जांच–

अब *rt* के मान को सूक्ष्म सूत्र द्वारा ज्ञात करने के लिए ऊपर दिये गये उदाहरणों को ही प्रयोग में लाया गया है पहले उदाहरण में–

1. AD का मान = 30 × 20 = 600
2. BC का मान 40 × 35 = 1400

अतः BC तथा AD का अनुपात

$$\frac{BC}{AD}\ \frac{1400}{600} = 2.33$$

प्राप्त BC/AD के अनुपात के मान को परिशिष्ट में दी गयी तालिका में देखने पर *rt* का मान = 0.32 आता है। Consine Pie सूत्र द्वारा यह मान = .326 आता है।

इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में–

जबकि BC (36) (26) = 936

AD = (24) (14) = 336

अतः BC व AD अनुपात

$$\frac{936}{336} = 2.786$$

2.786 का मान संबंधित तालिका में देखने पर *rt* का मान 0.385 आता है Consine Pie सूत्र द्वारा यह मान 0.39 आता है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक *rt* का संक्षिप्त सूत्र बहुत ही सरल एवं सुविधाजनक हैं। इसमें गणना कम करनी पड़ती है और परिणाम दशमलव के दो अंकों तक शुद्ध रहते हैं।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध के सूत्रों के प्रयोग की सीमाएं

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध उसी स्थिति में उपयुक्त व उत्तम रहता है जबकि दोनों चरों के द्वि–भाजी आंकड़ों का विभाजन अपने–अपने मध्यांक के निकट हो उनके विभाजन अपने वितरण में 0.5 भाग पर हो अथवा इस बिन्दु के आस–पास हो।

यदि आंकड़ों का विभाजन 0.95 तथा 0.5 के कटाव बिन्दुओं पर अथवा 0.90 तथा 0.10 पर हो तो इस सूत्र का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध की विश्वसनीयता

चतुष्टकोष्टिक सह–संबंध rt का मान उन स्थितियों में सबसे अधिक विश्वसनीय रहता है जबकि इसकी गणना अधिक आंकड़ों पर की गयी हो तथा अब आंकड़ों के वितरण में विभाजन के कटाव बिन्दु 0.50 पर हों।

चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (rt) तथा गुणांक ϕ का मूल्यांकन तथा तुलनात्मक अध्ययन (Evaluation & Comparative Study of Terachoric Correlation & Phi Correlation)

- फाई गुणांक तथा चतुष्कोष्टिक सह–संबंध में वही संबंध है, जो बिन्दु द्वि–पंक्तिक $(rpbi)$ तथा द्वि–पंक्तिक सह–संबंध (rb) में होता है।
- फाई गुणांक की गणना के लिए चरों का द्वि–भाजन वास्तव में द्वि–भाजी होता है लेकिन फाई गुणांक के संबंध में प्रसामान्य वितरण तथा निरंतर व रेखीय वितरण होने की कोई कल्पना नहीं रहती है। इसके विपरीत चतुष्कोष्टिक सह–संबंध (rt) के लिए द्वि–भाजी आंकड़ों का द्वि–भाजन कृत्रिम होता है व वितरण के प्रसामान्य होने की कल्पना भी रहती है तथा आंकड़ों का स्वरूप निरंतर व रेखीय रहता है।
- यदि दो एक समान 2×2 की तालिकाओं से (rt) तथा (ϕ) की गणना की जाए तब ϕ का मान सदैव rt से कम रहता है। अन्य शब्दों में ϕ एक प्रकार से rt का कम मूल्यांकन करता है।
- चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक (rt) की मान त्रुटि की गणना जटिल होती है लेकिन फाई गुणांक की विश्वसनीयता की जांच ϕ के मान को x^2 फाई वर्ग में परिवर्तित करके सरलतापूर्वक की जा सकती है। यदि x^2 का मान दिये गये d.f पर विश्वसनीय है तब फाई–गुणांक का मान भी विश्वसनीय मान लिया जाता है।
- चतुष्कोष्टिक सह–संबंध गुणांक का मान सीमान्त योगों (Marginal Totals) से प्रभावित नहीं होता है लेकिन फाई–गुणांक ϕ के मान पर सीमान्त योगों का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

5. आंशिक सह–संबंध (Partial Correlation)

अभी तक सह–संबंध की जिन विधियों का वर्णन किया गया है उनका संबंध दो चरों से रहा है। व्यवहार में अनेक परिस्थितियां ऐसी आती हैं जब तीन या चार चरों के बीच सह–संबंध ज्ञात करना होता है। मनोविज्ञान, शिक्षाशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञानों में कभी–कभी ऐसी परिस्थितियां आती हैं जब हमें दो चरों के सह–संबंध में से तीसरे व

चौथे के प्रभाव को अलग करना होता है, ऐसी स्थिति में आंशिक सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। और कभी–कभी दो या इससे अधिक चरों के प्रभाव का किसी एक चर पर सह–संबंध ज्ञात करने की आवश्यकता होती है, ऐसी स्थिति में बहुचरीय सह–संबंध की गणना की जाती है।

आंशिक सह–संबंध में एक आश्रित चर (Dependent Variable) तथा एक स्वतंत्र (Independent Variable) में सह–संबंध इस आधार पर ज्ञात किया जाता है कि अन्य सभी चरों का प्रभाव स्थिर है अथवा उनके प्रभाव को हटा दिया गया है। अन्य शब्दों में आंशिक सह–संबंध गुणांक एक स्वतंत्र चर को छोड़कर अन्य सभी स्वतंत्र चरों को स्थिर मान लेता है।

जब कभी दो चरों में शुद्ध सह–संबंध ज्ञात करने के लिए किसी एक तीसरे चर के प्रभाव को स्थिर करना पड़ता है तो उस स्थिति में हमें जो आंशिक सह–संबंध प्राप्त होता है उसे प्रथम स्तरीय आंशिक सह–संबंध कहते हैं। और जब दो चरों में शुद्ध सह–संबंध ज्ञात करने के लिए अन्य संबंधित चरों के प्रभावों को अलग अथवा स्थिर कर दिया जाता है तो उस स्थिति में प्राप्त होने वाले सह–संबंध गुणांक को द्वि–स्तरीय आंशिक सह–संबंध कहते हैं। ऐसे आंशिक सह–संबंध का सांकेतिक चिन्ह 12.34 होता है, इसका अर्थ है कि पहले, दूसरे चरों के सह–संबंध गुणांक में तीसरे व चौथे चर के प्रभाव को स्थिर कर दिया गया है। इसी प्रकार r 13.24 का अर्थ है पहले तथा तीसरे चर में सह–संबंध गुणांक के लिये दूसरे व चौथे चरों के प्रभाव को अलग कर दिया गया है।

आंशिक सह–संबंध का गणना सूत्र

1. $r_{12.3} = \dfrac{r_{12} - r_{13}\, r_{23}}{\sqrt{1 - r_{13}^2}\,\sqrt{1 - r_{23}^2}}$

यहां– r_{12} = चर x_1 तथा x_2 में सह–संबंध गुणांक

r_{13} = चर x_1 तथा x_3 में सह–संबंध गुणांक

r_{23} = चर x_2 तथा x_3 में सह–संबंध गुणांक

$r_{12.3}$ = चर x_1 तथा x_2 में आंशिक सह–संबंध गुणांक तथा x_3 का प्रभाव स्थिर है।

2. $r_{12.3} = \dfrac{r_{13} - r_{12}\, r_{23}}{\sqrt{1 - r_{12}^2}\,\sqrt{1 - r_{23}^2}}$

$r_{13.2}$ x_1 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_2 का प्रभाव स्थिर है।

3. $r_{23.1} = \dfrac{r_{23} - r_{12}\, r_{13}}{\sqrt{1 - r_{12}^2}\,\sqrt{1 - r_{13}^2}}$

$r_{23.1}$ = चर x_2 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा चर x_1 का प्रभाव स्थिर है।

इसी प्रकार यदि चार चर (Four Variable) हों तो कुछ आंशिक सह–संबंध गुणांक निम्न सूत्रों के माध्यम से ज्ञात किए जाएंगे–

टिप्पणी

$$r_{14.2} \frac{r_{14} - r_{12}\ r_{24}}{\sqrt{\left(1 - r_{12}^{r^2}\right)\sqrt{1 - _{24}^{r^2}}}}$$

x_1 तथा x_3 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_4 का प्रभाव स्थिर है।

$$r_{12.4} \frac{r_{12} - r_{14}\ r_{24}}{\sqrt{\left(1 - r_{14}^{r^2}\right)\sqrt{1 - _{24}^{r^2}}}}$$

x_1 तथा x_2 में आंशिक सह–संबंध है तथा x_4 का प्रभाव स्थिर है।

उदाहरण

तीन चरों वाले वितरण से निम्न सूचना प्राप्त है–

$r_{12} = 0.7 \quad r_{13} = 0.61 \quad r_{23} = .4$

तब,

$r_{23.1}, \quad r_{13.2}$ तथा 12.3 के मान ज्ञात कीजिए।

1. $$r_{23} \frac{r_{23} - r_{12}\ r_{13}}{\sqrt{\left(1 - r_{12}^{r^2}\right)\sqrt{1 - _{13}^{r^2}}}}$$

$$r_{23.1} \frac{0.4 - (0.7)\ (0.61)}{\sqrt{1 - (.7)^2\ \sqrt{1 - (.61)^2}}}$$

$$\frac{0.4 - 0.427}{\sqrt{1 - .49}\ \sqrt{1 - 0.3721}}$$

$$\frac{0.027}{\sqrt{0.51}\ \sqrt{0.6270}}$$

$$\frac{0.027}{0.714 \times .792} = \frac{0.027}{0.5658} = 0.0477 \ \ or \ \ 0.048$$

2. $$r_{13.2} = \frac{r_{13} - r_{12}\ r_{23}}{\sqrt{\left(1 - r_{12}^2\right)}\ \sqrt{\left(1 - r_{23}^2\right)}}$$

$r_{13} = 0.61$

$r_{12} = 0.7$

$r_{23} = 0.4$

$$r_{13.2} = \frac{0.61 - (.7)\ (.4)}{\sqrt{(1 - (.7)^2}\ \sqrt{1 - (.4)^2}}$$

$$r_{13.2} = \frac{0.61 - .28}{\sqrt{1 - 49}\ \sqrt{1 - .16}}$$

$$\frac{0.33}{.51\sqrt{.84}} = \frac{0.33}{.6545} = 0.504$$

3. $$r_{12.3} \frac{r_{12} - r_{13}\ r_{23}}{\sqrt{\left(1 - r_{13}^2\right)}\ \sqrt{1 - r_{23}^2}}$$

टिप्पणी

$$r_{12.3}\frac{.7-(0.61)\,(0.4)}{\sqrt{(1-(.61)^2}\;\sqrt{1-(.4)}}$$

$$\frac{0.7-0.244}{\sqrt{1-.3721}\,\sqrt{1-.16}}$$

$$\frac{0.456}{0.7262}=.6279 \quad or \quad .628$$

6. बहुगुणी/सह–संबंध (Multiple Correlation)

बहुगुणी/बहुचरीय सह–संबंध के अंतर्गत एक चर तथा दो या दो से अधिक स्वतंत्र (Independent Variable) चरों के बीच सह–संबंध ज्ञात किया जाता है। जब एक चर के संबंध में आकलन अन्य दो या दो से अधिक चरों पर आधारित रहता है, तो उन संबंधित चरों के संयुक्त प्रभाव को ज्ञात करने के लिए उनके संयोजित सह–संबंध गुणांक की गणना करनी होती है। ऐसे संयोजित सह–संबंध को ही बहुचरीय सह–संबंध कहते हैं।

उदाहरण स्वरूप $x_1\,x_2$ तथा x_3 दिये गये हैं। x_1 भार, x_2 लंबाई तथा x_3 उम्र को व्यक्त करता है। तो हम किसी लंबाई तथा उम्र के लिए भार ज्ञात कर सकते हैं। इसी प्रकार उम्र तथा भार के लिए लंबाई ज्ञात की जा सकती है। इसका संकेताक्षर R होता है। बहुगुणी/बहुचरीय सह–संबंध गुणांक को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

$$R_{1.23}\sqrt{\frac{r_{12}+r_{13}^2-2r_{12}\;r_{13}\;r_{23}}{1-r_{23}^2}}$$

$$R_{2.13}\sqrt{\frac{r_{12}^2+r_{23}^2-2r_{12}\;r_{13}\;r_{23}}{1-r_{23}^2}}$$

$$R_{3.12}\sqrt{\frac{r_{13}^2+r_{23}^2-2r_{12}\;r_{13}\;r_{23}}{1-r_{13}^2}}$$

इसी प्रकार यदि चर Variable चार हैं तो सूत्र इस प्रकार होगा–

$$R_{1.24}=\sqrt{\frac{r_{12}+r_{14}-2r_{12}\;r_{14}\;r_{24}}{1-r_{24}^2}}$$

$$R_{.2.14}=\sqrt{\frac{r_{12}+r_{24}^2-2r_{12}\;r_{14}\;r_{24}}{1-r_{14}^2}}$$

$$R_{1.34}\sqrt{\frac{r_{13}^2+r_{14}^2-2r_{13}\;r_{14}\;r_{34}}{1-r_{34}^2}}$$

$$R_{3.24}\sqrt{\frac{r_{23}^2+r_{24}^2-2r_{23}\;r_{24}\;r_{34}}{1-r_{24}^2}}$$

R के नीचे दशमलव के बायीं ओर आश्रित चर तथा दायीं और स्वतंत्र चर दिये जाते हैं। जैसे $R_{2.134}$ यहां x_2 आश्रित तथा $x_1\,x_3$ व x_4 स्वतंत्र चर हैं।

बहुचरीय सह–संबंध की गणना

$r_{12} = 0.98$

$r13 = 0.44$

$r_{23} = 0.54$

इन सूचनाओं के आधार पर पहले चर को आश्रित तथा दूसरे व तीसरे चर को स्वतंत्र मानकर बहुगुणी सह–संबंध की गणना कीजिए–

$$R_{1.23}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{13}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{23}^2}}$$

$$\sqrt{\frac{(.98)^2 + (.44)^2 - 2(.98)\,(.44)\,(.54)}{1 - (.54)^2}}$$

$$\sqrt{\frac{.9604 + .1936 - .4557}{1 - .2916}}$$

$$\sqrt{\frac{.6883}{.7084}}$$

$$\sqrt{.9716262} = 0.9857 \quad or \quad 0.986$$

उदाहरण

निम्न सूचनाओं के आधार पर $R_{2.13}$ तथा $R_{3.12}$ ज्ञात कीजिए।

$r_{12} = 0.8$

$r_{13} = 0.4$

$r_{23} = 0.5$

$$R_{2.13}\sqrt{\frac{r_{12}^2 + r_{23}^2 - 2r_{12}\ r_{13}\ r_{23}}{1 - r_{13}^2}}$$

$$\sqrt{\frac{(.8)^2 + (.5)^2 - 2(.16)}{1 - (.4)^2}}$$

$$\sqrt{\frac{.64 + 25 - 2(.16)}{1 - .16}} = \sqrt{\frac{0.89 - .32}{.84}} = \frac{.57}{.84}$$

$$= \sqrt{.67857} = 0.8237 \ \ or \ \ 0.824$$

$$R_{3.12} = \sqrt{\frac{r_{13}^2 + r_{23}^2 - 2(r_{13})\,(r_{13})\,(r_{23})}{1 - r_{12}^2}} = \sqrt{\frac{(.4)^2 + (.5)^2 - 2(.8)\,(.4)\,(.5)}{1 - (.8)^2}}$$

$$= \sqrt{\frac{.09}{.36}} = \sqrt{.25} = 0.5$$

टिप्पणी

बहुचरीय सह–संबंध Multiple Correlation को ज्ञात करने के लिए x पर y तथा z के समानुपाती (Proportional) प्रभावों को संयोजित किया जाता है। y तथा z चरों के समानुपाती प्रभावों को संयोजित करने की विधियां काफी जटिल व कठिन हैं इसलिये यहां एक सरल विधि का प्रयोग किया गया है जिसे संचय वर्ग (Pooling Square) विधि कहते हैं। इसके उपयोग के लिए पहले विभिन्न चरों के सह–संबंध गुणांकों को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया जाता है–यदि $x_4 = .86, xz = .72$ or $yz = .48$

संचय वर्ग तालिका (Pooling Square Table)

चर	x	y	z
x	1.0	.86	.72
y	.86	1.0	.48
z	.72	.48	1.0

यहा y तथा z के प्रभावों को संयोजित करने के लिए y तथा z वाले स्तंभों (Columns) को दोहरी रेखाओं में अलग कर दिया जाता है। उसके पश्चात् सह–संबंध मैट्रिक्स की निम्न आधार पर रचना की जाती है–

$$\begin{array}{c|c} a & c \\ \hline c & b \end{array} \qquad a = r_{xx} = 1.0$$

$$c = r_{xy} + r_{xz} = .86 + .72 = 1.58$$
$$b = r_{yy} + r_{yy} + r_{yz} + r_{yz}$$
$$1.0 + 1.0 + .48 + .48$$
$$2.96$$

यहां बहुचरीय सह–संबंध का सूत्र इस प्रकार होगा–

$$R = \frac{C}{\sqrt{ab}}$$

$$\frac{1.58}{\sqrt{(1)\,(2.96)}} = \frac{1.58}{\sqrt{2.96}}$$

$$\frac{1.58}{1.72} = .918 \;\; or \;\; 0.92$$

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि पहले x चर का y तथा z के साथ अलग–अलग सह–संबंध .86 तथा .72 था लेकिन बहुचरीय सह–संबंध (अथवा y तथा z के प्रभावों को संयोजित करने पर) 0.92 हो गया है। भविष्य कथन y तथा z चरों के संयोजित सह–संबंध अथवा बहुचरीय सह–संबंध के आधार पर किया जाता है।

4.5.4 मानक प्राप्तांक : Z प्राप्तांक, T स्कोर प्राप्तांक शतांशीय मान

किसी समूह पर किसी परीक्षण को प्रशासित करने पर प्राप्त परिणाम प्रायः मापांकों के रूप में होते हैं। ये मापांक साधारण अंकगणितीय संख्याएं होती हैं, जिनका अपने आप

में गणितीय अर्थ के अतिरिक्त कोई अन्य अर्थ नहीं होता है। ये मापांक स्वयं में अर्थहीन तथा व्याख्या विहीन होते हैं। किसी दिये गये मापांक की व्याख्या करके उसे प्राप्त करने वाले छात्र/बालक की स्थिति स्पष्ट करने के लिये किसी न किसी सन्दर्भ आधार की आवश्यकता होती है क्योंकि ये सन्दर्भ बिन्दु उन प्राप्तांकों को जो प्रारम्भ में अर्थहीन थे, अर्थ–युक्त बनाते हैं।

मापांकों को अर्थयुक्त बनाना तथा उनकी तुलना करना अपने आप में एक समस्या होती है। प्राप्तांकों को अर्थयुक्त बनाने के लिये प्राप्तांकों को मानक प्राप्तांकों में परिवर्तित किया जाता है। मानक प्राप्तांक अर्थयुक्त होते हैं और इनका प्रयोग करके विभिन्न व्यक्तियों की सरलता से तुलना की जा सकती है। अर्थात् मानक प्राप्तांक वास्तव में विभिन्न व्यक्तियों के तुलनीय पैमाने पर समतुल्य प्राप्तांक हैं।

मानक प्राप्तांक वास्तव में किसी सन्दर्भ समूह के लिये विभिन्न प्राप्तांकों की सापेक्षिक स्थिति को प्रकट करते हैं। मानक प्राप्तांक शब्द युग्म में मानक शब्द केवल इस बात का द्योतक है कि इन प्राप्तांकों का मध्यमान व मानक विचलन पहले ही निश्चित तथा ज्ञात होता है। मध्यमान तथा मानक विचलन के भिन्न–भिन्न हो सकने के कारण मानक प्राप्तांक अनेक प्रकार के होते हैं जैसे Z प्राप्तांक, T प्राप्तांक, C प्राप्तांक तथा नव मानक आदि।

मानक प्राप्तांक स्कोर : किसी समूह में व्यक्ति की तुलनात्मक स्थिति पर संकेत देने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तरीके का इस्तेमाल यह दिखाते हुए किया जाता है कि उसके द्वारा प्राप्त अंक औसत से कितना ऊपर या नीचे हैं। यह मानक स्कोर का तरीका है और मानक स्कोर किसी व्यक्ति के प्रदर्शन को इस लिहाज से दिखाता है कि मीन से वह कितनी इकाई इधर या उधर है। परीक्षा में जिन विभिन्न प्रकार के मानक स्कोरों का प्रयोग किया जाता है, वे हैं–

1. Z–प्राप्तांक
2. T–प्राप्तांक

Z–प्राप्तांक

Z प्राप्तांक सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रचलित मानक प्राप्तांक है जो यह बताता है कि प्रत्येक मूल प्राप्तांक मानक विचलन की कितनी इकाइयां मध्यमान से अधिक अथवा कम हैं। Z प्राप्तांक का धनात्मक (+) चिह्न बताता है कि मूल प्राप्तांक मध्यमान से कम है। यदि किसी छात्र का Z प्राप्तांक +2 के बराबर है तो इसका अर्थ है उस छात्र के प्राप्तांक मध्यमान से मानक विचलन के दो गुने के बराबर से अधिक हैं। उदाहरण स्वरूप यदि प्राप्तांकों के वितरण का मध्यमान (M) =60 तथा मानक विचलन S.D(δ) 12 है तो उस छात्र के प्राप्तांक $60 + (2\times12)\ 60 + 24$ अर्थात् 84 होंगे। इसी प्रकार यदि Z प्राप्तांक –1.5 है तो उसके प्राप्तांक मध्यमान से डेढ़ मानक विचलन के बराबर से कम होंगे अर्थात् $60 - 1.5 \times12)\ 60 - 18= 42$ होंगे। Z प्राप्तांकों के वितरण का मध्यमान शून्य तथा मानक विचलन एक बराबर होता है। Z प्राप्तांकों का मान –32 से +3Z के बीच होता है।

टिप्पणी

स्कोर प्रत्यक्ष रूप से परीक्षा के प्रदर्शन को दिखाता है क्योंकि मानक अंतर की संख्या कच्चे अंक की एक इकाई होती है जो मीन के ऊपर या नीचे होती है। Z–स्कोर नॉर्मल प्रोबैबिलिटी कर्व (सामान्य प्रायिकता वक्र) की इकाई होते हैं, उदाहरणार्थ X का मान +30 से –30 होता है।

Z–स्कोर जोड़ने का फॉर्मूला है– $Z = \frac{X-\mu}{\sigma}$

जहां

X = अंक

μ = स्कोर का अंकगणितीय मीन

σ = कच्चे अंक का मानक अंतर

एक Z–हमेशा ऋणात्मक होता है जब कच्चा स्कोर मीन से कम होता है।

Z प्राप्तांक पर्याप्त सूचना प्रदान करते हैं इसी कारण मूल्यांकन के क्षेत्र में इनका बहुत अधिक प्रयोग किया जाता है। निर्वचन करने हेतु Z का मान ज्ञात करने पश्चात/परीक्षणों की सार्थकता ज्ञात की जाती है।

प्राप्ताकों की निर्वचन की प्रक्रिया में न्यादर्श से माध्यम से समग्र के संबंध में सामान्यीकरण करना अन्तिम लक्ष्य होता है। अतः न्यादर्श पर आधारित सांख्यिकी की गणना द्वारा समग्र मान (समग्र के पैरामीटर) अनुमान लगाना तथा ऐसा करने में विभ्रम या त्रुटि का वास्तविक रूप में निश्चयीकरण करना परमावश्यक होता है। इसके लिये मानों की सार्थकता या विश्वसनीयता को ज्ञात किया जाता है।

T – प्राप्तांक

Z प्राप्तांकों के प्रयोग करने पर आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनेक प्रकार के मानक प्राप्तांकों का सुझाव दिया गया है। इनमें T प्राप्तांक काफी प्रचलित है।

T – प्राप्तांक मूल प्राप्तांकों का वह रूपान्तरण है जिसके परिवर्तित प्राप्तांकों का मध्यमान (M) = 50, मानक विचलन (δ) = 10 तथा वितरण सामान्य होता है। ये प्राप्तांक सदैव धनात्मक (Positive) होते हैं तथा इनका मान हमेशा 20–80 के बीच रहता है। मानक प्राप्तांकों की इस प्रणाली का प्रचलन काफी बढ़ता जा रहा है। इनमें सभी प्राप्तांक धनात्मक होते हैं तथा प्राप्तांकों को दो अंकों में सरलता से एवं बिना दशमलव बिंदु के लिखा जा सकता है। ये प्राप्तांक पर्याप्त विभेदीकरण प्रसार प्रस्तुत करते हैं।

T–प्राप्तांकों की गणना

किसी मूल प्राप्तांक को T प्राप्तांक में बदलने के लिए निम्नांकित सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$T = 50 + 10\left[\frac{X-M}{\delta}\right]$$

टिप्पणी

परिवर्तित प्राप्तांकों का मध्यमान = 50

मानक विचलन = 10

X = मूल्य प्राप्तांक

M = मध्यमान

δ = मान विचलन

मूल प्राप्तांकों से T–प्राप्तांकों की गणना

माना मूल प्राप्तांक (X) = 90 M = 75 δ = 6

$$T = 50 + 10\left(\frac{X - M}{\delta}\right)$$

$$= 50 + 10\left(\frac{90 - 75}{6}\right)$$

$$= 50 + 10\ (2.5)$$

$$= 50 + 25$$

$$= 75$$

उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण

एक कक्षा में 50 छात्रों का 100–100 अंकों के विज्ञान तथा गणित विषय का परीक्षण किया गया। छात्र A ने विज्ञान विषय में 75 अंक तथा गणित विषय में 90 अंक प्राप्त किये। कक्षा के छात्रों के विज्ञान विषय के प्राप्तांकों का मध्यमान (M) 60 तथा मानक विचलन δ = 6 है तथा गणित विषय के प्राप्तांकों का मध्यमान (M) 75 तथा मानक विचलन 10 है तो बताइए छात्र किस विषय में अधिक योग्य है?

विज्ञान विषय के मूल प्राप्तांकों का – T–प्राप्तांक

$$T = 50 + 10\left(\frac{X - M}{\delta}\right)$$

(x) मूल प्राप्तांक = 75

$$= 50 + 10\left(\frac{75 - 60}{6}\right)$$

M = 60

$$= 50 + 10\ (2.5)$$

$\delta = 6$

$$= 50 + 25 = 75$$

गणित विषय के मूल प्राप्तांकों का T–प्राप्तांक

मूल प्राप्तांक (X) = 90 मध्यमान (M) 75 δ = 10

$$T = 50 + 10\left(\frac{90 - 75}{10}\right)$$

$$T = 50 + 10\left(\frac{X - M}{\delta}\right)$$

$$= 50 + 10\left(\frac{15}{10}\right)$$

$= 50 + 10\ (1.5)$

$= 50 + 15$

$= 65$

टिप्पणी

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि छात्र गणित की अपेक्षा विज्ञान विषय में अधिक योग्य है।

उदाहरण

एक छात्र के दो विषयों के परीक्षण के प्राप्तांक निम्न हैं, बताइए छात्र किस में अधिक योग्य है?

	विषय I	विषय II
$\bar{X}$	65	84
M	50	60
δ	10	8

विषय I के मूल्य प्राप्तांकों का T–प्राप्तांक	विषय II के मूल प्राप्तांकों का T–प्राप्तांक
$T = 50 + 10\left(\dfrac{X-M}{\delta}\right)$	$T = 50 + 10\left(\dfrac{X-M}{\delta}\right)$
$= 50 + 10\left(\dfrac{65-50}{10}\right)$	$= 50 + 10\left(\dfrac{84-60}{8}\right)$
$= 50 + 10\left(\dfrac{15}{10}\right)$	$= 50 + 10\left(\dfrac{24}{8}\right)$
$= 50 + 10\ (1.5)$	$=50 + 10\ (3)$
$= 50 + 15 = 65$	$=50 + 30 = 80$

नोट : छात्र विषय II में अधिक योग्य है।

यदि Z का मान दिया है तो T–प्राप्तांकों को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाएगा–

$T = 50 + 10Z$ Let Z का मान 3 है तो T–प्राप्तांक इस प्रकार रहेंगे–

$50 + 10(3)$

$50 + 30 = 80$

T–प्राप्तांकों की उपयोगिता (Utility of T-Scores)

T प्राप्तांकों का मध्यमान (M) 50 तथा मानक विचलन (δ) 10 होता है इसलिए यदि सामान्य वितरण का प्रसार 100 मान लिया जाए तो T- पैमाने का प्रसार 0 से 100 तक

हो जाता है। जिसके परिणामस्वरूप प्राप्तांकों का मापन शुद्धता के साथ किया जा सकता है। T–प्राप्तांकों का अर्थ अग्रतालिका से निकाला जाता है।

टिप्पणी

विभिन्न T–प्राप्तांकों का अर्थ

T प्राप्तांक	मानक विचलन स्थिति	कम अंक प्राप्त करने वाले छात्रों का प्रतिशत (%)	अधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्रों का प्रतिशत (%)
80	+ 3.0 δ	99.87	0.13
75	+ 2.5 δ	99.38	0.62
70	+ 2.0 δ	97.72	2.28
65	+ 1.5 δ	93.32	6.68
60	+ 1.0 δ	84.13	15.87
55	+ 0.5 δ	69.15	30.85
50	+ 0.0 δ	50.00	50.00
45	– 0.5 δ	30.85	69.15
40	– 1.0 δ	15.87	84.13
35	– 1.5 δ	6.68	93.32
30	– 2.0 δ	2.28	97.72
25	– 2.5 δ	0.62	99.38
20	– 3.0 δ	0.13	99.87

T–प्राप्तांक प्रायः काफी बड़े–बड़े होते हैं इसलिए सामान्यतः सांख्यिकीय गणनाओं के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इनका प्रयोग अपेक्षाकृत कम ही किया जाता है।

• शतांशीय मान

शतांशीय मान या प्रतिशतक, किसी आवृत्ति वितरण में एक निश्चित बिंदु या प्राप्तांक को सूचित करते हैं। प्रतिशतक, आवृत्ति वितरण में वह बिंदु या प्राप्तांक है, जिसके नीचे प्राप्तांकों का एक निश्चित प्रतिशत होता है।

प्रतिशतक वे बिंदु हैं, जो आवृत्ति वितरण को 100 बराबर भागों में विभाजित करते हैं। इनमें से प्रत्येक भाग में कुल प्राप्तांकों के 1% प्राप्तांक होते हैं।

संक्षेप में, शतांशीय मान किसी समूह में व्यक्तियों का सापेक्ष स्थान बताता है।

शतांशीय मान के अंतर्गत दो प्रकार की गणना की जाती है–

1. शतांशीय मान बिंदु
2. शतांशीय अनुस्थिति

शतांशीय मान ज्ञात करना

शतांशीय मान ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाया जाता है–

$$Pp = L + \left(\frac{PN - fb}{fa}\right) \times C.I.$$

जहां, Pp = ज्ञात किया जाने वाला शतांशीय मान।

L = उस वर्गांतर की निम्न सीमा, जिसमें शतांशीय मान है।

टिप्पणी

PN = कुल आवृत्तियों का प्रतिशत भाग, जो अपेक्षित है।

fa = उस वर्गांतर की आवृत्ति, जिसमें शतांशीय मान है।

fb = उन सभी वर्गों की आवृत्तियों का योग, जो शतांशीय मान वाले वर्ग से नीचे (छोटे) स्थित हैं।

उदाहरण

निम्न सारणी से P_{25}, P_{40} और P_{60} का मान ज्ञात कीजिए–

S.No.	C.I.	f	cf
1	75–79	3	50
2	70–74	5	47
3	65–69	4	42
4	60-64	6	38
5	55–59 (P_{60})	7	32
6	50–54 (P_{40})	9	25
7	45–49 (P_{25})	6	16
8	40–44	5	10
9	35–39	3	5
10	30–34	2	2
N=50			

हल Now, $= L + \left(\frac{PN - fb}{fa}\right) \times \text{C.I.}$

So,

$$P = 44.5 + \left(\frac{125 - 10}{6}\right) \times 5$$

$$= 44.5 + \frac{2.5}{6} \times 5$$

$$= 44.5 + \frac{125}{6}$$

$$= 44.5 + 2.08$$

$$= 46.58$$

अतः $P = 46.58$

$$\text{PN for 25} = \frac{25}{100} \times 50 = \frac{25}{2} = 12.5$$

इसी तरह,

$$P_{40} = 49.5 + \left(\frac{20 - 16}{9}\right) \times 5$$

$$= 49.5 + \left(\frac{20}{9}\right)$$

$$= 49.5 + 2.22$$

$$= 51.72$$

$$P^{40} = 58.72$$

$$PN = for\,40 = \frac{40}{100} \times 50 = 20$$

तथा $$P_{60} = 54.5 + \left(\frac{30-25}{7}\right) \times 5$$

$$= 54.5 + \frac{25}{7}$$

$$= 54.5 + 3.57$$

$$= 58.07$$

$$\text{Hence, } P_{60} = 58.07$$

$$\text{PN for } 60 \text{ ¾ } \frac{60}{100} \times 50 = 30$$

शतांशीय मान की गणना विधि

शतांशीय मान की गणना निम्न प्रकार से की जाती है–

1. आवृत्तियों को संचयी आवृत्तियों में बदलिए।
2. जो शतांशीय मान (Pp) ज्ञात करता है, उसका PN ज्ञात कीजिए। सूत्र है– $\frac{P}{100} \times N$ जैसे, P_{60} का PN होगा $\frac{60}{100} \times 50$ (कुल आवृत्तियां) = 30।
3. संचयी आवृत्ति स्तंभ में देखिए कि PN का मान किस वर्गांतर में आएगा।
4. PN वर्गांतर की वास्तविक निम्न सीमा निकालिए।
5. सभी मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित कर Pp की गणना कीजिए।

शतांशीय मान अनुस्थिति की गणना विधि

शतांशीय अनुस्थिति की गणना विधि को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. आवृत्तियों को संचयी आवृत्तियों में बदलिए।
2. यह देखना कि दिया गया प्राप्तांक किस वर्गांतर में स्थित है।
3. प्राप्तांक जिस वर्ग में स्थित है, उससे नीचे (छोटे) के सभी वर्गों की आवृत्तियों का योग ज्ञात करना। यह fb कहलाएगा।
4. प्राप्तांक जिस वर्ग में है, उसकी निम्न सीमा ज्ञात करना।
5. सभी मानों को प्रयुक्त सूत्र में प्रतिस्थापित कर शतांशीय अनुपस्थिति का आकलन करना।

नोट : शतांशीय मान निकालने में वह प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है, जिसके नीचे प्रतिशत दिया गया हो, जैसे–उपरोक्त उदाहरण में 46.58 वह अंक है जिसके नीचे 25 प्रतिशत छात्र हैं। शतांशीय अनुस्थिति में इसका उल्टा है। इसमें कोई प्राप्तांक दिया

होता है तथा यह ज्ञात करना होता है कि प्राप्तांक के नीचे कितने प्रतिशत छात्र हैं, जैसे–उपरोक्त उदाहरण में 58 प्राप्तांक के नीचे 60 प्रतिशत छात्र हैं, अतः इस प्राप्तांक की शतांशीय अनुस्थिति 60 मानी जाएगी।

टिप्पणी

प्रतिशतता की सीमाएं

- प्रतिशतता इकाइयां स्केल के सभी हिस्सों में समान नहीं होती हैं। स्केल के मध्य में 5 के आसपास का प्रतिशतता अंतर (उदाहरण के लिए, 45 से 50) परीक्षा के प्रदर्शन के अंत (यानी, 85 से 90) की तुलना में काफी छोटा होता है, क्योंकि अधिकांश छात्रों को मध्य के आसपास अंक मिलते हैं, जबकि कुछ ही छात्रों को बहुत अधिक या बहुत कम अंक प्राप्त होते हैं।
- प्रतिशतता मानदंड को परसेंटेड स्कोर समझ लिया जाता है जिससे व्याख्या प्रभावित होती है।
- प्रतिशतता मानदंड केवल किसी मानकीकृत सैंपल में एक परीक्षार्थी की सापेक्ष स्थिति को बताता है। यह अंकों के बीच के वास्तविक अंतर की मात्रा के विषय में कुछ नहीं बताता है।
- एक समूह के प्रतिशतता रैंक की तुलना दूसरे समूह के प्रतिशतता रैंक से नहीं की जा सकती है।
- कच्चे अंकों के प्रतिशतता स्कोर में परिवर्तन से अंत की तुलना में मध्य में अधिक अंतर आ जाता है।

  कच्चे अंकों के प्रतिशतता रैंक को जोड़ने के लिए हम निम्नलिखित फॉर्मूला अपना सकते हैं–

$$P_P = L + \frac{Pn - fb}{fa} \times i$$

जहां P_P = किसी कच्चे अंक का प्रतिशतता बिंदु है।

L = कच्चे अंक का निम्न स्तर विशेष वर्ग अंतराल के बीच आता है।

Pn = बारंबारता का प्रतिशत।

fb = वर्ग अंतराल के नीचे की बारंबारता।

fa = वर्ग अंतराल की वास्तविक बारंबारता।

i = क्लास अंतराल का आकार।

उदाहरण

यदि 50 छात्रों की कक्षा में प्राप्तांकों के अनुसार, तरुणा का अंग्रेजी तथा गणित में पांचवां स्थान है, तो उसकी शतांशीय अनुस्थिति क्या होगी?

हल

दिया गया है कि $PR = 100 - \frac{100R - 50}{N}$

शतांशीय अनुस्थिति ज्ञात करने में प्रयुक्त सूत्र निम्न है–

टिप्पणी

$$PR = \frac{100}{n}\left[fb + \frac{fa(X-L)}{C.I.}\right]$$

जहां, PR = शतांशीय अनुस्थिति।

fb = उस वर्गांतर से नीचे (छोटे) की आवृत्तियों का योग, जिसमें दिया गया प्राप्तांक स्थित है।

f_a = प्राप्तांक वाले वर्गांतर की आवृत्ति।

$C.I.$ = वर्गांतर की सीमा।

L = प्राप्तांक वाले वर्गांतर की निम्न सीमा।

X = दिया गया प्राप्तांक

N = कुल आवृत्तियां।

उदाहरण

निम्न सारणी से PR का मान स्कोर 42, 62 और 72 के लिए ज्ञात कीजिए।

S.No.	X	C.I.	f		cf	
1		75-79	3		50	
2	(72)	70-74	5	(fa)	47	
3		65-69	4		42	(fb)
4	(62)	60-64	6	(fa)	38	
5		55-59	7		32	(fb)
6		50-54	9		25	
7		45-49	6		16	
8	(42)	40-44	5	(fa)	10	
9		35-39	3		5	(fb)
10		30-34	2		2	

हल

Now, $PR = \frac{100}{50}[5 + 2.5] = 15$

$= 2\ (7.5) = 15.0$ Ans.

अतः PR = 15

इसी तरह, PR of $62 = \frac{32 + \frac{6}{5}(62 - 59.5)}{50} \times 100$

$$= \frac{32 + \frac{6}{5}(25)}{50} \times 100$$

PR of $62 = \frac{100}{50}\left[32 + \frac{6}{5}(2.5)\right]$

टिप्पणी

$$= 2 \times 35$$

$$= 70$$

$$PR\,of\ \frac{42 + \frac{5}{5}(72 - 69.5)}{50} \times 100$$

$$= (42 + 2.5) \times 2$$

$$= 44.5 \times 2$$

$$= 89$$

$$PR\ 72 = 89$$

अपनी प्रगति जांचिए

11. किसी भी श्रेणी के तृतीय एवं प्रथम चतुर्थकों के आधे को क्या कहते हैं?

    (क) मानक विचलन (ख) परास

    (ग) चतुर्थक विचलन (घ) मध्यमान

12. सामान्य संभावना वक्र का सर्वप्रथम प्रतिपादन फ्रांस के डी. मोइवर ने कब किया था?

    (क) सन् 1923 (ख) सन् 1933

    (ग) सन् 1943 (घ) सन् 1953

13. किसी आवृत्ति विवरण में किसी निश्चित बिंदु को किसके द्वारा सूचित किया जाता है?

    (क) सापेक्षता (ख) शतांशीय मान

    (ग) आवृत्ति (घ) अवलोकन

14. शतांशीय मान के अंतर्गत गणनाएं कितने प्रकार से की जा सकती हैं?

    (क) दो (ख) तीन

    (ग) चार (घ) पांच

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (ख)
6. (घ)

7. (घ)
8. (घ)
9. (ग)
10. (क)
11. (ग)
12. (ख)
13. (ख)
14. (क)

4.7 सारांश

किसी भी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत ऐसे अनेक उद्देश्य होते हैं जिनके अंतर्गत समंक या आंकड़े प्राप्त करना, उन्हें एकात्रित करना, वर्गीकृत करने के उपरांत विश्लेषण करना और उन्हीं विश्लेषित समंकों को प्रकाशित करना आवश्यक होता है ताकि सभी को वे समंक आसानी से प्राप्त हो सकें।

चर शब्द का अभिप्राय उन तथ्यों से है, जिनकी अंकात्मक माप या प्रत्यक्ष माप संभव होती है और जो मात्रा अथवा आकार में घटते–बढ़ते रहते हैं। एक चर खंडित या विच्छिन्न अथवा अखंडित या अविच्छिन्न हो सकता है।

मापन के अंतर्गत विभिन्न निरीक्षणों, वस्तुओं एवं घटनाओं का अंकात्मक रूप में वर्णन किया जाता है तथा इसके अंक प्रदान करने के लिए मापन के विभिन्न स्तरों के अनुकूल विशिष्ट प्रकार के नियमों एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाता है।

सांख्यिकीय अनुसंधान द्वारा संकलित समंक और तथ्य मौलिक रूप में इतने जटिल एवं अव्यवस्थित होते हैं कि उन्हें सरलता से समझना और उनकी विशेषताओं को ज्ञात करके उचित व तर्कसंगत निष्कर्ष निकालना असंभव होता है।

समंक का व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण सांख्यिकीय रीतियों का एक महत्वपूर्ण अंग है और इस रीति से सांख्यकीय सारणियों की संरचना की जाती है। सारणीयन की सहायता से ही प्राप्त समंक को सरल, संक्षिप्त एवं बोधगम्य बनाया जाता है। अतः समंक का सारणीयन आवश्यक होता है।

ऐसे तथ्य जिनका संख्यात्मक माप किया जा सकता है। उनका वर्गीकरण संख्यात्मक वर्गीकरण कहलाता है। यह वर्गीकरण प्रायः अंकों के आधार पर किया जाता है।

किसी आवृत्ति वितरण में अंतिम वर्गांतर की ऊपरी सीमा तथा प्रथम वर्गांतर की निचली सीमा के अंतर को उस आवृत्ति वितरण का विस्तार कहा जाता है।

नीरस समंकों को चित्र या ग्राफ के माध्यम से प्रदर्शित करके उन्हें अर्थपूर्ण तथा रोचक और उनकी विशेषताओं को स्पष्ट बनाया जा सकता है।

टिप्पणी

विक्षेपण के सापेक्ष मापक की गणना, गुणवत्ता द्वारा इस संदर्भ में निरपेक्ष मापकों को भाग देते हुए की जाती है, जिसमें निरपेक्ष विचलन की गणना कर ली गयी है। यह अपने आप में शुद्ध संख्या है एवं इसे प्रायः प्रतिशत रूप में प्रदर्शित किया जाता है।

चतुर्थक विचलन, विचलनशीलता की निरपेक्ष माप है। इसका सापेक्ष माप, चतुर्थक विचलन गुणक कहलाता है।

माध्य विचलन किसी केंद्रीय प्रवृत्ति की माप से समंक समूह के मूल्यों के विचलनों का माध्य होता है। इस माप को किसी सांख्यकीय माध्य से प्रत्येक पद–मूल्य या अवलोकन के निरपेक्ष विचलन ज्ञात कर और उन विचलनों का माध्य निकालकर प्राप्त किया जाता है।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **आंकड़ा** : आंकड़ा मान या माप के रूप में तथ्यों का एक संग्रह है।
- **प्राथमिक स्रोत** : वे स्रोत जो प्राथमिक स्तर पर तथ्यों या समंक के संलन में सहायक होते हैं।
- **सारणीयन** : किसी विचाराधीन समस्या को स्पष्ट करने के उद्देश्य से संख्यात्मक तथ्यों को क्रमबद्ध और सुव्यवस्थित करने की विधि को सारणीयन कहते हैं।
- **केंद्रीय प्रवृत्ति माप** : वह मापन जो सारे आंकड़ों का श्रेष्ठतम प्रतिनिधित्व करता है।
- **मध्यमान** : वह अंक जो संख्याओं के योग को उनकी संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है।
- **बहुलक** : वह अंक जिसकी प्राप्तांकों के समूह में सबसे अधिक आवृत्ति होती है।
- **विचलनशीलता** : वह सीमा, जहां तक समंक एक माध्य मूल्य के दोनों ओर फैलने की प्रवृत्ति रखते हैं।
- **विस्तार** : समंकमाला में सबसे बड़े पद तथा सबसे छोटे पद के मूल्य का अंतर।

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. आंकड़ों से क्या अभिप्राय है? इसकी प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
2. मापन का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी चार विशेषताओं को बताइए।
3. प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष स्रोत में क्या अंतर है?
4. सारणीयन से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख उद्देश्यों को बताइए।
5. वर्गीकरण और सारणीयन में अंतर स्पष्ट कीजिए।

6. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

   (क) दंड चित्र (ख) वृत्त चित्र (ग) चित्र लेखा
7. भूयिष्ठिक से क्या तात्पर्य है? भूयिष्ठिक के गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
8. परास के क्या तात्पर्य है? इसके गुण व दोषों को बताइए।
9. डॉ. बाउले ने किस आधार पर विषमता की माप का प्रतिपादन किया है? संक्षेप में समझाइए।
10. शतांशीय मान को उदाहरण सहित समझाइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. सारणीयन के प्रमुख भागों का उल्लेख करते हुए इसके गुण व दोषों की विवेचना कीजिए।
2. सांख्यिकीय सारणीयन के प्रमुख प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
3. वर्गीकरण से क्या तात्पर्य है? समंकों का वर्गीकरण किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है?
4. समंकों के प्रस्तुतीकरण में चित्रों की आवश्यकता क्यों होती है? स्पष्ट कीजिए।
5. बिंदुरेखीय प्रस्तुतीकरण को समझाते हुए इसके गुण व दोषों की विवेचना कीजिएं
6. निम्नलिखित समंकों का प्रत्यक्ष विधि द्वारा समांतर माध्य ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक	10	20	30	40	50	60	70
विद्यार्थियों की संख्या	6	8	10	15	20	12	8

7. निम्नलिखित समंकों के समांतर माध्य, प्रत्यक्ष विधि एवं पद विचलन विधि से ज्ञात कीजिए।

मजदूरी रु. में	0–10	10–20	20–30	30–40	40–50	50–60
विद्यार्थियों की संख्या	15	25	25	30	22	14

8. निम्नलिखित का परास ज्ञात कीजिए–

   (क) 17, 23, 39, 51, 66, 94, 116, 126

   (ख) 28, 34, 52, 64, 79, 108, 130, 145
9. निम्नलिखित आवृत्ति विवरण से छात्रों की माध्य ऊंचाई ज्ञात कीजिए–

ऊंचाई इंच में	64	65	66	67	68	69	70	71	72	73
छात्रों की संख्या	1	6	10	22	21	17	14	5	3	1

10. निम्नलिखित सारणी से माध्यिका ज्ञात कीजिए।

वर्ग अंतराल	50–54	55–59	60–64	65–69	70–74	75–79	80–84	858–89
	1	5	17	36	25	11	4	1

11. निम्न समंक से चुतर्थक विचलन एवं गुणांक की गणना कीजिए–

महीने	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
मासिक आय	49	50	50	51	51	52	52	53	53	54	54	55

टिप्पणी

12. निम्न आंकड़ों से कार्ल पियर्सन का विषमता गुणांक ज्ञात कीजिए–

आकार	6	7	8	9	10	11	12
आवृत्ति	3	6	9	13	8	5	4

13. निम्न आंकड़ों से बाउले का विषमता गुणांक ज्ञात कीजिए–

अंक	8	16	24	32	40	48
आवृत्ति	70	50	40	34	19	0

14. शतांशीय मान की गणना विधियों का उल्लेख कीजिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

Agarwal, Y.P. (1990). Statistical methods : concepts, applications and computations. New Delhi: Sterling Publishers.

Burke,K. (2005), How to assess authentic learning Thousand Oaks, CA: Corwin.

Garrett, H.E.(1973) Statistics in psychology and education Bombay : .

Popham, W.J. (1993). Educational evaluation. Boston :Allyn and Bacon

Popham, W.J. (1993). Modern educational measurement : Englewood Cliffs, NJ. : Prentice Hall.

Popham, W.J. (2010). Classroom assessment : What teachers need to know New York: Prentice Hall.